# आप्तवाणी

## श्रेणी-14 (भाग-२)

दादा भगवान प्ररूपित

# आप्तवाणी

## श्रेणी - 14

## भाग - 2

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

# त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

# ‘दादा भगवान’ कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर ‘दादा भगवान’ पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। ‘मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?’ इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

‘व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं’, इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को ‘दादा भगवान कौन?’ का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ‘‘यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो ‘ए.एम.पटेल’ हैं। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे ‘दादा भगवान’ हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और ‘यहाँ’ हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।’’

# निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

## आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करने वाला हूँ। बाद में अनुगामी चाहिए या नहीं चाहिए? बाद में लोगों को मार्ग तो चाहिए न?'

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आप श्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरू बहन अमीन (नीरू माँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरू माँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरू माँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेश में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरू माँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त करके ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

# समर्पण

विश्व के रहस्य, ज्ञानी खोले यहाँ;
न भूतो न भविष्यति, ऐसे ज्ञानी 'कहाँ'!

छः तत्त्वों के गुह्य मौलिक स्पष्टीकरण;
आप्तवाणी चौदहवीं यह बेजोड़!

छः तत्त्वों की अनादि से भागीदारी;
नहीं कोई कह सकता, है ज़्यादा मेरी या तेरी!

गति, स्थिति सहायक, हेराफेरी;
आकाश कहे भाग में, जगह 'मेरी'!

काल का प्रबंधन, जड़ का माल;
चेतन निरीक्षक, पर करी धमाल!

बन बैठा मालिक, टूटी बाड़;
ज्ञानी लाते हैं ठिकाने पर, वही कमाल!

विश्रसा, प्रयोगसा, मिश्रसा;
समझाई सहज में, परमाणु दशा!

क्रियावती शक्ति, मात्र *पुद्गल* की;
कल्पना करता है चेतन, *पुद्गली* चित्रण की!

तीर्थंकरी विज्ञान, प्रकट हुआ दादा के माध्यम से;
चौदहवीं आप्तवाणी, जगत् के चरणों में रखी!

**डॉ. नीरू बहन अमीन**

## व्यवहारिक और आध्यात्मिक पूर्ण ज्ञान से भरी आप्तवाणी

ज्ञानी पुरुष अर्थात् इस वर्ल्ड की कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जो उन्हें जाननी बाकी हो। ज्ञानी वर्ल्ड की ओब्ज़र्वेटरी कहलाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन आप जो भी जानते हैं, क्या वह सब बता नहीं देना चाहिए?

**दादाश्री :** यह बता ही रहे हैं न! ये आप्तवाणियाँ लिखी जाएँगी, वह इसलिए ताकि इन लोगों को, ये जो पहले की परिभाषा वाले शब्द हैं न, लोगों को उनमें से एक भी समझ में नहीं आता इसलिए यह जो है, अपनी भाषा में, ग्रामीण भाषा में सभी को दिया है न, तो सभी समझ जाएँगे, कि धर्म क्या है और आत्मा क्या है।

**प्रश्नकर्ता :** आप जो 356 डिग्री पर बैठे हैं, उस डिग्री का ज्ञान सभी को दे देना चाहिए न?

**दादाश्री :** हाँ। तो यह जो आप्तवाणी (पुस्तक) है न, वैसी 14 आप्तवाणियाँ तैयार होंगी। जब 14 आप्तवाणियाँ तैयार हो जाएँगी, तो उन सब में जो कुछ भी संकलित किया जाएगा, तब उनमें पूरा ज्ञान आ जाएगा। मोती तो पूरे आ जाने चाहिए न?

यह चार ही अंश की कमी वाला केवलज्ञान है। अत: ये शास्त्र ही कहे जाएँगे। अन्य शास्त्रों में तो सूझ भी नहीं पड़ती।

**प्रश्नकर्ता :** वे जो छ: दर्शन हैं न, वैसे ही यह आप्तवाणी भी एक दर्शन नहीं कहा जाएगा?

**दादाश्री :** नहीं, आप्तवाणी तो छ: दर्शनों का सम्मिलित स्वरूप है। छ: दर्शन हर एक के खुद के अलग-अलग हैं। कोई कहता है, 'हमारा यह, हमारा यह, हमारा यह।' यह सम्मिलित दर्शन है। यह अनेकांत है, एकांतिक नहीं है। अर्थात् यह छ: दर्शनों का सम्मिलित स्वरूप है। छ: दर्शन वाले मिलकर यहाँ पर बैठें, तो कोई भी उठकर नहीं जाएगा। सभी को खुद के दर्शन जैसा ही लगेगा। अत: यह पक्षपाती नहीं है, निष्पक्षपाती है! यहाँ पर जैन बैठ सकता है, वेदांती बैठ सकता है और यहाँ पर पारसी भी हैं, सभी रहते हैं यहाँ पर।

**प्रश्नकर्ता :** कोई दादा की वाणी पर श्रद्धा रखे, आप्तवाणी पर श्रद्धा रखे तो समकित हो जाएगा या नहीं?

**दादाश्री :** आपको किस प्रकार से श्रद्धा बैठ गई?

**प्रश्नकर्ता :** आप्तवाणी पढ़कर श्रद्धा बैठ गई।

**दादाश्री :** उसी को समकित कहते हैं। यह दृष्टि में फिट हो जाए तो उसी को आत्म दृष्टि कहा जाता है। इस दृष्टि में (आप्तवाणी में समझाई गई दृष्टि) अपनी दृष्टि पूरी तरह से फिट हो जाए तो आत्मदृष्टि हो जाएगी। (जो) अन्य दृष्टि है, वह 'यह नहीं है, यह नहीं है, यह, यह, यह नहीं है, यह, यह', इस प्रकार से दोनों अलग-अलग हैं, ऐसा पता चलता है। लेकिन फिर अन्य कोई पुस्तक नहीं पढ़ेगा तो निबेड़ा आएगा।

ये सभी आप्तवाणियाँ तो हेल्पिंग हैं। आने वाली पीढ़ी को ज़रूरत पड़ेगी न? उनके लिए हेल्पिंग है। ये आप्तवाणियाँ तो बहुत आश्चर्यजनक चीज़ हैं। आप्तवाणियों से संसार व्यवहार की परेशानियाँ भी सारी चली जाएँगी।

कितने ही लोग मुझसे ऐसा कहते हैं कि बहुत परेशानी में फँस जाता हूँ और आप्तवाणी लेकर ज़रा यों ही देखता हूँ तो वही पन्ना निकलता है और मेरी परेशानियों को खत्म कर देता है। इसे मिल जाती है, लिंक मिल जाती है।

**प्रश्नकर्ता :** संकलन बहुत अच्छा हुआ है। एक-एक सबजेक्ट बहुत अच्छी तरह संकलित हुआ है।

**दादाश्री :** हाँ। मेरी ऐसी इच्छा है, इसलिए अच्छा होता है। अत: थोड़ा-थोड़ा समय निकालकर पढ़ते रहना ज़रा।

**प्रश्नकर्ता :** इसलिए दादा, हम कहते हैं कि आप्तवाणियों का हम पर बहुत उपकार है।

**दादाश्री :** आप्तवाणी तो अपना खुद का ही जीता जागता स्वरूप है न, एक प्रकार का!

इसलिए इस वाणी को पढ़ेगा न, तब भी यों ही समकित हो जाएगा!

# संपादकीय

प्रस्तुत ग्रंथ आप्तवाणी श्रेणी -14 (भाग-2) में अविनाशी तत्त्वों का वर्णन है। परम पूज्य दादाश्री ने यहाँ पर खंड-1 में छः अविनाशी तत्त्वों की अति-अति गुह्य और सूक्ष्मतम बातें सामान्य मनुष्य को भी सादी और सरल, देशी भाषा में समझा दी हैं। उसमें भी छः तत्त्वों की पार्टनरशिप का उदाहरण देकर ब्रह्मांड की रचना का गुह्यतम ज्ञान बिल्कुल सरल कर दिया है!

जड़ तत्त्वों का माल-सामान, गति सहायक तत्त्व की हेराफेरी (कार्टिंग) का काम, स्थिति सहायक तत्त्व माल को जमा कर रख देता है, स्टोर करता है। काल तत्त्व नए को पुराना करके मैनेजमेन्ट का काम करता है। आकाश तत्त्व व्यापार करने के लिए माल रखने की जगह देता है और चेतन तत्त्व का कार्य है सुपरवाइज़र का। उसके बजाय वह मालिक बन बैठा है, उससे पार्टनरशिप में झंझट हो गई और दावे दायर हुए। चेतन यदि वापस निरीक्षक (ज्ञाता-द्रष्टा) बन जाए तो निबेड़ा आ जाएगा, इस अनादि की कॉन्फ्लिक्ट (उलझन-झगड़ों) का।

जड़ *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) परमाणु और *पुद्गल* के रहस्य खंड-2 में बताए गए हैं। उसमें भी ऐसा है कि विश्रसा, प्रयोगसा और मिश्रसा को सादा उदाहरण देकर सरलता से समझा दिया है। *पुद्गल* की करामात और उसके प्रसवधर्मी स्वभाव, और पूरा जगत् *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना - डिस्चार्ज होना, खाली होना) है, वह सब पढ़ते ही समझ में आ जाता है। *पुद्गल* की क्रियावती शक्ति का रहस्य समझ में आने पर कर्ता से संबंधित भ्रांति, व्यवहारिकता से लेकर तात्त्विकता तक की, खत्म हो जाती है।

परमाणुओं का असर ठेठ स्थूल व्यवहार तक जो होता है, वह यहाँ अनावृत किया गया है। भोजन के परमाणुओं से होने वाले असर का रहस्य भी ज्ञानी की दृष्टि से अगोपित होता है।

प्रस्तुत ग्रंथ पढ़ने से पहले साधक को उपोद्घात अवश्य ही

पढ़ना चाहिए, तभी ज्ञानी के अंतर आशय को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे और लिंक अगोपित होगी।

आत्मज्ञान के बाद बीस साल तक अलग-अलग व्यक्तियों के लिए परम पूज्य दादाश्री की वाणी टुकड़ों-टुकड़ों में निकली है। इतने सालों में पूरा सिद्धांत एक साथ एक ही व्यक्ति के संग तो नहीं निकल सकता न?! बहुत सारे सत्संगों को इकट्ठा करके, संकलित करके सिद्धांत रखा गया है। साधक एक चेप्टर को एक ही बार में पढ़ लेंगे तभी लिंक रहेगी और समझ में सेट होगा। टुकड़े-टुकड़े करके पढ़ने से लिंक टूट जाएगी और समझ सेट करने में मुश्किल होने की संभावना रहेगी।

ज्ञानी पुरुष की ज्ञानवाणी मूल आत्मा को स्पर्श करके निकली है, जो अमूल्य रत्नों के समान है। तरह-तरह के रत्न इकट्ठे होने पर एक-एक सिद्धांत की माला बन जाती है। हम तो, हर एक बात को समझ-समझकर दादाश्री के दर्शन में जैसा दिखाई दिया, वैसा ही दिखाई दे, ऐसी भावना के साथ पढ़ते जाएँगे और रत्नों को संभालकर इकट्ठे करते रहेंगे तो अंततः सिद्धांत की माला बन जाएगी। वह सिद्धांत हमेशा के लिए हृदयगत होकर अनुभव में आ जाएगा।

14वीं आप्तवाणी पी.एच.डी. लेवल की है। जो तत्त्वज्ञान को स्पष्टतः समझा देती है! इसलिए यहाँ पर बेसिक बातें विस्तारपूर्वक नहीं मिलेंगी या फिर बिल्कुल भी नहीं मिलेंगी। साधक अगर तेरह आप्तवाणियों की और दादाश्री के सभी महान ग्रंथों की फुल स्टडी करके और समझने के बाद चौदहवीं आप्तवाणी पढ़ेगा तभी समझ में आएगा। अतः नम्र विनती है कि यह सब समझने के बाद ही आप चौदहवीं आप्तवाणी की स्टडी करना।

हर एक नया हेडिंग वाला मेटर नए व्यक्ति के साथ हुआ वार्तालाप है, ऐसा समझना। इस कारण से ऐसा लगेगा कि वही प्रश्न फिर से पूछ रहे हैं लेकिन गहन विवरण मिलने के कारण संकलन में उसका समावेश किया गया है।

एनाटॉमी (शरीर विज्ञान) में दसवीं, बारहवीं कक्षा में, मेडिकल में वर्णन है। वही बेसिक बात आगे जाकर गहराई में समझाई जाती है तो उस कारण से ऐसा नहीं कह सकते कि सभी कक्षाओं में वही पढ़ाई है।

ज्ञानी की वाणी तमाम शास्त्रों के सार रूपी है और (जब) वह वाणी संकलित होती है तब वह स्वयं शास्त्र बन जाती है। उसी प्रकार यह आप्तवाणी मोक्षमार्गी के लिए आत्मानुभवी के कथन के वचनों का शास्त्र है, जो मोक्षार्थियों को मोक्षमार्ग पर आंतरिक दशा की स्थिति के लिए माइल स्टोन की तरह काम में आएँगे।

शास्त्रों में सौ मन सूत में एक बाल जितना सोना बुना हुआ होता है, जिसे साधक को स्वयं ही ढूँढकर प्राप्त करना होता है। आप्तवाणी में तो प्रकट ज्ञानी ने सौ प्रतिशत शुद्ध सोना ही दे दिया है।

गुह्यतम तत्त्व को समझने के लिए यहाँ पर संकलन में परम पूज्य दादाश्री की वाणी में निकले हुए अलग-अलग उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। अनुभवगम्य अविनाशी तत्त्व को समझने के लिए विनाशी उदाहरण हमेशा मर्यादित ही रहेंगे। फिर भी अलग-अलग एंगल से समझने के लिए तथा अलग-अलग गुण को समझने के लिए अलग-अलग उदाहरण बहुत ही उपयोगी हो जाते हैं। कहीं पर विरोधाभास जैसा लगता है लेकिन वह अपेक्षित है, इसलिए अविरोधाभासी है। सिद्धांत का कभी भी छेदन नहीं करता।

परम पूज्य दादाश्री की बातें अज्ञान से लेकर केवलज्ञान तक की हैं। प्रस्तावना या उपोद्घात में संपादकीय क्षति हो सकती है। फिर आज जितना समझ में आया, उसी अनुसार आज यह बताया गया है लेकिन ज्ञानी की कृपा से आगे जाकर विशेष ज्ञान निरावृत हो जाए तो वही बात अलग प्रतीत होगी। लेकिन वास्तव में तो वह आगे का स्पष्टीकरण है। यथार्थ ज्ञान की समझ तो केवलीगम्य ही हो सकती है! इसलिए कोई भूलचूक लगे तो क्षमा माँगते हैं। ज्ञानी पुरुष की ज्ञानवाणी को पढ़-पढ़कर अपने आप ही मूल बात को समझ में आने

दो। ज्ञानी पुरुष की वाणी स्वयं क्रियाकारी है, अवश्य ही स्वयं उग निकलेगी।

खुद की समझ पर फुल पोइन्ट (स्टॉप) लगाने जैसा नहीं है। हमेशा कॉमा लगाकर ही आगे बढ़ेंगे। ज्ञानी की वाणी की नित्य आराधना होती रहेगी तो नई-नई स्पष्टता होगी और समझ वर्धमान होने के बाद ज्ञानदशा की श्रेणियाँ चढ़ने के लिए विज्ञान का स्पष्ट अनुभव होता जाएगा।

अति-अति सूक्ष्म बातें, विभाव या पर्याय जैसी, पढ़ते हुए यदि साधक को उलझन में डाल दें तो उससे चिंतित होने की ज़रूरत नहीं है। अगर यह समझ में नहीं आया तो क्या मोक्ष रुक जाएगा? बिल्कुल भी नहीं। मोक्ष तो ज्ञानी की पाँच आज्ञा में रहने से ही सहज प्राप्य है, तार्किक अर्थ और पंडिताई से नहीं। आज्ञा में रहने पर ज्ञानी की कृपा ही सर्व क्षतियों से मुक्त करवा देती है। अतः सर्व तत्त्वों का सार, ऐसे मोक्ष के लिए तो ज्ञानी की आज्ञा में रहा जाए, वही सार है।

**- डॉ. नीरू बहन अमीन**

# उपोद्‌घात

## [ खंड-1 ] : छः अविनाशी तत्त्व

### [ 1 ] छः अविनाशी तत्त्वों से रचना हुई विश्व की

जगत् अनादि अनंत है। संयोग स्वभाव से वियोगी हैं। संयोगों से सबकुछ उत्पन्न होता है, वियोग से बिखर जाता है। इसका कोई कर्ता नहीं है।

द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ। किसी ने क्रिएट नहीं किया है। भगवान भी रचयिता नहीं हैं। कुदरत भी रचयिता नहीं है। कुदरती रूप से हो गया है।

यह जगत् किसी ने बनाया नहीं है और बनाए बिना बना नहीं है। इसका अर्थ यह है कि सभी निमित्त भाव से कर्ता हैं, वास्तव में नहीं हैं।

जगत् में छः शाश्वत तत्त्व हैं, उनके सम्मेलन से जगत् बना है। यह ऐसा नहीं कि बुद्धि से समझा जा सके। क्योंकि खुद इटर्नल बन जाएगा तो इटर्नल की बात कर सकेगा। साइन्टिस्ट जब पूरी थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी को पार कर लेंगे तब रियलिटी की शुरुआत होगी और तीसरी है थ्योरी ऑफ एब्सल्यूटिज़म।

छः द्रव्य परमानेन्ट हैं। केवलज्ञान से ही दिखाई देते हैं। संत या भक्त भी उन्हें देख नहीं सकते।

इन तत्त्वों पर किसी का कंट्रोल नहीं है। छहों तत्त्व स्वतंत्र हैं। विश्व का कोई मालिक नहीं है फिर उसकी नियति भी है। सूत्रधार व्यवस्थित शक्ति है और फिर वह भी जड़-शक्ति है।

जो यह ढूँढने गए कि छः तत्त्वों में से पहला तत्त्व कौन सा है, वे अनंत जन्मों तक भटक मरे! यह तो पूरा विज्ञान है।

छः तत्त्वों में आत्मा अक्रिय है। हर एक तत्त्व का खुद का विशेष गुण है। छः तत्त्व अविनाभावी रूप से रहे हुए हैं।

दादा ऐसे ज्ञानी कहे जाते हैं जो कि वर्ल्ड की ओब्ज़र्वेटरी हैं। चार वेदों के *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) कहलाते हैं।

सिर्फ आत्म तत्त्व को जान ले, वह तत्त्व ज्ञानी है और सर्व तत्त्वों को जान ले, वह सर्वज्ञ!

आत्मा जानने का फल है, अनंत पीड़ा में भी अनंत मोक्ष!

इस ब्रह्मांड में सभी तत्त्व स्थिर स्वभाव वाले हैं। एक परमाणु भी स्थिर स्वभाव वाला है लेकिन सभी तत्त्वों के मिलने से और विभाव होने से चंचल हो गया है। जड़ परमाणु खुद ही चंचल हैं, जबकि आत्मा स्वभाव से ही स्थिर है।

छहों तत्त्व स्वभाव से परिवर्तनशील हैं। आकाश क्षेत्र में परमाणु घूमते रहते हैं।

हर एक तत्त्व द्रव्य, गुण और पर्याय सहित होता है। जिनमें से गुण और पर्याय होते हैं, वह द्रव्य है। उसी को वस्तु कहा गया है।

आत्मा और जड़ के मिश्रण से विशेष परिणाम उत्पन्न होते हैं। उससे नए ही गुण उत्पन्न होते हैं। जिन्हें व्यतिरेक गुण कहा गया है।

विनाशी और परिवर्तनशील में क्या फर्क है? विनाशी अर्थात् नाशवंत, जबकि मूल तत्त्व अविनाशी है। आत्मा के गुण अविनाशी हैं और परिवर्तनशील हैं। पर्याय विनाशी हैं और परिवर्तनशील हैं।

एक परमाणु दूसरे परमाणु को पार करता है, उस पर से काल का निमित्त मिला, उतने काल को 'समय' कहा गया है।

आत्मा में परिवर्तनशील क्या है? मूल चेतन, उसके द्रव्य में कोई परिवर्तन नहीं होता। उसके गुण हैं - अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख... किसी भी ज्ञेय को ज्ञान से नहीं जाना जा सकता लेकिन उसके पर्याय से जाना जा सकता है। गुण निरंतर साथ में ही रहते हैं, पर्याय बदलते हैं। जैसे-जैसे ज्ञेय बदलते हैं वैसे-वैसे ज्ञान के पर्याय बदलते हैं। इसके बावजूद ज्ञान तो शुद्ध ही रहता है, संपूर्ण और सर्वांग रूप से।

रूपांतरण और परिवर्तनशीलता में क्या फर्क है? रूपांतरण तो मात्र *पुद्गल* पर, जो कि रूपी है, उस पर लागू होता है। बाहर वाले भाग को रूपांतरण कहा जाता है। वह रूपांतरण मोटा (स्थूल) है। मूल *पुद्गल* परमाणु भी रूपांतरित नहीं होते। वे परिवर्तनशील ही हैं और फिर अंदर शुद्ध ही हैं।

आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय अर्थात् यह जो इलेक्ट्रिक बल्ब है, वह वस्तु (द्रव्य) कहलाती है। प्रकाश देने की उसकी शक्ति गुण कहलाती है और प्रकाश में सभी चीज़ों को देखता और जानता है, वह पर्याय कहलाता है। बल्ब अपनी जगह पर ही रहता है।

यहाँ पर आत्मा से संबंधित कताई होती है। संसार से संबंधित, कषाय से संबंधित कताई सभी जगह होती है लेकिन आत्मा से संबंधित तो यहीं पर काता जाता है।

छहों तत्त्व भ्रमण करते हैं, इनमें से कोई किसी को परेशान नहीं करता है और मदद भी नहीं करता। एकाकार भी नहीं होते। सभी शुद्ध ही हैं। निरंतर, सिर्फ घूमते ही रहते हैं, परिवर्तनशील हैं।

ये परमाणु इस लोक में रिवॉल्व होते रहते हैं और चेतन को भी रिवॉल्व करते रहते हैं। सभी के इकट्ठे होने से आवरण आ जाता है और अलग होने पर मुक्त हो जाता है।

छः सनातन तत्त्वों के रिवॉल्विंग को ही संसार कहते हैं।

ये हैं ब्रह्मांड के छः सनातन तत्त्व :

1. आत्मा – मूल चेतन – अरूपी
2. जड़ – परमाणु – एक मात्र रूपी
3. धर्मास्तिकाय (गति सहायक) – आने-जाने के लिए – अरूपी
4. अधर्मास्तिकाय(स्थिति सहायक)– जो स्थिर करता है – अरूपी
5. आकाश – जो जगह देता है – अरूपी
6. काल – कालाणु है, परिवर्तन लाता है – अरूपी

पाँच तत्त्व अस्तिकाय कहलाते हैं। काल तत्त्व को अस्तिकाय नहीं कह सकते।

यह सारी तीर्थंकरों की खोज है, केवलज्ञान में!

छः तत्त्व हमेशा सत् ही हैं। सत् अर्थात् अविनाशी और असत् अर्थात् विनाशी।

आत्मा को रियल में स्पेस नहीं होती। देहधारी, जीवात्मा को स्पेस होती है।

जीव अव्यवहार में से व्यवहार राशि में आता है तब सब से पहले उस पर कौन सा तत्त्व चिपकता है? काल के आधार पर, इसमें आ जाता है। यों प्रवाह बह रहा होता है, उसमें उसकी बारी आएगी न? इसके पीछे नियति है। नियति या काल स्वतंत्र नहीं हैं। कोई भी *ऊपरी* नहीं है।

इसके बावजूद, इसमें किसी का मुख्य भाग मानना हो तो वह है, *पुद्गल* तत्त्व का। अर्थात् मुख्य झगड़ा जड़ और चेतन का है। बाकी दूसरे साइलेंट (मौन) हैं। लेकिन आत्मा तो इन पाँचों तत्त्वों में फँसा है, अनंत शक्ति का धनी होने के बावजूद भी! जब आत्मा को खुद का और जड़ तत्त्व का भान हो जाएगा तब आत्मा सभी से अलग हो जाएगा।

ऐसा कभी भी नहीं हुआ है कि आत्मा के साथ पाँचों तत्त्व नहीं थे। अनादि से सब साथ में ही हैं। छहों तत्त्व मिक्स्चर के रूप में हैं, कम्पाउन्ड के रूप में नहीं हैं। कम्पाउन्ड हो जाते तब तो मूल गुणधर्म ही बदल जाते।

आत्मा शुद्ध ही है, मात्र बिलीफ ही रोंग हो गई है।

विकल्प लिमिटेड हैं और आत्मगुण अन्लिमिटेड हैं। तभी तो मोक्ष मिल पाता है। और अनंत गुण इसलिए कहा गया है क्योंकि भान (कॉन्शियस) नहीं है। जिसे भान है, उसे तो कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं है न!

आत्मा सनातन वस्तु है। इसलिए उसका अस्तित्व भी सनातन है। सनातन वस्तु के अस्तित्व का कोई कारण नहीं हो सकता।

आत्मा खुद अरूपी है, अन्य चार तत्त्व भी अरूपी हैं। सिर्फ जड़ तत्त्व ही रूपी है। वह रूपी तत्त्व ऐसा है न, कि जिसके साथ छेड़छाड़ करने पर वह डिस्टर्ब हो जाता है और संसार खड़ा हो जाता है। खुद अरूपी है लेकिन रूपी को देखकर, उसके साथ छेड़छाड़ करने से वैसा ही जड़ तत्त्व बन जाता है।

वेदों के भी *ऊपरी,* भेद विज्ञानी होते हैं, वही इन तमाम तत्त्वों को अलग कर सकते हैं। इसमें शास्त्र काम नहीं आते। ज्ञानी के डायरेक्ट प्रकाश की ज़रूरत है। दादा, जिन्होंने संपूर्ण निरावृत आत्मा प्राप्त किया है, वे इस काल के ऐसे ज्ञानी हैं जो दो ही घंटों में यह सारा अलग कर देते हैं!

## [ 2 ] आत्मा, अविनाशी तत्त्व

आत्मा एक ऐसा परम तत्त्व है, जिसमें कि अनंत शक्तियाँ हैं। सिर्फ उसी में चेतनता है, ज्ञान है, सुख है। अन्य किसी तत्त्व में ऐसा नहीं है। ऐसे अनंत आत्मा हैं और प्रत्येक आत्मा अनादि अनंत है।

आत्मा चैतन्यघन स्वरूपी है। उसमें से कभी भी अज्ञान नहीं निकल सकता।

आत्मा त्रिकाल शुद्ध ही है लेकिन विशेष परिणाम के फल स्वरूप जो प्रकृति बन गई है, वह मिश्रचेतन है। निश्चय आत्मा परमात्मा ही है। व्यवहार आत्मा रिलेटिव है। चेतन ही भगवान है, जो संपूर्ण निरालंब है।

जीव और आत्मा में क्या फर्क है?

जो ऐसा मानता है कि, 'जीता हूँ और मरता हूँ', वह जीव है। आत्मा अजर-अमर है।

मूल वस्तु को आत्मा कहा जाता है और अवस्था को जीव कहा गया है।

आत्मा में जानपने का गुण है। वह *लागणियाँ* (सुख-दुःख की अनुभूति) प्रदर्शित करता है। चेतन अक्रिय है और अडिग है।

आत्मा को सिर्फ अरूपी के रूप में *भजेंगे* तो *पुद्गल* के अलावा अन्य चार तत्त्व भी अरूपी हैं, तो वह उनको पहुँचेगा। अन्य चार, आत्मा की तरह अमूर्त हैं, अगुरु-लघु हैं, निर्लेप हैं, टंकोत्कीर्ण हैं, अविचल हैं।

यह जो चेतन है, वह अनुभव करने की वस्तु है। उसका ज्ञान, उसका दर्शन और निराकुल आनंद की अनुभूति, वे उसके अपने विशेष गुण हैं।

आत्मा खुद कभी भी इम्प्योर हुआ ही नहीं है। इम्प्योर होने की मात्र भ्रांति ही है। रियल में खुद शुद्धात्मा ही है। रिलेटिव में ऐसा मानता है कि 'मैं चंदू हूँ'।

गीता में कहा गया है, 'असत् विनाशी है और सत् त्रिकाली अविनाशी है। आत्मा नित्य, अविनाशी, अप्रमेय है और शरीरधारी के ये शरीर नाशवंत हैं। भगवान की भाषा में कोई मरता भी नहीं है और जन्म भी नहीं लेता।'

श्री कृष्ण भगवान ने ऐसा कहा है कि 'मोक्ष तो तेरे अंदर ही है'। इसलिए 'सबकुछ छोड़कर तू मेरी भक्ति कर, अंदर वाले की भक्ति कर।' गीता में आत्मा को ही रियल कृष्ण कहा गया है। उसकी तू भक्ति कर। गीता में जहाँ-जहाँ पर 'मैं' शब्द है, वह आत्मा के लिए है। जबकि लोग इसे व्यक्ति के रूप में ले गए। अंत में आत्मा सो परमात्मा!

## [ 3 ] गति सहायक तत्त्व - स्थिति सहायक तत्त्व

जड़ और चेतन में खुद अपने आप प्रवहन करने की शक्ति नहीं

है। गति सहायक तत्त्व (धर्मास्तिकाय) उन्हें गति करने में सहायता करता है।

अंदर भावना होती है, इच्छा होती है कि 'कहीं जाना है'। अंदर से ऐसा होते ही गति सहायक तत्त्व उसकी मदद करता है।

उपनिषद में ऐसा है कि आत्मा गतिमान है और नहीं भी है। रियल में आत्मा गतिमान नहीं है लेकिन व्यवहार आत्मा भाव इसलिए करता है, तब वह गति सहायक तत्त्व की सहायता से गति करता है।

सिर्फ चेतन तत्त्व ही ऐसा है जो स्वभाव में भी रह सकता है और विशेष-भाव में भी रह सकता है। विशेष-भाव से इधर-उधर जाने का भाव करते ही तुरंत गति सहायक तत्त्व उसे चलने में मदद करता है। जैसे कि पानी मछली को तैरने में मदद करता है! पानी न हो तो मछली तैर नहीं सकेगी।

अब सिर्फ गति सहायक तत्त्व ही होता तो सभी भागदौड़-भागदौड़ करते रहते, घर में, बाहर, सभी जगह! सोफा, पलंग, कुर्सी रखने की ज़रूरत ही नहीं रहती। लेकिन दूसरा एक तत्त्व है, (जिसे) स्थिति सहायक (अधर्मास्तिकाय) कहा गया है, वह हर एक को स्थिर करवाता है।

ऐसा लगता है कि नदी में डाले हुए लकड़ी के लट्ठे को पानी खींच ले जाता है। लेकिन वास्तव में तो गति सहायक तत्त्व ही खींचकर ले जाता है।

गति सहायक और स्थिति सहायक तत्त्व के प्रदेश होते हैं, उनके अणु नहीं होते। आत्मा के भी अनंत प्रदेश होते हैं। यह बात बुद्धि से परे है। केवलज्ञान से ही दिखाई दे सकता है।

गति सहायक तत्त्व का असर खत्म होने पर स्थिति सहायक तत्त्व काम करता है। मृत्यु के समय कहते हैं न, कि अब मुझ में उठने की और चलने-फिरने की हिम्मत चली गई है। इसका अर्थ यही है कि गति सहायक तत्त्व चला गया है।

मूल चेतन तत्त्व को घूमने-फिरने की इच्छा नहीं है। यह तो, जड़ और चेतन के मिलने से विशेष-भाव उत्पन्न होता है। उससे 'मैं' उत्पन्न हो जाता है। उस विभाविक 'मैं' में भाव करने का गुण है। वह व्यतिरेक गुण है। वह भाव करता है और गति सहायक चलने में मदद करता है।

भाव करने वाला कौन है? जड़ या चेतन?

भाव करने वाला है, माना हुआ आत्मा! अर्थात् व्यवहार आत्मा! भाव होने पर ही गति और स्थिति सहायक तत्त्व मदद करते हैं, वर्ना नहीं। व्यवहार में सभी से मदद मिलती है। निश्चय में तो ज़रूरत ही नहीं है न! व्यवहार में खड़े रहने के लिए आकाश की आवश्यकता है, काल की आवश्यकता है। हम सब में सभी छः तत्त्व हैं।

छिपकली की कटी हुई पूँछ कितनी देर तक हिलती रहती है! वह किस आधार पर? जीव तो, छिपकली भाग गई है उसके साथ ही चला गया, तो पूँछ में दूसरा कौन सा जीव आया? क्या चेतन के दो टुकड़े हो जाते हैं? नहीं। आत्मा तो पूँछ कटते समय ही वहाँ से खिसक जाता है, संकुचित होकर छिपकली में चला जाता है। फिर पूँछ जो हिलती रहती है, वह गति सहायक तत्त्व के कारण है। फिर कार्य पूरा होते ही गति सहायक निकल जाता है और स्थिति सहायक स्थिर पड़े रहने में मदद करता है।

पेड़ में स्थिति सहायक अधिक है और गति सहायक बहुत ही कम होता है। स्थिति सहायक और गति सहायक तत्त्व लोकाकाश जितना है। एक है, अखंड है, शाश्वत है।

लोग कहते हैं कि मरते समय जीव को विमान ले जाता है। वास्तव में विमान नहीं परंतु धर्मास्तिकाय ले जाता है। इस तत्त्व को समझ नहीं पाते इसलिए बाल भाषा में उसे विमान कहा है।

मोक्ष में जाने के भाव किए हैं, उसके फल स्वरूप गति सहायक अपने आप ही उसे मोक्ष में ले जाएगा। इसमें आत्मा को कुछ भी नहीं

करना पड़ता। आत्मा तो अंत तक अकर्ता ही रहता है। आत्मा का स्वभाव उर्ध्वगामी है अत: कर्म छूट जाने पर यह गति सहायक उसे छोड़ने जाता है सिद्धक्षेत्र में, और स्थिति सहायक तत्त्व, उसे वहाँ पर स्थिर कर देता है। इस प्रकार अपने-अपने बाकी बचे कार्य पूर्ण करके, ये दोनों तत्त्व भी अंत में अलग हो जाते हैं!

इसीलिए तो श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है,

'पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी,

ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो!' अपूर्व अवसर...

पूर्व प्रयोग हमें यहाँ पर लाता है और घुमाता है। जबकि मोक्ष जाने वालों का पूर्व प्रयोग सिद्धशिला पर ले जाता है।

अंत में भी मोक्ष में जाने के लिए आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ता। आत्मा तो आत्मा ही रहा है, पूरे संसार काल में बिना अड़चन के!

## [ 4 ] काल तत्त्व

संसार में चीज़ें नई-पुरानी होती रहती हैं, वह काल तत्त्व के अधीन है। इसमें काल तत्त्व खुद नया-पुराना नहीं करता, लेकिन उसके निमित्त से होता है।

विनाशी अवस्था कितने समय तक रहेगी ये कैसे नापा जा सकता है? काल तत्त्व के माध्यम से। *पूरण-गलन,* संयोग-वियोग का जो पता चलता है, वह भी काल तत्त्व के कारण ही है।

काल तो ज्ञानी के वंश को भी निर्वंश कर देता है। अन्य किसी की ताकत नहीं है।

जितने समय में एक परमाणु, दूसरे परमाणु को पार करता है उतने काल को 'समय' कहा गया है।

काल, वह कालाणु के रूप में है। वे अनंत हैं लेकिन अरूपी हैं, दिखाई नहीं देते। निश्चेतन हैं।

कृष्ण भगवान ने गीता में (जो) कहा था, तो यदि कोई काल तत्त्व का साधक हो तो आज वह उसके कालाणु को वापस बुला सकता है और उसे सुना भी सकता है! एक कल्प के अंत तक सभी कालाणु ब्रह्मांड में किसी भी जगह पर सुरक्षित रहते हैं, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी तक। लेकिन अभी वह विद्या नहीं है, लुप्त हो गई है। दादा कहते हैं, 'हमारे पास भी वह विद्या नहीं है। वह विद्या तो तीन सौ साठ डिग्री वालों को आती है'।

काल दो प्रकार के हैं : 1) व्यवहार काल 2) निश्चय काल।

पल, विपल, सेकन्ड, मिनट, घंटे, दिन, सप्ताह, महीना, साल... इसे व्यवहार काल कहा गया है और 'समय' को निश्चय काल कहा गया है। एक समय, काल का छोटे से छोटा अविभाज्य भाग है।

तीर्थंकर समय की जागृति तक पहुँच चुके थे, केवलज्ञान के कारण! दादाश्री कहते हैं, मेरा तो पाँच सौ समय तक भी नहीं है! केवलज्ञानी के रेवॉल्यूशन प्रति समय वाले होते हैं!

जहाँ दर्शन है, वहाँ काल नहीं है। काल दृश्य में है, द्रष्टा में नहीं है।

काल कोई इल्यूज़न (भ्रांति, भ्रमणा) नहीं है, वास्तविकता है।

हर एक संयोग, संयोगकाल सहित ही होता है। संयोगकाल ही एक दूसरे संयोगों को इकट्ठा करते हैं।

दस बजकर बीस मिनट पर क्या होगा, वह काल के *लक्ष* (जागृति) में रहता ही है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव, (जब) सब इकट्ठे होते हैं तब काम होता है।

फिर हर एक संयोग वियोगी स्वभाव वाला है।

मेहमान का संयोग वियोगी स्वभाव वाला है, फिर उनके जाने कि चिंता क्यों करें? सुख-दुःख भी संयोगी-वियोगी हैं, अपने आप ही हो जाते हैं।

भावों के अनुसार संयोग मिलते हैं। भावों का राजा खुद ही है।

निर्पेक्ष वस्तु को काल स्पर्श ही नहीं करता। सापेक्ष को ही स्पर्श करता है।

पाँच आज्ञा में रहें तो दादा के महात्माओं को काल, कर्म और माया छू नहीं सकते।

काल तो निरंतर सरकता ही रहता है। उसके साथ किसी का संबंध बन ही कैसे सकता है?

दादाश्री कहते हैं, हम द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव और देह, सभी से परे हैं। सभी से अप्रतिबद्ध हैं।

अक्रम विज्ञान में जो क्रम-अक्रम विशेषण है, वह बदलता रहता है लेकिन विज्ञान विशेषण नहीं है। वह नित्य है। जो विशेषण है, वह काल मर्यादा में है। मर्यादा खत्म होने पर विशेषण खत्म हो जाता है।

यह भी सही है कि सबकुछ 'निश्चित है' और 'निश्चित नहीं है', वह भी सही है। यानी कि यर्थाथ तो 'व्यवस्थित' है।

काल परिपक्व होता है तब मोक्ष में जाता है लेकिन सिर्फ काल ही नहीं, फिर ज्ञानी मिलते हैं, साधन मिलते हैं तब जा सकता है। काल परिपक्व होने पर सभी कुछ मिल जाता है।

तीर्थंकर होते हैं, (तब यदि) उनको सर्व समर्पित करके संयम लेने को तैयार हो जाएँ, तो क्या उसी जन्म में मोक्ष में जा सकते हैं? भगवान कहते हैं, 'नहीं'। क्यों? तो वह इसलिए, क्योंकि भव स्थिति परिपक्व नहीं हुई है। कहते हैं, 'उपाय करके भव स्थिति को जल्दी परिपक्व करो'। लेकिन वह जल्दी परिपक्व होनी होगी तभी उपाय करने पर परिपक्व होगी, वर्ना नहीं।

तो फिर पुरुषार्थ का स्थान कहाँ पर है?

भ्रांति में पुरुषार्थ है ही कहाँ? पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ हो

सकता है। क्रमिक में अहंकार से पुरुषार्थ करते हैं, ऐसा कहा जाएगा। आगे जाकर इस अहंकार को भी विलय करना पड़ेगा।

समय पुरुषार्थी नहीं है, पुरुष पुरुषार्थी है।

तीर्थंकर चौबीस ही क्यों? शलाका पुरुष तिरसठ ही क्यों?

यह सब कुदरती है। हमेशा यही क्रम रहता है। 2H + O = पानी। इसमें यही नाप क्यों है? यह सब साइन्टिफिक है। कुदरती कितना सुंदर है!

दादाश्री कहते हैं, 'बचपन में मुझे बहुत विचार आते थे कि 'ये साल' किसने बनाए हैं? महीने क्यों? वह धीरे-धीरे समझ में आया कि आम के पेड़ पर आम बारह महीनों में एक बार ही लगते हैं, कई सारे फल और फूल बारह महीनों में एक बार ही लगते हैं।'

अत: इस जगत् का एसेन्स बारह महीने का है। फिर महीने का मतलब, पंद्रह दिन चंद्र रहता है और पंद्रह दिन नहीं रहता। सबकुछ एक्ज़ेक्ट है। यह सब नैचुरल (कुदरती) है। मनुष्यों के विकल्प नहीं हैं। इसमें बुद्धि का उपयोग किया ही नहीं जा सकता। यह पूरा काल गणित ही है। इस कुदरती क्रम में बदलाव सिर्फ कहाँ पर होता है? गृहित मिथ्यात्व मनुष्यों का स्वभाव है। इस काल में गृहित मिथ्यात्व के कारण ही मोक्ष रुका हुआ है!

कर्म, काल के अधीन हैं और फिर काल किसी और के अधीन है। कोई भी संपूर्ण रूप से स्वतंत्र तो नहीं है। देखो न भगवान (आत्मा) भी फँस गए हैं इस चक्कर में। वह तो, मोक्षदाता, तरण तारणहार ज्ञानी पुरुष ही इसमें से छुड़वा सकते हैं!

## [ 5 ] आकाश तत्त्व

### [ 5.1 ] आकाश, अविनाशी तत्त्व

आत्मा को आकाश जैसा कहा गया है, तो इन दोनों में क्या फर्क है?

| **आकाश** | **आत्मा** |
| --- | --- |
| – निश्चेतन | – चेतन |
| – *लागणी* नहीं | – *लागणी* वाला |
| – अरूपी | – अरूपी |
| – शाश्वत तत्त्व | – शाश्वत तत्त्व |
| – ज्ञान नहीं | – ज्ञान स्वरूप है |
| – जगत् में कोई चीज़ परेशान नहीं कर सकती | – जगत् में कोई चीज़ परेशान नहीं कर सकती |
| – सूक्ष्म | – सूक्ष्म |
| – हर एक जगह पर है | – हर एक जगह पर नहीं है |
| – दो परमाणु जगह रोकते हैं वहाँ से तीसरा परमाणु नहीं जा सकता | – सभी के आरपार जा सकता है |
| – आकाश में *पुद्गल* जगह रोकता है | – अन्अवगाहक (आत्मा आकाश में जगह नहीं रोकता) |

आकाश इतना बड़ा है लेकिन अविभाज्य है, एक ही है, अखंड है। जगह देने का काम आकाश का है। आकाश विभाविक आत्मा को जगह देता है। स्वाभाविक आत्मा को जगह की ज़रूरत ही नहीं है।

आकाश स्वतंत्र है, आत्मा जितना ही स्वतंत्र है। उसके टुकड़े नहीं हो सकते, स्कंध होते हैं उसके। किसी जगह पर ज़्यादा जम जाता है तो किसी जगह पर कम जमता है लेकिन एकता नहीं टूटती।

ऐसा है कि सिर्फ आकाश ही दिखाई देता है, वह भी उसका स्थूल भाग।

आकाश जिस रंग का दिखाई देता है वह, उसमें जो बहुत पोला

(खाली) भाग है, उसकी वजह से दिखाई देता है। और वहाँ (आकाश) पर भी समुद्र का प्रतिबिंब बनता है। सूर्य का प्रकाश समुद्र पर पड़ता है और उसका प्रतिबिंब ऊपर (आकाश में) दिखाई देता है। बाकी आकाश अर्थात् अवकाश, खाली जगह है। पानी खुद भी कलरलेस (रंगविहीन) है।

हर एक चीज़ में आकाश तत्त्व होता है। हीरे में सब से कम आकाश होता है। इसलिए वह जल्दी नहीं टूट सकता।

आकाश सभी जगह पर है। सिद्धक्षेत्र में आत्मा स्पेस नहीं रोकता इसलिए उसे अन्अवगाहक कहा गया है। सिद्धक्षेत्र में सिद्ध भगवंत होते हैं। निराकार होने के बावजूद भी उनका आकार होता है। जिस देह में से वे सिद्ध हुए, उसके दो तृतीयांश भाग का आकार होता है।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भव सबकुछ बदलता रहता है। भव लंबे समय तक चलता है लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव निरंतर बदलते रहते हैं।

स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव, इन चारों भावों वाला वह खुद ही है, वही शुद्धात्मा है।

स्वक्षेत्र अर्थात् खुद के अनंत प्रदेशी भाव। वास्तव में वह (खुद) क्षेत्र नहीं है फिर भी समझाने के लिए परक्षेत्र और स्वक्षेत्र कहा गया है। आत्मा का स्वभाव ही होता है, अन्य कुछ नहीं होता। ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंदी, वही उसका स्वभाव है, उसके अलावा बाकी सारा परभाव। परभाव, परक्षेत्र के अधीन है।

आत्मा क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र को जानने वाला ही क्षेत्राकार हो गया।

## [ 5.2 ] स्पेस के अनोखे असर

आत्मा के अलावा बाकी सब स्पेस रोकता है। *पुद्गल* का स्वभाव जगह रोकने का है। शुद्ध परमाणु भी जगह रोकते हैं।

मुझे डॉक्टर बनना हो तो उसमें स्पेस किस प्रकार से काम करता

है? टाइमिंग, स्पेस और बाकी सभी कारणों के मिलने पर डॉक्टर बनने का विचार आता है। खुद स्वाधीनता से कर्म नहीं करता। इसमें स्पेस मुख्य है।

पहले स्वभाव है या पहले स्पेस?

स्वभाव के कारण स्पेस मिलता है और स्पेस के कारण स्वभाव मिलता है। अतः निमित्त-नैमित्तिक भाव से है।

कर्म भी स्पेस के आधार पर है। कर्म मूल तत्त्व नहीं है। कर्म स्पेस के आधार पर है।

लेकिन स्पेस में काल के आधार पर भाव उत्पन्न हुआ।

द्रव्य जब क्षेत्र में आया तो उसके आधार पर काल मिला और काल के बाद में भाव उत्पन्न होता है और फिर कर्म चार्ज होता है।

क्षेत्र में द्रव्य → काल → भाव = कर्म चार्ज

द्रव्य अर्थात् भ्रांत चेतन। भ्रांति रहित चेतन तो स्पेस में हो ही नहीं सकता न! अतः मुख्यतः पहले क्षेत्र होगा तभी गाड़ी आगे बढ़ेगी।

और स्पेस किस आधार पर मिलता है? उसके अपने नियम के आधार पर। स्कूल में सभी साथ में सुनते हैं लेकिन हर एक का स्पेस अलग-अलग है इसलिए हर एक को अलग-अलग भाव होते हैं।

स्पेस अलग है इसलिए हर एक का अहंकार अलग है और अहंकार की वजह से स्पेस अलग है, अन्योन्य है।

ज्ञान स्पेस नहीं रोकता, कर्म जगह रोकता है। भक्ति भी स्पेस वाली है। कर्म और ज्ञान साथ में बैठ सकते हैं क्योंकि ज्ञान स्पेस नहीं रोकता न! कर्म और भक्ति साथ में नहीं बैठ सकते क्योंकि दोनों स्पेस रोकते हैं।

स्थल (स्पेस) और काल का असर विचारों पर होता है, आत्मा

पर नहीं होता। आत्मा के अलावा वर्ल्ड में कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जिस पर कि असर नहीं होता है। *पुद्गल* खुद ही इफेक्टिव है।

इंसानों के वाइब्रेशन्स (स्पंदन) होते हैं, उसी प्रकार क्षेत्र के भी वाइब्रेशन्स होते हैं। कुरूक्षेत्र में लड़ने के ही विचार आते हैं। वहाँ लड़ भी पड़ते हैं! किसी-किसी जगह पर ही भक्ति और ज्ञान जमकर हो पाते हैं।

क्षेत्र स्पर्शना के हिसाब होते हैं। पुण्य हो तब स्पर्शना कोमल लगती है, ठंडक लगती है या फिर कुत्ते को देखकर या छिपकली को देखकर चिढ़ मचे तो माना जाएगा कि वैसा ही हिसाब आया।

हमें समझदार बनना है। हम टेढ़े तो जगह टेढ़ी मिलेगी। इसमें भाव सुधर जाए तो क्षेत्र, द्रव्य, काल सभी कुछ सुधर जाएगा। भाव बदलना है। हर एक को ऐसी तैयारी रखनी है कि किसी भी संयोग में, कोई भी जगह बोझ वाली नहीं लगनी चाहिए।

तीर्थ स्थल पर जा कर नास्तिक भी भगवान को मानने लग जाता है! जहाँ पर तीर्थंकर विचरण करते हैं, वह तीर्थ बन जाता है! दादा कहते हैं, हमारे द्वारा ऐसा नहीं हो सकता।

अब, महात्माओं के सभी भाव डिस्चार्ज भाव हैं। ऐसी मान्यता है कि 'मैं चंदू हूँ', तभी तक भाव होंगे, वर्ना नहीं होंगे।

क्षेत्र कब बदलता है?

(जब) स्वभाव बदलता है, तब।

अभी इस भूमि पर दूषम स्वभाव वाला ही आता है। दादा कहते हैं, हम भी आए हैं न! ज्ञान के बाद स्वभाव में बदलाव होता है तब क्षेत्र बदलता है और एकाध जन्म में महाविदेह क्षेत्र में जा सकते हैं।

सभी हद में ही रहते हैं और जो बेहद में जाए, बाउन्ड्री में से बाहर निकल जाए तो काम पूरा हो जाएगा और जो बेहद तक पहुँच

चुके हैं वही बेहद में ले जा सकते हैं। (बुद्धि लिमिट वाली है, ज्ञान अन्‌लिमिटेड है)

## [ 5.3 ] रहस्य, अलग-अलग मुखड़ों के

हर एक के मुखड़े अलग-अलग क्यों हैं?

यदि भगवान ने बनाए हैं तो अलग-अलग किस प्रकार से बनाए?

भगवान को कितने सांचे बनाने पड़े होंगे? एक जैसे मुँह बन जाते तो जमाई को पहचानना मुश्किल हो जाता! पति बदल जाते! पति कुमकुम धोकर आ जाते तो लगता, 'हमने जिन पर कुमकुम डाला था, ये वह नहीं हैं!' क्या उस घोटाले की कल्पना की जा सकती है?

फेस स्पेस के आधार पर है। अलग-अलग चेहरों का कारण है, हर एक जीव का अलग-अलग स्पेस!

एक व्यक्ति बात करता है तब सैकड़ों सुनने वाले होते हैं, हर एक का काल एक ही होता है लेकिन स्पेस अलग-अलग होता है इसलिए सबकुछ बदल जाता है, भाव बदल जाते हैं। उसे दादाश्री ने 'व्यवस्थित' कहा है। भगवान में ज्ञान है लेकिन बुद्धि नहीं है। बुद्धि ही यह सारा सर्जन कर सकती है, ज्ञान नहीं।

जलप्रपात के पास लाखों बुलबुले बनते हैं। वे छोटे-बड़े होते हैं लेकिन क्या किसी के साइज़ में ज़रा सी भी समानता है? क्योंकि स्पेस अलग है। एक एविडेन्स बदला कि दूसरा भी बदल जाता है। खिचड़ी में एक-एक दाना अलग है। इमली के सभी पत्ते एक-दूसरे से अलग होते हैं! यह स्पेस की वजह से है। यह साइन्स समझने जैसा है।

हर मनुष्य की हस्तरेखाएँ (फिंगर प्रिन्ट) अलग-अलग हैं! उसी के आधार पर तो कोर्ट और इमिग्रेशन चलता है! एक सिर के दो बाल भी एक सरीखे नहीं होते।

इतने सैनिक, इतने सुथार, स्त्री, पुरुष यह सारा हिसाब अलग-अलग स्पेस के कारण है।

एक आम के पेड़ के हर एक आम का स्वाद अलग! पहली रोटी बनी, उसका स्वाद अलग और दूसरी, तीसरी.. अंतिम का स्वाद अलग! किसी की पकौड़ी, किसी के मठिया प्रख्यात हो जाते हैं, उसका क्या कारण है? स्पेस, टाइम, भाव सब अलग हैं इसलिए।

किसी जीव में दूसरा जीव नहीं रह सकता और होता है तो वह सूक्ष्म रूप में होता है। वह भी उस जीव के अंदर नहीं परंतु बाहर, अर्थात् उसके शरीर के खोखले हिस्से में होता है। क्योंकि हर एक जीव का आकाश अलग है।

स्पेस अलग है इसलिए भाव अलग हैं, इसलिए व्यवस्थित अलग है, क्या उसके पीछे नियति काम कर रही है?

नियति कब लागू होती है? स्पेस एक ही हो तब। तो फिर सभी का सब एक सरीखा होगा। नियति क्या है? वह एक प्रवाह है। जैसे कि पानी बह रहा हो तो वह कभी भी एक सा नहीं रहता। हर समय बदलता ही रहता है। इसलिए हर एक का स्पेस अलग हो जाता है। एक स्पेस में दो परमाणु या दो जीव नहीं रह सकते। इसलिए हर एक को अलग-अलग स्पेस मिलता है। उसका आधार है नियति (प्रवाह), परंतु सिर्फ नियति ही सबकुछ नहीं कर सकती। स्पेस अलग है इसलिए अहंकार अलग है और अहंकार ही सबकुछ करता है।

नियति तो हर एक के लिए एक सरीखी ही होती है। बंधन और मोक्ष दोनों के लिए नियति की हेल्प एक समान ही होती है। बंधन का जो आधार है, वही मुक्ति का आधार है। नियति तो सिर्फ हर एक के लिए हेल्पिंग है।

हर एक जीव जब एक स्पेस में से गुज़रता है तब हर एक को वैसा ही समान अनुभव होता है। जो-जो सोलहवें माइल पर आते हैं उस हर एक जीव को वैसा ही अनुभव होता है। नियति है,

वह डेस्टिनी (निश्चित) नहीं, परंतु प्रवाह है। वन ऑफ द एविडेन्स (संयोग) है। [अधिक समझने के लिए आप्तवाणी-श्रेणी-11(पू.), पेज-270 पर]

मरने से पहले, अड़तालीस मिनट पहले डिसिज़न आता है कि कौन सी गति होगी? इसलिए अंतिम अड़तालीस मिनट संभाल लिए जाए तो कल्याण हो जाएगा! अंतिम अड़तालीस मिनट में पूरी ज़िंदगी का सार आ जाता है।

आत्मा सभी में एक सरीखा ही है। उसका धर्म भी एक सरीखा ही है, फिर भी धर्म अलग-अलग क्यों हैं?

स्पेस अलग है इसलिए हर एक के विचार अलग हैं, चेहरा, दिमाग़, सबकुछ अलग है। इसलिए धर्म भी अलग है!

अब यों देखा जाए तो हंड्रेड परसेन्ट कारण स्पेस नहीं है। स्पेस बदल जाए तो भाव बदलते हैं, अहंकार बदलता है, सबकुछ बदल जाता है। इसमें स्पेस का कारण फिफ्टी परसेन्ट है और बाकी के सब फिफ्टी परसेन्ट कारणभूत हैं। परंतु स्पेस का कारण अधिक होने की वजह से उसे मुख्य कारण कहा गया है।

ऐकांत में ढेरों गहने पड़े हुए हों और हम वहाँ पर जा पहुँचे तो मन में चोरी करने का भाव जागता है। उससे बीज डल जाता है। यह भाव किस वजह से होता है? व्यवहारिक ज्ञान के आधार पर, और क्योंकि भाव अलग-अलग होते हैं इसलिए अलग-अलग परमाणु खिंचते हैं।

खुद का ही प्रोजेक्ट है, खुद के ज्ञान के आधार पर। वर्ना सभी कुछ नियति ही होता परंतु ऐसा नहीं है। स्पेस अलग है इसलिए भाव, काल वगैरह सब अलग हैं।

स्पेस एक स्वतंत्र तत्त्व है। उसका कोई आधार नहीं है। परंतु जीव को यह जो स्पेस मिला है, वह नियति (प्रवाह) के आधार पर।

माता और गर्भ में बच्चे का स्पेस एक ही है इसलिए तब दोनों

के भाव एक समान ही होते हैं। जिसे जो स्पेस मिलता है, वह उसके पिछले हिसाब के अनुसार ही मिलता है। अच्छा स्पेस प्राप्त करने के लिए अभी अच्छे भाव करने चाहिए, अपने भाव बदलने चाहिए।

ये सूक्ष्म बातें कब समझ में आएँगी? (ज्ञान से संबंधित, अध्यात्म से संबंधित) जौहरीपन आ जाएगा, तब। और स्पेस के कारण जौहरीपन अलग-अलग होता है!

## [ 6 ] संसार अर्थात् छः तत्त्वों की पार्टनरशिप वाला व्यापार

हर एक शरीर में छः तत्त्व हैं। इस संसार को चलाने के लिए छः पार्टनर मिलते हैं, लिमिटेड कंपनी खोली है। ये छः पार्टनर हैं - 1) परमाणु, जड़, 2) आत्मा, 3) आकाश, 4) गति सहायक, 5) स्थिति सहायक, 6) काल।

व्यापार शुरू करने के लिए जगह दी आकाश तत्त्व ने इसलिए वह बन गया, वन सिक्स्थ पार्टनर। जितनी चाहिए उतनी जगह दे दी।

माल-सामान दिया जड़ तत्त्व ने। सप्लायर बने। परमाणु से जो चीज़ माँगी जाए, वह चीज़ मिलती है। यह रूपी तत्त्व मात्र सप्लायर है।

कार्टिंग करता है गति सहायक। उसका काम है, लाना व ले जाना।

चौथा पार्टनर बना, स्थिति सहायक। माल स्टोर कौन करेगा? स्थिति सहायक माल उतारता है और एक जगह पर स्टोर कर देता है।

काल तत्त्व कहता है कि मैनेजमेन्ट मेरा है। जो नए को पुराना करता है, वह काल है। कालाणु सभी संयोगिक प्रमाण इकट्ठे कर देता है। (लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है।)

और चेतन तत्त्व इन सभी पार्टनरों का ध्यान रखता है। सुपरवाइज़र की तरह काम करता है। उसका काम मात्र सुपरविज़न करने का है, बोलना, करना, डाँटना वगैरह कुछ भी नहीं है, मात्र निरीक्षण करने

का, देखभाल करने का। अन्य कोई झंझट नहीं करनी है।

अब चेतन को मात्र देखभाल करनी थी, उसके बजाय वह पूरे व्यापार का मालिक बन बैठा! 'यह सब मैं ही कर रहा हूँ' ऐसा मान बैठा इसलिए बाकी सब पार्टनर क्रोधित हो गए। (विभाविक) चेतन मानता है, कहता है, 'सामान तो मैं ही हूँ और मेरा ही है, कार्टिंग मेरा है, स्टोर भी मैं करता हूँ, मैनेजमेन्ट भी मेरा है, जगह भी मेरी है'। इस प्रकार सभी पार्टनरों को भगाकर, खुद मालिक बन बैठा, होल एन्ड सोल! इसलिए दूसरे पार्टनरों ने दावा दायर किया इसलिए अब उस पर भारी पड़ रहा है।

अब ज्ञान हो जाए तो यह झगड़ा बंद हो जाएगा। चेतन मालिक बन बैठा, कर्ताधर्ता बन बैठा था। वह छोड़ देगा और सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा रहेगा तो झगड़ा मिट जाएगा।

इस दुनिया में कोई ऐसा नहीं कह सकता कि 'मैं कर रहा हूँ'। भगवान (आत्मा) भी नहीं कह सकते कि दुनिया मैंने बनाई है। इसमें तो भगवान की भी बराबरी की पार्टनरशिप है। भगवान भी छठे पार्टनर हैं।

शरीर के अंदर ही अंदर किस तरह से झगड़े होते हैं?

किसी को घर बुलाने के बाद हमें अपने ही मन में लगता है कि इसे कहाँ बुला लिया? यानी कि अंदर शरीर में ही मतभेद चलते हैं। जगह-जगह पर ऐसा चलता है। ज्ञान मिलने के बाद में अंदर के मतभेद कम हो जाते हैं!

'मैंने किया' ऐसा माना या बोले तो उससे अंदर वाले पार्टनरों की किच-किच शुरू हो जाती है। 'आप क्यों चिपक पड़े हो? यह धंधा चलाने में हमारी भी बराबर की पार्टनरशिप है!'

एक पार्टनर नहीं होगा तो बाकी के पाँच टूट जाएँगे, व्यापार चलेगा ही नहीं।

चंदूभाई नामक दुकान खोली तो उसमें छः पार्टनर हैं। फिर शादी करता है तब चंद्रा बहन नामक दुकान के दूसरे छः अर्थात् बारह पार्टनरों की कॉर्पोरेशन बन गई। फिर बेटा-बेटी पैदा होते हैं तो इस तरह पार्टनर बढ़ते ही जाते हैं। ज्ञानी मिल जाएँ, तभी अनंत जन्मों का देहाध्यास छूट सकता है, वर्ना किस प्रकार से छूट सकता है यह?

चेतन को तो मात्र 'देखते' ही रहना है। दादा कहते हैं कि हम सिर्फ निरीक्षण करते हैं।

छहों तत्त्व मूल रूप से वीतरागी ही है। यह नाटक छहों तत्त्वों की पार्टनरशिप से शुरू हुआ! नाटक करते-करते अहम् हो गया। तभी से आमने-सामने झगड़े शुरू हो गए कि, 'अरे! यह क्या सिर्फ तेरे अकेले का है? तुझे देख लेंगे!' इस तरह से यह झगड़ा अनंत काल से चल ही रहा है।

दादाश्री ने पूरे ब्रह्मांड का रहस्य, इन छः तत्त्वों की पार्टनरशिप का उदाहरण देकर कितनी सरलता से समझा दिया है! बच्चे को चॉकलेट खिलाते-खिलाते, उसके साथ खेलते-खेलते पूरी बारहखड़ी सिखा दी! ज्ञानी हमेशा ही मुश्किल चीज़ को बिल्कुल आसान कर देते हैं जबकि अज्ञानी गुरु एकदम आसान चीज़ को एकदम मुश्किल कर देते हैं! 'न भूतो न भविष्यति', ऐसे दादाश्री इस काल में अवतरित हुए, ऐसा तभी हो सकता है जब पूरे विश्व का ज़बरदस्त पुण्य जागे। अब हमें सिर्फ उसका पूरा-पूरा लाभ ले लेना है! काम निकाल लो! काम निकाल लो!! काम निकाल लो!!!

यह जो छः तत्त्वों का ज्ञान है, वह तो विज्ञान है! वह जानने के लिए है, आराधना करने के लिए नहीं है। आराधना तो उसी की करनी है, जिससे हर पल मन का समाधान हो। दादाश्री की पाँच आज्ञाओं की करनी है। सूक्ष्म बातों में गहरे उतरने की ज़रूरत नहीं है।

## [ खंड-2 ]

# परमाणु, अविनाशी द्रव्य

## [ 1 ] परमाणुओं का स्वरूप

पूरा जगत् परमाणुओं से ही भरा हुआ है।

ये परमाणु, रूपी तत्त्व हैं। पाँच इन्द्रियों से दिखाई दे सकते हैं। चेतन, अरूपी है। वह आँखों से नहीं दिखाई देता, दिव्यचक्षु से पहचाना जा सकता है।

परमाणुओं की खोज तीर्थंकरों की है और वह ज्ञानियों की समझ में आ गया। तीर्थंकर केवलज्ञान से देख सकते थे। दादा केवलज्ञान से नहीं देख सकते थे, लेकिन उन्हें वे बातें समझ में आ जाती थीं!

परमाणु अविभाज्य है। '*पुद्गल*', परमाणुओं से ही बनता है।

परमाणु अनंत हैं। एक-एक को अलग किया जा सकता है। परमाणु एक में से अनंत नहीं बन सकते। कुछ परमाणु इकट्ठे होते हैं तब वह अणु कहलाता है। वह किसी साधन से देखा जा सकता है।

अनंत परमाणु और अनंत आत्माएँ हैं। आकाश तत्त्व, धर्मास्तिकाय तत्त्व व अधर्मास्तिकाय तत्त्व एक-एक ही हैं!

दो या दो से अधिक परमाणुओं के मिलन हो जाने पर उसे स्कंध कहा जाता है। स्कंध यानी कि जो जम चुका है। शरीर में एक परमाणु नहीं होता, थोकबंद स्कंध होते हैं।

सब वैज्ञानिक एटोमिक पार्टिकल्स तक पहुँचे हैं। और ऐसा मानते हैं कि अभी भी उनका विभाजन हो सकता है लेकिन ऐसी संभावना नहीं लगती कि वे परमाणु तक पहुँच पाएँगे। केवलज्ञानी संपूर्ण रूप से एब्सल्यूट हो चुके होते हैं। वे परमाणुओं को देख सकते हैं। ज्ञानी भी नहीं देख सकते।

मन-वचन-काया को परमाणु नहीं कहा जा सकता, *पुद्गल* कहा जाता है। *पुद्गल* मूल परमाणुओं के रूप में नहीं है, अवस्था के रूप में है।

जो अविभाज्य है, वह परमाणु, वह मूल तत्त्व है। जबकि *पुद्गल* तो विभाविक हो चुका है। यानी कि दो तरह के *पुद्गल* हैं। एक मूल स्वाभाविक *पुद्गल* और दूसरा विशेष-भाव वाला *पुद्गल*। जिसने जीव मात्र को बाँधा हुआ है, उस देह को ही *पुद्गल* कहा जाता है, अन्य किसी को नहीं। सिर्फ परमाणुओं को या स्कंध को *पुद्गल* नहीं कहा जा सकता। *पुद्गल* अर्थात् वह जीवित होना चाहिए।

| **स्वाभाविक पुद्गल** | **विभाविक पुद्गल** |
|---|---|
| अविभाज्य | विभाज्य |
| देह में नहीं रहता | देह में रहता है |
| अकेला होता है, परमाणु या स्कंध कहलाता है | जीवित में ही होता है |
| विकृत नहीं है | विकृत है |
| अगुरु-लघु | गुरु-लघु |
| परमानेन्ट | टेम्परेरी |
| परमाणुओं के रूप में होता है | थोकबंध होता है |
| शुद्ध है | प्राकृतिक रंग में रंगा हुआ होता है |
| चेतन गैरहाज़िर है | चेतन हाज़िर रहता है |
| केवलज्ञानी देख सकते हैं | ज्ञानी देख सकते हैं |

आत्मशक्ति और पौद्गलिक शक्ति में बहुत फर्क है। यह पौद्गलिक शक्ति तो आत्मा की हाज़िरी से भरा गया पावर है, पावर

चेतन है। मन-वचन-काया की तीन बैटरियों में चेतन का पावर भरा हुआ है इसलिए वे चेतन जैसा ही काम करती हैं। उसमें क्रोध-मान-माया-लोभ सभी कुछ होता है। जबकि मूल आत्मा कुछ भी नहीं करता। जीव मात्र को सिर्फ प्रकाश ही देता है। पावर चेतन ही सबकुछ करता है। *पुद्गल* की शक्ति अपार है।

मूल परमाणुओं में भी ज़बरदस्त शक्ति है। ज्ञान, दर्शन और चेतना से जो शक्ति उत्पन्न हुई है, वह विकृत शक्ति है।

कुछ संयोगों में जब जड़ को तोड़ा जाए तो ज़बरदस्त शक्ति उत्पन्न होती है। मूल परमाणु नहीं लेकिन कितने ही परमाणुओं को इकट्ठा किया जाए तब एक एटम बनता है। वह एटम टूट सकता है। उसमें से एटोमिक एनर्जी उत्पन्न होती है। इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटॉन, वे सभी जड़ हैं।

परमाणुओं का मिलना, बिखर जाना और *पूरण-गलन,* वह उनका स्वभाव ही है। परमाणुओं के इकट्ठे होने से शक्ति नहीं आती। परमाणुओं के इकट्ठे होने से अणु बनते हैं, उन अणुओं को तोड़ने से शक्ति उत्पन्न होती है, क्योंकि यह उल्टा है, अकुदरती है इसलिए।

## [ 2 ] पुद्गल परमाणुओं के गुण

*पुद्गल* रूपी है। अन्य पाँच तत्त्व अरूपी हैं।

| **स्वाभाविक पुद्गल** | **आत्मा** |
|---|---|
| निर्जीव | जीव |
| रूपी | अरूपी |
| रूप, रस, गंध, स्पर्श | ज्ञान, दर्शन, सुख |
| मूर्त | अमूर्त |

प्रकृति और पुरुष में एक भी कॉमन गुण नहीं हैं। स्वाभाविक *पुद्गल* के मुख्य चार गुण हैं - रूप, रस, गंध, स्पर्श। इसमें रूप

बदलता रहता है। सुंदर पत्नी लाता है लेकिन उम्र बढ़ती जाती है वैसे-वैसे रूप बिगड़ता जाता है न!

स्वाभाविक रूप चक्षुगम्य नहीं है, विभाविक रूप चक्षुगम्य है।

जीव व्यवहार राशि में आता है तब नाम पड़ता है।

आत्मा नाम व रूप से अलग है। भ्रांति से पौद्गलिक रूप बन गए हैं। आत्मा का मूल स्वरूप अलग ही है।

रूप अनेक प्रकार के होते हैं लेकिन सभी पौद्गलिक हैं और बदलते रहते हैं। आँख मुख्यत: तेजस परमाणुओं से बनी हुई है।

जड़ के अलावा अन्य पाँच तत्त्व हैं, वे सब भी अरूपी हैं। उनमें आत्मा तत्त्व के खुद के यूनिक गुणधर्म हैं। जिनमें से मुख्य हैं, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत शक्ति। अन्य गुण जैसे कि अमूर्त, असंग, टंकोत्कीर्ण, अविनाशी, वे अन्य चार तत्त्वों पर भी लागू होते हैं। अत: इन गुणों की *भजना* करने से उनको भी पहुँच जाता है और इसलिए मूल चेतन प्राप्त नहीं होता।

स्वाभाविक *पुद्गल* का दूसरा गुण है, रस।

रस गुण के छ: प्रकार हैं - कड़वा, मीठा, तीखा, खारा, कसैला और खट्टा।

आम का खट्टा या मीठा लगना, वह तो जड़ का गुण है। लेकिन तब (यदि) ऐसा हुआ 'क्यों ऐसा खट्टा है? क्यों ऐसा मीठा है?' तो उसमें व्यवहार आत्मा का भाव आ जाता है। भाव-अभाव, व्यवहार आत्मा के हैं। भावाभाव से मुक्त होने के लिए यह हाज़िर रखना है कि 'आहारी आहार करता है, मैं निराहारी मात्र उसे जानता हूँ'।

जड़ का एक गुण स्पर्श भी है।

ठंडा, गरम, कोमल, खुरदरा, वह स्पर्शना बदलती रहती है।

पूर्वजन्म में किए गए भावों के परमाणु आज फूटते हैं। आत्मा

उग्र भाव में तन्मयाकार हो जाएँ तो उसे क्रोध कहा गया है। (यदि) तन्मयाकार नहीं होते तो वह क्रोध नहीं कहलाता, उग्रता कहलाती है। अंदर जो क्रोधक है, वह क्रोध करवाता है। राग-द्वेष, सुख-दुःख, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, सभी *पुद्गल* परिणाम हैं, और *पुद्गल* परमाणुओं के पर्याय अर्थात्, लाल, पीला, सभी रंग, कोमलता वगैरह वह सब बदलता रहता है।

*पुद्गल* स्पर्शना का नियम क्या है?

उसे तो सिर्फ ज्ञानी ही यथार्थ रूप से समझ सकते हैं।

अपने पर कोई गोली चलाए लेकिन वह हमें स्पर्श करेगी या नहीं, उस नियम को कौन जानता है? यह किसी की हाथ की सत्ता है क्या? यह तो 'व्यवस्थित' की सत्ता है।

गंध स्वाभाविक *पुद्गल* का गुण है और सुगंध-दुर्गंध उसका गुण नहीं है लेकिन उसका पर्याय है। आत्मा को इससे कोई लेना-देना नहीं है। उपयोग सुगंध में जाए तो वह दुर्गंध में भी जाएगा ही। अतः उपयोग आत्मा में रखना है। कड़वी-मीठी वाणी, स्वाद-बेस्वाद, सुदृश्य-कुदृश्य, ये सभी पौद्गलिक गुण हैं।

शब्द *पुद्गल* का गुण नहीं है। परमाणु एक-दूसरे से टकराते हैं तभी शब्द प्रकट होता है। यह *पुद्गल* का नित्य गुण नहीं है।

रबड़ का हॉर्न दबाने से आवाज़ आती है। उस गोले को दबाने से परमाणु बाहर निकलते हैं तो उस समय घर्षण होता है, उससे आवाज़ आती है।

आत्मा के एक भी गुण की नकल नहीं हो सकती। *पुद्गल* के गुणों की नकल हो सकती है। टेप की हुई वाणी की कितनी ही नकलें बनाई जा सकती हैं।

अवस्थाएँ विनाशी हैं। मूल द्रव्य अविनाशी है। अतः जगत् भी अविनाशी है। एक भी परमाणु कम या ज़्यादा नहीं हो सकता। अवस्थाएँ

बदलती रहती हैं। जैसे कि दूध से छाछ भी बनती है और उसी दूध से खीर भी बनती है! अवस्थाएँ बदलती हैं।

| | | |
|---|---|---|
| शब्द | – | कान का गुण |
| रस | – | जीभ का गुण |
| रूप | – | आँख का गुण |
| स्पर्श | – | त्वचा का गुण |
| गंध | – | नाक का गुण |

ये सभी पौद्गलिक गुण हैं।

मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सबकुछ *पुद्गल* का है।

क्रोध-मान-माया-लोभ *पुद्गल* के गुण नहीं हैं। वे आत्मा की उपस्थिति से ही हो सकते हैं, वर्ना नहीं। इन्हें प्रकृति के गुण कहा जाता है लेकिन फिर वे हैं विनाशी। आत्मा के गुण नित्य होते हैं।

सत्यवान, क्षमावान, दानेश्वरी, दयालु, पर-दुःखभंजन, ये सभी प्राकृत गुण हैं, विनाशी हैं। एक बार 'सन्निपात' हो जाए तो अच्छे-अच्छे भी पागलपन करने लगते हैं।

नारियल में पानी कौन भरता है? वह स्वभाव से ही है। भगवान या अन्य कोई इसका कर्ता नहीं है। जितने प्रकार की चीज़ें हैं, उतने ही प्रकार के स्वभाव होते हैं।

अनंत पर्याय क्या हैं? स्वभाव का परिणाम है। स्वभाव जो कि बढ़ता या घटता है, जो कि मोटा या पतला होता है, बदलता है, वे सभी पर्याय कहलाते हैं। आत्मा की उपस्थिति के बिना स्वभाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

यह खारा-खट्टा वगैरह मूल *पुद्गल* परमाणुओं के ही गुण हैं। वह आत्मा की हाज़िरी के बिना हो सकता है। जबकि *पुद्गल* आत्मा

की उपस्थिति में ही बनता है। विकारी परमाणुओं को *पुद्गल* कहा जाता है।

क्या जगत् में सभी परमाणु विकारी होते हैं? शुद्ध स्वरूप के भी परमाणु होते हैं क्या? हाँ, काफी कुछ शुद्ध ही हैं। सभी विकारी नहीं हैं।

मूल शुद्ध परमाणुओं में सभी मूल गुण होते हैं। रूप-रस-गंध-स्पर्श सभी होता है। ये निर्विकारी गुण आत्मा की उपस्थिति के बिना भी हो सकते हैं। विकारी बनने में आत्मा की उपस्थिति मात्र निमित्त रूपी ही है, कर्ता रूपी है ही नहीं। आत्मा कुछ भी नहीं करता, मात्र प्रकाश ही है। यह तो बीच में अहंकार सिर पर ओढ़ लेता है कि 'यह मैं हूँ और मैं कर रहा हूँ'। और अहंकार परमाणुओं के पक्ष में आ जाता है, प्रकाश के नहीं। अहंकार किस प्रकार से काम करता है? वह और कुछ भी नहीं करता, मात्र भाव ही करता है। उसके पास भाव सत्ता है, उसके पास अन्य कोई सत्ता नहीं है। ज्ञानी मिल जाएँ तो वही अहंकार 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बन जाता है, विलय हो जाता है। उसके बाद विकारी परमाणु अपने आप ही विश्रसा होने लगते हैं।

विकल्पों को उखाड़ लेने के बाद में वे फिर से उत्पन्न नहीं होते।

कोई अगर आपको काला कहे लेकिन आपने उस विकल्प को मिटा दिया होगा तो आप पर उसका असर नहीं होगा। आप पर असर होता है या फिर अगर आप सामने वाले को काला कहते हो तभी तक विकल्प की वैल्यू है। उसे डिवैल्यू कर दोगे तो असर नहीं होगा। वह अपना पुरुषार्थ है, काला-गोरा वगैरह सब जड़ के गुण हैं।

अंत में तो यह सारी *पुद्गल* की बाज़ी है।

आत्मा में अनंत शक्तियाँ है लेकिन उसके साथ में रहे परमाणुओं के आवरणों के कारण घोर अंधेरा है।

## [ 3 ] क्रियावती शक्ति

छः तत्त्वों में से सिर्फ *पुद्गल* में ही क्रियावती शक्ति है। बर्फ पड़ती है तब अचानक वहाँ पर बुद्ध जैसी या किसी जानवर जैसी मूर्ति बन जाती है न? *पूरण* होना, और फिर वापस उसी का *गलन* होना, वह उसका स्वभाव है। अतः *पुद्गल* स्वयं क्रियाकारी है।

स्वाभाविक और विभाविक *पुद्गल* क्रियावान् है।

आत्मा को भाव होते ही *पुद्गल* में स्पंदन उत्पन्न होते हैं और सबकुछ क्रियावान् हो जाता है। अतः *पुद्गल* दोनों ही प्रकार से क्रियावान् है। दो प्रकार के *पुद्गल* परमाणु हैं : आत्मा के संसर्ग रहित प्योर स्वाभाविक *पुद्गल* परमाणु और आत्मा के संसर्ग में आने के बाद वाले विभाविक *पुद्गल* परमाणु। आत्मा के संसर्ग में आते हैं तब उनमें आत्मा की कोई क्रिया नहीं होती, मात्र उसकी उपस्थिति ही है। अतः *पुद्गल,* स्वभाव या विभाव, सभी प्रकार से कर्ता है।

छहों छः तत्त्वों में सिर्फ *पुद्गल* तत्त्व ही इन्द्रियगम्य है, अन्य पाँच नहीं।

लकड़ी, हड्डी, माँस वगैरह चीज़ें रखी हुई हों तो वे अपने आप ही सड़ती जाती हैं। अतः हर एक चीज़ में उसकी स्वयं क्रिया हो ही रही है। इसमें *पुद्गल* सक्रिय है और चेतन अक्रिय है। लोग चेतन को सक्रिय और *पुद्गल* को अक्रिय मानते हैं, भ्रांति से!

सिर्फ *पुद्गल* तत्त्व ही सक्रिय है और उसकी सक्रियता के कारण ही काल तत्त्व पहचाना गया।

चेतन का बल पूरे ब्रह्मांड के ज्ञाता-द्रष्टा रहने में हैं।

आत्मा की उपस्थिति से *पुद्गल* सक्रिय हो जाता है। उससे आत्मा पर कोई भी असर नहीं होता।

छहों छः द्रव्यों में परिणमन शक्ति है, द्रव्य-गुण-पर्याय हैं लेकिन *पुद्गल* परमाणुओं के अलावा पाँचों तत्त्वों में सक्रियता नहीं है। परिणमन

शक्ति और द्रव्य-गुण-पर्याय और रियल सक्रियता में बहुत फर्क है। मूल *पुद्गल* किसी के भी धक्के के बिना स्वयं रियल सक्रिय है। सक्रियता उसका परमानेन्ट गुण है। विभाविक *पुद्गल* किसी के धक्के से बना है। उसमें एक्ज़ेक्ट, मूल सक्रियपन नहीं है।

देह में जो *पुद्गल* है, वह विकृत *पुद्गल* है।

सक्रियता *पुद्गल* का स्वभाव है इसलिए आत्मा जिस तरह के भाव करता है *पुद्गल* वैसा ही बनता जाता है। वह आत्मा का भाव नहीं है, न तो उसका पर्याय है और न ही उसका स्वाभाविक भाव है। वह विभाविक भाव है, विशेष-भाव है।

आत्मा का विकृत भाव और *पुद्गल* का जो विकृत भाव उत्पन्न होता है, वही विशेष परिणाम है। इसमें कोई गुनहगार नहीं है। किसी की वजह से होता है, ऐसा भी नहीं है। मात्र दो चीज़ों के साथ में आने से विशेष गुण उत्पन्न हो जाता है। किसी के कारण होता तो वह गुनहगार माना जाता और खुद निर्लेप माना जाता।

इसमें आत्मा की इच्छापूर्वक कुछ भी नहीं है। यह तो दो चीज़ों के पास में आने से विशेष-भाव उत्पन्न हो जाता है। फिर (यदि) वह चीज़ असर वाली हो तो वह पकड़ लेती है और असर रहित हो तो नहीं पकड़ती लेकिन विशेष-भाव तो उत्पन्न होता ही है। जड़ परमाणु में सक्रियपन होने की वजह से, वे इस असर को तुरंत पकड़ लेते हैं। सिद्धक्षेत्र में *पुद्गल* नहीं है इसलिए वहाँ पर असर ही नहीं होता।

*पुद्गल* की खुद की जो परिणमन शक्ति है वह स्वतंत्र है और स्वाभाविक है।

जीव और *पुद्गल* दोनों ही सक्रिय हैं। इसमें जीव अर्थात् बावा जिसमें कि पावर चेतन भरा हुआ है और जो *पुद्गल* है, वह मंगलदास है। मात्र डिस्चार्ज ही है और वह भी सक्रिय है। काल के अधीन क्रिया होती ही रहती है।

*पुद्गल* के मुख्य गुणधर्मों में, वह खुद रूपी है और क्रियाकारी है। 'खुद' कल्पना करता है या कहो कि भाव करता है या कहो कि इच्छा करता है, जैसा कहो *पुद्गल* वैसा ही बन जाता है, अपने आप ही। इसी से उसे 'खुद' को यह भ्रांति हो गई है कि मेरे सिवा यह कौन कर सकता है? ये जो सभी इच्छाएँ कीं, वे लिमिट वाली हैं। मोह भी लिमिट वाला है। अत: देह के लिए दो पैर, दो हाथ होते हैं, उससे ज़्यादा अर्थात् चार पैर और छ: हाथ नहीं हो सकते।

यह *पुद्गल* किससे खिंचकर आता है? क्या वह आत्मा के कॉन्टेक्ट में आकर चार्ज होता है? ऐसा नहीं है। विभाव होते ही वह खिंचकर आ जाता है और जब उसका काल परिपक्व होता है तब अपने आप ही चार्ज हो जाता है, अपने आप ही मूर्त हो जाता है। उसमें से उसका शरीर बनता है। यह सारा *पुद्गल* का खुद का ही कार्य है, आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है।

यह रोंग बिलीफ भी नियम के अधीन है, नियम से बाहर नहीं है। यदि यह नियम के अधीन नहीं होती तो रोंग बिलीफ में से, राइट बिलीफ हो ही नहीं पाती।

इसमें ज्ञान आत्मा का है और करामात सारी *पुद्गल* की है। आत्मा की 'कल्प' शक्ति से विकल्प हुए, और इस प्रकार आत्मा गुनहगार साबित होता है। यह सबकुछ, बिलीफों से ही शरीर वगैरह सब तैयार हुआ। बिलीफ से परमाणु खिंचते हैं और स्वाभाविक रूप से क्रियाकारी हो जाते हैं।

यह सारी *पुद्गल* की ही करामात है। फाँसी भी *पुद्गल* है और फाँसी पर चढ़ाने वाला भी *पुद्गल* है। लालचंद, फूलचंद को धौल लगाए तो वह भी *पुद्गल* की करामात है और फूलचंद, लालचंद को धौल लगाए तो वह भी *पुद्गल* की करामात है। ज्ञानी इससे अलग रहते हैं और अज्ञानी इसमें एकाकार हो जाता है।

श्री कृष्ण भगवान ने कहा है कि दुनिया में दो शक्तियाँ हैं, एक

अनात्म शक्ति और दूसरी आत्मशक्ति। जड़ की शक्ति इतनी पावरफुल है कि उसने चौदह लोकों के नाथ को भी नथ डाल दी है, बाँध दिया है! आत्मा कर्म में फँस गया है न! जब तक आत्मा निज स्वभाव में नहीं आ जाता तब तक वह कर्म नहीं खपा सकता।

प्योर *पुद्गल* परमाणुओं में ज़बरदस्त शक्ति है और विभाविक *पुद्गल* में भी वैसी ही शक्ति है। इसमें आत्मा का सिर्फ भाव ही है, उससे *पुद्गल* में पावर भर जाता है। दर्शन बदलने से ज्ञान बदलता है और चारित्र भी बदलता है। दादाश्री का ज्ञान पूरे ही दर्शन को बदल देता है और धीरे-धीरे बाकी का सब भी बदल जाता है।

कईं लोगों को प्रश्न होता है कि आत्मा की अनंत शक्तियाँ हैं तो वह *पुद्गल* के आवरणों को चूर-चूर करके बाहर क्यों नहीं निकल जाता? लेकिन उसमें क्या *पुद्गल* की शक्ति ऐसी-वैसी है? एटम की शक्ति कितनी अधिक है!!!

आत्मा का जड़ में फँसने का कारण ही भ्रांति है। जड़ और चेतन पास-पास में हैं, उससे विशेष परिणाम उत्पन्न हो जाता है और इस विशेष परिणाम से अहंकार उत्पन्न होता है। वही सर्वेसर्वा बन बैठता है।

यह सारी *पुद्गल* की ही करामात है, ज्ञानियों को और तीर्थंकरों को ही वह यथार्थ रूप से समझ में आ सकती है।

जब ऐसा समझ में आएगा कि *पुद्गल* सक्रिय है और आत्मा अक्रिय है तब भगवान बन पाएँगे।

स्थूल क्रिया किसके अधीन है?

अहंकार के अधीन है।

अहंकार किसके अधीन है?

अज्ञानता के अधीन है।

यानी कि रूट कॉज़ अज्ञानता है।

श्रीमद् ने आत्मा को अक्रिय-सक्रिय कहा है, लेकिन वह सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं है। अहंकार है तब तक सक्रिय है और अहंकार चला जाए तो अक्रिय है। पुलिस वाला पकड़ ले तब ऐसा नहीं कह सकते कि 'मैं आत्मा हूँ या ज्ञानी हूँ'। व्यवहार से गुनाह स्वीकार करना पड़ेगा।

क्रिया करने वाला *पुद्गल* है और ध्यान करने वाला भी *पुद्गल* है। आत्मा इन सभी से न्यारा है, निर्लेप है।

ध्यान करने वाला *पुद्गल,* ध्यान का कर्ता है और ध्यान का ही भोक्ता है।

आत्मा व्यवहार से कर्ता है और निश्चय से अकर्ता है। यह जो *पुद्गल* है, वह निश्चय और व्यवहार, दोनों से कर्ता है।

*पुद्गल* सक्रिय-अक्रिय है। एक परमाणु है तब तक वह अक्रिय है, उसके बाद में सक्रिय है।

मन-वचन-काया सहज स्वभाव से क्रियाकारी हैं और आत्मा सहज स्वभाव से देखता ही रहता है, जानता ही रहता है। आत्मा में ज्ञानक्रिया के अलावा कुछ और है ही नहीं। यह तो ऐसा है कि ज्ञान पर आवरण आ गया और वह बुद्धि का पर्दा है। जैसे-जैसे अहंकार छूटता जाता है, मैं पन छूटता जाता है वैसे-वैसे करना-करवाना दूर होता जाता है और वैसे-वैसे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन प्रकट होते जाते हैं।

अनादि काल से आत्मा के प्रदेशों पर कर्म कलंक चिपकते आए हैं। अत: उसकी शक्तियाँ आवृत हो गई हैं। वर्ना मनुष्यों के हाथ में कोई सत्ता नहीं है। मनुष्य में एक बाल बढ़ने देने की या न बढ़ने देने की शक्ति भी नहीं है।

ज्ञान के अलावा इस जगत् में कोई भी अक्रिय नहीं रह सकता है। मात्र ज्ञानी की, दादा की आज्ञा से ही अक्रिय रहा जा सकता है।

अक्रिय अर्थात् यह ज्ञाता-द्रष्टापन। ज्ञाता-द्रष्टा, वह कोई क्रिया

नहीं है। सिर्फ समझाने के लिए ही ज्ञानक्रिया-दर्शनक्रिया शब्द का प्रयोग होता है परंतु वास्तव में देखने और जानने में ऐसी कोई पौद्‌गलिक क्रिया नहीं है।

श्रीमद् राजचंद्र ने ऐसा कहा है कि हर एक पदार्थ क्रिया संपन्न होता है। ऐसा कहने का भावार्थ यही है कि मूल रूप से खुद की सक्रियता नहीं है परंतु उसकी परिणमनता है। हर एक पदार्थ परिणमनशील होता है।

श्रीमद् राजचंद्र ने आत्मा के कर्तापन के बारे में बताया है कि आत्मा भी क्रिया संपन्न है, अत: कर्ता है। उस कर्तापन का विवेचन किया है कि परमार्थ से स्वभाव परिणति को लेकर निज स्वरूप का कर्ता है। अनुपचरित व्यवहार से वह आत्मा द्रव्य कर्मों का कर्ता है और उपचार से घर-नगर आदि का कर्ता है। परंतु वास्तव में तो वह मूल स्वभाव का कर्ता है, कृपालु देव ऐसा कहना चाहते हैं।

अक्रम में तो इस बात का यहाँ पर भेदांकन हो जाता है कि मूल आत्मा क्या है और व्यवहार आत्मा क्या है। बाकी, क्रमिक मार्ग में तो व्यवहार आत्मा को ही मूल आत्मा माना जाता है और उसी से ऐसा लगता है कि वह क्रिया संपन्न है। अत: जो ये सभी क्रियाएँ करता है, समितियाँ बनाता है, वह सारी व्यवहार आत्मा की ही बात है।

केवलज्ञान में तो क्या कहते हैं कि मूल आत्मा को देख-देखकर तू व्यवहार आत्मा को भी वैसा ही बना। देख-देखकर उसे तराशना है, अक्रम ऐसा सिखाता है।

अक्रम में कोई क्रिया नहीं करनी होती। ज्ञान को देखकर ही वैसा बन जाता है क्योंकि ज्ञानविधि में शुद्धात्मा पद में यानी कि मॉडल में ही बैठा दिया है।

क्रमिक मार्ग में इन्द्रिय आत्मा को आत्मा नहीं मानते हैं, उसे तो (कायोत्सर्ग अर्थात्) काय कहते हैं, उससे उत्सर्ग अर्थात् 'मैं अलग हूँ' ऐसा फिट करवाते हैं। दूसरा, कषाय आत्मा को ही वे आत्मा मानते

हैं और उसे स्थिर करने जाते हैं और तीसरा, मूल (अकषाय) आत्मा, वह तो बहुत दूर है।

'यह सारी *पुद्गल* की करामात है', सतत ऐसा भान रहे तो वह केवलदर्शन है। *पुद्गल* की करामात की क्रिया को जाने तो वह केवलज्ञान है! और *पुद्गल* की करामात है, ऐसा वर्तन में आ जाए तो वह केवलचारित्र है!

## [ 4 ] पुद्गल प्रसवधर्मी

'एकोहम् बहुस्याम्' का मतलब क्या है?

'मैं' अकेला हूँ, आत्मा के रूप में और जगत् में तदाकार भाव से अनेक रूप हो जाता हूँ। *पुद्गल* बहुरूपी है इसीलिए किसी का बच्चा, किसी का चाचा, किसी का ससुर बनता है। इसमें जड़ की शक्ति है। जड़ रूपी है इसीलिए बहुरूपी हो जाता है। *पुद्गल* प्रसवधर्मी है। एक में से अनेक दिखाता है।

गेहूँ में से कितने सारे व्यंजन बनते हैं! यह जगत् परमाणुओं की प्रसवता से भरा हुआ है।

आप अकेले हों और लाख दर्पण रखे हुए हों तो उनमें आप एक लाख दिखाई देंगे। यह है *पुद्गल* का प्रसवधर्मी स्वभाव।

एक टी.वी. में बोलता है, तब दुनिया भर में जगह-जगह दिखाई देता है। यह है *पुद्गल* का प्रसवधर्म!

समुद्र में एक, और लाखों घड़ों में लाख चंद्रमा दिखाई देते हैं! इस प्रकार से एक में से अनेक, बेहिसाब बन जाते हैं!

मूल ज्ञान प्रसवधर्मी नहीं है, वह तो निर्लेप ही है।

## [ 5 ] प्रयोगसा - मिश्रसा - विश्रसा

तीर्थंकरों की मौलिक और अद्भुत खोज है परमाणुओं की तीन अवस्थाओं की, प्रयोगसा, मिश्रसा और विश्रसा।

पूरा जगत् *पुद्गल* परमाणुओं से भरा हुआ है। ऐसे शुद्ध परमाणु जो कि ज्ञानगम्य हैं, चक्षुगम्य नहीं हैं, उन्हें विश्रसा परमाणु कहा गया है। विश्रसा परमाणु एक के बाद दूसरा, फिर और भी ज़्यादा इकट्ठे होते हैं (स्कंध बनता है) और वापस बिखर जाते हैं। इसे स्वाभाविक *पूरण-गलन* कहा जाता है। स्वाभाविक *पूरण-गलन* और विभाविक *पूरण-गलन* में बहुत फर्क है। श्वास लेता है, निश्वास निकालता है, वह विभाविक *पूरण-गलन* है। ये जो हाड़-माँस बनते हैं और वापस सड़ जाते हैं, वह विभाविक *पूरण-गलन* है।

बाहर शुद्ध परमाणु यानी विश्रसा एक सरीखे हैं। जब क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं तब विश्रसा परमाणु बाहर से अंदर खिंचते हैं। फिर अंदर इलेक्ट्रिकल बॉडी है, उसके आधार पर ही सबकुछ चार्ज हो जाता है। बाहर चार्ज नहीं होता। अब, क्रोध आता है तब ये परमाणु खिंचते हैं तो वे नाक से, कान से, आँखों से, सभी तरफ से खिंचते हैं। बाल भी खड़े हो जाते हैं!

एक बार प्रयोगसा होने के बाद में दूसरे जन्म में अपने आप ही परमाणु मिश्रसा हो जाते हैं। मिश्रसा होते ही यह शरीर अपने आप ही बन जाता है। मिश्रसा यानी *पुद्गल*। प्रयोगसा को *पुद्गल* नहीं कहा जाता। विश्रसा व प्रयोगसा परमाणु ही कहलाते हैं।

जो अहम् खड़ा हुआ, वह *पुद्गल* है। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, वह सब *पुद्गल* कहलाता है। अहम् को मिश्रचेतन कहा जाता है। पूरा *पुद्गल* मिश्रचेतन कहलाता है। प्रयोगसा को प्रयोग चेतन कहा गया है।

मिश्रचेतन क्या है?

विश्व में विश्रसा परमाणु हैं जो कि शुद्ध हैं। अंदर मात्र विचार आया कि, 'दो धौल लगानी है', उससे परमाणु अंदर खिंचते हैं और इलेक्ट्रिकल बॉडी से उस पर प्रयोग होता है। प्रयोग हो चुके परमाणुओं को प्रयोगसा कहा जाता है। भावक परमाणु अर्थात् मिश्रचेतन।

प्रयोगसा जो कि सूक्ष्म भाव से होता है, वह अगले जन्म में स्थूल भाव बन जाता है और फल देकर जाता है। प्रयोगसा में से अगले जन्म में मिश्रसा हो जाता है। प्रयोगसा परमाणु, वे कारण परमाणु हैं, वह गर्भ में जाता है तब कार्य देह उत्पन्न होता है। अक्रम में कारण परमाणु बंद हो जाते हैं।

'मैंने किया' कहने से सूक्ष्म में कर्म बंधन हो जाता है। करता है व्यवस्थित और मानता है कि मैंने किया, उससे परमाणु खिंचते हैं और प्रयोगसा हो जाता है और नई मूर्ति बन जाती है।

प्रयोगसा जाता है व्यवस्थित शक्ति के पास और बाद में फिर व्यवस्थित उसे स्थूल रूपी बनाकर फल देता है तब वह मिश्रसा कहलाता है।

सूक्ष्म में विषय की भावना की जाए तो फिर उसमें से सिर्फ स्त्री (पत्नी) ही नहीं मिलती परंतु ससुर, सास, चाचा ससुर, मामा ससुर... कितना ही बड़ा लंगर इकट्ठा हो जाता है! यह सारा व्यवस्थित का काम है। प्रयोगसा में अभी तक कुछ हुआ नहीं है। अंदर परमाणु इकट्ठे होते हैं, प्रयोग होता है और उन पर रंग चढ़ जाता है तो उसी को कर्म कहा जाता है।

शुद्ध परमाणु अलग हैं और कर्म के परमाणु अलग हैं। सूक्ष्मतम परमाणु (विश्रसा) जो आकाश में हैं, प्रयोगसा होने पर वे खिंचते हैं, तब वे सूक्ष्मतर। उसके बाद अंदर सूक्ष्म हो जाते हैं, तब मिश्रसा और सूक्ष्म के आधार पर बाहर से स्थूल अंदर आता है, फिर वह फल देकर जाता है। फल देते समय बाहर से स्थूल परमाणु खिंचते हैं और फिर फल आता है। अर्थात् कर्म बंधन के समय सूक्ष्म ही बंधते हैं और फल देते समय बाहर से स्थूल परमाणु आते हैं। फल व्यवस्थित शक्ति देती है।

स्थूल देह, सूक्ष्म देह और कारण-देह, ये तीनों ही *पुद्गल* हैं। मुख्य गुनहगार सूक्ष्म शरीर है। उसी वजह से कारण-शरीर, परमाणुओं को खींचता है। स्थूल-शरीर जलता है, सूक्ष्म-शरीर नहीं जलता।

स्थूल में से सूक्ष्म और सूक्ष्म में से स्थूल, इस प्रकार से चक्र चलता ही रहता है।

गर्भ में शुरुआत से ही जीव होता है। परंतु वह डॉरमेन्ट (सुषुप्त) स्टेज में होता है। धीरे-धीरे वह बढ़ता है। जीव की उपस्थिति के बिना गर्भ धारण ही नहीं हो सकता।

कारण-शरीर के परमाणु पूरे शरीर में भरे हुए हैं, उनमें से कार्य शरीर बनता है। इस जन्म में सूक्ष्म रूप में रहता है और अगले जन्म में स्थूल रूपी इफेक्टिव बॉडी बनती है।

संचित कर्म अर्थात् स्टॉक। वे सूक्ष्म होते हैं व प्रारब्ध और क्रियमाण स्थूल होते हैं। इस प्रकार जो क्रिया में देखे जाते हैं, वे क्रियमाण हैं।

संचित कर्मों का स्टॉक इस हार्ट वाले भाग में सूक्ष्म परमाणुओं के रूप में है। वास्तव में वे कर्म नहीं हैं। कड़वे-मीठे फल भोग लेने के बाद में वे वापस विश्रसा होकर बाहर निकल जाते हैं।

'इस व्यक्ति को मारना है' कहने से प्रयोग होकर पाप वाले परमाणु चार्ज हो जाते हैं। डिस्चार्ज के समय वे कड़वे फल देते हैं। और 'दान देना है', ऐसा कहने से पुण्य वाले परमाणु चार्ज होते हैं। फिर वे मीठा फल देते हैं।

कषाय भाव के अनुसार परमाणुओं पर रंग चढ़ता है, गिलेट चढ़ता है और उस अनुसार फल आता है।

ऐसा भान है कि 'मैं चंदू हूँ', तब तक परमाणु खिंचते हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा भान होने के बाद परमाणु नहीं खिंचते।

स्थूल देह छूटने के बाद में कार्मण शरीर, प्रयोगसा परमाणुओं के रूप में जाता है। वह प्रयोगसा परमाणुओं के अलावा और कुछ भी नहीं है।

जब मिश्रसा फल देता है तब फिर से राग-द्वेष करता है इसलिए

फिर से उस समय प्रयोगसा होता है। प्रयोगसा हुए (परमाणु), छूटते समय मिश्रसा फल देकर जाते हैं।

प्रयोगसा अवस्थित है और मिश्रसा व्यवस्थित है। चार्ज होने के बाद में परमाणु अंदर पड़े रहते हैं, तब से लेकर वे फल देकर जाते हैं, तब तक की अवस्था को मिश्रसा कहा जाता है। फल देकर जाने के बाद में वे विश्रसा में परिणमित हो जाते हैं, शुद्ध होकर!

ज्ञान के बाद में प्रयोगसा बदला जा सकता है परंतु मिश्रसा को नहीं बदला जा सकता। जमे हुए उदयकर्मों से छूट ही नहीं सकते न!

पिछले जन्म का प्रयोगसा इस जन्म में मिश्रसा होता है, तब देह के रूप में दिखाई देता है और फल देकर जाता है तब विश्रसा हो जाता है।

हृदय में शुद्ध चारित्र आया कि शुद्ध विश्रसा उत्पन्न होता है।

ज्ञान के बाद में नए परमाणु अंदर नहीं घुसते। क्योंकि मूल अज्ञान यानी कि ऐसी मान्यता कि, 'मैं चंदूभाई हूँ', वह मान्यता टूट जाती है। उसके बाद तो आत्मा के सुःख में ही रहना होता है। फिर वे कड़वे-मीठे फल नहीं देते।

मिश्रसा तो जन्म से लेकर श्मशान जाने तक है। मिश्रसा को भोगने के बाद में फिर से नए प्रयोगसा होते हैं। अब ज्ञान के बाद में कोई गाली दे तब शुद्धात्मा देखकर समभाव से *निकाल* (निपटारा) कर दें तो विश्रसा का विश्रसा ही रहेगा। शुद्धात्मा देखने पर भी परमाणु शुद्ध होकर चले जाएँगे।

ज्ञान मिलने के बाद में कर्म चार्ज ही नहीं होते। अगर आप चिढ़ जाते हो तो वह तो चंदूभाई चिढ़ते हैं। 'आप' शुद्धात्मा हो, अतः आप नहीं चिढ़ते हो।

अज्ञान दशा में नए परमाणु खिंच रहे थे। ज्ञान के बाद में खींचने वाला ही चला गया। उसका ज्ञाता-द्रष्टा रहना चूक गए तो वह फिर

से आएगा। तब ज्ञाता-द्रष्टा रहोगे तो वे परमाणु हमेशा के लिए झड़ जाएँगे।

विश्रसा में से प्रयोगसा होता है तब प्रयोग होता है उससे यह प्रतिष्ठित आत्मा के भाव के योग के साथ जॉइन्ट हो जाता है।

जब तक ऐसा भान है कि 'मैं कर रहा हूँ', तब तक पुनरावर्तन होता ही रहेगा।

अक्रम में ज्ञान मिलने के बाद परिग्रह बढ़ाना भी डिस्चार्ज है और परिग्रह कम करना भी डिस्चार्ज है और अपरिग्रही रहना भी डिस्चार्ज है। परिग्रह या अपरिग्रह करने के जो भाव पूर्व जन्म में किए थे, वे अभी डिस्चार्ज में आए हैं। उनका *निकाल* ही करना है, ग्रहण नहीं।

ज्ञान मिलने के बाद परमाणु शुद्धात्मा से क्या कहते हैं? 'आप तो शुद्धात्मा बन गए, अब आपको हमें शुद्ध करना बाकी बचा है। हम तो शुद्ध थे ही, आपने हमें अशुद्ध किया है। अतः जोखिमदारी आपकी है।' ये किस तरह से शुद्ध होंगे? दादा की आज्ञा पालन करेंगे तो अपने आप ही शुद्ध होते जाएँगे।

एक-एक परमाणु का समभाव से *निकाल* करके हिसाब साफ करना पड़ेगा। फिर कलंक नहीं रहेगा और अडिग स्वरूप की प्राप्ति होगी।

समता में रहकर जितना साफ हो सकता है, ऐसा अन्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता। समता में नहीं रह सको तो प्रतिक्रमण करना अच्छा है। परंतु भाव तो सौ प्रतिशत आज्ञा में रहने का ही होना चाहिए।

प्रतिक्रमण से परमाणु शुद्ध नहीं होते। सामने वाले को दुःख पहुँचाया हो तो प्रतिक्रमण करने से सामने वाले को हल्का हो जाता है या फिर उस पर दुःख का असर ही नहीं रहता। खुद का उल्टा अभिप्राय टूट जाता है। परंतु ज्ञाता-द्रष्टा रहने से ही परमाणु शुद्ध होंगे, जो कि सामायिक में होता है। सामायिक में सीधे-सीधे डायरेक्ट आत्मा का ही काम होता है। प्रतिक्रमण प्रज्ञा का काम है। अतः सामायिक में तो सबकुछ धुल ही जाता है।

बाहर लोगों को सामान्यत: ऐसा कहते हैं कि प्रतिक्रमण से शुद्ध होता है परंतु वास्तव में तो सामायिक से ही शुद्ध होता है।

महात्माओं में अतिक्रमण प्रतिष्ठित आत्मा करता है और प्रतिक्रमण भी प्रतिष्ठित आत्मा करता है। डिस्चार्ज के गुनाह और डिस्चार्ज के प्रतिक्रमण।

*पुद्गल* स्वभाव से ही चंचल है तो वह स्थिर किस प्रकार से हो पाएगा?

धीरे-धीरे स्थिर होता जाएगा, मूल स्वभाव तक पहुँचता जाएगा।

*पुद्गल* मूल परमाणु स्वभाव से स्थिर ही है। कंपायमान होता ही नहीं है परंतु विशेष-भाव में आने से विकृत हो गया है।

स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम परमाणु किन्हें कहते हैं?

सूक्ष्मतम - विश्रसा

सूक्ष्मतर - प्रयोगसा। वही कारण-देह है

सूक्ष्म - मिश्रसा। वही प्रतिष्ठित आत्मा है

स्थूल - (जिसे) डॉक्टर देख सकते हैं, जो बड़े-बड़े माइक्रोस्कोप से दिखाई देता है, वह।

अनंत ज्ञेयों को वीतरागों ने एक ही ज्ञेय में देखा है। दादा ने भी वैसा ही देखा है और वह है विश्रसा के रूप में। तमाम इम्प्योरिटी चली जाने के बाद में मिश्रसा में से विश्रसा बनता है।

बाहर तमाम वस्तुएँ, व्यक्ति पराए लगने लगें, अनुभव होने लगे, तब ऐसा बरतता है कि खुद के शरीर के परमाणु भी पराए हैं। ऐसे करते-करते ऐसा बरतता है कि एक-एक परमाणु पराया है।

ग़ज़ब की है तीर्थंकरों की खोज!

टंकोत्कीर्ण, विश्रसा, प्रयोगसा और मिश्रसा ने तो हद कर दी है

अध्यात्म जगत् में! जो शब्द (पब्लिक को) लिखने भी नहीं आते, उन्हें जो आर-पार समझकर बैठे हैं, कैसे होंगे वे तीर्थंकर!!!

## [ 6 ] लिंक, भाव और परमाणुओं के बीच

परमाणु और भावों की लिंक (संबंध) क्या है?

जैसे भाव, उसी अनुसार परमाणु सेट हो जाते हैं। दस लोग दान देने का भाव करते हैं तो उस अनुसार सेट हो जाते हैं, परंतु हर एक के परमाणु अलग-अलग होते हैं। भाव किस प्रकार के हैं और उसके पीछे का हेतु क्या है, उस अनुसार परमाणु चार्ज होते हैं और सेट हो जाते हैं। इसमें मुख्य आधार तो भाव का है। बीच में परमाणुओं के तो सिर्फ खिलौने बन जाते हैं। यानी कि भाव के अनुसार परमाणु, और उससे शरीर की रचना हुई।

परमाणु सूक्ष्म हैं, भाव भी सूक्ष्म हैं। भावों के अनुसार जो परमाणु खिंचते हैं, वे भी सूक्ष्म हैं। बाद में परमाणु स्थूल हो जाते हैं और पूरा शरीर दृश्यमान होता है। सभी सूक्ष्म परमाणु इकट्ठे होकर स्थूल बनते हैं। भाव के अनुसार मूर्ति बन जाती है! मृत्यु के बाद शरीर को जलाने पर परमाणु चले जाते हैं लेकिन कम-ज़्यादा नहीं होते।

राग भाव की वजह से परमाणु खिंचते हैं, उससे उन पर गिलेट चढ़ जाता है राग का, उसी प्रकार से द्वेष का गिलेट चढ़ जाता है। ये राग-द्वेष के गिलेट वाले परमाणु मृत्यु के बाद सूक्ष्म प्रकार से आत्मा के साथ जाते हैं और अगले जन्म के शरीर में परिपक्व होकर फल देते हैं। राग वाले सुख देते हैं और द्वेष वाले दु:ख देकर साफ हो जाते हैं, गिलेट निकल जाता है। पुराना निकल जाता है और नया चढ़ता है।

एक खराब विचार आया कि तुरंत ही बाहर के परमाणु गिलेट वाले होकर खिंचते हैं, अंदर दाखिल हो जाते हैं और भाव के अनुसार उनका हिसाब आ जाता है और उसी प्रकार के फल देकर, वे शुद्ध हो जाते हैं। फल दिए बगैर यों ही खाली नहीं जाते। यानी कि यह

तो परमाणुओं का गुह्य विज्ञान है। स्वयं क्रियाकारी है। फल देने वाला कोई भगवान नहीं है। देवी-देवता या ग्रह, इसमें बीच में कोई कर्ता है ही नहीं। यह धर्म नहीं है, साइन्स है। धर्म तो, साइन्स में न आ जाए, तब तक योग्यता लाने के लिए है। बाकी, कोई ज़हर की पुड़िया खिला दे तो कौन मारने आता है? भगवान? यमराज या ज़हर? जड़ की शक्ति भी ज़बरदस्त है! देखो न! ऐसा लगता है जैसे आत्मा से भी बढ़कर है! आत्मा अंदर फँस गया है न!

(व्यवहार) आत्मा का स्वभाव है कि जैसी कल्पना करता है वैसा ही बन जाता है। अतः भाव करते ही परमाणु चेन्ज हो जाते हैं। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह निर्विकल्प दशा है। उससे परमाणु अंदर प्रविष्ट नहीं होते, विकल्प से हो जाते हैं।

## शरीर के निर्माण का साइन्स

चार्ज हो चुके परमाणुओं से कारण शरीर (कॉज़ल बॉडी) बनता है। जो आत्मा के साथ ही जाता है। कारण शरीर, तेजस शरीर और आत्मा, ये तीनों एक साथ गर्भ में जाते हैं। कारण शरीर के गर्भ में जाते ही तुरंत ही नई इफेक्टिव बॉडी बननी शुरू हो जाती है। तो जन्म होने तक इफेक्टिव बॉडी बन जाती है। गर्भ में शरीर छोटा सा होता है परंतु पूरी ज़िंदगी के सभी इफेक्ट्स उतने में समाए हुए होते हैं। जैसे-जैसे संयोग मिलते हैं वैसे-वैसे इफेक्ट्स मिलते जाते हैं। उदाहरण के तौर पर पूरी ज़िंदगी के विषय के परमाणु होते हैं, परंतु वे फूटते हैं चौदह या पंद्रह साल बाद, काल परिपक्व होता है, तब। बाकी, वह सामान (माल) तो शुरू से रहता ही है! जैसे कि बीज में पूरा बड़ का पेड़ समाया हुआ होता है, उसी प्रकार से! गर्भ में दाखिल होने से लेकर मरने तक का सभी कुछ उसमें होता है। जन्म कहाँ पर, विवाह कहाँ पर, कितनी बार विवाह, मरण कहाँ पर, सभी कुछ होता है। अज्ञान दशा में कर्म का चार्ज-डिस्चार्ज दोनों ही होता है।

परमाणु इस जन्म में चार्ज होते हैं, वहाँ से लेकर अगले जन्म में गर्भ में दाखिल होकर और बाद में पाँच इन्द्रियों से जो अनुभव में

आते हैं, वे सभी फल स्थूल में आते हैं। तीनों प्रकार के परमाणु, तीन विभागों में किस प्रकार से साइन्टिफिकली काम करते हैं, उसका यहाँ पर पता चलता है।

संक्षेप में पूरा प्रोसेस इस तरह से समझना है कि

1) पिछले जन्म में 'कॉज़ल बॉडी' चार्ज हुई थी। इस जन्म में कॉज़ल बॉडी जीव सहित नए गर्भ में प्रवेश करती है तब उससे इफेक्टिव बॉडी बन जाती है।

2) 'इफेक्टिव बॉडी' बनने में कॉज़ल बॉडी के सभी परमाणुओं का उपयोग हो जाता है और वे परमाणु इफेक्टिव बॉडी में से पूरी ज़िंदगी इफेक्ट ही देते रहते हैं। उसके बाद उसमें पिछले कॉज़ल बॉडी के परमाणुओं की ज़रूरत नहीं रहती।

3) इफेक्टिव बॉडी के परमाणु सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हैं। ये परमाणु (जब) फल देते हैं तब बाहर से अलग ही प्रकार के नए स्थूल परमाणु खिंचते हैं और थाली में से करेले की सब्ज़ी खाई जाती है! यह तो अंदर के पुराने परमाणुओं का, बाहर के नए परमाणुओं के प्रति आकर्षण है। यह बहुत सूक्ष्म साइन्टिफिक बात है।

यह पूरा साइन्स किस प्रकार से काम करता है?

अंदर इफेक्टिव बॉडी के परमाणु तैयार होते हैं। राई के दो ही दाने खाने हों तो स्थूल में बाहर सबकुछ मिलता है, लेकिन फिर भी राई के दो ही दाने खा पाता है, तीन नहीं। इफेक्ट के रूप में सभी संयोगों के मिलने पर अहंकार ऐसा मानता है कि 'मैंने खाया', वास्तव में तो अंदर की डिज़ाइन के अनुसार खा पाएगा। उसमें राई मात्र भी बदलाव नहीं हो सकता।

यह परम पूज्य दादाश्री की बहुत सूक्ष्म बात है!

कषाय इस जन्म के हैं या पिछले जन्म के?

मरने तक, इस जन्म के क्रोध-मान-माया-लोभ विलय हो जाते हैं और अगले जन्म के लिए नए बाँधता है और साथ में ले जाता है और वे पूरी ज़िंदगी के सार के रूप में ले जाता है। इस प्रकार कषायों का हिसाब बंधता है।

तो इसे जन्मोंजन्म के कर्म क्यों कहा गया है?

वास्तव में जन्मोंजन्म से इकट्ठे हुए हैं, ऐसा नहीं होता। पिछले बीज खत्म हो जाते हैं और वैसे ही दूसरे नए बीज फिर से डलते जाते हैं।

इस जन्म में कॉज़ल बॉडी के लिए जो परमाणु तैयार होते हैं, वे मिले-जुले कॉज़ल परमाणु होते हैं, स्पष्ट रूप से क्रोध-मान-माया या लोभ वाले नहीं होते। अगले जन्म के गर्भ में उसका इफेक्ट आता है तब वे क्रोध-मान-माया-लोभ कहलाते हैं। तब तक तो वे परमाणुओं के रूप में रहते हैं। अतः दादाश्री स्पष्ट कहते हैं कि ज्ञान के बाद, आपका जो कुछ भी है, वह इस जन्म का नहीं है। इस जन्म के तो सभी कर्म जलकर साफ हो गए। ज्ञान के बाद इस जन्म का हिसाब और खुद का स्वभाव सब विलय हो जाते हैं। जैसा स्वभाव अभी है, वैसा अगले जन्म में नहीं रहेगा। तब तो कुछ नई ही तरह का, कुछ और ही होगा!

## [ 7 ] परमाणुओं के असर का साइन्स

परमाणु से परमाणु का मिलन 'व्यवस्थित' के नियम से बाहर नहीं है। दो अच्छे परमाणुओं का मिलन व्यवस्थित के नियम के अधीन है तो फिर जर्जरित परमाणुओं की तो बात ही क्या करनी? हमें एक गाली मिले तो उसमें तो कितने सारे परमाणु कहे जाएँगे? सभी कुछ व्यवस्थित के अधीन है।

यहाँ पर सभी जगह विभाविक *पुद्गल* परमाणु समझना है। यह शुद्ध परमाणुओं की बात नहीं है। साफ या बदसूरत और शुद्ध परमाणु अलग ही हैं। 'व्यवस्थित' विभाविक परमाणुओं पर ही लागू होता है।

कोई गालियाँ देता है तो उसमें बोलने वाला और सुनने वाला दोनों को ही होश नहीं है। सुनने वाले पर गाली का असर हो जाए तो उसमें उतने परमाणु घुस जाते हैं, सिद्ध भगवान को (परमाणु का) असर नहीं पहुँचता।

हम जितनी कलह करेंगे, सामने वाले के उतने ही परमाणु हमारे अंदर घुस जाएँगे और दोनों का बिगड़ेगा।

हम कहें कि 'जज अच्छा नहीं है' तो उसका असर जज तक पहुँच ही जाएगा और हमें देखते ही जज पर भी उल्टा असर शुरू हो

जाएगा। और ऐसा कहने पर कि 'जज अच्छा है', अच्छा असर होगा। अत: सभी का अच्छा ही सोचने जैसा है।

सभी मिलकर एक साथ भाव करें कि भारत में बरसात हो तो अच्छी बरसात होगी, परंतु धोबी शोर मचाए कि, 'बरसात मत आना', तो बरसात बेचारी क्या करे?

हर एक के परमाणु के हिसाब अलग-अलग होते हैं। हर एक के मन के हिम्मत के परमाणु अलग-अलग होते हैं। कोई लुटेरे के आने पर आराम से खाना खाता रहता है जबकि दूसरा काँप जाता है!

स्त्री व पुरुष शरीर, परमाणुओं से बने हैं। पुरुष में क्रोध और मान के परमाणु अधिक हैं जबकि स्त्री में माया और लोभ। माया अर्थात् कपट। जैसे परमाणु भरे होंगे, अगले जन्म में वैसा ही शरीर मिलेगा।

पुरुष के परमाणु व्यग्रता वाले होते हैं, उनमें स्थिरता नहीं होती। पूरे दिन भागदौड़ ही करता रहता है। स्त्री के परमाणु मोह वाले होते हैं।

आत्मा के अलावा सभी कुछ लिंग कहलाता है। तीन प्रकार के लिंग हैं - स्त्री, पुरुष और नपुंसक लिंग।

क्रोध-मान-माया-लोभ होने के बाद उनका तंत रहे तो वह गलत कहा जाएगा। किसी भी चीज़ के लिए तंत न रहे, तुरंत ही ऐसा रहे कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं है तो वह मात्र आकर्षण-विकर्षण है जो कि परमाणुओं का गुण हैं, वह तो रहेगा।

ज्ञान मिलने के बाद क्रोध के बजाय उग्रता के परमाणु रहते हैं लोभ के बजाय आकर्षण के परमाणु रहते हैं।

आकर्षण-विकर्षण में दो प्रकार के परमाणु हैं। द्वेष में क्रोध और राग में लोभ। पॉज़िटिव-नेगेटिव मिलते हैं तब परमाणुओं के बीच आकर्षण होता है।

दुनिया में खून के रिश्ते जैसा कुछ भी नहीं है।

यह तो परमाणुओं का ही आकर्षण–विकर्षण है। एक सरीखे परमाणुओं वाले दूसरे जन्म में आसपास जन्म लेते हैं।

आकर्षण–विकर्षण को नहीं निकालना है। मात्र राग–द्वेष के भावों को निकाल लेना है।

आसक्ति है, वहाँ पर बैर है। आसक्ति तो प्रत्यक्ष ज़हर है। जहाँ पर राग है, वहाँ पर द्वेष अवश्य होगा ही। द्वेष में से राग और राग में से द्वेष, इस प्रकार से चलता ही रहता है। द्वेष को जड़ से निकालो।

परस्पर विरोधी परमाणुओं वाले मिलते हैं तब जागृति बढ़ती है, वर्ना तो घोर आवरण में ही रहता है।

वीतरागता की टेस्टिंग (कसौटी) कब कही जाती है? यह नहीं कि साँप पड़े हुए हों वहाँ पर बैठा रहे, बल्कि साँप को छेड़ने के बाद में (खुद के) अंदर कुछ हिला है या स्थिर रहा, वह देखना है।

आत्मा में राग या द्वेष नामक गुण नहीं हैं। शरीर में जो इलेक्ट्रिकल बॉडी है, जब मिलते–जुलते परमाणु आते हैं तब पूरी बॉडी चुंबक की तरह खिंचती है। चुंबक और आलपिन जैसी बात है यह। उसे मात्र जानना है कि, 'खिंचा'। उसके बजाय 'खुद' ऐसा मानता है कि 'मैं खिंच गया, मुझे राग हो रहा है'।

ज्ञान मिलने के बाद, कषाय चले जाने के बाद मात्र *पुद्गल* का आकर्षण या विकर्षण ही रहता है। अंदर आकर्षण या विकर्षण वाले चुंबकीय परमाणुओं के स्कंध होते हैं। वे खिंचते हैं, इच्छा नहीं हो फिर भी! यह तो, *पुद्गल, पुद्गल* को खींचता है। आत्मा उसमें एकाकार हो जाए, तभी राग कहा जाएगा।

मृत्यु के बाद जीव कौन से शरीर में जाएगा, यह कौन तय करता है? कोई नहीं करता। वह कुदरती नियम है। वह तो, जहाँ पर हिसाब वाले परमाणु होते हैं, जीव वहीं पर खिंच जाता है। आकर्षण के नियम से, कॉज़ल बॉडी के परमाणुओं की वजह से खिंच जाता है। इसमें

आत्मा निर्लेप ही है। लंबे समय बाद आकर्षण में से विकर्षण होता है। (किस आधार पर? परमाणु का स्वभाव ऐसा ही है।)

कर्मों के अनुसार जन्म मिलता है, वह किस प्रकार से? कौन करता है? मुँह से दवाई खाए और सिर का दर्द मिट जाता है, वह किस आधार पर? दवाई को कैसे पता चलता है कि सिर में जाना है? वह तो, नियम ही ऐसा है कि दर्द दवाई को खींच लेता है। उसी प्रकार आकर्षण से गधे की योनि में जन्म हो सकता है या मनुष्य योनि में। आकर्षण से ही पूरा जगत् चल रहा है। बीच में किसी की ज़रूरत नहीं है। सबकुछ अपने अंदर ही है।

आकर्षण वाले अलग होते समय रोते हैं और विकर्षण वाले अलग होते हैं तब खुश होते हैं। सब परमाणुओं का ही इफेक्ट है।

मृत व्यक्ति के पीछे रोने वालों को रोने देना चाहिए। मोह व ममता के जो परमाणु निकलते हैं, उन्हें निकल जाने देना चाहिए।

किसी से भी शेक हेन्ड करने पर उसके परमाणु अपने अंदर आ जाते हैं, चाहे कैसे भी परमाणु हों।

प्यारा या खराब, वह भीतर के परमाणुओं की वजह से लगता है।

कोई बहुत याद आता है तब उसके परमाणु अपने अंदर घुस जाते हैं।

एक सरीखे परमाणु, स्वभाव से, इकट्ठे हो ही जाते हैं। एक शराबी को दूसरा शराबी मिल ही जाता है। ज्ञान मिलने के बाद ही आकर्षण-विकर्षण कहलाता है। क्योंकि 'खुद' जानकार ही रहता है। जबकि अज्ञान दशा में खुद कर्ता बनता है इसलिए ऐसा मानता है कि, 'मैं खिंच गया'।

यहाँ पर ज्ञानी के साथ भक्ति में तालियाँ बजाता है तब उल्लास आता है, तब खराब परमाणु निकल जाते हैं और शुद्धि होती जाती है। मिथ्यात्व विलय होता है और समकित होता जाता है।

राग–द्वेष तो अहंकार का गुण है और आकर्षण–विकर्षण *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) का गुण है। अहंकार के जाने के बाद *पुद्गल* को *पुद्गल* का आकर्षण रहता है, खुद को नहीं।

शरीर में इलेक्ट्रिक बॉडी है, उसकी वजह से पूरा शरीर चुंबकीय है। उसके आधार पर आकर्षण–विकर्षण होता है। यह पूरा साइन्स ही है।

ज्ञान मिलने के बाद खुद *पुद्गल* के पक्ष में से निकल कर आत्मपक्षी बनता है लेकिन अनंत जन्मों से रही हुई *पुद्गल* की *खेंच* (अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना, आग्रह) नहीं जाती। खास तौर पर कोई नुकसानदायक *खेंच* हो तो वह है स्त्री–पुरुष के आकर्षण की। वहाँ पर खूब–खूब जागृति की ज़रूरत है।

आकर्षण की वजह से शादी करता है और आकर्षण के परमाणु खत्म हो जाने पर त्याग करता है। तब खुद ऐसा मानता है कि मैंने त्याग किया। यह सिर्फ अहंकार ही है।

जहाँ–जहाँ पर आकर्षण या विकर्षण होता है, वहाँ पर प्रतिक्रमण करना चाहिए।

पसंद या नापसंद, हर एक का हल लाना है।

राग का भी *निकाल* करना पड़ेगा। (संसार में से) जिस–जिस चीज़ के परमाणु भरे हैं, उनको (संसार को) सौंपकर मुक्त हो जाना है।

आत्मा निर्भेल होता है और परमाणुओं का ज्ञान निर्भेल होता है। तत्त्वज्ञान सदा ही निर्भेल होता है।

मन के और शरीर के परमाणु मिल जाते हैं तब भयंकर अशांति का अटैक आता है, आत्महत्या तक करवा लेता है।

भावमन अर्थात् (व्यवहार) आत्मा का रंजायमानपना (परमाणु में रंग जाना)। उदय आता है तब रूपक में आता है। रंजक (रंगे हुए) परमाणुओं की गांठें फूटती हैं, वही मन है।

अज्ञानता में *अणहक्क* (बिना हक़ का, अवैध) का लेने के विचार आने पर जानवर बनने के परमाणु खिंचते हैं।

समकिती के परमाणु हल्के होते हैं और मिथ्यात्वी के भारी होते हैं और मेन्टल व्यक्ति के बहुत ही भारी भरकम होते हैं।

दादा ने महात्माओं को वचन दिया है, 'अंतिम घड़ी में दादा वहाँ पर हाज़िर रहेंगे!' और समाधि मरण होगा ही!!

जो लोग दादाश्री से मिले हैं, उन सभी के परमाणुओं के कुछ अंश उनसे मिलते-जुलते हैं। तभी वे मिल पाए हैं।

परमाणुओं का चालक बल कौन है? किस आधार पर उन्हें आकार, स्पेस मिलता है?

परमाणु स्वभाव से ही चलते (गतिशील) हैं। उन्हें कोई चलाने वाला नहीं है। यह जगत् निरंतर परिवर्तनशील ही है। व्यवस्थित भी नहीं चलाता है। व्यवस्थित तो सिर्फ संयोग इकट्ठे कर देता है।

खूब-खूब विशेष प्रमाण में मिलते-जुलते परमाणु इकट्ठे होते हैं वहाँ पर विरह उत्पन्न होता है। दादा भगवान को याद करो तो उनके अंदर के परमाणु अपने में खिंचते हैं। अत: महान विभूतियों को, तीर्थंकरों को याद करना चाहिए।

दादा के परमाणु बहुत उच्च हैं। उन्हें छूने से ही ठंडक हो जाती है। चरण स्पर्श से तो ग़ज़ब के परमाणु प्राप्त होते हैं।

तीर्थंकरों के परमाणु पूरे ब्रह्मांड में उच्चतम होते हैं। उसे चरम शरीर कहा जाता है।

तीर्थंकरों का शरीर ज़बरदस्त लावण्यमय होता है! उनकी उपस्थिति में पाँच सौ योजन तक अकाल नहीं पड़ता!

एक मात्र, लोक कल्याण की भावना प्रवर्तित होती है तब तीर्थंकरी परमाणु इकट्ठे होते हैं! उनका लावण्य इतना अधिक होता है कि सभी

को आकर्षण होता है। तीर्थंकरों का शरीर, रक्त, हड्डी, माँस, वगैरह सबकुछ अलग ही और अद्‌भुत होता है! उनकी वाणी स्याद्‌वाद होती है।

वर्तमान तीर्थंकर के परमाणु ब्रह्मांड में घूम रहे होते हैं। उनसे बहुत लाभ होता है।

## [ 8 ] भोजन के परमाणुओं का असर

भोजन करना, वह फर्स्ट *गलन* है और संडास जाना, वह सेकन्ड *गलन*। *पूरण-गलन* परसत्ता में है। *पूरण* कुछ अंश तक खुद की सत्ता में है, सर्वांश रूप से नहीं। ज्ञान मिल जाए तो फिर वह खुद की सत्ता में आ जाता है। क्रमिक में मतिज्ञान व श्रुतज्ञान होता है, तब भी कुछ अंश तक खुद की सत्ता में आ जाता है। पैसा कमाना भी *गलन* है, व्यवस्थित है।

*पूरण* मेहनत से होता है और *गलन* स्वयं होता है।

पिछले जन्म में खाने के लिए भाव से *पूरण* किया हो तो उसी की वजह से इस जन्म में खा पाते हैं, उसे फर्स्ट *गलन* कहा गया है।

जो कुछ भी खाया जाता है, वह किस आधार पर खाया जाता है?

खाने वाले को पता नहीं है कि आज भोजन में क्या आएगा? बनाने वाले को पता नहीं है कि कल क्या बनाएँगे? और कितना खाएँगे और कितना नहीं खा पाएँगे, वे सब परमाणु सेट हैं। अंदर के परमाणुओं को जो पसंद है, वही खा पाते हैं। उसकी जो डिमान्ड होती है, उसी अनुसार सब मिल आता है।

छोटे, एक साल के बच्चे के सामने तरह-तरह का खाना रखो तो भी वह नहीं खाता और उनमें से एकाध चीज़ चट से खा जाता है! उसे व्यंजन की समझ नहीं है लेकिन जिस अनुसार अंदर के परमाणु खींचते हैं, उसी अनुसार खाता है।

कुछ व्यंजन अच्छे नहीं लगते, उसका क्या कारण है? अंदर के

परमाणु खींचते नहीं हैं और जिन्हें बहुत खींचते हैं, वह बहुत अच्छा लगता है। अंदर के सूक्ष्म परमाणु स्थूल को खींचते हैं।

चाय सिलॉन में उगती है और सेठ मुंबई में पीता है!

चाय भाती है, इसका अर्थ यह है कि अंदर के परमाणु खींच रहे हैं और उसका शौक है तो उसे रखने वाले आप हो!

तेजस शरीर हर एक शरीर में कॉमन होता है। भोजन पचाना, रक्त का परिभ्रमण होना, यह सब तेजस शरीर का कार्य है। यह मशीनरी रीढ़ की हड्डी में लगी हुई है और उसके तार सभी जगह पहुँचते हैं, उससे खाना-पीना वगैरह सब चलता है।

जो नॉनवेज (माँस) खाता है उसकी वृत्तियाँ हिंसक होती हैं।

परमाणु तो वीतराग ही हैं। खाने वाला रागी-द्वेषी है इसलिए भोजन में से या किसी में से कुछ भी सुख लेता है तो वह खुद अपनी कॉस्ट पर (अपना खो कर) ही लेता है। उसका परिणाम आए बिना तो रहेगा ही नहीं न!

ज्ञानी की दृष्टि से टी.बी. की बीमारी का विज्ञान क्या है?

जिस चीज़ के बारे में सोचो, उसके परमाणु अंदर खिंचते हैं और इकट्ठे हो जाते हैं। मधुमक्खी जलाने के विचार किए तो टी.बी. के परमाणु खिंचते हैं। मधुमक्खी तो क्या लेकिन किसी भी जीव को मारा जाए तो वह बैर का बदला लेगा ही और रोग फूटेगा। कुदरत का नियम है कि शरीर के घावों को भी भर देती है। यह तो सिर्फ अहंकार ही करता है कि, 'मैंने किया'। अणुओं की शक्ति भी अगाध है, वहाँ भगवान की शक्ति नहीं है।

कुदरत तो मनुष्य द्वारा किए गए, अच्छे-बुरे भावों को भी आगे (रूपक तक) ले जाती है।

*पुद्गल* अर्थात् जूठन। *पूरण-गलन*। उसमें हर्ष या शोक क्या करना? सभी मनुष्य श्मशान की राख के लड्डू ही खाते हैं।

दादाश्री कहते हैं, 'हमें तो भोजन खाना भी अच्छा नहीं लगता। क्या हमें यह चबाने वगैरह की झंझट पसंद है? लेकिन (फाइल-1 से) अलग रहते हैं इसलिए हर्ज नहीं है'। दादा के सिवा ऐसा और कौन मिलेगा, (जिसे) खाना भी अच्छा न लगे?

## [ 9 ] पुद्गल में निरंतर होता है पूरण-गलन

जो *पूरण* हुआ है उसका *गलन* होगा, संयोग है तो उसका वियोग होगा।

यश मिले तो उसे भी देखते रहो, अपयश मिले तो उसे भी देखते रहो क्योंकि यश-अपयश, दोनों ही *पुद्गल* हैं, *पूरण-गलन* हैं। पहले *पूरण* करते समय यह नहीं आता था कि क्या खरीदना है। इसलिए *गलन* में अभी अपयश की मार खाई है!

*पुद्गल* = पुर् + गल। र् का द् हो गया है यहाँ पर। संधि से *पुर्गल, पूरण* और *गलन* कहलाता है।

जगत् में पाँच चीज़ें हैं।

देह में तीन हैं; *पूरण, गलन* और शुद्धात्मा।

बाहर दो ही चीज़ें हैं; भोजनालय और शौचालय।

यह भोजनालय भोगने योग्य है और यह शौचालय छोड़ने योग्य है।

और फिर दो वाक्यों में सबकुछ आ गया।

1) शुद्धात्मा 2) संयोग। दो ही हैं जगत् में।

जैसा बोला जाए सभी परमाणु वैसे ही हो जाते हैं और तब वे खिंचते हैं। परमाणु अंदर आते हैं तब वे पूर् कहलाते हैं। फिर फल देने के बाद उनका *गलन* होता है तब वे गल कहलाते हैं।

कर्म बंधते समय परमाणुओं का *पूरण* होता है, उसे कर्म का बंध कहते हैं और कर्म छूटते हैं तब *गलन* होता है, उसे कर्म की *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) कहते हैं। अतः पूर् + गल कहा जाता है।

जैसा *पूरण* होता है, *गलन* में वैसा ही निकलता है। नीम को चाहे कितना भी मीठा पानी पिलाया जाए फिर भी क्या वह मीठा बन सकता है?

*पूरण-गलन* दोनों कुदरती प्रकार से होते हैं। अज्ञान दशा में संयोगों के दबाव से *पूरण* होता है और संयोगों से *गलन* होता है।

ज्ञान मिलने के बाद मात्र *गलन* ही रहता है, नया *पूरण* नहीं होता। लट्टू सिर्फ *गलन* क्रिया बताता है। लट्टू पर डोरी लपेटकर मनुष्य *पूरण* करता है और *गलन* क्रिया लट्टू करता है। इस प्रकार से मनुष्य के केस में आत्मा का प्रतिनिधि बन बैठा 'मैं' *पूरण* करता है और शरीर *गलन* करता है। 'मैं', वह अहंकार है और खुद कर्ताहर्ता बन गया है और कहीं भी मूल आत्मा की नहीं सुनता। यह *पूरण-गलन* *पुद्गल* का है, फिर भी 'मैं' ऐसा मानता है कि 'मैं ही कर रहा हूँ।' पूरा ही *पुद्गल* 'व्यवस्थित' है।

ज्ञान के बाद 'मैं' शुद्धात्मा बनता है। जिससे अहंकार का नाश होता है। जीव भाग खिंच जाता है और निर्जीव भाग रह जाता है। फिर उसका अपने आप ही *गलन* होता रहता है।

आत्मा शाश्वत है और बाकी सब *पूरण-गलन* है। इसमें 'खुद' अज्ञानता से राग-द्वेष करता है, फायदा-नुकसान मानकर संसार रचता रहता है।

*पूरण* होना कैसे रोका जा सकता है?

आत्मज्ञान के बिना *पूरण* होना नहीं रुक सकता। हाँ, उसमें बदलाव हो सकता है। जैसे कि गलत काम हो रहा हो, उस समय अंदर ऐसा लगे कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए' तो वह *पूरण* है और अच्छा काम हो रहा हो तब ऐसा लगे कि 'ऐसा होना चाहिए' तो वह भी *पूरण* है। उसके आधार पर फिर से *गलन* होता है। *पूरण* के बाद स्वयं ही *गलन* होता रहता है। *पूरण* में बदलाव करना थोड़े ही 'खुद के' हाथ में है क्योंकि संयोग सीधे होते हैं तभी अच्छा करने

का विचार आता है। संपूर्ण स्वतंत्रता तो किसी की, कहीं भी नहीं है।

ज्ञान मिलने के बाद किसी के लिए खराब या अच्छे विचारों में तन्मयाकार हो जाए तब भी वह *गलन* ही कहलाएगा। दादा का वीतराग विज्ञान अद्‌भुत है!

'सहज स्थिति होने को श्री वीतरागों ने मोक्ष कहा है,' महात्माओं को वह बरतता है। *पुद्‌गल* में अच्छा-बुरा नहीं देखना है, मात्र जानना है। कोई महात्मा पागलपन करे तो भी जानना कि *पूरण* किया हुआ *गलन* हो रहा है! उस पर करुणा रखना।

ये जो क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं, वे भी, जो *पूरण* किया था उसी का *गलन* हो रहा है।

नियम ऐसा है कि *पूरण* धीरे-धीरे होता है और *गलन* एकदम से हो जाता है।

आत्म स्वरूप की प्राप्ति के बाद प्रत्येक क्रिया के ज्ञाता-द्रष्टा रहे तो प्रत्येक क्रिया *गलन* रूपी ही है, फिर चाहे वह अच्छी आदत हो या बुरी आदत!

जो समस्त प्रकार के *पूरण-गलन* को जान गया, वह आत्मा, परमात्मा है।

खुद ज्ञानाकार, आत्माकार है। वह क्षेत्राकार क्यों बन जाता है? 'मैं ऐसा, मैं वैसा' ऐसा हुआ कि बन गया क्षेत्राकार।

इन्द्रिय सुख *पूरण-गलन* वाले हैं, कल्पित हैं, टेम्परेरी हैं। अतिन्द्रिय सुख बाहर की किसी भी वस्तु के बिना मिला हुआ आत्मिक सुख है।

*पूरण* होने पर गर्व नहीं और *गलन* में हताशा नहीं तो वह ज्ञान प्राप्ति की निशानी है।

तांत्रिक विद्या तो पूरा *पुद्‌गल* प्रपंच है। ज्ञानी उसमें हाथ नहीं डालते।

*‘रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी,*

*सर्वे मान्या पुद्‌गल एक स्वभाव जो।’*

(रेत के कण या वैमानिक देवों की रिद्धि,

सभी को एक स्वभावी *पुद्‌गल* ही माना।)

**–श्रीमद्‌ राजचंद्र**

एक स्वभावी *पुद्‌गल* को देखा यानी कि वह कैसा देखा होगा! सब *पूरण-गलन, पूरण-गलन* देखा...

अक्रम मार्ग में अंत में जाकर क्रम-अक्रम मार्ग एक हो जाते हैं। जब तक कषाय हैं तब तक चार्ज होता रहेगा। अक्रम, मुक्त भाग में है।

क्रमिक मार्ग में भी अंतिम स्टेप से बहुत पहले ही कर्म चार्ज होने बंद हो जाते हैं।

## [ 10 ] पुद्‌गल की परिभाषा

क्या *पुद्‌गल* सत्‌ है?

सत्‌ अर्थात्‌ अविनाशी। *पुद्‌गल* अर्थात्‌ *पूरण-गलन।* वह असत्‌ है। मूल जो परमाणु रूपी *पुद्‌गल* है, वह सत्‌ है, अगुरु-लघु है, अविनाशी है। मूल जड़ तत्त्व परमाणु रूपी है। *पुद्‌गल* जड़ नहीं है, *पुद्‌गल* के परमाणु जड़ होते हैं।

विकृत यानी कि, विभाविक हो चुके परमाणुओं को *पुद्‌गल* कहा जाता है। प्रकृति भी *पुद्‌गल* है। हर एक जीव में आत्मा के अलावा बाकी का सब *पुद्‌गल* है। शुद्धात्मा और *पुद्‌गल* दो ही हैं। देह में जो *पुद्‌गल* है, वह विभाविक *पुद्‌गल* है। विभाविक *पुद्‌गल* अर्थात्‌ उसमें अन्य तत्त्व, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल व आकाश सभी हैं। जिसमें छहों तत्त्व होते हैं, वह *पुद्‌गल* है।

छः तत्त्वों का सम्मेलन होता है तो उसे फिर *पुद्‌गल* कहा जाता

है। फिर उसका विसर्जन अपने आप ही होता रहता है, निरंतर। तू खुद लगाम छोड़ दे।

परमाणुओं के स्कंध को *पुद्गल* नहीं कहते, परमाणु ही कहते हैं। पेड़ या पेड़ की लकड़ी को *पुद्गल* कहा जाता है। लकड़ी में आत्मा नहीं है लेकिन आत्मा के कारण *पुद्गल* की ऐसी दशा हो गई न!

*पुद्गल* में *पूरण* वाला माल स्कंध है और *गलन* वाला माल स्वाभाविक है। स्कंध में से *गलन* होने पर स्वभावतः परमाणुओं के रूप में *गलन* होता है।

*पुद्गल* स्वतंत्र है, आत्मा के अवलंबन से रहित है। एक क्षण भर के लिए भी वह उसका अवलंबन लेगा तो वह (अवलंबन) हमेशा के लिए हो जाएगा। आत्मा छोड़ेगा नहीं। परंतु दोनों स्वतंत्र हैं, कोई किसी के ताबे में नहीं है। कोई किसी को वश में नहीं कर सकता।

शरीर में जो इलेक्ट्रिसिटी है, वह *पुद्गल* तत्त्व है, अवस्था है।

'मैं चंदू हूँ' अर्थात् *पुद्गल* को, 'मैं हूँ', ऐसा माना। 'मैंने किया' ऐसा मानते ही कर्ता बन जाता है। इसलिए *पुद्गल* उससे चिपक जाता है, वही कर्म है। 'मैं आत्मा हूँ, *पुद्गल* नहीं हूँ', ऐसा हो जाएगा तो कर्म नहीं बंधेंगे।

*पुद्गल* अकेला ही कर्म नहीं करता परंतु साथ में (प्रतिष्ठित) आत्मा की रोंग बिलीफ है इसलिए कर्म बंधन होता है। यह जो रोंग बिलीफ है, वह भी *पुद्गल* है। इसमें अहंकार सिर्फ मानता ही है कि 'मैं कर रहा हूँ'। इसमें मूल आत्मा कुछ भी नहीं करता। आत्मा की उपस्थिति में अहंकार मानता है कि 'मैं कर रहा हूँ, मैं भोग रहा हूँ।'

क्रोध-मान-माया-लोभ, अहंकार, ये सब *पुद्गल* कहलाते हैं। प्रकृति और *पुद्गल* एक ही माने जाते हैं। मिश्रचेतन भी *पुद्गल* माना जाता है। अज्ञानता है तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ के परिणाम हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ, लघु-गुरु स्वभाव वाले हैं और आत्मा अगुरु-लघु स्वभाव वाला है।

शुद्ध *पुद्गल* स्वाभाविक है और जो रिलेटिव *पुद्गल* है, वही विभाविक *पुद्गल* है। वह संयोगों के दबाव से बन गया है।

विभाविक *पुद्गल* इफेक्टिव है, स्वाभाविक *पुद्गल* इफेक्टिव नहीं है।

*पुद्गल* के इफेक्ट में से राग-द्वेष होते हैं और राग-द्वेष में से वापस *पुद्गल* का इफेक्ट उत्पन्न होता है। ऐसा चलता ही रहता है।

*पुद्गल* में राग-द्वेष होते हैं तो वह बंधन है और राग-द्वेष नहीं होते हैं तो उसे कहते हैं मुक्ति।

पाँच इन्द्रियों में से चार एक पक्षीय वीतराग हैं जबकि स्पर्शेन्द्रिय दोनों तरफ से रागी है। स्पर्श में विषय-वासना है।

प्योर *पुद्गल* हो तो आपत्ति नहीं है परंतु विभाविक *पुद्गल* के परिणाम को देखेगा तो राग नहीं होगा। खाने का परिणाम देखेगा तो?

पौद्गलिक कीचड़ ऐसा है कि उसमें से निकलने जाए तो और अधिक फँसता जाता है।

जो स्त्री बनता है, पुरुष बनता है, वह एक ही माल है।

शुद्धात्मा और प्रकृति, दोनों स्वभाव से, गुणधर्म से अलग ही हैं इसलिए पहचाने जा सकते हैं। सोना, तांबा, सभी धातुएँ, सभी वायु, जैसे कि हाइड्रोजन, ऑक्सीजन वगैरह सभी एक ही *पुद्गल* तत्त्व कहलाते हैं।

ये जो सारे एटम बम हैं, वे सभी जड़ तत्त्व से बने हैं। बादल, बरसात, हवा सब *पुद्गल* हैं और उनका संचालन 'व्यवस्थित' करता है।

जैसे कि धातु और अधातु के परिणामिक भाव बिल्कुल अलग ही हैं, उसी प्रकार आत्मा और अनात्मा के परिणामिक भाव बिल्कुल अलग ही हैं। अनात्मा का परिणामिक भाव भारी होने का है और आत्मा का परिणामिक भाव हल्का होने का है। शरीर छूटता है, तब

कॉज़ल बॉडी आत्मा के साथ जाती है, उसके परमाणुओं की वजह से जीव में वज़न होता है, आत्मा में वज़न नहीं है।

*पुद्गल* अधोगामी है और आत्मा उर्ध्वगामी है। पुण्य का वज़न कम है और पाप का वज़न अधिक है। जैसे-जैसे पाप बढ़ता है वैसे-वैसे जीव की अधोगति होती है। पुण्य-पाप के शून्य हो जाने पर मोक्ष होता है।

*पुद्गल* की सत्ता 'व्यवस्थित' के ताबे में है। *पुद्गल* की खुद की स्वाभाविक सत्ता नहीं है इसलिए यदि 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा कर्ताभाव चला जाए तो कर्म जैसा कुछ रहेगा ही नहीं! और वह स्वरूप के भान में आने पर ही जा सकता है।

तो *पुद्गल* किसके अधीन है?

स्वभाव दशा में (शुद्ध परमाणु) स्वाधीन हैं और विभाव दशा में (विभाविक परमाणु) साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स के अधीन है। अतः *पुद्गल* खुद सत्तावादी नहीं है, आत्मा सत्तावादी है।

आत्मा स्व-परिणामी है और देह *पुद्गल* परिणाम है।

देह में क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं, हर्ष-शोक होते हैं। आत्मा उनमें तन्मयाकार नहीं हो और *पुद्गल* के प्रत्येक संयोग को पर-परिणाम जाने, उसे सम्यक् चारित्र कहा जाता है।

कर्म तो परिणाम हैं और निरंतर नदी के बहाव की तरह बहते ही रहते हैं। परिणाम हैं, इसलिए आत्मा को इससे कुछ भी लेना-देना नहीं है। कॉज़ेज़ और इफेक्ट्स में चेतन नहीं है। वह सब *पुद्गल* का है।

सर्जन करना खुद की (अहंकार की) सत्ता है और विसर्जन करना *पुद्गल* की सत्ता है। अतः सीधा सर्जन करना।

अवस्था में तन्मयाकार का मतलब है संसार अर्थात् *पुद्गल* रमणता। 'मैं आत्मा हूँ', उसके अलावा 'मैं चंदू हूँ', से लेकर बाकी

का सब *पुद्गल* रमणता है। यह पूरा जगत् पौद्गलिक रमणता वाला है, उसमें कोई एक क्षण के लिए भी आत्मा का आराधन करे तो उसका मोक्ष हुए बगैर रहेगा ही नहीं।

*पुद्गल* खाने-पीने वाला और रमणता वाला है। खाना-पीना लिमिटेड है और रमणता अन्‌लिमिटेड है। आत्म रमणता से मोक्ष है। *पुद्गल* से विराम प्राप्त करने को कहते हैं, विरति।

क्रमिक मार्ग में साधनों से ही खेलते रहते हैं। साध्य एक तरफ रह जाता है। शास्त्रों से खेलते हैं, माला से खेलते हैं, ये सभी *पुद्गल* के ही खिलौने हैं। आत्मा को इनसे कोई लेना-देना नहीं है। *पुद्गल* रमणता से संसार फल मिलता है, मोक्ष नहीं मिलता।

जिस साधन से आत्मा प्राप्त करना है, उसके प्राप्त होने के बाद में साधन को छोड़ देना है, उसके बाद उनकी आराधना नहीं करनी है! चाय की पतीली उतारकर संडसी को एक तरफ रख देना है, उसे पीना नहीं है।

जिस रकम से गुणा किया था, उसी रकम से भाग लगाना होगा, तभी निःशेष आएगा। उसी को मोक्ष कहा गया है।

पूरे जगत् को *पुद्गल* ही चला रहा है। अतिक्रमण भी *पुद्गल* करता है। *पुद्गल* जन्म लेता है, वैधव्य भोगता है, मरता है, यह सारा *पुद्गल* ही है। यह है ज्ञानियों की भाषा! बाकी, आत्मा मरता भी नहीं और जन्म भी नहीं लेता। (प्रतिष्ठित) आत्मा जीता-मरता है।

*पुद्गल* अर्थात् मिश्रचेतन जो कि चैतन्यभाव वाला है, पावर चेतन है। चार्ज हुए चैतन्य पावर का अगले जन्म में *गलन* होता है। *पूरण* आत्मा के इनवॉल्वमेन्ट (सहमति) से होता है और *गलन,* पर-परिणति है।

भ्रांति से ऐसा लगता है कि सबकुछ आत्मा ही कर रहा है लेकिन वास्तव में यह सारी *पुद्गल* की ही बाज़ी है। भ्रांति अर्थात् भूल से यदि हाथ से आँख दब जाए तो दो दीये दिखाई देते हैं न?

*पुद्गल* से *पुद्गल,* टकराता है, चेतन, कभी भी चेतन से नहीं टकराता।

जगत् में चार चीज़ें हैं; जोड़, बाकी, गुणा और भाग। जोड़-बाकी *पुद्गल* करता है और गुणा-भाग व्यवहार आत्मा के हैं। राग गुणाकार है और द्वेष, भागाकार। रात को ओढ़कर अंदर जो योजनाएँ बनाता है, वह गुणाकार है।

विभाविक आत्मा के गुणाकार से विश्रसा में से बन जाते हैं, प्रयोगसा। प्रयोगसा में से वापस मिश्रसा बनते हैं और मिश्रसा में से (जब) भागाकार होता है तो उससे विश्रसा बन जाते हैं।

कारण परमाणु - प्रयोगसा

रूपक परमाणु - मिश्रसा

फिर फल देकर निरंतर विश्रसा होते ही रहते हैं।

विभाविक आत्मा का स्वभाव गुणाकार-भागाकार है। गुणाकार में भागाकार का और भागाकार में गुणाकार का बीज रहता ही है। उसी को घोटाला कहा गया है।

उदाहरण के तौर पर :

1) सर्दी लगने पर स्वेटर पहनने का मन होता है। स्वेटर माँगा, वह गुणाकार।

2) स्वेटर पहना, वह जोड़।

3) गरमी लगी और स्वेटर निकालने का मन हुआ, वह भागाकार।

4) स्वेटर निकाल दिया, वह है 'बाकी' करना। 'बाकी' करना, साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स के आधार पर होता है।

दादाश्री कहते हैं, 'हमारा भागाकार नि:शेष हो गया है। अब कुछ भी बाकी नहीं बचा।'

कश्मीर में रात को बरफ पड़ती है और बुद्ध का पुतला बन

जाता है, वह जोड़ है। सुबह सूर्य उगने पर वह पिघलने लगता है तो वह 'जोड़' में से 'बाकी' हुई।

ज्ञानी पुरुष हमेशा, जिस-जिस चीज़ के गुणाकार हो गए हों, उनके भागाकार करते ही रहते हैं।

ज्ञानी पुरुष सभी जगह वीतराग रहते हैं। समानता रहती है उन्हें। सभी जगह दर्शन करने जाते हैं। किसी भी *पुद्गल* के पक्ष में नहीं रहते। ऐसा नहीं रहता कि, 'मेरा जैन *पुद्गल* है, मेरा वैष्णव *पुद्गल* है', सभी जगह भागाकार करके एक सरीखा कर देते हैं।

जड़ की ज्योमेट्री (रेखागणित), उसके थ्योरम् से सॉल्व हो जाती है तो क्या यह तेरा (मिश्रचेतन का) थ्योरम् सॉल्व नहीं हो सकता? जड़ यदि उल्टा व्यवस्थित देता है तो वह ज्ञान देकर जाएगा, और सीधा देता है तो मज़ा ही है न! दोनों से लाभ ही है न! दादाश्री कितना सिम्पल सॉल्यूशन देते हैं!

यह सारी *पुद्गल* की करामात है और ऑर्गेनाइज़ेशन भी *पुद्गल* का ही है। आत्मा का तो इसमें कुछ है ही नहीं तो फिर दखल किस चीज़ की? अच्छा-बुरा करने का रहता ही कहाँ है?

सिद्धांत क्या कहता है?

*पुद्गल, पुद्गल* को खाता है, आत्मा खाता ही नहीं है। फिर यह खाना छोड़ दो और यह छोड़ो, ऐसा कहाँ रहा?

तरबूज को काटने पर आत्मा नहीं कटता। ज्ञानी तो तरबूज को काटने से पहले विधि करके शुद्धात्मा को एक तरफ बैठा देते हैं।

*पुद्गल* खाता है और खुद अहंकार करता है कि मैंने खाया।

एक *पुद्गल* का जो स्वभाव है, वही सर्व *पुद्गल* का है। *पुद्गल* निज स्वभाव में ही कार्यान्वित रहता है। खाना या नहीं खाना, वह *पुद्गल-पुद्गल* के आकर्षण-विकर्षण का नियम है। खाना खाने बैठता है तब गपागप खा लेता है, जैसे कि अंदर से राक्षस भोजन नहीं खींच

रहा हो! वह अंदर वाला *पुद्गल* बाहरी *पुद्गल* को खींचता है। इसीलिए तो भोजन करना शुरू करने के बाद में इंतज़ार नहीं कर सकते। कुछ न कुछ चाटना चलता ही रहता है!

खाने वाला जान नहीं सकता और जानने वाला खाता नहीं है। *पुद्गल* कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता। वह सदा भिखारी का भिखारी ही रहेगा।

जिस *पुद्गल* का तिरस्कार किया जाएगा, वह जन्मोंजन्म तक नहीं मिलेगा। इस जन्म में मिलेगा लेकिन बाद में नहीं मिलेगा। किसी भी चीज़ का तिरस्कार नहीं किया जाए तो घर बैठे सबकुछ मिले ऐसा है, ऐसा तो आत्मा का वैभव है!!!

ऑर्नामेन्टल जगह, ऑर्नामेन्टल रास्ते वगैरह देखने पर *पुद्गल* को मस्ती आ जाती है। उससे संसार अनंत गुना हो जाता है।

श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है कि '*जैन पुद्गल भाव ओछो थये आत्मध्यान परिणमशे*।' (जैन *पुद्गल* का भाव कम होने पर आत्मज्ञान परिणमित होगा।)

वैष्णव को वैष्णव *पुद्गल* और जैन को जैन *पुद्गल* मोक्ष में नहीं जाने देता।

जो आराधन किया, वह *पुद्गल* की आराधना हुई न! वही बाधक है न! वही आवरण रूप बन जाता है। अतः जैन, वैष्णव वगैरह सब पौद्गलिक माया है। उससे छूटना है। अरे, त्यागी को त्याग का *पुद्गल* बाधक है। क्षत्रिय *पुद्गल,* वैश्य *पुद्गल,* शूद्र *पुद्गल* हर एक को अपना-अपना *पुद्गल* बाधक है।

राग-द्वेष न हों तो यह सारी *पुद्गल* की ही मस्ती है। वर्ना दोष लगता है। बाकी, *पुद्गल* ही आमने-सामने लड़ते हैं, *पुद्गल* मारता है, आत्मा उसे देखता है। उसमें तन्मयाकार होगा तो मार पड़ेगी।

जहाँ-जहाँ द्वंद्व है ; अच्छा-बुरा, नफा-नुकसान वगैरह, वह लोगों

ने पैदा किया है। भगवान के घर पर द्वंद्व नहीं है। भगवान की दृष्टि में तो यह सब *पुद्गल* ही है, *पुद्गल* की मस्ती कहो या कुश्ती।

अपनी इच्छा नहीं होने पर भी हो जाता है, वह क्या सूचित करता है? यह सब पूर्व कर्म का उदय है, उदय का पोटला ही है यह।

आत्मा को जानने के बाद क्या करना है? शुद्ध होकर अपने घर में बैठ जाना है। बाकी सब अपने आप ही क्लियर हो जाएगा। बाहर का तूफान अपने आप ही ठंडा पड़ जाएगा।

मन-वचन-काया इफेक्ट हैं, उनमें हाथ डालने की ज़रूरत ही नहीं है।

देह परछाई की तरह साथ में लगा हुआ है। भ्रांति से परछाई को ही 'मैं हूँ' ऐसा मानता है। दोपहर को बारह बजे सूर्य समभाव में आता है तब परछाई समा जाती है। उसी प्रकार समता में आने पर सबकुछ गायब हो जाता है।

*पुद्गल* के साथ एकता होने पर खुद को विनाशी बनना पड़ता है और उससे जुदा रहे तो अविनाशी है। कर्तापन के भान से एक हो जाता है।

*पुद्गल* का स्वामित्व छूटता है तब स्व-स्वामित्व का अनुभव होता है।

वर्तन *पुद्गल* का है और ज्ञान आत्मा का है, अत: वर्तन और ज्ञान का कोई लेना-देना नहीं है।

व्यथा *पुद्गल* की है और उसे जानने वाला आत्मा है।

पौद्गलिक रूप से कोई जितेन्द्रिय जिन नहीं बन सकता, 'ज्ञान' होने पर ही बन सकता है।

अतिन्द्रिय प्रत्यक्ष आत्मा को लेकर है, इन्द्रिय प्रत्यक्ष पूरा ही *पुद्गल* को लेकर है। यह दादाश्री का ज्ञानावलोकन है।

आपके लिए ज्ञेय, परमाणु रूपी नहीं हैं, स्कंध रूपी हैं। *पूरण–गलन* है सारा। *पूरण* दिखाई नहीं देता, *गलन* दिखाई देता है।

भगवान महावीर की दृष्टि में क्या रहता था?

सती, वैश्या, चोर, दानवीर, समझदार, पागल, सभी में एक *पुद्गल* ही देखा। जैसे कि तरह–तरह के गहनों में सिर्फ सोने को ही देखते हैं, वैसे ही भिन्न–भिन्न प्रकृतियों में एक सरीखा *पुद्गल* ही है, ऐसा देखना है। वास्तव में, अंत में तो सिर्फ खुद के एक *पुद्गल* को ही देखना है, औरों का नहीं।

ज्ञानी का *पुद्गल* अंतिम होता है। मोक्ष में जाने वालों का *पुद्गल* अंतिम होता है। उनके जो–जो *पुद्गल* होते हैं, वे सभी *पुद्गल* छुड़वाने वाले *पुद्गल* हैं।

ज्ञानी की सूक्ष्म देह का कौन सा भाग बाहर जाता है? *पुद्गल* का भाग बाहर जाता है और वह भी परसत्ता है।

शुद्ध चेतन के अलावा बाकी सारा ही *पुद्गल* है।

ज्ञानी पुरुष का *पुद्गल* दिव्य होता है और उनमें भी तीर्थंकरों का *पुद्गल* दिव्यातिदिव्य होता है, पूरे ब्रह्मांड में टॉपमोस्ट होता है!

दादाश्री कहते हैं, 'शास्त्रों में *पुद्गल* शब्द है परंतु उसका यथार्थ अर्थ समझने में हमने बीस साल लगाए! उन्नीस सौ पैंतालीस तक भी मुझे समझ में नहीं आया था।' *पूरण–गलन* और शुद्धात्मा इतना ही भेद समझ में आ जाए तो काम हो जाएगा।

पाँच तत्त्वों को एक *पुद्गल* में डाल दिया और छठा है आत्मा। अतः हर एक शरीर में आत्मा और *पुद्गल,* दो ही चीज़ें हैं, उनका विभाजन करना आ जाए तो आत्मा मिल जाएगा! और यह विभाजन ज्ञानी की कृपा के बिना, कैसे संभव हो सकता है?

## [ 11 ] पुद्गल भाव

*पुद्गल* भाव किसे कहते हैं?

रास्ते में ताज़ी जलेबी तली जाती हुई देखकर अंदर अपने आप ही खाने का भाव हो जाता है न! उसे *पुद्गल* भाव कहा जाता है। भाव मात्र *पुद्गल* है, आत्मा का इसमें कुछ भी नहीं है।

इच्छा सहित वृत्ति को भाव कहते हैं।

भाव दो प्रकार के हैं। एक, *पुद्गल* भाव और दूसरा, व्यवहार आत्मा का भाव। मन-वचन-काया के तमाम भाव, *पुद्गल* के भाव हैं। जैसे कि मुझे यह भाता है, यह अच्छा लगता है। उस पर से व्यवहार आत्मा अपने खुद के भाव करता है, जिससे संसार खड़ा हो जाता है।

सोने के प्रति जो भाव हैं, वे तांबे के लिए नहीं होते और तांबे के प्रति जो भाव हैं, वे सोने के लिए नहीं होते, दोनों अलग ही हैं। उसी प्रकार मन-वचन-काया के तमाम भाव *पुद्गल* के भाव हैं, वे चेतन के भाव नहीं हैं। दोनों अलग ही हैं। *पुद्गल* के ये तमाम भाव *पूरण-गलन* स्वभाव वाले हैं।

जब तक *पुद्गल* भाव नष्ट नहीं हो जाता तब तक शुद्धात्मा नहीं हुआ जा सकता।

अज्ञान दशा में मिश्रचेतन को ही खुद चेतन मानता है।

राग-द्वेष होना, वह 'अपना' धर्म है और भाव-अभाव होना, वह *पुद्गल* धर्म है। भाव-अभाव व्यवस्थित के अधीन है परंतु 'हमें' उन्हें सिर्फ 'देखना' है। यदि दखल करेंगे तो वे खड़े रहेंगे, वर्ना देखने पर चले जाएँगे। भाव ऐसा कहते हैं कि 'हम हमारे *पूरण-गलन* के रास्ते पर हैं और आप वीतरागता के रास्ते पर चलने लगो!' तो दोनों अलग हो जाएँगे। वीतराग होने की ज़रूरत है।

जिसे भेदज्ञान हो जाता है, उसे निरंतर ऐसा दिखाई देता है कि यह *पुद्गल* भाव है और यह आत्मभाव है। सभी अच्छे-बुरे विचार *पुद्गल* भाव हैं। आत्मा को उसमें कोई लेना-देना नहीं है। विचार ज्ञेय हैं, 'खुद' ज्ञाता है।

अंदर जड़ भाव और प्रकृति भाव उछल-कूद मचाएँ तो हमें वे

सुनने नहीं चाहिए। लेपायमान भाव, वे जड़ के भाव हैं, उनसे 'मैं' (आत्मा) सर्वथा निर्लेप ही हूँ। लेपायमान भाव, वह मेरा स्वरूप नहीं है, जड़ का है।

पूरा जगत् जड़ भावों से परेशान है। जड़ भाव तो ज्ञानी में भी उछल-कूद मचाते हैं। परंतु ज्ञानी उन्हें पहचान चुके हैं इसीलिए उनकी सुनते नहीं हैं।

भूकंप का दृश्य देखा हो या अनुभव किया हो तो महीनों या सालों तक उसके दिमाग़ में से वह चित्र नहीं जाता। वे लेपायमान भाव हैं। जिसे ज्ञान है, वह उन्हें अलग कर सकता है, डरने की ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री कहते हैं, 'कोई सत्संग में सब को परेशान कर रहा हो तो हमें भी अंदर ऐसा लगता है कि नालायक है, खराब है।' अंदर ऐसा तूफान होता है लेकिन फिर हम कहते हैं कि 'यह तो उपकारी है', तो अंदर सब चुप हो जाते हैं। नालायक कहते ही, नेगेटिव कहते ही अंदर कुत्ते (*पुद्गल* भाव) भौंकने लगेंगे।

हम सामने वाले को दोषित कह देते हैं तब, (जब) ऐसा लगे कि हमारी नज़रों में वह दोषित है, तभी सारे लेपायमान भाव घेर लेंगे। और हम कहें कि, 'नहीं, वे तो बहुत अच्छे इंसान हैं, उपकारी हैं' तो वह सब बंद हो जाएगा। जो इस विज्ञान में सफल हो जाएगा, तब फिर प्रारब्ध भी उसका साथ देता ही रहेगा। शायद ही कभी टेढ़ा-मेढ़ा चलेगा। पूरा सिद्धांत सिद्ध नहीं हो जाता तब तक स्वपुरुषार्थ, स्वपराक्रम की ज़रूरत है। जब अंदर कुछ बिगड़े, लोगों के दोष दिखना शुरू हो जाएँ तो समझ जाना कि जड़ के भाव परेशान कर रहे हैं।

एक, जड़ भाव है और दूसरा, चेतन भाव, इस प्रकार से दो भाव हैं। जड़ भाव में अपनी सहमति हो जाए तो दोष लगेगा, वर्ना कुछ भी नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, चेतन भाव एकाकार हो जाए तो दोष लगेगा। जो इतना ही समझ गया, वह पार उतर गया।

चेतन में ज्ञाता-द्रष्टा भाव है और अनेक अन्य भाव हैं, जो कि अगुरु-लघु हैं। जबकि गुरु-लघु स्वभाव विभाविक *पुद्गल* का गुण है।

'मैंने किया', वह जड़ भाव है। मैंने सामायिक की, प्रतिक्रमण किया, जप-तप किए, वे सब जड़ भाव हैं।

ये जड़ भाव हैं और ये चेतन भाव हैं, ऐसी भेद वाली श्रद्धा हो जाए, ऐसी एक किरण फूटे और धारण करे तो उसे सम्यक्त्व कहा गया है।

## [ 12 ] पुद्गल और आत्मा

आत्मा में वज़न होता है क्या?

मूल आत्मा में वज़न नहीं होता, लेकिन व्यवहार आत्मा का वज़न किया जा सकता है। मूल आत्मा के साथ अन्य परमाणु होते हैं, उन परमाणुओं के वज़न को व्यवहार आत्मा का वज़न माना जाता है।

मूल दृष्टि बदले बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह बंधन है।

परमाणु और आत्मा एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं, किसी का किसी पर प्रभाव नहीं है। भगवान परमाणुओं से बंधे हुए हैं।

दादा की भाषा में *पुद्गल* ने आत्मा को जकड़ा हुआ है, आत्मा ने *पुद्गल* को नहीं। छः तत्त्वों से बना हुआ *पुद्गल* ही आत्मा के लिए जेल है।

दादाश्री यह सब केवलज्ञान में देखकर बताते हैं।

भक्ति कौन करता है? *पुद्गल*। *पुद्गल* का स्वभाव ही है कि ब्रह्म के सामने ब्रह्म वैसा ही करते हैं। भक्ति से आवरण टूटते हैं और दिखाई देता है।

*पुद्गल,* चेतन की भक्ति कब कर सकता है? चेतन प्राप्त होने के बाद में। जिन्होंने चेतन प्राप्त कर लिया है, उनकी भक्ति से चेतन प्राप्त होता है।

शुद्ध चेतन इन्इफेक्टिव है और *पुद्गल* सदा ही इफेक्टिव है। परंतु उस पौद्गलिक इफेक्ट में 'मैं'पने का आरोप कॉज़ेज़ उत्पन्न करता है। बाद में उसका इफेक्ट आता है।

चलते-चलते सिर के बाल उड़ने लगें तो क्या हम उससे परेशान हो जाते हैं? उसी प्रकार संसार के *पुद्गल* 'हमें' परेशान नहीं करते।

पराई चीज़ के स्वामी बन बैठे हैं इसीलिए दुःखों का अंत नहीं हैं। जो खुद की चीज़ के स्वामी बन जाते हैं, वे पूरे ब्रह्मांड के स्वामी बन जाते हैं।

शुद्ध उपयोगपूर्वक आहार किया जाए तो आहार और 'मैं' दोनों अलग रहते हैं। परंतु कहते हैं, 'मैंने खाया', उससे विष डलता है।

शुद्धात्मा का सुख चखने के बाद में *पुद्गल* के ये सारे सुख नीम जैसे कड़वे ज़हर लगने चाहिएँ। जब तक मिठास नहीं जाएगी तब तक छूट नहीं पाएँगे।

त्याग करने की कितनी चीज़ें हैं? अनंत। 'मैं' को छोड़ना था, उसके बजाय पूरे आत्मा को ही छोड़ दिया! फिर क्या दशा होगी?

*पुद्गल* स्वभाव से ही चंचल है और आत्मा अचल है।

चंचलता जितनी बढ़ती है, उतना ही *पुद्गल* की तरफ जाता है और आत्मा से दूर होता जाता है। पाँचों ही इन्द्रियाँ और मन, *पुद्गल* से बने हुए हैं। वह जीतना चाहें तो उन्हें जीता नहीं जा सकता। वे सभी ज्ञेय बन जाएँगे और खुद ज्ञाता बन जाएगा तब जितेन्द्रिय जिन बन जाएगा। पहले जो (प्रतिष्ठित आत्मा) ज्ञाता बन बैठा था, वह ज्ञेय बन जाएगा और मूल आत्मा ज्ञाता बन जाएगा, तब काम होगा।

*पुद्गल* को ही जानना और समझना, उसे कहते हैं ज्ञाता।

जो आत्मा को जानता है, वह *पुद्गल* को जानता है। दोनों में से एक को जान जाए तो दूसरे को अपने आप ही जान जाएगा। 'मैं कौन हूँ' जान ले तो बाकी रहे पूरे *पुद्गल* को जान लेगा। क्रमिक में

आत्मा को जानना बहुत ही मुश्किल है। अंतिम अवतार में पूरे ही आत्मा को जान जाता है। अक्रम में तो दो ही घंटों में आत्मा को जान जाते हैं। उसके बाद बाकी बचा हुआ *निकाली* है।

ज्ञानी की वाणी निमित्ताधीन होती है। हर एक को उसकी समझ शक्ति के अनुसार अलग-अलग तरह से समझाना पड़ता है।

*पुद्गल* को लेकर आत्मा को अज्ञान हुआ है और फिर *पुद्गल* को लेकर ज्ञान होता है। आधार ही है *पुद्गल* का।

आत्मा निरंतर स्थिर ही है। ज्ञान के बाद *पुद्गल* ऐसा स्थिर हो जाता है कि उसे भगवान कहना पड़ता है। किसी भी संयोग में कंपायमान (विचलित) नहीं होता।

अंत में तो *पुद्गल* को निष्क्रिय हो जाना है, आत्मा की तरह। आत्मानुभव होने के बाद में *पुद्गल* निष्क्रिय हो जाता है।

केवली जैसा दिखे तब जानना कि केवली बन गए। यानी कि जब *पुद्गल* भी केवली बन जाएगा तब मोक्ष होगा। आत्मा तो केवली है ही परंतु 'खुद की' समझ से भी केवली हो जाना चाहिए।

केवली भगवान में कर्ताभाव है ही नहीं। मन-वचन-काया से उन्हें कोई भी लेना-देना नहीं होता। बिल्कुल अलग ही रहते हैं उससे।

ज्ञानी आत्मस्वभाव के ही रक्षक होते हैं, *पुद्गल* के नहीं।

– **डॉ. नीरू बहन अमीन**

# अनुक्रमणिका

## [ खंड - 1 ] छः अविनाशी तत्त्व

### [ 1 ] छः अविनाशी तत्त्वों से रचना हुई विश्व की



### [ 2 ] आत्मा, अविनाशी तत्त्व



### [ 3 ] गति सहायक तत्त्व-स्थिति सहायक तत्त्व



### [ 4 ] काल तत्त्व

## [ 5 ] आकाश तत्त्व

### [ 5.1 ] आकाश अविनाशी तत्त्व



### [ 5.2 ] स्पेस के अनोखे असर



### [ 5.3 ] रहस्य अलग-अलग मुखड़ों का



## [ 6 ] संसार अर्थात् छः तत्त्वों की पार्टनरशिप वाला व्यापार

## [ खंड - 2 ] परमाणु, अविनाशी द्रव्य

### [ 1 ] परमाणुओं का स्वरूप



### [ 2 ] पुद्गल परमाणुओं के गुण



### [ 3 ] क्रियावती शक्ति



### [ 4 ] पुद्गल, प्रसवधर्मी



### [ 5 ] प्रयोगसा - मिश्रसा - विश्रसा

## [ 6 ] लिंक, भाव और परमाणुओं के बीच



## [ 7 ] परमाणुओं के असर का साइन्स



## [ 8 ] भोजन के परमाणुओं का असर



## [ 9 ] पुद्गल में निरंतर होता है पूरण-गलन



## [ 10 ] पुद्गल की परिभाषा

## [ 11 ] पुद्गल भाव



## [ 12 ] पुद्गल और आत्मा

# आप्तवाणी
## श्रेणी-14 भाग-2

## [ खंड - 1 ]
## छः अविनाशी तत्त्व

## [ 1 ]
## छः अविनाशी तत्त्वों से रचना हुई विश्व की

### उत्पत्ति हुई, विज्ञान से

**प्रश्नकर्ता :** जीवात्मक, *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) परमाणु वगैरह छः द्रव्यों का परिचय तत्त्वखंड दर्शन में देकर, उसके संयोग तथा विभाग, सृष्टि की असीम अकृत्रिमता, (जो कृत्रिम अर्थात् किसी के द्वारा बनाया हुआ नहीं है) अनादि अनंत का प्रतिपादन करती है। उस संयोग और विभाग की बात समझाइए।

**दादाश्री :** तत्त्वखंड दर्शन में क्या बताते हैं कि ये छः द्रव्य निरंतर परिवर्तनशील हैं। अत: यह जगत् उत्पन्न होता है, संयोग-वियोग से। सृष्टि की असीम अकृत्रिमता है, अत: उसे कोई बनाने वाला नहीं होना चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो संयोग शब्द का उपयोग किया है और वियोग नहीं रखा, विभाग शब्द रखा है। विभाग शब्द ज़रा समझाइए। संयोग को आपने साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स कहा है लेकिन विभाग ?

**दादाश्री :** *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना)

होना, वह सारा विभाग है। जो विभाज्य हो जाता है, वह सृष्टि की असीम अकृत्रिमता है अर्थात् उसके विभाग करने के लिए किसी की ज़रूरत नहीं है। संयोग करने के लिए किसी की ज़रूरत नहीं है, अपने आप ही होता रहता है यह। अत: अनादि अनंत भी साबित हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** 'समग्र सृष्टि विज्ञान पर निर्भर है', आप ऐसा कहते हैं तो विज्ञान को रचने वाला कौन है?

**दादाश्री :** विज्ञान को रचने वाला कोई नहीं है। विज्ञान अर्थात् इन छ: तत्त्वों से इस जगत् की रचना हो गई है।

**प्रश्नकर्ता :** समग्र सृष्टि के एक-एक अणु में वैज्ञानिक गुणधर्म समाए हुए हैं तो हर एक अणु में पक्के हिसाब पूर्वक गुणधर्म किसने रखे हैं?

**दादाश्री :** उन्हें रखने वाला कोई नहीं है, स्वाभाविक है। रखने वाला कोई होता, तब तो यदि कोई मूर्ख खड़ा हो जाता तो वह हम सब को मोक्ष में जाने ही नहीं देता।

अत: किसी ने किया ही नहीं है। है, है और है। था, था और था और रहेगा, रहेगा व रहेगा ही। यह अनादि है और अनंत है। अत: है, है और है। क्योंकि सनातन वस्तु के लिए हम जो ऐसा कहते हैं कि, 'हुआ था', तो वह अपनी भूल है। विनाशी वस्तु के लिए कहा जा सकता है कि, 'यह हुआ था'।

देयर आर सिक्स परमानेन्ट्स, उस परमानेन्ट को तो होना या नहीं होना है ही नहीं। होना या नहीं होना, यह किसकी खोज है? तो जो अपने आपको विनाशी मानता है, वह विनाशी तत्त्वों को देखता रहता है। जो अविनाशी है, वह अविनाशी को देखता रहता है। ऐसी दोनों ही प्रकार की दृष्टियाँ हैं।

**प्रश्नकर्ता :** एक चीज़ का पता नहीं चला। आपने कहा, 'काल

को लेकर जगत् अनादि है', परंतु उसकी उत्पत्ति का मूल कारण कुछ तो होना चाहिए?

**दादाश्री :** यह सब वैज्ञानिक प्रकार से हो गया है। वास्तव में इस जगत् में क्या है, यह जानना चाहिए। वास्तव में इस जगत् में छ: तत्त्व हैं, वे अविनाशी तत्त्व हैं और आँखों से यह सारा जो रूपी दिखाई देता है, वे उनकी अवस्थाएँ दिखाई देती हैं। तत्त्व अविनाशी होते हैं और तत्त्वों की अवस्थाएँ विनाशी होती हैं। यह सब समझ में नहीं आता, इसलिए फिर लोगों ने घुसा दिया कि इसका क्रिएटर भगवान है। क्रिएटर वाली बात छोटे बच्चों के लिए है, न कि समझदार लोगों के लिए। वास्तव में कोई क्रिएटर नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या ऐसा है कि कुदरत ने सृष्टि रची है?

**दादाश्री :** कुदरत ने नहीं रची है। कुदरती प्रकार से बन गई है। यह जगत् किस प्रकार से बना है, वह सब हमें हमारे ज्ञान में दिखाई देता है।

अत: भगवान ने नहीं बनाई है यह दुनिया। यह दुनिया भगवान ने बनाई होती तो भगवान का धंधा क्या होता? बनाने के बाद में क्या करेगा? बैठा रहेगा?

**प्रश्नकर्ता :** भगवान ने नहीं बनाई और भगवान के बिना बन भी नहीं सकती।

**दादाश्री :** वह तो नैमित्तिक बात है। खुद के हक़ से नहीं बनी है। निमित्त भाव से ये सब कर्ता हैं। स्वतंत्र भाव से कोई कर्ता नहीं है। यह दुनिया किसी ने बनाई नहीं है और बनाए बिना बनी नहीं है, इसका अर्थ इतना ही है कि यह निमित्त भाव से है। और निमित्त के कर्ता नहीं होने से इसका कोई कर्ता नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** कर्ता और अकर्ता दोनों ही नहीं हैं, और दोनों हैं ही?

**दादाश्री :** हाँ, सापेक्ष भाव है। अतः किसी संदर्भ में, अज्ञान (की अपेक्षा से) के संदर्भ में वह कर्ता भी है और ज्ञान के संदर्भ में कर्ता नहीं है।

यह जगत् छः इटर्नल तत्त्वों से बना है, और वास्तव में तो बना नहीं है, हमेशा से है ही, अनादि अनंत है ही। सातवाँ कोई इटर्नल है नहीं इस जगत् में। जीव मात्र में इन छः तत्त्वों का सम्मिलित स्वरूप है। जितने भी जीव होते हैं, उनमें ये छः वस्तुएँ हैं ही।

इस जगत् में छः तत्त्व हैं, वे वस्तु के रूप में रहे हुए हैं। वे खुद के वस्तुत्व के संपूर्ण स्वभाव में रहते हैं। इन छः वस्तुओं के सम्मेलन से यह पूरा जगत् बन गया है। इस जगत् को बुद्धि वाला कहाँ से समझ सकेगा?

## नहीं पहुँच सकती वहाँ बुद्धि

तत्त्व इन्द्रियगम्य नहीं होते, तत्त्व ज्ञानगम्य होते हैं। अतः ये सब अवस्थाएँ दिखाई देती हैं, और अवस्थाएँ विनाशी होती हैं। अर्थात् सभी विनाशी को ही देखते आए हैं और विनाशी का ही अनुभव लेकर आए हैं। अतः हमें खुद को यह सब विनाशी ही लगता है।

**प्रश्नकर्ता :** उसके पीछे कोई समझ तो मिलनी चाहिए न, कि यह किस तरह से हुआ? शाश्वत का मतलब क्या है?

**दादाश्री :** सनातन।

**प्रश्नकर्ता :** दादाजी, आपने उदाहरण दिया था कि इस सर्कल में बिगिनिंग क्या और एन्ड क्या? उपमा देने से प्रश्न का निबेड़ा नहीं आता।

**दादाश्री :** नहीं आता, वह बात सही है परंतु वास्तव में यह जो जगत् है, वह तत्त्वों से है। मनुष्य जो देख सकते हैं, वे सिर्फ अवस्था को ही देख सकते हैं, तत्त्व को नहीं देख सकते। अतः अवस्था में रहकर तत्त्व की बात करते हैं तो वह बात तत्त्व तक पहुँच नहीं

सकती। वह तो, तत्त्वों में रहकर तत्त्व की बात की जाए तभी पहुँच सकती है। अतः 'खुद' इटर्नल होकर इटर्नल की बात करे तो पहुँच सकती है।

**प्रश्नकर्ता :** आपने अभी तक उन छः तत्त्वों के बारे में नहीं बताया।

**दादाश्री :** हाँ, मैं बता रहा हूँ। चेतन (आत्मा), जड़ (*पुद्गल* परमाणु के रूप में) गति सहायक, स्थिति सहायक, काल, आकाश। बस, ये छः अविनाशी तत्त्व हैं इस जगत् में। जब साइन्टिस्ट थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी को पार कर लेंगे तभी यह बात समझ में आएगी। रिलेटिविटी की थ्योरी को पूरा पार करने के बाद वहाँ पर बिगिनिंग ऑफ रियलिटी (रियलिटी की शुरुआत) होती है।

**प्रश्नकर्ता :** वह थ्योरी ऑफ रियलिटी क्या है?

**दादाश्री :** तीन ही थ्योरी जाननी हैं लेकिन आगे फिर वहाँ पर उसके लिए वाणी ही नहीं है। मैं समझा ज़रूर सकता हूँ परंतु आप जब मूल वस्तु को जान लोगे तभी वह समझ में आएगी। अतः वहाँ पर ये छः तत्त्व रहे हुए हैं। छः तत्त्व और यह (जगत्), यों किस तरह से चल रहा है और भगवान क्या कर रहे हैं, तब यह सब समझ में आएगा।

इस थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी को पार कर गया तो रिलेटिव क्रॉस (खत्म) हो जाएगा और रियल की शुरुआत होगी। यह तो अभी तक थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी में घूम रहा है, उससे आगे गया ही नहीं है। अतः सिर्फ इतना ही समझने की ज़रूरत है, और आपको यदि आत्मा अन्वेल (unveil-अनावृत) करना हो तो एक बार आप आकर समझ लो, फिर आप भी वह बन पाओगे।

देयर आर थ्री थ्योरीज़ : थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी, थ्योरी ऑफ रियलिटी एन्ड दी एब्सल्यूटिज़म थ्योरी। उस एब्सल्यूट में रहकर बात कर रहे हैं इस रियलिटी की!

**प्रश्नकर्ता :** मैंने खुद ने जो पढ़ा है और जो जानता हूँ, वही मैं अपने विद्यार्थियों को पढ़ाता हूँ। लेकिन मेरी समझ में जो है, वह विद्यार्थियों की समझ में आ जाए, उसके लिए मुझे पहले उनके लेवल पर जाना पड़ता है और फिर धीरे–धीरे उन्हें ऊपर लाना पड़ता है।

**दादाश्री :** यस–यस। राइट।

**प्रश्नकर्ता :** तब फिर वे मेरे स्तर तक आ सकते हैं या मुझसे भी ऊपर पहुँच सकते हैं। तो उसी तरह से क्या आप नीचे आकर हमें ऊपर नहीं ले जा सकते?

**दादाश्री :** वहाँ (एब्सल्यूटिज़्म में) भाषा नहीं है। रियलिटी में भाषा से आपको समझ में ज़रूर आ सकता है लेकिन वह आपको एब्सल्यूट नहीं बता सकता। अभी तक मैंने आपके साथ ये सारी बातें नीचे उतर कर ही की हैं।

**प्रश्नकर्ता :** रियलिटी के बारे में कुछ ऐसा बताइए ताकि रुचि जागे।

**दादाश्री :** बाइ रियली स्पीकिंग, देयर आर सिक्स इटर्नल एलिमेन्ट्स इन दिस वर्ल्ड। बाइ रिलेटिवली स्पीकिंग, देयर आर ओन्ली फेज़िज़, नो इटर्नल एलिमेन्ट।

**प्रश्नकर्ता :** तो रिलेटिव के बारे में फिर से बताइए? रिलेटिव में क्या कहा आपने? रिलेटिव में फेज़िज़ हैं?

**दादाश्री :** रिलेटिव में फेज़िज़ हैं और रियल में इटर्नल है। देयर आर सिक्स इटर्नल एलिमेन्ट्स। यह है वर्ल्ड की ओरिजिनालिटी। वर्ल्ड के ओरिजिन में क्या है? तो यह है। इससे आगे कुछ भी नहीं है।

## रियल और रिलेटिव

जो सनातन है, उसी को रियल कहा जाता है, और उनके मिलने पर मिक्स्चर रूपी जो कुछ भी बना है, वह रिलेटिव है।

**प्रश्नकर्ता :** रियल और रिलेटिव क्या हैं? वे दोनों क्या हैं और उन दोनों में क्या संबंध है? लिंक क्या है?

**दादाश्री :** रियल परमानेन्ट वस्तु है। अब छः में से शुद्ध चेतन परमानेन्ट है और बाकी के पाँच जो परमानेन्ट तत्त्व हैं, उनमें चेतन भाव नहीं है। अन्य अनंत प्रकार के गुणधर्म हैं। उन सभी के गुणधर्मों को लेकर ही सिर्फ यह रिलेटिव भाव उत्पन्न हुआ है। आत्मा तो निरंतर आत्मा ही रहता है। गधे में, कुत्ते में, हर एक में आत्मा चेतन के रूप में ही रहता है निरंतर। क्षण भर के लिए भी बदला नहीं है, सिर्फ बिलीफ रोंग हो जाती है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या यह रियलिटी, रियल का अविर्भाव है?

**दादाश्री :** हाँ, वह आविर्भाव ही है। अन्य कुछ है ही नहीं।

## वास्तव में दिखाई देता है परमानेन्टपन

**प्रश्नकर्ता :** वास्तव में जो दिखाई देता है, उसमें क्या दिखाई देता है?

**दादाश्री :** परमानेन्टपन। इस जगत् में रिलेटिव टेम्परेरीपन बताता है।

**प्रश्नकर्ता :** यह सब टेम्परेरी दिखाई देता है।

**दादाश्री :** अब, परमानेन्ट दिखाई नहीं देता। ज्ञानी पुरुष ज्ञान देते हैं तब उसकी खुद की दृष्टि परमानेन्ट को देख पाती है, सभी चीज़ें। अब, परमानेन्ट एकदम से नहीं देखा जा सकता परंतु 'खुद' परमानेन्ट हो जाए उसके बाद फिर धीरे-धीरे-धीरे परमानेन्ट दिखाई देने लगता है। तो अंत में यह परमानेन्ट में है कितना? अंत में ये जो छः तत्त्व हैं, वही दिखाई देते हैं। आपको (ये ज्ञान लेने के बाद में) अभी सिर्फ चेतन ही दिखाई देता है। *पुद्‌गल* परमाणु कब दिखाई देंगे? केवलज्ञान होने पर। परंतु यह मार्ग मूल अविनाशी तत्त्वों को देखने का है।

थ्योरी ऑफ रियलिटी तत्त्व को स्पर्श करती है। कोई भी संत-महंत यह नहीं समझ पाते कि तत्त्व को लेकर भगवान क्या है। वे अपने विचारों और कल्पनाओं से ही समझते हैं।

## नहीं है कोई कन्ट्रोलर उनका

**प्रश्नकर्ता :** आपने ये जो तत्त्व बताए हैं, उन पर क्या किसी का कोई कन्ट्रोल है?

**दादाश्री :** इस जगत् पर किसी का कन्ट्रोल है ही नहीं। सभी स्वतंत्र है, आत्मा इससे बिल्कुल अलग ही है।

**प्रश्नकर्ता :** यदि छः तत्त्व स्वतंत्र प्रकार से अलग-अलग, भिन्न-भिन्न हैं तो अंदर ही अंदर उनकी अंतर्क्रिया किस प्रकार से होती है?

**दादाश्री :** हाँ, वही देखने की ज़रूरत है।

इस वर्ल्ड का कोई मालिक नहीं है, चलाने वाला नहीं है, फिर भी इसकी नियति है। सूत्रधार व्यवस्थित शक्ति है, वह भी फिर जड़ शक्ति है।

**प्रश्नकर्ता :** यह शक्ति जड़ है, ऐसा किसने जाना?

**दादाश्री :** जो खुद ही आत्मा बनता है, ज्ञाता-द्रष्टा बनता है, उसने। आत्मा खुद ही सब जानता है। जड़ में भी अपार शक्ति है।

**प्रश्नकर्ता :** प्रथम, चेतन है या जड़?

**दादाश्री :** प्रथम और अंतिम ऐसा कुछ नहीं है। सभी साथ में मिलकर समुच्चय (संयुक्त) होते हैं।

प्रथम और अंतिम की खोज करने जाओगे तो अनंत जन्मों तक घूमना पड़ेगा। मोक्ष में नहीं जा पाओगे। साँप को भी बिल में जाते समय सीधा होना पड़ता है।

उन तत्त्वों को कन्ट्रोल करने की ज़रूरत ही नहीं रहती। वे छः

तत्त्व इटसेल्फ खुद अपने आप ही घूम रहे हैं। संसार अर्थात् समसरण। समसरण अर्थात् वस्तुएँ निरंतर परिवर्तित होती रहती हैं, स्वाभाविक रूप से। किसी को करने की ज़रूरत नहीं है। यदि कोई इसे चलाने वाला होता न, तो अपना दम निकाल देता! इसका कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) है ही नहीं, इसका कोई मालिक है ही नहीं, इसे बनाने वाला कोई है ही नहीं। यह पूरा ही जगत् विज्ञान से बना है और मैं यह खुद देखकर बता रहा हूँ। मैं खुद इसकी ज़िम्मेदारी लेता हूँ कि कोई बनाने वाला नहीं है।

## हर एक तत्त्व पूर्णतः स्वतंत्र

**प्रश्नकर्ता :** ये जो छः तत्त्व हैं, उनमें से आत्मा के अलावा जो पाँच तत्त्व हैं, क्या उनका स्वतंत्र अस्तित्व है?

**दादाश्री :** हाँ, जितना आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व है उतना ही पाँच तत्त्वों का है। सभी तत्त्व पूर्णतः स्वतंत्र हैं।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा के संदर्भ में हैं या स्वतंत्र ही हैं बाकी के पाँच तत्त्व?

**दादाश्री :** वे सभी स्वतंत्र हैं, बिल्कुल स्वतंत्र हैं। किसी का किसी से लेना भी नहीं है और देना भी नहीं और अभी भी स्वतंत्र हैं। उन्हें कोई लेना-देना नहीं है। आत्मा किसी के ताबे में नहीं है, कोई भी आत्मा के ताबे में नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** परंतु आत्मा अक्रिय है तो क्या आत्मा कुछ भी नहीं करता?

**दादाश्री :** हाँ, बिल्कुल अक्रिय है।

**प्रश्नकर्ता :** कुछ भी नहीं किया है तो उसे *पुद्गल* का संयोग कैसे मिला?

**दादाश्री :** *पुद्गल* में ही खेलता है यह। ये सभी छः तत्त्व साथ

में ही हैं परंतु कोई भी तत्त्व एक-दूसरे में प्रवेश नहीं करता, अलग ही हैं। कोई तत्त्व किसी तत्त्व पर असर नहीं डाल सकता।

इनमें भेद सिर्फ इतना ही है कि बाकी पाँचों ही तत्त्वों में चेतन भाव नहीं है जबकि आत्मा में चेतन भाव है। सिर्फ आत्मा को ही इनाम नहीं मिल सकता। और फिर हर एक का विशेष गुणधर्म है जो कि औरों में नहीं है। जो औरों में नहीं है, ऐसा विशेष चेतन गुणधर्म इस आत्मा में है। *पुद्गल* परमाणुओं में अलग प्रकार का विशेष गुण है। *पुद्गल* परमाणुओं में रूपी गुण है जो कि अन्य पाँचों में नहीं है। यानी कि हर एक में फिर विशेष गुण होता है।

पूरा जगत् तत्त्वों से भरा हुआ है। सिर्फ आत्मा ही चेतन तत्त्व है, वही परमात्मा है। बाकी के तत्त्व जड़ हैं, वे चेतन नहीं हैं। अचेतन भाव वाले हैं परंतु बहुत ही तरह-तरह के गुणधर्मों वाले हैं।

जगत् में अन्य तत्त्व नहीं होते तो आत्मा भी नहीं होता। ये सारे तत्त्व अविनाभावी (एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते या हो नहीं सकते, वैसा भाव) हैं।

## दादा हैं वर्ल्ड की ओब्ज़र्वेटरी

दिस इज़ द वर्ल्ड्स ओब्ज़र्वेटरी। चार वेद के *ऊपरी* हैं ये दादा। अतः आपके मन को सभी खुलासे मिल जाने चाहिए। तभी समझ में आएगा और तभी निबेड़ा आएगा। नहीं तो, यह गप्प तो हज़ारों सालों से गाते आ रहे हैं, कुछ नहीं होगा। अतः आपको समझ में आ जाए, तब तक पूछो। यहाँ पूछने जैसा है।

आपको ये सारी बातें पसंद हैं? साइन्स है यह तो। पूरे वर्ल्ड में किसी भी जगह पर यह साइन्स नहीं निकला है। दिस इज़ द कैश बैंक ऑफ डिवाइन सॉल्यूशन! पहली बार ही यह लोगों के बीच अनावृत हुआ है।

एक तत्त्व के ज्ञाता ज्ञानी कहलाते हैं। जिन्होंने सिर्फ आत्मा को

ही जान लिया, वे तत्त्व ज्ञानी कहलाते हैं। जिन्होंने सभी तत्त्वों को जान लिया, सभी अलग-अलग तत्त्व क्या कर रहे हैं, वह भी जानते हैं, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं।

आत्मा जानने का फल है मोक्ष। अनंत पीड़ा में भी मोक्ष है। जिसने आत्मा जाना, वह सर्व तत्त्वों का ज्ञाता-द्रष्टा बन जाता है।

## छः के मिश्रण से बना संसार

**प्रश्नकर्ता :** इस ब्रह्मांड में स्थिर वस्तु क्या है?

**दादाश्री :** जो पाँच इन्द्रिय से दिखाई देता है, उसमें स्थिर वस्तु होती ही नहीं है। पूरा रिलेटिव स्वभाव से चंचल ही है। आत्मा स्थिर है। सभी तत्त्व स्थिर स्वभाव वाले हैं लेकिन यहाँ से (संसार में से) सभी अलग हो जाएँगे (रियल में आएँगे) तब स्थिर होंगे। तब तक यह सारा जो एक साथ (रिलेटिव) है, वह पूरा चंचल ही है। अतः कोई स्थिर वस्तु है ही नहीं। वास्तव में आत्मा स्थिर है परंतु उसे इस चंचल का प्रसंग (साथ) हुआ है इसलिए उसे भी चंचल के रूप में घूमना पड़ता है। यहाँ से मुक्त हो जाए, खुद के गुण स्वभाव को जान ले और ज्ञानी पुरुष अलग कर दें, तब फिर वह मुक्ति पाएगा। फिर उस मुक्ति में वह हमेशा के लिए स्थिर, क्योंकि वहाँ पर अन्य कोई तत्त्व नहीं हैं। अन्य तत्त्व होंगे तभी उसे परेशान करेंगे, वापस अपने साथ प्रवाह में खींच ले जाएँगे।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा परमानेन्ट है लेकिन फिर इस *पुद्‌गल* के साथ में मिक्सिंग क्यों हुई। फिर उसका क्या रीज़न है?

**दादाश्री :** कोई कारण नहीं है मिक्स होने का। ये सारे छः तत्त्व साथ में ही हैं, उसी को लोक कहा गया है। परंतु लोक का मतलब क्या है? तो कहते हैं, 'संसार'। तो संसार यानी क्या? समसरण। समसरण यानी क्या? निरंतर परिवर्तन। तो ये छः तत्त्व इस प्रकार से इकट्‌ठे होकर एक-दूसरे के पीछे घूमते ही रहते हैं। कभी भी (कम्पाउन्ड के रूप में) एक-दूसरे के साथ एकाकार नहीं हो जाते। इस प्रकार से

(मिक्स्चर के रूप में) घूमते रहते हैं जैसे कभी भी अलग ही नहीं होना है। (ये तत्त्व) अभी भी अलग हैं। मनुष्यों के शरीर में भी अलग हैं परंतु यह सब विज्ञान से हो गया है। इससे इंसान उलझ गया है।

वस्तु अर्थात् अविनाशी। ये छः द्रव्य आमने-सामने इकट्ठे होते हैं तब अवस्था उत्पन्न होती है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या वे छः द्रव्य एक-दूसरे में मिल जाते हैं?

**दादाश्री :** मिल जाते हैं। छः द्रव्यों के एक-दूसरे में (मिक्स्चर रूप में) मिलने से ही ऐसा हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** ओतप्रोत हो जाते हैं क्या?

**दादाश्री :** परिवर्तित हो जाते हैं, ये सभी छः द्रव्य परिवर्तन वाले हैं। आकाश क्षेत्र है और उसके अंदर परमाणु यों घूमते रहते हैं। आत्मा और परमाणुओं के मिलने से फिर यह मिक्स्चर उत्पन्न हो जाता है। जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका विनाश है। अतः वह अवस्था की उत्पत्ति है। इसलिए उसका विनाश होता है, परंतु आत्मा तो उत्पन्न नहीं हुआ है और इसका विनाश नहीं होगा। इन छः सनातन तत्त्वों के आधार पर ही यह जगत् बना है।

**प्रश्नकर्ता :** छः तत्त्वों का इन्टरेक्शन होने से यह सब हुआ है। तो अभी भी ऐसा होता रहता है या एक बार होने के बाद फिर रुक गया?

**दादाश्री :** नहीं। यह निरंतर होता रहता है और चलता ही रहता है। होता रहता है और चलता रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** उसमें से अलग भी हो जाते हैं और फिर नए जुड़ते भी जाते हैं?

**दादाश्री :** उत्पन्न होते हैं, कुछ समय तक रहते हैं और फिर लय हो जाते हैं। निरंतर ऐसा होता रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या लय होने से मोक्ष हो जाता है?

**दादाश्री :** नहीं। जिस प्रकार एक व्यक्ति का जन्म होता है वह कुछ समय तक रहता है और फिर मर जाता है न, उसी प्रकार से यह पूरा जगत् चलता रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** अब, द्रव्य और वस्तु...

**दादाश्री :** जिसमें से गुण और पर्याय उत्पन्न होते हैं, वह द्रव्य है।

**प्रश्नकर्ता :** और वस्तु?

**दादाश्री :** द्रव्य ही वस्तु है।

**प्रश्नकर्ता :** हम ये जो बातें कर रहे हैं न, अपने ये तत्त्व और जैन जो बात करते हैं, वे तत्त्व, इन दोनों में क्या फर्क है?

**दादाश्री :** एक ही हैं। कोई फर्क नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा किस तरह से बदलता रहता है? परिवर्तित होता रहता है?

**दादाश्री :** यह सब जो दिखाई देता है न, वह सब एक ही प्रकार का दिखाई देता रहे तो उसे परिवर्तन नहीं कहा जाएगा। सब एक के बाद एक दिखता ही रहता है। खुद सभी को देखता और जानता है। और सभी तत्त्व कुदरती रूप से घूमते ही रहते हैं। ऐसा करते-करते सभी तत्त्व इकट्ठे हो जाते हैं। ऐसे में जब *पुद्गल* और आत्मा पास में आते हैं, तब वहाँ पर ऐसा एडजस्टमेन्ट हो जाता है कि दोनों में ऐसे गुण उत्पन्न हो जाते हैं जो उनके खुद के गुण नहीं हैं। विशेष परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। किसी को ऐसी इच्छा नहीं है परंतु स्वभाव से ऐसा हो जाता है। सभी तत्त्वों का स्वभाव परिवर्तनशील है।

## आत्मा परिवर्तनशील है, ज्ञेय के कारण

**प्रश्नकर्ता :** आपने कहा है कि इस संसार में सभी चीज़ें

परिवर्तनशील हैं, आत्मा भी परिवर्तनशील है। चैतन्य परिवर्तनशील किस प्रकार से हो सकता है, यह ज़रा समझाइए।

**दादाश्री :** चैतन्य के खुद के गुणधर्म हैं। गुण भी हैं और फिर धर्म भी हैं। गुण नित्य हैं और धर्म परिवर्तनशील हैं। जगत् में जितनी चीज़ें परमानेन्ट, सनातन, इटर्नल हैं, उन सब के गुण और धर्म दोनों होते हैं, तो आत्मा के गुण क्या हैं? तो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति, अनंत सुखधाम, और भी बहुत सारे गुण हैं। उसके ये जो सभी गुण हैं, वे उसके शाश्वत, परमानेन्ट गुण हैं। अब, धर्म क्या है? अंदर जो परमानेन्ट गुण हैं, जैसे कि अनंत ज्ञान, ज्ञान अर्थात् एक प्रकार का प्रकाश, उस प्रकाश की बाहर जो अवस्थाएँ होती हैं, वे परिवर्तनशील हैं अर्थात् ज्ञेय के अनुसार ज्ञान बदलता रहता है। ज्ञेय परिवर्तनशील हैं इसलिए ज्ञान भी परिवर्तनशील हो जाता है। दर्शन व दृश्य भी परिवर्तनशील हैं इसलिए द्रष्टा भी परिवर्तनशील हो जाता है। उनके (ज्ञेयों और दृश्यों के) आधार पर उसकी खुद की जो (ज्ञान-दर्शन) अवस्थाएँ हैं, वे अवस्थाएँ परिवर्तनशील हैं।

**प्रश्नकर्ता :** मूल आत्मा को तो अपरिवर्तनशील ही कहा गया है न?

**दादाश्री :** ऐसा है कि इन (ज्ञेय-दृश्य) परिवर्तनशील को परिवर्तनशील ही देख सकता है। अपरिवर्तनशील उन्हें नहीं देख सकता। क्योंकि वह खुद ही अपरिवर्तनशील है, तो क्या-क्या देखेगा वह? देखने वाला वही और देखने की चीज़ें बदलती रहें तो वह नहीं चलेगा न! देखने की चीज़ गई, उसके साथ में देखने वाला भी चला गया। फिर से देखने की चीज़ गई, उसके साथ ही देखने वाला भी चला गया। क्योंकि वस्तु के पर्याय विनाशी और परिवर्तनशील हैं। वस्तु के गुण अविनाशी और परिवर्तनशील हैं[१]* और वस्तु का द्रव्य अविनाशी और अपरिवर्तनशील है।

* (अधिक समझने के लिए आप्तवाणी श्रेणी - 3, पेज: 59-61, आत्म गुण : ज्ञान-दर्शन)

## फर्क, विनाशी और परिवर्तनशील में

**प्रश्नकर्ता :** अब दादा, विनाशी और परिवर्तनशील, इन दोनों में क्या फर्क है?

**दादाश्री :** विनाशी का तो नाश ही हो जाता है। एक वस्तु सनातन होने के बावजूद भी निरंतर परिवर्तनशील रहती है और विनाशी चीज़ तो परिवर्तनशील स्वभाव वाली कही ही नहीं जा सकती। जो परिवर्तनशील है, उसका कुछ ही भाग विनाशी है। परिवर्तनशील तो आत्मा भी है। ये छहों तत्त्व परिवर्तनशील हैं।

**प्रश्नकर्ता :** छः तत्त्व परिवर्तनशील हैं, वह किस प्रकार से? क्या छः तत्त्व और आत्मा की उपस्थिति में उत्पन्न हुआ विशेष परिणाम परिवर्तनशील है?

**दादाश्री :** विशेष परिणाम भी है। वह तो संसार की अपेक्षा विशेष परिणाम है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, परंतु वही परिवर्तनशील है न?

**दादाश्री :** परंतु स्वाभाविक की अपेक्षा देखा जाए तो वह परिवर्तनशील है। उसकी अवस्थाएँ होती हैं। आत्मा की अवस्थाएँ और *पुद्गल* की अवस्थाएँ, वे अवस्थाएँ विनाशी हैं।

**प्रश्नकर्ता :** 'अविनाशी के परिवर्तनशील स्वभाव से विनाशी चीज़ें उत्पन्न होती हैं', कृपया इसे उदाहरण देकर समझाइए।

**दादाश्री :** यह सब जो परिवर्तित होता है और यह सब जो दिखाई देता है, वह विनाशी है। क्षण भर में कुछ का कुछ, नीला हो जाता है और कुछ का कुछ हो जाता है न, यह सब? अविनाशी तत्त्व दिखाई नहीं देता है और जो दिखाई देता है, वह विनाशी है। सभी विनाशी तत्त्व इधर से उधर होते रहते हैं परंतु उनके अंदर के जो तत्त्व हैं, वे अविनाशी हैं, परिवर्तनशील हैं। अंदर भ्रमणता ही करते रहते हैं। और कुछ भी नहीं करते और वे पल भर में ऐसे दिखाई देते हैं और

पल भर में वैसे दिखाई देते हैं। पल भर में इस तरफ बादल दिखाई देते हैं और पल भर में बिखर जाते हैं और इधर से उधर चले जाते हैं, पल भर में वापस मेघधनुष दिखाई देता है, घड़ी भर में वह सब फिर से गायब हो जाता है। मूल स्वरूप अविनाशी है, इस जगत् में मूल सारा अविनाशी ही है। विनाशी दिखाई देता है जबकि अविनाशी आँखों से दिखाई नहीं देता।

ये सभी परमाणु जो हैं, वे सभी अविनाशी हैं। वे यों घूमते ही रहते हैं, निरंतर घूमते ही रहते हैं। एक परमाणु दूसरे परमाणु को पार करे, उतने भाग को समय कहा गया है। उस पर से काल का निमित्त निकाला गया। इस प्रकार से यह सारा निरंतर परिवर्तित होता ही रहता है। आत्मा और बाकी के सब निरंतर परिवर्तित होते ही रहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** ये जो परमाणु निरंतर घूमते रहते हैं, आप क्या उन्हें परिवर्तनशील कहते हैं?

**दादाश्री :** नहीं तो और क्या? एक स्थिति में नहीं रहते। स्थिति बदलती ही रहती है। अवस्था निरंतर बदलती ही रहती है।

**प्रश्नकर्ता :** उसे परिवर्तनशील कहा है तो आत्मा किस प्रकार से अविनाशी है और परिवर्तनशील है?

**दादाश्री :** कोई भी (वस्तु) अविनाशी कब कही जाती है? वस्तु परिवर्तनशील हो, तभी वह वस्तु है वर्ना वह वस्तु है ही नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** तो सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं?

**दादाश्री :** हाँ, सभी वस्तुएँ...

**प्रश्नकर्ता :** नाशवंत और अविनाशी, दोनों ही?

**दादाश्री :** नहीं, नाशवंत तो अवस्थाएँ हैं परंतु यह तो अंदर परिवर्तनशील अर्थात् पर्याय निरंतर बदलते ही रहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** वे अपने स्वभाव में रहकर बदलते रहते हैं?

**दादाश्री :** स्वभाव में रहकर।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा अविनाशी है। अब इसमें आत्मा का कौन सा परिवर्तन होता है?

**दादाश्री :** यह आत्मा, मूल चेतन द्रव्य है और फिर उसमें गुण हैं। वे गुण हैं, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन व अनंत शक्ति। तो इसमें आप ज्ञान से नहीं देखते, पर्याय से देखते हो। ज्ञान तो उसका गुण है। गुण नहीं बदलता। उसके पर्याय ही बदलते हैं। गुण निरंतर साथ में ही रहता है। विनाशी वस्तु में परिवर्तन होने से आत्मा की ज्ञान शक्ति में परिवर्तन हो जाता है क्योंकि अवस्थाओं को 'देखने वाला' 'ज्ञान' है। जैसे ही अवस्था बदलती है, वैसे ही ज्ञान पर्याय बदल जाता है। पर्याय निरंतर परिवर्तित होते ही रहते हैं। फिर भी उनमें ज्ञान शुद्ध ही रहता है, संपूर्ण शुद्ध रहता है, सर्वांग शुद्ध रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञान किस रूप में बदलता है? पर्यायों के रूप में?

**दादाश्री :** हाँ, और खुद के पर्यायों को भी जो जानता है, वही वह खुद है, शुद्धात्मा है।

**प्रश्नकर्ता :** परंतु उससे विनाशी चीज़ें उत्पन्न होती हैं?

**दादाश्री :** ये विनाशी हैं इसीलिए तो वे यों दिखाई देती हैं। एक चीज़ दूसरी जगह जा रही हो तो तीसरा उसका प्रतिस्पंदन दिखाई देता है हमें। हम आकाश की तरफ देखते हैं और पल भर में बादल आ जाते हैं। वे बादल ब्लैक (काला) हों तो हमें कुछ भी नहीं दिखाई देता परंतु दो-पाँच मिनट बाद वापस ज़रा हट जाते हैं तो अंदर से कुछ लाल-लाल दिखाई देता है। उसका क्या कारण है? अभी कुछ देर पहले नहीं दिखाई दे रहा था तो वह इसलिए कि, एविडेन्स बदल गए और उसका जो...

**प्रश्नकर्ता :** तब तो उसे रूपांतरण कहिए, परिवर्तन मत कहिए।

**दादाश्री :** उसे रूपांतरण नहीं कह सकते। रूपांतरण शब्द तो एक ही तत्त्व पर लागू होता है। रूपांतरण शब्द किस पर लागू होता है कि ये रूपी तत्त्व हैं न, सिर्फ *पुद्गल* पर और वे भी परिवर्तनशील ही कहलाते हैं। रूपांतरण तो स्थूल को कहा जाता है, बाहर के भाग को। मूल जो *पुद्गल* है न, वह परिवर्तनशील है। जो अंदर शुद्ध ही रहे, उसे तत्त्व कहते हैं। आत्मा के गुण कौन से हैं? तो वे हैं, ज्ञान-दर्शन। गुण स्टेडी (स्थायी) रहते हैं और अवस्था कौन सी? तो कहते हैं, जो देखी जा सकती हैं, जानी जा सकती हैं, वे सभी अवस्थाएँ हैं।

**प्रश्नकर्ता :** परिवर्तनशील शब्द तो सामान्य भाषा में आ जाता है।

**दादाश्री :** सामान्य भाषा का ही शब्द है यह, मूल भाषा का नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** मूल भाषा का कौन सा है?

**दादाश्री :** लेकिन मूल भाषा का अर्थ काम का ही नहीं है। आपको क्या काम आएगा? यहाँ पर जिस भाषा का उपयोग होता है, वही काम की है।

आत्मा से संबंधित ही कातते हैं ये लोग। यहाँ पर जो सारी बातें पूछते हैं, उसे आत्मा से संबंधित कातना कहा जाएगा। संसार से संबंधित कातने में, कषाय से संबंधित कातने में, पुण्य से संबंधित कातने में, पाप से संबंधित कातने में और इस कातने में बहुत फर्क है। इसमें टाइम दिया न, वह कुछ और ही तरह का है। इस दुनिया में कोई इस पर टाइम बिगाड़ता ही नहीं है न, क्योंकि इस चीज़ की चर्चा ही नहीं होती। अपने यहाँ जो बातें होती हैं न, वे बातें वर्ल्ड में किसी भी जगह पर कोई कर ही नहीं सकता।

**प्रश्नकर्ता :** आप जो कह रहे हैं, वह समझ में नहीं आया। आप जो कहते हैं, वह नीरू बहन टेप करती हैं। लेकिन टेपरिकॉर्डर ऐसा नहीं कहता कि आप यह क्या कहना चाह रहे हो? इसलिए खुलासे के लिए पूछना पड़ता है।

**दादाश्री :** खुलासे के लिए पूछना है वह तो, पूछो। वह जो पूछते हो, वह टाइम किसमें आता है, उसकी कीमत बता रहा हूँ। एक घंटे के लिए ऐसे ध्यान में रहे न, तब भी काम निकाल लेगा। क्योंकि भगवान ने इस ध्यान को *पुद्‌गल* में नहीं माना है। रिलेटिव रियल में माना है। पूरा ही जगत् रिलेटिव की बातें करता है जबकि यह रिलेटिव रियल की बातें हैं।

## छः इटर्नल्स का रेवॉल्यूशन

**प्रश्नकर्ता :** पाँच तत्त्वों के साथ में छठे तत्त्व का मिलाप किस तरह से होता है?

**दादाश्री :** ये छः तत्त्व इस जगत् में भ्रमण कर रहे हैं। उसमें भी फिर, ये सभी तत्त्व ऐसे हैं कि कोई किसी की मदद नहीं करता, कोई किसी पर उपकार नहीं करता, कोई किसी का कर्ता नहीं है, कोई किसी को दु:ख नहीं देता, एकाकार नहीं होता, ऐसे तत्त्व हैं। यानी कि ये सब क्लियर हैं। इस जगत् में जो आकाश है, उसमें ये तत्त्व सिर्फ समसरण करते रहते हैं निरंतर और घूमते ही रहते हैं, बस।

अब, वास्तव में इन छः वस्तुओं में से कोई किसी पर डिपेन्डेन्ट है ही नहीं। वह तो ऐसा लगता है कि ये डिपेन्डेन्टपना हैं। डिपेन्डेन्ट हैं ही नहीं, अपने-अपने स्वभाव में ही रहते हैं। जगत् बहुत विशाल है, समझने जैसा है। आपको जो-जो विचार आते हैं वह बताओ न, कहो न, पूछो न... सब पूछो न!

**प्रश्नकर्ता :** ये इकट्‌ठे कब हुए?

**दादाश्री :** ये सभी जो परमाणु हैं, वे इस तरह से रिवॉल्व होते रहते हैं और चेतन को भी रिवॉल्व करते हैं। इकट्‌ठे होते ही तुरंत पूरा आवरण आ जाता है। बाद में अलग करते हैं तब आवरण टूट जाता है और अलग हो जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** इकट्‌ठे हुए, इसका अर्थ तो ऐसा हुआ न, कि कभी तो अलग थे।

**दादाश्री :** सभी, छः के छः इस तरह गोल घूमते-घूमते-घूमते रिवॉल्व होते हैं, तब इकट्ठे हो जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या शुरुआत से ही छहों रिवॉल्व होते रहते हैं?

**दादाश्री :** हं... बस। ये इकट्ठे हुए यानी कि सिक्स इटर्नल्स का रेवॉल्यूशन, इसी को कहते हैं, जगत्।

## ये हैं ब्रह्मांड के छः तत्त्व

इस जगत् को तो किसी ने बनाया ही नहीं है। सभी चीज़ें नित्य ही हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, वे कौन-कौन सी हैं? इन छः तत्त्वों का कार्य क्या है? वह सब समझना है।

**दादाश्री :** ये सभी तत्त्व अपना-अपना कार्य करते रहते हैं। इनमें से एक है 'आत्मा', जो मूल चेतन है, जिसे चेतन कहा गया है और दूसरा है जड़, उसे अणु कहते हैं न, अणु-परमाणु। तीसरा जो है वह, इन दोनों में शक्ति नहीं है, आने-जाने की तो वह शक्ति इन्हें ले जाती है, उसे कहते हैं धर्मास्तिकाय। अब सिर्फ धर्मास्तिकाय ही होता तो फिर अगर यहाँ से जाने को निकलता तो खड़ा ही नहीं रह पाता। अत: स्थिर करने के लिए स्थिति सहायक है। ये चार हुए न? पाँचवाँ तत्त्व आकाश है, जिसमें कि हर एक तत्त्व जगह माँगता है, जगह चाहिए न? जगह के बिना कैसे चलेगा? अत: जगह देने वाला पाँचवाँ तत्त्व आकाश है और छठा है, काल तत्त्व। और काल तो अणु सहित है, खुद के कालाणु।

अत: ये छः तत्त्व हैं। काल, आकाश, गति सहायक, स्थिति सहायक, जड़ और यह आत्मा। इसमें एक ही वस्तु अर्थात् जड़ रूपी है।

**प्रश्नकर्ता :** रूपी यानी क्या?

**दादाश्री :** रूपी अर्थात् वह सब जो दिखाई देता है, इन्द्रियों से

अनुभव किया जा सकता है इसलिए रूपी है। तो सिर्फ, यह जड़ ही रूपी है। आत्मा रूपी नहीं है, यह आकाश रूपी नहीं है। यह समय (काल) भी रूपी नहीं है। यह जो गति सहायक है, वह भी रूपी नहीं है। यह जो स्थिति सहायक है, वह रूपी नहीं है। पाँच अरूपी हैं और एक रूपी है। पाँच अचेतन हैं और सिर्फ आत्मा चेतन है। इस प्रकार यह छः तत्त्वों से बना है।

ये बातें तो ऐसी हैं कि बहुत गहरी बातें हैं। ये ज्ञानी पुरुष से जानने योग्य हैं। इन्हें जानने के बाद में अन्य कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता। पूरे विश्व के पैंतालीस शास्त्र (आगम) इसमें आ जाते हैं।

तीर्थंकर कहते हैं कि चेतन है, फिर परमाणु, तीसरा है काल तत्त्व, उसके बाद चौथा है आकाश तत्त्व और धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय। ये (काल के अलावा अन्य) पाँच अस्तिकाय कहलाते हैं। तीर्थंकरों ने ऐसे छः तत्त्वों की खोज की है, केवलज्ञान से।

## तत्त्व किसे कहा जाता है?

तत्त्व कब कहलाता है कि वह अपने गुणधर्म सहित हो तभी तत्त्व कहलाता है और सत् होता है।

**प्रश्नकर्ता :** सत् किसे कहेंगे?

**दादाश्री :** इस संसार का सत् तो विनाशी है, उसे सत्य कहते हैं। संसार में जिसे ट्रुथ कहते हैं न, वह सत्य विनाशी होता है और वास्तव में जो सत् है, वह अविनाशी होता है। वह अविनाशी, 'आपका' स्वरूप है। और इस जगत् का सत्य तो भगवान के वहाँ पर असत्य है। यह तो रिलेटिव सत्य है, रियल सत्य नहीं है। रियल सत्य कभी भी नाशवंत नहीं हो सकता। यदि रिलेटिव सत्य को ही आप सत्य ठहराने जाओगे तो फिर कुछ हो सकेगा क्या?

फिर और क्या पूछना है, सत् का खुलासा हुआ आपको?

**प्रश्नकर्ता :** पूरी तरह से नहीं हुआ अभी।

**दादाश्री :** हाँ, क्या पूछना है? बताओ अब।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा जो है, वह सत् कहलाता है?

**दादाश्री :** जितनी भी सनातन वस्तुएँ हैं, वे सभी सत् कहलाती हैं। छः इटर्नल हैं, वे सभी सत् कहलाते हैं। आत्मा सत् है।

## रियल में नहीं है कोई लेना-देना

**प्रश्नकर्ता :** आकाश, गति सहायक, स्थिति सहायक, परमाणु और काल, क्या ये सभी सापेक्ष कहलाते हैं? उदाहरण के रूप में यहाँ से वहाँ गए तो गति हुई, उसके बाद स्थिति है। यदि गति नहीं है तो स्थिति नहीं है तो आकाश भी नहीं है।

**दादाश्री :** जहाँ पर गति है और स्थिति है, वहाँ पर आकाश है ही।

**प्रश्नकर्ता :** अतः यह तो नॉन रिलेटिव बात हुई। ये रिलेटेड स्पेस की बात नहीं है।

**दादाश्री :** वास्तव में आत्मा की स्पेस नहीं होती, स्थिति भी नहीं है। जिसकी स्थिति है, वह सापेक्ष है, गति भी सापेक्ष है।

देहधारी आत्मा अवकाश के बिना हो ही नहीं सकता न! देहधारी नहीं है, ऐसा आत्मा यहाँ पर हो ही नहीं सकता। अतः रियल में सभी तत्त्वों को लेना-देना है ही नहीं, संबंध ही नहीं है। अतः हम रहते हैं, वहाँ उस क्षण दूसरा तत्त्व आसपास हो तो आत्मा कोई मालिक नहीं है कि अन्य तत्त्वों से कह सके कि आप यहाँ से चले जाओ।

**प्रश्नकर्ता :** अव्यवहार राशि में से वह जीव जो व्यवहार राशि में आया, तब पहले उसे काल चिपका या *पुद्गल* चिपका या फिर क्या चिपका? पहले कौन सा तत्त्व चिपकता है?

**दादाश्री :** काल की वजह से इसमें (व्यवहार में) आ पड़ा। यों प्रवाह की तरह बहता है। कोई भी प्रवाह आए तो उसकी बारी

आएगी या नहीं? उसी प्रकार से यह भी आ जाता है। कोई इसे डालने वाला नहीं है। इसके पीछे नियति है। नियति अर्थात् प्रवाह!

नियति कहेगी कि 'यह मैंने किया'। तब फिर काल कहेगा, 'तू क्या कर सकती है? मैं था, तभी हुआ।' यानी कि कोई किसी को कर्ता नहीं बनने देता। कोई भी *ऊपरी* नहीं है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

कितने ही लोगों ने तो ऐसा ही माना हुआ है कि यह जगत् नियति के अधीन ही है। शास्त्रकारों ने आपत्ति उठाई। वर्ना, नियति का रौब पड़ जाता कि, 'यह सब मेरी वजह से चल रहा है।' अत: इस दुनिया में कोई भी ऐसा नहीं कह सकता कि, 'यह दुनिया मेरी वजह से चल रही है।' आत्मा ऐसा नहीं कह सकता कि, 'यह मेरी वजह से चल रहा है', *पुद्गल* भी ऐसा नहीं कह सकता। इस प्रकार से यह निमित्त-नैमित्तिक है सारा। सूर्य और समुद्र, दोनों मिले, तभी से यह भाप बनने लगी। नहीं मिले होते तो नहीं होता। ऐसा लगता है न, आपको?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** फिर भी मुख्य भाग किसका है? इस *पुद्गल* का भाग है, मुख्य। काल की तो हमें बहुत पड़ी नहीं है। बाकी, काल का और हमारा क्या लेना-देना? पहचाना नहीं जाता, पता भी नहीं चलता। अत: उसे माइनस कर दें। इस गति सहायक का, इस स्थिति सहायक का और हमारा कोई लेना-देना नहीं है। अत: तीन को निकालने के बाद चौथा है, आकाश। फिर आकाश तो हम जानते हैं कि आकाश अर्थात् जगह देने वाला। अत: आकाश को हम से कोई लेना-देना नहीं है। अब चार को कम कर देते हैं। सिर्फ यह जड़ और चेतन (हम खुद), दो ही तत्त्वों की मारा-मारी है और बाकी के चार तत्त्व उनकी हेल्प करते हैं।

## आत्मा किसमें फँसा है?

**प्रश्नकर्ता :** इस जड़ तत्त्व, *पुद्गल* में आत्मा फँस जाता है, उसी प्रकार से क्या अन्य किसी तत्त्व में फँस सकता है?

**दादाश्री :** मुख्य तो यह जड़ तत्त्व, सिर्फ *पुद्गल* ही।

**प्रश्नकर्ता :** आकाश तत्त्व या ऐसे अन्य किसी तत्त्व में फँस सकता है?

**दादाश्री :** यों तो हम सब इन सभी तत्त्वों में फँसे हुए हैं। आत्मा के सिवा अन्य जो पाँच हैं, अभी उन सभी में फँसे हुए हैं। सभी ने हमें बाँधा हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** भगवान सिर्फ आकाश में फँसे हुए हैं या सभी तत्त्वों में फँसे हुए हैं?

**दादाश्री :** ऐसा नहीं है। ये जो फँसे हुए हैं, वे सभी तत्त्वों की वजह से फँसे हुए हैं और वैज्ञानिक कारण है उसका। वैज्ञानिक परेशानी है। फँसे हुए हैं, ऐसा किसे कहते हैं कि मान लो मैं धोती पहनकर रास्ते पर जा रहा हूँ और हवा से धोती उड़कर, उस तरफ पास में काँटे के जाल में फँस जाती है तो फिर वहाँ पर उसे निकालने की झंझट करूँ, तब तक तो दूसरी बार हवा आती है और दूसरी तरफ फँस जाती है। यानी कि काँटे की बाड़ हमें छोड़ती नहीं है। अतः हम क्या समझते हैं कि हम फँस गए या जाल फँसा?

**प्रश्नकर्ता :** हम फँसे।

**दादाश्री :** हाँ, उसी प्रकार से आत्मा फँस गया है। अनंत शक्ति का धनी! लेकिन शक्ति का क्या करे? सिर फोड़े?

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा नहीं मानना है कि सिर्फ जड़ तत्त्व में फँसा हुआ है, सभी तत्त्वों में फँसा हुआ है।

**दादाश्री :** यह जड़ में फँसा तो फँसा, लेकिन सभी तत्त्वों के अंदर फँस गया है। अब जब सभी तत्त्वों की और जड़ की व खुद की, पहचान हो जाएगी तो तुरंत ही छूट जाएगा। जिन्होंने मुझे बाँध रखा है, वे तत्त्व ऐसे हैं और मैं ऐसा हूँ, ऐसा भान होगा तब अलग हो जाएगा। यह तो, अभानता से चल पड़ा कि यह भी मेरा गुण है

और यह अरूपी भी मेरा गुण है, ऐसा कहता है। जबकि अन्य तत्त्व भी अरूपी तो हैं ही। तो वापस वैसा हो गया।

**प्रश्नकर्ता :** जड़ के अलावा सभी अरूपी हैं।

**दादाश्री :** अरूपी हैं, फिर भी चेतन नहीं हैं और हम चेतन को अरूपी कहकर उसका आधार रखेंगे तो कहते हैं, 'मार खाएगा!'

## अनादि से छहों साथ में ही

**प्रश्नकर्ता :** पाँचों तत्त्व नहीं थे तब आत्मा कहाँ पर था?

**दादाश्री :** ऐसा दिन ही नहीं उगा, जब ये पाँच तत्त्व नहीं थे। आत्मा अभी उनके आधार पर ही रहा हुआ है। वह जब खुद के स्वरूप को जान लेगा तब यहाँ से मुक्त होगा। तब पाँच तत्त्व बंद हो जाएँगे। वर्ना, पाँच तत्त्व आत्मा के साथ में ही हैं, वे फिर छोटे से जीव के रूप हो या बड़े रूप में या फिर पेड़ के रूप में हो। पेड़ में भी पाँच तत्त्व और छोटे से छोटे जीव में भी पाँच तत्त्व हैं। दो इन्द्रिय में भी पाँच तत्त्व, तीन इन्द्रिय में भी पाँच तत्त्व, चार इन्द्रिय में भी पाँच तत्त्व और इन पाँच इन्द्रिय में भी पाँचों तत्त्व साथ के साथ ही हैं।

इस शरीर में छहों तत्त्व साथ में हैं। ये तत्त्व मिक्स्चर के रूप में हैं, कम्पाउन्ड नहीं हैं। अतः इसे अलग किया जा सकता है। कम्पाउन्ड हो जाए तो आत्मा के गुण बदल जाएँगे और इस जड़ के गुणधर्म भी बदल जाएँगे।

इसमें आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ा है। आत्मा इसमें संयोगी पदार्थ है। सभी वस्तुएँ, ये छः इकट्ठी हो जाती हैं, वे संयोगी हैं। अतः ज्ञानी पुरुष वापस इसे अलग कर देते हैं और आत्मा को अलग कर देते हैं। आत्मा शुद्ध ही है, स्वच्छ ही है, सिर्फ बिलीफ रोंग है।

## विकल्प लिमिटेड, आत्मगुण अन्‌लिमिटेड

जगत् तो बहुत बड़ा, विशाल है, समझने जैसा है। कुछ हुआ

ही नहीं है। यह पूरा उन्हीं छः तत्त्वों का ही सम्मेलन है, अन्य कुछ नहीं है। उसमें तो कितनी ही चीज़ें, विकल्प कितने सारे! तब यदि कोई पूछे कि कितने सारे विकल्प हैं? उनकी कोई लिमिट–विमिट है? तो कहते हैं, सारे जगत् में कोई भी चीज़ अन्‌लिमिटेड नहीं है। सभी चीज़ें लिमिट वाली हैं। लिमिट वाली नहीं होतीं तब तो कोई पार ही नहीं पा सकता था। मोक्ष की तो बात ही नहीं होती। सभी कुछ लिमिट वाला है। यह लिमिट वाला है, इसीलिए तो हमें मोक्ष मिल सकता है। वर्ना, ये *कढ़ापा–अजंपा* (*कढ़ापा*–कुढ़न, क्लेश; *अजंपा*–बेचैनी, अशांति) और बेहिसाब चिंता होती।

**प्रश्नकर्ता :** यदि सभी कुछ लिमिट वाला है तो फिर अनंत शब्द कहाँ से आया?

**दादाश्री :** अनंत इस पर लागू नहीं होता। 'अनंत' का और इसका क्या लेना–देना है? यह सब लिमिट वाला है। अनंत तो हम, आत्मा के गुण हैं, ऐसा कहते हैं। वह भी आपको समझाने के लिए क्योंकि उन लोगों को (छः तत्त्वों को) तो छः तत्त्व जानने की ज़रूरत ही नहीं है। यह तो 'आपको' 'आपका' भान करवाने के लिए है कि 'आप' कैसे हो। वर्ना, उन्हें कुछ जानने का है ही नहीं न! यह तो जो मूर्च्छित हो गया है, उसे होश में लाना है। उसे ऐसा कहना है कि 'भाई तू अनंत ज्ञान वाला है, तू अनंत दर्शन वाला है', परंतु जो होश में है उसे तो कुछ कहना ही नहीं होता न!

यदि यह अन्‌लिमिटेड होता न, तो ये सभी लोग जो एक सरीखे दिखाई देते हैं, वैसा सब एक सरीखा नहीं होता। किसी के तीन पैर होते, किसी के साढ़े तीन पैर होते, किसी के तीन हाथ होते, किसी के चार हाथ होते, किसी की तीन आँखें होतीं लेकिन नहीं, ऐसा नहीं है। यदि अन्‌लिमिटेड होता न, तो दूसरे शहर से जो लोग आते, वे कुछ अलग ही तरह के दिखाई देते। उस शहर के अलग। अतः लिमिटेड है, वह एक्ज़ेक्ट है। किसी भी देश में जाओ तो इंसान दो पैरों वाला और, सब एक सरीखा दिखाई देता है।

**प्रश्नकर्ता :** एक तत्त्व दूसरे तत्त्व में मिलता ही नहीं है? वे दोनों अलग ही रहते हैं न?

**दादाश्री :** वे नहीं मिलते। उनके इकट्ठे होने से अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं।

**प्रश्नकर्ता :** मिलते हैं या एक-दूसरे के नज़दीक आने से अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं?

**दादाश्री :** हाँ, वही न! घूमते-घूमते मिलते हैं तब अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। मूल वस्तु में कोई भी बदलाव नहीं आता।

**प्रश्नकर्ता :** फिर भी वे छः तत्त्व तो अलग ही रहेंगे न?

**दादाश्री :** हाँ, वे हमेशा के लिए अलग ही हैं, अभी भी अलग हैं। अभी भी, शरीर में हैं फिर भी अलग हैं।

**प्रश्नकर्ता :** उनके गुणधर्म अलग ही होते हैं?

**दादाश्री :** सबकुछ अलग, स्वतंत्र! गुणधर्म अलग! तो इन तत्त्वों को हम अलग कर देते हैं। जैसे कि सोना और तांबा दो मिल गए हों तो सुनार उन्हें अलग कर देता है तो उसी प्रकार से ज्ञानी पुरुष अलग कर सकते हैं। भेद विज्ञानी, जिनके पास भगवान का प्रतिनिधित्व हो, वे इन्हें अलग कर सकते हैं। वह हम कर सके हैं। तब फिर आत्मा अलग हो जाता है। आत्मा अलग हो जाए तो फिर कर्म नहीं बंधते। ऐसा भान हैं कि, 'मैं कर रहा हूँ' तभी तक कर्म बंधते हैं। 'मैं कौन हूँ' ऐसा भान हो जाए तो फिर कर्म नहीं बंधते।

**प्रश्नकर्ता :** उस आत्मा का अस्तित्व भी किसी कारण की वजह से है न?

**दादाश्री :** अस्तित्व का कारण नहीं होता न! जो अस्तित्व है, वह कैसा है? अस्तित्व है, वह वस्तुत्व वाला है, सनातन है। सनातन पर कोई कारण लागू ही नहीं होता। सभी कारण लागू होते हैं अवस्थाओं पर। 'खुद' अवस्था में है, और जो दिखाई देती हैं, वे सब भी अवस्थाएँ ही हैं।

## मुक्त ही दिलवा सकते हैं मुक्ति

इस जगत् में छः ही तत्त्व हैं और हर एक तत्त्व निज स्वभाव में ही है, और हर एक अपना ही काम करता है। फिर भी ये छः तत्त्व अनंत काल से हैं। पाँच अचेतन और छठा खुद चेतन, जो सभी कुछ जानता है। एक (*पुद्गल* परमाणु) तत्त्व ऐसा है कि 'खुद' (चेतन) जैसा भाव करता है, वह वैसा ही बन जाता है। रूपी को देखकर खुद रूपी बन जाता है। मूलतः 'खुद' अरूपी है। उसके खुद के हाथ डालने से रूपी डिस्टर्ब हो जाता है लेकिन नाश किसी का भी नहीं होता। अवस्थाओं का नाश होता है। दखल देने से संसार है और नहीं देने से मोक्ष है। दखल कब नहीं देगा? जब खुद भान में आ जाएगा, तब।

वेद के भी *ऊपरी* को भेद विज्ञानी कहा जाता है। जो आत्मा और अन्य पाँच तत्त्वों को अलग कर देते हैं। हमारी सिद्धियाँ इसी चीज़ के लिए चलती हैं कि लोग तत्त्व स्वरूप की प्राप्ति करें।

## जहाँ बुद्धि नहीं है वहाँ पर है आत्मज्ञान

तत्त्व वस्तु को जानना हो तो जहाँ पर बुद्धि नहीं है, वहीं पर जानने को मिलेगा। अन्य किसी भी जगह पर तत्त्व नहीं है क्योंकि बुद्धि की लिमिटेशन्स हैं और ज्ञान अन्लिमिटेड है। वे ज्ञानी पुरुष होने चाहिए। ज्ञानी तो वर्ल्ड में शायद ही कभी होते हैं। ज्ञानी होते ही नहीं हैं न! वर्ल्ड में कोई भी चीज़ ऐसी नहीं हैं कि जो ज्ञानी के ज्ञान से बाहर हो। यह मैं देखकर बता रहा हूँ। यह कोई पुस्तक की बात नहीं है। पुस्तक का काम में नहीं आएगा न! पुस्तक की बातें हमेशा जड़ होती हैं और आपने वह चीज़ पुस्तक में से ग्रहण की होगी तो वह क्या होगी? वह भी जड़ होगी। डायरेक्ट ज्ञानी के पास से मिला हुआ होना चाहिए। डायरेक्ट प्रकाश होना चाहिए तभी निबेड़ा आएगा। निरंतर जागृति है दादा की, इसलिए वे उसे समझ सकते हैं। आत्मा को फुल्ली अन्डस्टैन्ड कर (समझ) लिया है। यह सब अनवेल्ड (निरावृत) आत्मा से ही देखा जा सकता है।

## [ 2 ]
# आत्मा, अविनाशी तत्त्व

## आत्मा का स्वरूप

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा क्या है ?*

**दादाश्री :** आत्मा वस्तु है। वस्तु अर्थात् इटर्नल चीज़ है और खुद के द्रव्य, गुण व पर्याय सहित है। खुद के वस्तुत्वपने को संभाले रखता है। खुद के सभी गुणों को भी संभाले रखता है और उसकी अवस्थाएँ भी हैं।

छः तत्त्वों में से एक है, चेतन तत्त्व। जिसे हम आत्मा कहते हैं, शुद्धात्मा कहते हैं या भगवान कहते हैं, वह चेतन तत्त्व है, और बाकी के पाँचों ही तत्त्व अचेतन हैं अर्थात् उनमें चेतनता नहीं है।

अत: ये जो सारे तत्त्व हैं, उनमें से कोई परम तत्त्व है तो वह है, परमात्मा। परम तत्त्व, जिसका नेतृत्व है, जो सब से बड़ा तत्त्व है, अनंत शक्ति का धनी है, वह परमात्मा है। आत्मा यानी परम तत्त्व, जिसमें चेतन है। अन्य किसी में चेतन नहीं है। अन्य तत्त्वों में बहुत ही शक्ति है, ज़बरदस्त। इसीलिए तो यह पूरा जगत् ऐसा दिखाई देता है लेकिन उनमें चेतन नहीं है इसलिए उनमें ज्ञान नहीं है। और जहाँ पर ज्ञान नहीं है, वहाँ पर आत्मा नहीं है, परमात्मा नहीं है।

* आप्तवाणी श्रेणी - 14 भाग-3 और भाग-4 में आत्म तत्त्व के द्रव्य-गुण-पर्याय से संबंधित विशेष वाणी है।

चेतन तत्त्व, कोई एक तत्त्व नहीं है, अनंत चेतन तत्त्व हैं। उन सब को इकट्ठा किया जाए न, तो सब एक ही स्वभाव वाले हैं। जैसे कि सोने की सिल्लियाँ हों। वे करोड़ों होंगी फिर भी सोना ही कहलाएगा न! इसलिए उसे चेतन तत्त्व कहा गया है। वह तत्त्व स्वतंत्र है और अनादि अनंत है।

अनंत आत्माएँ हैं। सभी हैं ही और रहेंगे ही। उन्हें कुछ भी नहीं होने वाला। यह बात वीतरागों द्वारा, महावीर भगवान द्वारा कही गई है। निरंतर उनका अस्तित्व है। अविनाशी तत्त्व है। मोक्ष में भी उसी रूप में है। अभी भी उसी रूप में है लेकिन उसका भान होना चाहिए।

## फर्क, आत्मा-अनात्मा तत्त्वों में

आत्मा तो कभी भी अनात्मा बन ही नहीं सकता। चैतन्य कभी भी अचैतन्य नहीं बन सकता। उसका कोई भी टुकड़ा, कोई भी पीस अचैतन्य नहीं हो सकता। जो अचैतन्य है उसे, (जैसे) हम प्याज़ काटते हैं न, उसकी स्लाइस करते हैं न, अनात्मा विभाग की वैसी चाहे कितनी भी स्लाइस करें तब भी, एक भी टुकड़ा ऐसा नहीं निकलेगा कि जिसमें प्रकाश हो। दोनों अलग-अलग वस्तुएँ हैं। फिर स्वाभाविक वस्तुएँ हैं। ये कोई ऐसी-वैसी वस्तुएँ नहीं हैं। स्वाभाविक अर्थात् खुद स्वभाव सहित है।

आत्मा की कोई भी बात विनाशी नहीं है। उसका स्वभाव, उसके गुण भी विनाशी नहीं हैं। वह तो, आत्मा की सिर्फ अवस्थाएँ, सिर्फ वही उत्पन्न होती हैं और उनका विनाश होता है। निरंतर वैसा होता ही रहता है, और 'खुद' ध्रुव रहता है। अब, आत्मा की सभी अवस्थाएँ चेतन हैं और *पुद्गल* की सभी अवस्थाएँ अचेतन हैं।

आत्मा शुद्ध चेतन है। यह जो दिखाई देता है न, वह मिश्रचेतन है। और जो शुद्ध चेतन है, वह शुद्धात्मा है और वही परमात्मा है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा का अशुद्ध स्वरूप भी है क्या?

**दादाश्री :** यह जो प्रकृति स्वरूप है, वह आत्मा का अशुद्ध स्वरूप है।

निश्चय, परम तत्त्व भगवान स्वरूपी है और व्यवहार तो अलग है ही न! आप अभी अलग बैठे हो न, और ये साहब अलग बैठे हैं। हर एक की जगह तो अलग ही है लेकिन एक जगह पर दो-चार नहीं रह सकते न? उसी को कहते हैं कि व्यवहार अलग है जबकि निश्चय एक ही है, अपना आत्मा। जैसा यह आत्मा है, वैसा ही यह आत्मा है, एक समान स्वभाव वाले ही हैं।

**प्रश्नकर्ता :** चेतन तत्त्व कबूल है परंतु अन्य कोई तत्त्व चेतन तत्त्व का धारक होना चाहिए या नहीं?

**दादाश्री :** नहीं, उसका कोई धारक है ही नहीं। चेतन तत्त्व, चेतन ही है और स्वाभाविक है। चेतन तत्त्व पूरा ही आपके अंदर बैठा हुआ है। जीव मात्र के अंदर बैठा हुआ है और उसे किसी की ज़रूरत नहीं पड़ी है। अवलंबन नहीं है, चेतन तत्त्व अवलंबन रहित है। यदि अवलंबन होता न, तब तो लोग उसे मार डालते लेकिन चेतन ही भगवान है।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् निरालंबी है?

**दादाश्री :** हाँ, निरांलबी है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन चेतन का धारक तत्त्व, अद्वैत वेदांत में उसके लिए परात्पर चैतन्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

**दादाश्री :** परात्पर का मतलब ही है शुद्ध चेतन। उसे किसी का अवलंबन नहीं है। मैं देह में रहते हुए भी ऐसा कह सकता हूँ कि 'मैं निरालंब हूँ', तब फिर वह मूल चेतन कैसा होगा!

## जीव और आत्मा

**प्रश्नकर्ता :** किसी जगह पर 'उसे' ऐसा कहते हैं कि यह जीव है और कुछ उसे ऐसा कहते हैं, 'यह आत्मा है'।

**दादाश्री :** ऐसा है न, कि भगवान की भाषा में उसे (आत्मा को) जीव कहते थे, और अभी लोग जीव किसे समझते हैं? यह जो जीवित रहता है, उसे जीव कहते हैं वे। और मरने पर ऐसा कहते हैं कि मर गया। अर्थात् लोग अवस्था को जीव कहते हैं और भगवान मूल वस्तु को जीव कहते थे। तो हम अब मूल वस्तु को आत्मा कहेंगे, तब जाकर यह 'जीव' समझ में आएगा।

जीव किसे कहते हैं? जो जीए और मरे, वह जीव कहलाता है। आत्मा वही का वही है परंतु भगवान ने मूल वस्तु को जीव कहा है। अत: यदि उनकी भाषा में समझना होगा तो देर लगेगी। अत: हम लोगों को उसे आत्मा कहना है, तो वह शाश्वत वस्तु हो गई।

**प्रश्नकर्ता :** हमारा यह आत्मा, सर्व प्राणियों का आत्मा तथा सर्व जड़ वस्तुओं का आत्मा वास्तव में एक ही है या अलग-अलग हैं?

**दादाश्री :** अलग-अलग हैं। जिन जड़ वस्तुओं पर किसी का मालिकीपन नहीं होता, उनमें आत्मा नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** जड़ वस्तु किस अधार पर टिकी रहती है?

**दादाश्री :** परमाणुओं के रूप में वह वस्तु है। वह अविनाशी है, स्वतंत्र है और जड़ है।

कोई कहे कि 'जड़ में सच्चिदानंद व्याप्त है?' तो कहेंगे 'नहीं, सच्चिदानंद जड़ में व्याप्त नहीं है और सच्चिदानंद में जड़ व्याप्त नहीं है। दोनों अपनी-अपनी तरह से अलग ही रहते हैं। कभी भी एकाकार होते ही नहीं हैं। देह में एक साथ होने के बावजूद भी दोनों के गुणधर्म अलग हैं।'

ये जो आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, जीभ से चखते हैं, वह सब जड़ है। इन पाँच इन्द्रियों से जो दिखाई देता है, वह जड़ है। दिव्यचक्षु से चेतन दिखाई देता है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो चेतन तत्त्व है, वह बाकी के जो ये गति,

स्थिति, काल व आकाश तत्त्व हैं, क्या उन सभी में वह चेतन तत्त्व कॉमन नहीं है?

**दादाश्री :** नहीं, कॉमन कैसे? लेना-देना ही नहीं है। आत्मा जड़ के साथ मिल जाए तो जड़ हो जाएगा। और यह जड़ तो आत्मा को पहचानता ही नहीं है, आत्मा उन्हें पहचानता है।

**प्रश्नकर्ता :** जानने का वह मूल गुण सिर्फ चेतन में ही है?

**दादाश्री :** हाँ। यानी कि खुद को जानने का, फिर *लागणी* (सुख-दु:ख की अनुभूति) होने का, अन्य कई प्रकार के गुण हैं उसके।

## छहों में न्यारा है चेतन

कोई भी इंसान चेतन को पहचान नहीं सकता कि यह चेतन है। चेतन देखा नहीं जा सकता, चेतन को सुना नहीं जा सकता। चेतन की क्रियाएँ भी दिखाई नहीं देतीं।

**प्रश्नकर्ता :** जो अक्रिय है, अडिग है, उसे चेतन क्यों कहा गया है?

**दादाश्री :** जो अडिग है, अक्रिय है, वही चेतन है।

**प्रश्नकर्ता :** वह किस प्रकार से? समझाइए।

**दादाश्री :** चेतन का अर्थ क्या है? ये सबकुछ जो हो रहा है, जिसे इसका जानपन है, पता चलता है, वह चेतन है! इन सभी छ: तत्त्वों में एक ही तत्त्व को, चेतन को ही यह सब पता चलता है। जड़ को कुछ भी पता नहीं चलता। अत: ज्ञान-दर्शन ही चेतन कहलाता है। जिसमें ज्ञान-दर्शन है, वह चेतन है। इन पेड़ों में भी ज्ञान व दर्शन, दोनों हैं।

इन सभी छ: तत्त्वों में सिर्फ आत्मा ही चेतन है। अर्थात् *लागणी* वगैरह का उसे पता चल जाता है। जिसे भान है, वह चेतन है, उसे कुछ भी करो तो उसे भान रहता है, पता चलता है। बाकी सब को पता नहीं चलता।

बाकी सब अचेतन तत्त्व हैं। गुण बहुत सारे हैं उनमें, अपने-अपने स्वाभाविक गुण हैं लेकिन उनमें से किसी में भी *लागणी* नहीं है। उन्हें कुचला जाए तब भी कुछ नहीं होता।

यदि आत्मा को अरूपी की तरह भजोगे तो बाकी चार तत्त्व भी अरूपी हैं, तो वह उन्हें पहुँच जाएगा। असंग भी, आत्मा के अलावा बाकी सब को पहुँच जाएगा। ये सिर्फ आत्मा के ही गुण नहीं हैं। अब आत्मा अरूपी है, तो सिर्फ आत्मा ही अरूपी नहीं है। लोग अरूपी का अर्थ आत्मा ही मान लेते हैं। आकाश भी अरूपी है। फिर गति सहायक अरूपी है। स्थिति सहायक अरूपी है और काल के परमाणु भी अरूपी हैं। सिर्फ यह *पुद्‌गल* ही रूपी है, सिर्फ *पुद्‌गल* ही मूर्त है। आत्मा को सिर्फ अमूर्त की तरह भजने से काम नहीं होगा। अन्य चार तत्त्व भी अमूर्त हैं।

सभी तत्त्व अगुरु-लघु स्वभाव वाले हैं। जो (विभाविक) *पुद्‌गल* हमें छोड़ देना है, वह गुरु-लघु स्वभाव वाला है। क्रोध-मान-माया-लोभ, वह विकारी *पुद्‌गल* है और वह गुरु-लघु स्वभाव वाला है। अगुरु-लघु स्वभाव सभी तत्त्वों में है। छहों तत्त्व निर्लेप हैं इसलिए उन्हें टंकोत्कीर्ण कहते हैं। सभी अविचल हैं। सिर्फ (विभाविक) *पुद्‌गल* तत्त्व चंचल है। बाकी के सभी अविनाशी हैं। अतः सिर्फ इन्हीं गुणों को भजने से आत्मा की भजना नहीं होती।

**प्रश्नकर्ता :** मुझे आँखों से स्पष्ट चेतन बिन्दु दिखाई देते हैं, वह क्या है?

**दादाश्री :** नहीं, चेतन आँखों से नहीं दिखाई देता, कल्पना से नहीं दिखाई देता। चेतन निर्विकल्प है। उसका तो अनुभव ही किया जा सकता है। शक्कर मीठी है लेकिन मिठास दिखाई नहीं देती। क्या मिठास दिखाई देती है?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं दिखाई देती।

**दादाश्री :** हम कहें कि, 'मीठा है' तब क्या वह दिखाई देता

है? वह तो, आप मुँह में रखोगे तब आप समझ जाओगे। अत: चेतन अनुभव करने की वस्तु है। जहाँ पर निराकुल आनंद बरता, निराकुलता बरती, वह चेतन है। वर्ना यह आकुलता-व्याकुलता, वह चेतन नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** जिस-जिस तरह के ज्ञानी पुरुष होते हैं, उन्होंने जैसा-जैसा कर्तव्य किया होता है, उन्हें वही रूप दिखाई देता है?

**दादाश्री :** नहीं, ऐसा नहीं है। वह सब तो कब तक है? जब तक अंहकारी है न, तब तक अलग-अलग दिखाई देता है। निर्अहंकारी होने के बाद में करोड़ों निर्अहंकारी होंगे फिर भी वे एक ही प्रकार के तत्त्व को देखेंगे और सौ अहंकारी होंगे तो पाँच सौ प्रकार के तत्त्वों को देखेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** जो रूप देखा हो, वह तत्त्व मिल जाएगा तो वह वापस आएगा क्या?

**दादाश्री :** नहीं, फिर क्यों आएगा वह? क्योंकि उस तत्त्व के मिलने के बाद इच्छाएँ नहीं रहतीं। इच्छाएँ हैं तभी तक यह सारा तूफान है।

यह सारा जानने जैसा है, यह वीतराग विज्ञान। आपको तो, जो (सुख) चखने को मिले, उसे चख लो उसके बाद अगले दिन आओ। ऐसे करके बैठो शांति से। उसके बाद मेरी बात आपको समझ में आ जाएगी। उसे आप अपनी बुद्धि से नापने जाओगे तो बुद्धि से किस तरह नाप पाओगे? यह ऐसी वस्तु नहीं है। क्योंकि मैं बुद्धि रहित इंसान हूँ, मुझ में एक सेन्ट भी बुद्धि नहीं है। और बुद्धि है तब तक कोई भी बात सही प्रकार से समझ में नहीं आ सकती।

## प्योर कौन और इम्प्योर कौन?

**प्रश्नकर्ता :** मैं प्योर सोल (शुद्धात्मा) हूँ, तो यह चंदू इम्प्योर किस तरह से हुआ?

**दादाश्री :** ये जो छः तत्त्व हैं न, वे अविनाशी हैं। इस प्रकार आमने-सामने घूमने से विनाशी अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

यह जो चंदूभाई है, वह इस *पुद्गल* का स्वरूप है और 'खुद' ऐसा मानता है कि, 'मैं चंदू हूँ', इसीलिए ये दोष होते रहते हैं। वास्तव में यह खुद का स्वरूप नहीं है। खुद इम्प्योर हुआ ही नहीं है लेकिन इम्प्योर होने की भ्रांति ही है। क्योंकि तू तो प्योर ही था लेकिन भ्रांति से तेरी मान्यता ऐसी हो गई कि, 'मैं यह चंदूभाई हूँ'। बाकी, बाइ रिलेटिवली स्पिकिंग यू आर चंदू। रियली स्पिकिंग यू आर प्योर सोल, नॉट रिलेटिवली स्पिकिंग। अब 'इसे' क्या करना चाहिए कि रियली स्पिकिंग ही रहना चाहिए और रिलेटिवली स्पिकिंग में 'तू' अपने आपको जो मानता था, वह इगोइज़म था। 'आप' तो चेतन हो, कुदरत आपका क्रिएशन नहीं कर सकती। कुदरत निर्जीव है। अतः आपको कुदरत ने नहीं बनाया है। आप क्रीचर नहीं हो कुदरत के।

## 'गीता' का स्पष्टीकरण ज्ञानी की दृष्टि से

**प्रश्नकर्ता :** आपने कहा कि जगत् की उत्पत्ति 'स्वयं' है, अनादि काल से चली आ रही है, तो 'गीता' ऐसा कहती है कि 'जहाँ सूर्य भी नहीं जा सकता, चंद्र भी नहीं जा सकता और जो उच्च कोटि का धाम है, वह मेरा धाम है' तो वह धाम इस जगत् के अलावा कहीं और है या जगत् में ही है?

**दादाश्री :** जगत् में यहीं पर (आत्मा में) है, और कहाँ होगा? यह आपको गलत समझ में आया है। टेढ़ी दृष्टि से सबकुछ टेढ़ा ही दिखाई देता है। सम्यक् दृष्टि वाले को सम्यक् दिखाई देता है। दृष्टि सम्यक् हो जाएगी न, तब सही चीज़ दिखाई देगी।

**प्रश्नकर्ता :** बहुत मशहूर श्लोक है, 'उस तत्त्व को सूर्य प्रकाश नहीं देता, चंद्र प्रकाश नहीं देता।'

**दादाश्री :** चेतन तो सूर्य को ही प्रकाशित करता है। हाँ, नहीं तो और क्या!

अब क्या कहते हैं,

'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत्:'

भगवत् गीता, अध्याय-2, श्लोक-16

'असत्नो भाव नथी', अर्थात् (असत् का) अस्तित्व ही नहीं है। असत् अर्थात् जो वस्तु ही नहीं है, यहाँ पर उसका अस्तित्व ही नहीं है। और सत् का अभाव नहीं है। सत् अर्थात् वस्तु। जो त्रिकाली वस्तु है, उसे सत् कहा जाता है, जो कि तीनों ही काल में रहता है। जिसका कभी भी विनाश नहीं होता, उसे सत् कहा जाता है और जो विनाशी है, उसे असत् कहा जाता है। 'इन तत्त्वदर्शियों ने दोनों का निर्णय देखा है कि यह अविनाशी है और यह विनाशी। जिसकी वजह से यह सारा व्याप्त है, उसे तू अविनाशी समझ', ऐसा कहते हैं। ''आत्मा की वजह से यह सबकुछ व्याप्त है'। आत्मा है, तो यह व्याप्त है, वर्ना यह आत्मा नहीं होता तो व्याप्त नहीं होता, ऐसा कहना चाहते हैं। 'अव्यय का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है'', गीता में ऐसा कहा है। उसके बाद...

'आत्मा नित्य है, अविनाशी है, अप्रमेय है। ऐसे शरीर धारी आत्मा के इन सब शरीरों को नाशवंत कहा गया है। अत: हे भरत! तू युद्ध कर', कहते हैं। वह तो लोक भाषा में ऐसा है कि 'मरते हैं'। बाकी, भगवान की भाषा में कोई मरता नहीं है और कोई जन्म भी नहीं लेता। ये पुतले जन्म लेते हैं और पुतले मरते हैं। मरना किसे कहते हैं? जो हमेशा के लिए खत्म हो जाए, उसे। यह तो, उत्पन्न हो जाना, फिर व्यय हो जाना, वापस उत्पन्न होता है और फिर से व्यय हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** उत्पात, व्यय, ध्रुव?

**दादाश्री :** हाँ, और ध्रुव खुद है, हमेशा रहता है और अवस्थाएँ उत्पन्न और विनष्ट होती रहती हैं। उत्पन्न-व्यय, उत्पन्न-व्यय। 'जवानी' उत्पन्न हुई थी। नहीं? नहीं आई थी आप में? और व्यय हो गई न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, हो गई।

**दादाश्री :** यह बुढ़ापा उत्पन्न हुआ है। अब व्यय हो जाएगा न? यह सब उत्पन्न और व्यय होता रहता है। ''जो इस आत्मा को 'मारने वाला' समझते हैं अथवा जो इसे (आत्मा को) मरा हुआ ही मानते हैं, वे दोनों ही नहीं समझते क्योंकि इस आत्मा को कोई नहीं मार सकता। या फिर जो ऐसा मानते हैं कि वह मर गया, वे सभी इसे नहीं समझते क्योंकि यह आत्मा मरता नहीं है और न ही मारा जा सकता है। यह आत्मा कभी जन्म भी नहीं लेता और मरता भी नहीं है। यह पहले नहीं था और फिर से नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है। है ही त्रिकाली। यह अजन्म, नित्य, शाश्वत व पुरातन है। इसलिए शरीर के मरने पर भी नहीं मरता। हे पार्थ! जो इसे अविनाशी, नित्य, अजन्म और अविकारी समझता है, वह पुरुष यह सब समझता है कि 'कौन किस प्रकार से मारता है और कौन किसे मरवाता है'। यह तो, पुराने वस्त्र छोड़कर नए वस्त्र धारण करता है।'' अन्य कुछ भी नहीं है। 'यह मर गया है', इसकी उत्पत्ति और विनाश, विनाश और उत्पत्ति, लोगों को सिर्फ ये दो ही हैं।

(गीता अध्याय-2, श्लोक-16 से 22)

**प्रश्नकर्ता :** गीता में कृष्ण भगवान ने अर्जुन से ऐसा कहा है कि 'मोक्ष मेरे अंदर ही है'। तो क्या मोक्ष अंदर ही है?

**दादाश्री :** हाँ, अंदर ही है न! बाहर कहाँ है?

**प्रश्नकर्ता :** कृष्ण भगवान ने ऐसा कहा है कि 'मुझ में है'।

**दादाश्री :** हाँ! उनमें ही है लेकिन बाहर से कहाँ से लाएँगे?

**प्रश्नकर्ता :** अत: गीता में कहने का आशय यह है कि 'तू सभी को छोड़ दे, तू सिर्फ मुझे ही भज', ऐसा अंदर लिखा है।

**दादाश्री :** वे क्या कहना चाहते हैं कि 'वह कृष्ण मैं ही हूँ।' और कृष्ण अर्थात् आत्मा। 'हर एक के शरीर में जो आत्मा है, वही खुद कृष्ण है, और उसी में मोक्ष है', ऐसा कहा है।

**प्रश्नकर्ता :** 'आत्मा सो परमात्मा', ऐसा कहा, इसका क्या मतलब है? आत्मा ही कृष्ण है?

**दादाश्री :** हाँ, इसमें कृष्ण जो कहना चाहते हैं न, 'यह मैं कर रहा हूँ, वह...' ऐसा वे खुद आत्म स्वरूप में रहकर कह रहे हैं। तो समझने में गलती हो गई। लोग ऐसा समझे कि जैसे ये व्यक्ति के तौर पर कह रहे हैं। अत: 'मैं बनाने वाला हूँ और मैंने ही यह दुनिया बनाई है', वह सब ऐसा नहीं है। उन्होंने आत्मा रूप में रहकर कहा है। मुझसे यह पूरी 'गीता' समझ लो, तो फिर आपको समझ में आ जाएगा।

# [ 3 ]
# गति सहायक तत्त्व-स्थिति सहायक तत्त्व

## गति होती है गति सहायक के कारण

जड़ और चेतन को यहाँ से प्रवहन करवाने वाली शक्ति की आवश्यकता है। चेतन में भी प्रवहन करने की शक्ति नहीं है और जड़ में भी प्रवहन करने की शक्ति नहीं है। आत्मा में गति करने का स्वाभाविक गुण नहीं है। परमाणु यहाँ से इधर-उधर नहीं हो सकते और चेतन भी इधर-उधर नहीं हो सकता। इन दोनों को इधर से उधर ले जाने वाला, दोनों का स्थान परिवर्तन करने के लिए एक गति सहायक नामक तत्त्व है। वह इनकी सहायता करता है और इन्हें गतिमान करता है।

**प्रश्नकर्ता :** वह गति किस वजह से होती है? पॉज़िटिव-नेगेटिव पावर से होती है?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं। गति सहायक तत्त्व ही है जो कि वस्तुओं को गति करवाता है, व्यवहार में हेल्प करता है। अंदर भावना हुई (व्यवहार) आत्मा* में कि, 'जाना है', अंदर ऐसा कुछ भाव हुआ तो <u>गति सहायक तत्त्व</u> उसकी हेल्प करता है।

* जहाँ भी ऐसा आता है कि 'आत्मा को गति करने की भावना हुई', वहाँ सब जगह 'व्यवहार आत्मा', समझना है।

**प्रश्नकर्ता :** भगवद् गीता में, परा प्रकृति और अपरा प्रकृति, ऐसा कहा गया है।

**दादाश्री :** वह प्रकृति के लिए कहा है। अपरा और परा, दोनों प्रकृति के लिए ही कहा है। अब यह अलग बात है कि ये जो पाँच तत्त्व हैं, यह बॉडी, इस बॉडी में चलने-फिरने का गुण नहीं है, यहाँ से हिलना हो, यहाँ से जाना हो तो एक माइल भी नहीं चल सकता। आत्मा में भी चलने-फिरने का गुण नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** उपनिषदों में ऐसा वर्णन है कि 'आत्मा गतिमान है और आत्मा गतिमान नहीं है', तो इन दोनों में से कौन सी बात सही है?

**दादाश्री :** आत्मा भी गतिमान नहीं है और ये पाँच तत्त्व भी (शरीर) गतिमान नहीं हैं। वह गतिमान तत्त्व अंदर है और वह गतिमान तत्त्व इतना काम करता है कि खुद जान-बूझकर गति नहीं करता, भीतर (जब) आत्मा को इच्छा होती है, तब फिर शुरू हो जाता है।

## विभाव के कारण 'गति' के भाव

'उसे' प्रवहन का भाव होते ही हेल्प करने वाला तत्त्व है यह। जो इसे यहाँ से ले जाता है। वर्ना, चेतन या जड़ में ऐसी शक्ति ही नहीं है, ऐसा गुण भी नहीं है कि खुद अपने आप यहाँ से हिल सकें। अत: वह गति सहायक तत्त्व है। गति सहायक तत्त्व है तो वह चलता ही रहेगा। तो फिर वह वापस रुकेगा कैसे? तो उसके लिए स्थिति सहायक तत्त्व है। वह उसे स्थिर कर देता है। अत: जहाँ पर ठीक लगे, जहाँ पर बैठना हो, वहाँ बैठा देता है। अत: आप यह जो बैठे हो न, यह स्थिति सहायक तत्त्व के कारण है।

**प्रश्नकर्ता :** जाने का भाव चेतन तत्त्व करता है? भाव किसका है?

**दादाश्री :** सिर्फ चेतन में ही खुद की भाव करने की शक्ति है। अत: वह स्वभाव भी कर सकता है और विशेष-भाव भी कर सकता है। हाँ, वह विशेष-भाव से, उसे यहाँ से ज़रा कहीं जाने की इच्छा

होती है, ऐसा भाव होता है, तब उसकी वह इच्छा ही, और अन्य एक तत्त्व ऐसा है जो उसकी हेल्प करके उसे वहाँ पर ले जाता है। उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं, गति सहायक तत्त्व। इसे गति करनी है और वह गति में सहायता करता है। जैसे कि मछली बहते हुए पानी में होती है, तब वह खुद नहीं तैरे और यों ही पड़ी रहे तब भी वह आगे पहुँच जाती है। मछली चली जाती है न? पानी ले जाता है उसे। उसी प्रकार से यह गति सहायक तत्त्व है।

यदि सिर्फ गति सहायक ही होता न, तो कोई बैठ ही नहीं पाता। भागदौड़-भागदौड़-भागदौड़ चलती ही रहती। ये घर भी घूमते रहते और लोग भी घूमते, उसका अंत ही नहीं आता। फिर ये संसारी कार्य हो ही नहीं पाते। अतः यह जो स्थिति सहायक तत्त्व है न, वह घर को स्थिर रखता है। आप सभी बैठे हुए हो न, उन्हें स्थिर रखता है। फिर वापस कहीं जाना हो तो जाने देता है।

जड़ तत्त्व किस प्रकार से गति कर सकता है? वह (गति सहायक) तत्त्व होगा तभी गति कर सकता है। जैसे कि (अगर) हम नदी में एक लकड़ी का लठ्ठा डाल दें, तो उसे गति कौन करवाता है? लठ्ठा किस तरह से करता है? नदी में चाणोद (गुज़रात का एक गाँव) के पास लठ्ठा डालें तो वह भरुच (गुजरात का एक शहर) के पास निकालते हैं तो उसे वह गति कौन करवाता है?

**प्रश्नकर्ता :** व्यवहार से जड़ तत्त्व हो तो जड़ से इसका समाधान आएगा।

**दादाश्री :** नहीं, ऐसा नहीं है। वह पानी उसे खींच लाता है, ऐसा हमें खुले रूप से दिखाई देता है। उसी प्रकार से ये सभी खिंचते हैं। इस प्रकार से कौन ले जाता और लाता है? वह गति सहायक नामक तत्त्व है, वही गति करवा सकता है।

**प्रश्नकर्ता :** धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय वगैरह क्या हैं? वह समझ में नहीं आया।

**दादाश्री :** ये सब जो हैं, वे पारिभाषिक शब्द हैं। धर्मास्तिकाय, वह गति सहायक है और अधर्मास्तिकाय, स्थिति सहायक है। पारिभाषिक शब्द हैं इसलिए समझ में नहीं आता। अपनी सादी भाषा में लिखा हुआ है न, वही सही है। अपनी शुद्ध गुजराती भाषा में लिखा हुआ है, अपना। और वह भी फिर ग्रामीण, ठेठ गाँव की भाषा में। इस प्रकार से हमें सब अच्छी तरह से समझ में आ जाता है। उस अधर्मास्तिकाय को धर्म या अधर्म से कोई लेना-देना नहीं है। इसमें तो सिर्फ नाम में ही 'धर्म' शब्द है।

## सतही तौर पर जानने से मुक्ति

**प्रश्नकर्ता :** गति सहायक और स्थिति सहायक, ये शक्तियाँ हैं या इनके भी अणु हैं?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं, वे तो बड़े प्रदेश के रूप में हैं। बहुत बड़ा कि जिसे भी जो इच्छा होती है, वे उसे हेल्प करते हैं। उनके अणु नहीं हैं, प्रदेश हैं। वे कहलाते हैं प्रदेश लेकिन वह आपको आपकी बुद्धि से समझ में नहीं आएगा।

**प्रश्नकर्ता :** आपने क्या कहा, गति सहायक प्रदेश रूपी है?

**दादाश्री :** आत्मा के भी अनंत प्रदेश हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, प्रदेश के बारे में बताइए न! प्रदेश का मतलब क्या है?

**दादाश्री :** आपकी भाषा वाला मत बोलना और सिर्फ इतना ही है कि ये शब्द दिए हैं। जब उस दशा तक पहुँचेगा तब सूक्ष्म भेद से समझ में आएगा। अपने काम का नहीं है, बहुत गहरे नहीं उतरना है। यह पानी कहाँ से आया? तो कहते हैं, 'टंकी में से आया'। किसमें आएगा? नली में से। फिर हाथ-पैर धोने के बाद, मुँह धोने के बाद और नहाने के बाद में कहाँ जाता है? तो कहते हैं कि गटर में। बस, इतना ही जानने की ज़रूरत है। गटर किसमें मिलता है? तो कहते हैं,

नदी में। सतही तौर पर जान लें तो उससे मुक्ति और बहुत जानने गया, गहरे अर्थ में, तो वहीं के वहीं बैठे रहना पड़ेगा। हमें क्या काम, काम से काम है न? गाड़ी में बैठकर पूछें, 'कब बनाई, किससे बनी हुई है', वह सब जानने की ज़रूरत है क्या? हम गाड़ी में बैठकर स्टेशन पहुँच गए, उसके बाद गाड़ी अपने घर और हम अपने घर।

## स्थिर करवाता है स्थिति सहायक

**प्रश्नकर्ता :** दादा, अधर्मास्तिकाय तत्त्व का कार्य क्या है?

**दादाश्री :** जो स्थिर करता है, वह अधर्मास्तिकाय। गति देने के बाद में फिर बंद ही न हो तब क्या करेंगे? तब जो अधर्मास्तिकाय तत्त्व है, वह उसे स्थिर करेगा। वर्ना, सिर्फ गति ही होती रहेगी। बस, फिर ये सभी लोग, कोई बैठेगा ही नहीं। सब रात-दिन भागदौड़-भागदौड़-भागदौड़-भागदौड़ ही करते रहेंगे। लेकिन क्योंकि स्थिति सहायक है इसलिए आराम से सो जाते हैं न, सब। यह जो गाड़ी चलती है न, वह गति सहायक तत्त्व की वजह से चलती है। वर्ना, चले ही नहीं और स्थिति सहायक तत्त्व की वजह से रुक जाती है। स्थिर तत्त्व का उदय आता है तो वह स्थिर हो जाती है। गति सहायक का प्रभाव खत्म हो जाने के बाद, उसका उपयोग हो जाने के बाद में स्थिति सहायक तत्त्व काम करता है।

लोग कहते हैं न, कि अब मेरी चलने की हिम्मत खत्म हो गई है। मुझसे उठा नहीं जाता और चला भी नहीं जाता। तो क्या चला गया? तो वह *पुद्गल* का नहीं है, आत्मा का नहीं है। वह धर्मास्तिकाय चला गया, गति सहायक चला गया। जब उठने की शक्ति चली जाती है, मरते समय उठने की शक्ति बिल्कुल ही खत्म हो जाती है, तब वह गति सहायक तत्त्व खत्म हो चुका होता है।

## गति के भाव कौन करता है?

**प्रश्नकर्ता :** यह जो गति सहायक तत्त्व है, क्या वह इस प्रकार से पास में ले आता है कि ऐसे संयोग बन जाते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, गति सहायक तत्त्व इस प्रकार से काम नहीं करता। सभी तत्त्व परिवर्तनशील स्वभाव के ही हैं, परंतु गति सहायक तत्त्व तो, *पुद्‌गल* विकृत हो जाता है और आत्मा विकृत हो जाता है तब मदद करता है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, यह जो गति सहायक तत्त्व की बात की, तो वह गति उत्पन्न करने वाला तत्त्व है या गति उत्पन्न होने के बाद में उसकी सहायता करने वाला तत्त्व है?

**दादाश्री :** सहायता करने वाला।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर जो गति उत्पन्न करता है, वह कौन करता है?

**दादाश्री :** चेतन तत्त्व की खुद की माँग नहीं है, व्यतिरेक गुण है। यानी कि खुद का गुण नहीं है, वह जड़ का गुण नहीं है। वह तो सहायता करता है, गति करने की इच्छा होती है तब।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या वह गति चेतन का व्यतिरेक गुण है?

**दादाश्री :** नहीं, वह चेतन का और जड़ का, दोनों का है। गति दो ही वस्तुओं की सहायता कर सकती है।

**प्रश्नकर्ता :** जड़ और चेतन के विशेष-भाव को लेकर पूरा संसार सर्जित हो गया है तो इसमें गति सहायक तत्त्व और स्थिति सहायक तत्त्व, वे किस प्रकार से काम करते हैं?

**दादाश्री :** वह तो ऐसा है कि चेतन और जड़ में हिलने-डुलने की शक्ति है ही नहीं या फिर उनमें वह स्वभाव ही नहीं है। जिस प्रकार हम पानी को डालते हैं तो ढलान है वह उसी तरफ जाता है, किसी की शरम रखे बगैर। बीच में कोई गड्ढा हो तो गड्ढे में से होकर चला जाता है। उसे किसी की भी नहीं पड़ी है। उसी प्रकार जड़ और चेतन की भी यहाँ से कहीं जाने की शक्ति नहीं है परंतु उसमें भाव है कि, 'मुझे यों जाना है', तो फिर वह भाव उसकी मदद करता है।

**प्रश्नकर्ता :** वह भाव जड़ में है या चेतन में है?

**दादाश्री :** वह चेतन में है। अंदर भाव करता है न इंसान कि मुझे साथ में इतना ले जाना है।

**प्रश्नकर्ता :** वह भाव करने वाला आत्मा है या जड़?

**दादाश्री :** माना हुआ आत्मा (व्यवहार आत्मा)।

**प्रश्नकर्ता :** अच्छा तो फिर भाव क्या काम करता है, उस जगह पर?

**दादाश्री :** भाव से ही तो यह सब मिलता है। ले जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** और क्षेत्र से?

**दादाश्री :** क्षेत्र से तो क्रोध-मान-माया-लोभ कम या अधिक मात्रा में डल जाते हैं। क्षेत्र बदलने से उसकी मात्रा एक सरीखी नहीं रहती और भाव उसे ले जाता है। वह तय करता है कि मुझे सुबह कलकत्ता जाना है।

**प्रश्नकर्ता :** तो इसमें गति सहायक और स्थिति सहायक तत्त्व क्या काम करते हैं?

**दादाश्री :** मदद करते हैं। वह (व्यवहार आत्मा) भाव करता है तो मदद करते हैं। भाव न करे तो मदद नहीं करते।

**प्रश्नकर्ता :** इन गति सहायक और स्थिति सहायक तत्त्वों को किस प्रकार से उपयोग में लिया जा सकता है?

**दादाश्री :** हम से नहीं लिया जा सकता।

**प्रश्नकर्ता :** तो इनका उपयोग किस प्रकार से होता होगा?

**दादाश्री :** यह तो, हम तय करते हैं कि मुझे यहाँ से यों जाना है तो वह उपयोग में आता है। अत: अपनी इच्छा के अनुसार जमा हो जाता है अंदर। क्योंकि दोनों में ही, खुद में गति करने की शक्ति

नहीं है। अतः खुद की इच्छा होती है तो यह उसकी मदद करता है। और आकाश होगा तभी हम खड़े रह पाएँगे न अंदर। व्यवहार में खड़े रहना हो तो आकाश की ज़रूरत है। निश्चय में खड़े रहना हो तो आकाश की ज़रूरत नहीं है। यदि व्यवहार में रहना हो तो टाइम की ज़रूरत है क्योंकि वह अनित्य है, इसलिए। निश्चय में, नित्य में 'टाइम' नहीं होता। अपने अंदर सभी छः तत्त्व हैं ही।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या इस गति सहायक तत्त्व में और स्थिति सहायक तत्त्व में भी कोई सुधार किया जा सकता है या वह भी भाव से ही होता है?

**दादाश्री :** सब भाव से ही होता है। जिसका भाव शुद्ध है, उसका वह शुद्ध है। शुद्ध भाव करना आता नहीं है न! वर्ना वह आ जाए तब तो बहुत ही काम हो जाएगा न!

कई मकानों पर बड़े-बड़े छप्पर होते हैं, उन्हें पूरा ही उड़ाकर ले जाता है न! वह कौन है? वह गति सहायक करता है। वह तत्त्व है। सिर्फ हवा ही नहीं करती। हवा में तो तत्त्व रहा हुआ है, उस तत्त्व के आने पर ही उड़ सकता है, वर्ना नहीं उड़ सकता। यहाँ से यों अपने घर का छप्पर उड़े तो फिर रुकता ही नहीं। तो भाई कहाँ जा रहा है वह? ऊपर का छप्पर गति करके यहाँ से हज़ारों फुट दूर जा गिरता है। गिरता है या नहीं गिरता? ऐसा गति सहायक तत्त्व के कारण होता है। दूसरा है, स्थिति सहायक। यहाँ से छप्पर उड़ा, तो फिर तो वह उड़ता ही रहेगा। यदि सिर्फ गति सहायक तत्त्व ही होगा तो फिर वह छप्पर गिरेगा ही नहीं, वह घूमता ही रहेगा। अतः फिर दूसरा तत्त्व रखा, स्थिति सहायक।

**प्रश्नकर्ता :** स्थिति सहायक तत्त्व वही है, जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं, भूल जाओ। गुरुत्वाकर्षण का कोई लेना-देना नहीं है।

## कटी हुई पूँछ क्यों हिलती है?

अब छिपकली की जो पूँछ कट जाती है, वह देखी है आपने?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, हाँ, दादा।

**दादाश्री :** क्या देखा था?

**प्रश्नकर्ता :** कटने के बाद भी पूँछ अपने आप ही हिलती रहती है...

**दादाश्री :** और छिपकली क्या करती है?

**प्रश्नकर्ता :** छिपकली चली जाती है।

**दादाश्री :** चली जाती है और पूँछ हिलती रहती है। और फिर उसे लेकर क्या समझते हैं? वह पूँछ हिलती रहती है। यह क्या सूचित करता है? इसमें क्या होता होगा? कौन हिलाता होगा?

**प्रश्नकर्ता :** चेतन।

**दादाश्री :** चेतन छिपकली के साथ चला गया। अब यहाँ पर क्या बचा? अतः पूरा जगत् उसे चेतन कहता है। वह चेतन नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** तो वह क्या है?

**दादाश्री :** अचेतन तत्त्व है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर वह हिल कैसे सकती है?

**दादाश्री :** ये इंजन किस प्रकार से घूमते हैं? इंजन नहीं घूमते? ये सभी गाड़ियाँ-मोटर वगैरह हैं, उनमें जड़ चलता-फिरता है, वे चेतन नहीं हैं। चेतन का खुद का चलने-फिरने का गुण ही नहीं है।

अर्थात् इन डॉक्टरों ने कभी भी चेतन देखा ही नहीं है। किसी ने चेतन देखा ही नहीं है। चलते-फिरते लोगों को चेतन नहीं कहते। ऐसे तो मिकेनिकल इंसान (पुतले) भी आएँगे, जब लोग मिकेनिकल बनाएँगे, तब वह भी (पुतला) चलेगा-फिरेगा। हाँ, बात वगैरह सब करेगा।

**प्रश्नकर्ता :** अंग्रेजी में जिसे रोबोट कहते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, अत: वह कोई चेतन नहीं है।

अब लोग उसे सॉल्व नहीं कर सकते इसलिए लोग क्या कहते हैं कि, 'इसमें से जीव निकल रहा है और जीव निकलने के बाद यह गिर जाएगी।' ऐसा कहते हैं न? जीव कट नहीं सकता जबकि पूँछ कट गई। और कटते ही चेतन पूँछ में से खिंचकर बाकी के शरीर में चला जाता है। वह विभाजित नहीं होता, और छिपकली पूरे चेतन सहित चली जाती है। अब बाकी बची उसकी पूँछ।

**प्रश्नकर्ता :** क्या पूँछ में अभी भी कुछ जीव बाकी है? इसलिए हिलती है?

**दादाश्री :** जीव तो... वह जो छिपकली आगे गई न, जीव तो उसके साथ चला गया, इसमें जीव नहीं रहा। ये बड़े-बड़े संत भी इससे उलझन में पड़ गए। वह तो सिर्फ हमने, ज्ञानी पुरुष ने ही खोलकर बताया है। यह तो कैसा है? जीव हमेशा प्रकाशक है और जीव के पीसेज़ नहीं हो सकते। यदि उसके टुकड़े किए जाएँ तो वह मर जाएगा। मर जाएगा तो पूरा जीव चला जाएगा और फिर, ऐसा नहीं हो सकता कि छिपकली आगे चली जाए और जीव पीछे रह जाए। तो इसका कारण क्या है?

जीव तो किसे कहते हैं? जिसमें *लागणी* हो, वेदना हो। पूँछ में *लागणी* नहीं होती। कटी हुई पूँछ पर अंगारा रखा जाए फिर भी उसे *लागणी* नहीं होगी। और जो छिपकली भाग गई, उसमें फिर *लागणी* रहती है। अत: जीव तो उसके साथ ही चला गया। चेतन कट नहीं सकता, चेतन के पीसेज़ नहीं हो सकते। कृष्ण भगवान ने क्या कहा है? चेतन को काटा नहीं जा सकता, चेतन के दो टुकड़े नहीं हो सकते कभी भी। चेतन सर्वांग होता है। वहाँ पर अमरीका में साइन्टिस्टों से मैंने पूछा, तब उन्होंने तो यही बताया कि 'चेतन ही है'। 'सोल' कहते हैं। मैंने कहा, 'नहीं है यह सोल। सोल के पीसेज़ नहीं हो सकते।' इतना समझ में आ जाए तो काम ही हो जाएगा न!

आत्मा ऐसी चीज़ नहीं कि आँखों से दिखाई दे या अन्य किसी चीज़ द्वारा देखा जा सके। वह तो पहाड़ों के आर–पार जा सकता है। कितना मोटा है?

**प्रश्नकर्ता :** एकदम सूक्ष्म।

**दादाश्री :** सूक्ष्मातिसूक्ष्म। पहाड़ों के आर–पार, दीवारों के आर–पार चला जाता है। इसलिए छिपकली में ही पूरा संकुचित हो जाता है। अतः पूरा जीव छिपकली में ही रह गया और वह जो कटा, वह क्यों हिलता रहता है? हिल रहा है तो रुक कैसे जाता है? क्या कारण है? वॉट आर दी कॉज़ेज?

क्योंकि उसमें आत्मा नहीं है। आत्मा का स्वभाव ऐसा है कि जहाँ से शरीर का कोई भाग अलग हुआ कि वह संकुचित हो जाता है। चेतन का स्वभाव है, संकुचित हो जाना और उसका विस्तार भी हो जाता है। हाथी में जाता है तब बहुत विस्तृत हो जाता है। चींटी में जाता है तब संकुचित हो जाता है। ये सारे चेतन के स्वभाव हैं।

## वह है गति सहायक

**प्रश्नकर्ता :** वह तो एक प्रकार का इनर्शिया ही होगा न? जैसे कि इंजन रेलवे के डिब्बों को एक धक्का मारता है तब डिब्बे कुछ समय तक चलते हैं, उसी प्रकार इसको भी चेतन का धक्का ही होगा, चेतन नहीं होगा?

**दादाश्री :** चेतन का धक्का भी नहीं है। एक गति सहायक नामक तत्त्व है, वह निकल जाता है। उसे धर्मास्तिकाय कहा जाता है। फिर जब वह खत्म हो जाएगा तब अधर्मास्तिकाय से पड़ी रहेगी, स्थिर हो जाएगी।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, उस चेतन की पहले जो शक्ति थी, उसी धक्के की वजह से वह हिलती है न, नहीं तो हमेशा के लिए हिलती रहनी चाहिए न?

**दादाश्री :** धक्के से नहीं। यह चीज़ धक्के से अलग है। यह

तो उसके अंदर जो भरा हुआ माल है, हर एक के शरीर में, गति सहायक नाम का तत्त्व भरा हुआ है, आकाश नाम का तत्त्व भरा हुआ है। ये जो सभी तत्त्व हैं न, वे तुरंत निकल जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यानी कि जब तक वह तत्त्व रहेगा तब तक वह गति करती रहेगी?

**दादाश्री :** आकाश अंदर रहता है लेकिन यह जो गति सहायक है वह निकल जाता है इसलिए पूँछ हिलती रहती है। बाद में फिर सिर्फ स्थिति सहायक रहता है। उससे पूँछ स्थिर हो जाती है।

हम यहाँ से एक बार बॉल फेंके, तो अपनी फेंकी हुई बॉल को किन्हीं दो-चार लोगों ने देखा और फिर बाहर से आने वाले अन्य लोग जिन्होंने बॉल को फेंकते हुए नहीं देखा है, वे (जब) बॉल को उछलता हुआ देखते हैं तब वे पूछते हैं, 'इस बॉल को कौन उछाल रहा है?' तो फिर आप क्या जवाब दोगे? बॉल फिर से उछले, दूसरी बार उछले तो?

हम यहाँ से बॉल फेंकें, तो तीन फुट उछलने के बाद क्या फिर दूसरी बार साढ़े तीन फुट उछलेगी?

**प्रश्नकर्ता :** ढाई।

**दादाश्री :** ढाई। तीसरी बार दो, चौथी बार...

**प्रश्नकर्ता :** डेढ़।

**दादाश्री :** फिर से कौन उछालता है उसे?

**प्रश्नकर्ता :** वह चेतन तत्त्व से प्रभावित है इसलिए उछलती है।

**दादाश्री :** उसे जब फेंका था न, तब वह उसे सहायता दी थी, गति सहायक का गुण दिया। फिर गति करती रहती है। तो जब तक उसकी गति खत्म नहीं हो जाती तब तक वह स्थिर नहीं होती। हम कहें कि, 'अरे! मैंने तुझे फेंका है, बंद हो जा', फिर भी नहीं रुकती।

**प्रश्नकर्ता :** छिपकली खुद जो पूरी ही आत्मा के साथ जीवित चली जाती है, वह भी धर्मास्तिकाय के कारण चलती है। आत्मा है, इसलिए चलती है या फिर धर्मास्तिकाय है, इसलिए चलती है?

**दादाश्री :** आत्मा है, इसीलिए चलती है। क्योंकि आत्मा के निकल जाने के बाद नहीं चलेगी।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या आत्मा चलाता है? क्या आत्मा कर्ता है? क्या वह खुद चलाता है?

**दादाश्री :** आत्मा नहीं, लेकिन आत्मा के कारण चार्ज हुआ है। जो चार्ज हुआ है, उसके डिस्चार्ज होने से चल रहा है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा तो नहीं चल सकता है न? आत्मा में चलने की शक्ति कहाँ है?

**दादाश्री :** लेकिन यह आत्मा के कारण चार्ज हुआ है। आज यदि छिपकली में से आत्मा निकल जाए तब तो फिर चलेगी ही नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन आत्मा तो अकर्ता है न?

**दादाश्री :** हाँ, अकर्ता है, लेकिन उसमें चार्ज हुआ है इसीलिए दूसरा आत्मा उत्पन्न हुआ न?

**प्रश्नकर्ता :** दूसरा आत्मा?

**दादाश्री :** यह जो छिपकली है, वह दूसरा आत्मा ही कहा जाएगा। उसे प्रतिष्ठित आत्मा कहा है, वह चलती रहती है। और जो पूँछ कट गई है न, वह तो तरीके से नहीं चलती। हिलती रहती है, उछल-कूद करती है।

## वे नहीं हैं परमाणु

**प्रश्नकर्ता :** तो इस पूँछ में ही क्यों बंद हो गया गति सहायक तत्त्व का कार्य?

**दादाश्री :** क्योंकि आत्मा पूँछ में से निकलकर छिपकली के अंदर चला गया न! आत्मा रहता है तभी तक सभी तत्त्व रहते हैं। आत्मा ने खाली किया कि पूरा ही खाली। अन्य तत्त्वों का संकोच-विकास नहीं हो सकता। सिर्फ आत्म तत्त्व का ही संकोच और विकास हो सकता है।

गति सहायक और स्थिति सहायक दो तत्त्वों के मिलने पर ऐसे-ऐसे होता (हिलता-डुलता) रहता है। अंदर से उन तत्त्वों के निकल जाने के बाद खत्म! वह पूरा ही तत्त्व शरीर में छिपकली के साथ रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** अब यह पूँछ, जो इन सब परमाणुओं से बनी है, और परमाणु, केन्द्र के चारों ओर गोल घूमते हैं। उन परमाणुओं में तो अभी भी गति है ही। पूँछ मर गई है लेकिन परमाणु तो अभी भी घूम ही रहे हैं न?

**दादाश्री :** परमाणुओं का और इनका कोई लेना-देना नहीं है! सब स्वतंत्र हैं, अपना-अपना है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर वह पूँछ कुछ दिनों बाद सड़ जाएगी न।

**दादाश्री :** वह सड़ जाएगी।

**प्रश्नकर्ता :** फिर उसका क्या होगा?

**दादाश्री :** जो परमाणु थे, वे जैसे थे, वापस वैसे ही हो जाएँगे। उसमें जो परमाणु मिक्स हो गए थे, वे उसी (मूल) रूप में अलग हो जाएँगे।

इसका खुलासा तो चाहिए न? मैं बचपन में सोच-सोचकर थक गया था कि यह जीव निकल रहा है या क्या निकल रहा है? जब मैंने इन तत्त्वों को समझा, वे तत्त्व सूरत के स्टेशन पर मेरे प्रकाश में आए, तब मुझे समझ में आया यह सब!

## अनुपात, भिन्न-भिन्न हर एक में

**प्रश्नकर्ता :** पेड़ों में स्थिति सहायक गुण अधिक होता है।

**दादाश्री :** बहुत कम होता है और गति सहायक भी कम होता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो दादा, हर एक में गति सहायक और स्थिति सहायक उसकी प्रकृति के अनुसार ही होते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, प्रकृति के अनुसार। उनमें स्थिति सहायक गुण अधिक होने की वजह से वह स्थिति सहायकपन भोगता है। कितने ही तत्त्वों में गति सहायक अधिक होता है, तो वे गति ही करते रहते हैं और कितनों में स्थिति और गति दोनों होते हैं, एक समान हो तो ऐसा होता है।

**प्रश्नकर्ता :** ये सब जो शारीरिक प्रवृत्तियाँ चलती हैं, वे किसके अधीन हैं? कौन चलाता है?

**दादाश्री :** मैंने तुझे बताया न! वह गति सहायक चलाता है। वह गति सहायक फिर पुण्य-पाप के आधार पर हेल्प करता है। यदि पुण्य हो तो गति सहायक हेल्प करता रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, स्थिति सहायक और गति सहायक तत्त्वों में से कुछ अच्छा या खराब है क्या?

**दादाश्री :** नहीं, वे तो पापी की भी हेल्प करते हैं और पुण्यशाली की भी हेल्प करते हैं। वे निष्पक्षपाती हैं। आकाश किसी की हेल्प नहीं करता।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या वैसे गति सहायक या स्थिति सहायक तत्त्व मानव योनि में हैं?

**दादाश्री :** सभी में हैं। हर एक में होते हैं। उनके बिना तो यह दुनिया चल ही नहीं सकती।

**प्रश्नकर्ता :** तो दादा, आप यहाँ से सांताक्रुज़ जाते हैं तो आपको धर्मास्तिकाय ने कुछ मदद की, ऐसा कह सकते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, धर्मास्तिकाय ही करता है न!

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर यह जीव क्या करता है?

**दादाश्री :** जीव ने, प्रतिष्ठित आत्मा ने भाव किए हैं। प्रतिष्ठित आत्मा व्यतिरेक गुणों को लेकर गति सहायक तत्त्वों से चलता है। प्रतिष्ठित आत्मा के कहे अनुसार धर्मास्तिकाय वगैरह सब मिलता है। यह धर्मास्तिकाय माल भरा है। अब हम किसी व्यक्ति से उठने को कहें तो वह उठ ही नहीं पाता। उसने अधर्मास्तिकाय माल भरा हुआ है। तो फिर कैसे हो सकेगा? और किसी ने चंचल स्वभाव वाला भरा है, तो वह पल भर भी बैठ नहीं पाता। 'इसके पैर में चक्कर लगे हैं', लोग ऐसा कहते हैं। वह बैठ ही नहीं सकता। उसमें धर्मास्तिकाय अधिक भरा हुआ है।

भगवान ने कहा था कि सही अनुपात में भरना। इस संसार का उपाय नॉर्मेलिटी है। पूरी रात तप मत करना। ज़रा सो जाना, खाया है, शरीर को परेशानी होगी। फिर भी पूरी रात (कामकाज में) लगा रहता है।

## वह तत्त्व है सनातन, रियल

**प्रश्नकर्ता :** वह जो स्थिति सहायक तत्त्व के बारे में बताया है, वह रिलेटिव है या रियल?

**दादाश्री :** रियल ही है, रिलेटिव नहीं हो सकता वह। खुद इटर्नल हमेशा रियल ही होता है। फिर वह तत्त्व जो 'उसे' गति देता है, उसके पीसेज़ नहीं हो सकते। जो गति सहायक है, वह पूरे लोकाकाश जितना अखंड है। अत: जहाँ पर आपको ज़रूरत है, वहाँ आपको वह मिल जाएगा। अब, जिस प्रकार गति में लाने वाला तत्त्व है, उसी प्रकार स्थिर करने वाला तत्त्व भी अखंड ही है। वह भी अविनाशी है। ऐसे उन सब के स्वभाव हैं। वे सब अपने खुद के गुणधर्मों के आधार पर हैं।

ये जड़ और चेतन सनातन तत्त्व हैं। इसलिए यहाँ से उन्हें गति करनी हो तो उनके पास गति करवाने वाला सनातन तत्त्व होना चाहिए, तभी कुछ हो पाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* को और आत्मा को क्या एक ही गति सहायक तत्त्व गति देता है?

**दादाश्री :** हाँ, एक ही तत्त्व।

गति देने वाली यह शक्ति अनादि है, अविनाशी है, अनंत है। वह तीनों ही काल में है और वह शक्ति हर एक परमाणु को गति देती है। वह शक्ति अणु के अंतर्गत है लेकिन परमाणु से बाहर है, आत्मा से बाहर है। वह शक्ति खुद कुछ भी नहीं हिला सकती लेकिन हिलने में हेल्प करती है। वह गति सहायक तत्त्व है।

## मोक्ष में ले जाता है गति सहायक

**प्रश्नकर्ता :** मृत्यु के समय ऊपर से विमान आकर जीव को ले जाता है। आत्मा को ऊपर ले जाने के लिए विमान की बात करते हैं न?

**दादाश्री :** विमान तो बच्चों को समझाने के लिए है। वह तो धर्मास्तिकाय ले जाता है। क्योंकि इन लोगों को धर्मास्तिकाय नहीं समझाया जा सकता न, इसलिए विमान कहा है।

**प्रश्नकर्ता :** यदि हम भाव करें तो क्या गति सहायक तत्त्व और स्थिति सहायक तत्त्व अभी भी हमें मदद करेंगे?

**दादाश्री :** हं।

**प्रश्नकर्ता :** तो कुछ करना है तो उनके द्वारा ही, उनकी मदद से ही हो सकता है। हमें मोक्ष में जाना है तो गति सहायक और स्थिति सहायक तत्त्व की मदद किस प्रकार से लेनी चाहिए?

**दादाश्री :** उपयोग हो ही जाएगा। आप घर से यहाँ तक आए,

वह आपके पूर्व काल में किए हुए भाव हैं। अभी आप नए नहीं करते हो।

**प्रश्नकर्ता :** अभी मोक्ष में जाने का भाव करते हैं न हम?

**दादाश्री :** अभी आप भाव नहीं करते हो।

**प्रश्नकर्ता :** तो?

**दादाश्री :** वह तो पूर्व जन्म में जो किए थे, वे उदय में आए हैं। अत: ये सब डिस्चार्ज कर्म हैं। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनों ही डिस्चार्ज कर्म हैं। नए कर्म बाँधेंगे तो वापस फिर नए सिरे से करने पड़ेंगे। यहाँ तक कि अंत में मोक्ष में पहुँचाने तक भी वह डिस्चार्ज है।

**प्रश्नकर्ता :** मैं यही पूछ रहा हूँ कि मोक्ष में जाने के लिए हेल्प फुल है या नहीं?

**दादाश्री :** अंत में वह मोक्ष में पहुँचा देगा, तब वह डिस्चार्ज पूरा होगा।

**प्रश्नकर्ता :** मोक्ष में जाने के लिए उसका किस प्रकार से उपयोग करना चाहिए?

**दादाश्री :** हमें उपयोग नहीं करना है, वह अपने आप ही ले जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, ये जो तत्त्व हैं उनका अमल ऑटोमैटिक ही होता है न?

**दादाश्री :** वह ऑटोमैटिक ही है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन भाव तो करना पड़ेगा न?

**दादाश्री :** पहले जो भाव किए थे, यह उन्हीं का फल आया है। नया नहीं करना है हमें। अंत में मोक्ष में पहुँचाने के बाद उसका कार्य पूर्ण होता है।

## मोक्ष में जाते हुए, आत्मा आखिर तक अकर्ता

यह कब तक बंधा हुआ लगता है? अहंकार है, तब तक बंधन है। जब से खुद ऐसा मानने लगेगा कि, 'अब मैं मुक्त हुआ', वही मोक्ष है!

**प्रश्नकर्ता :** वहाँ मोक्ष में किस प्रकार से जा सकते हैं?

**दादाश्री :** उसके लिए आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। वह स्वभाव से ही आपको ले जाएगा। यदि सारे कर्म छूट जाएँ न, तो आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी ही है। *पुद्गल* उसे अधोगामी बनाता है। *पुद्गल* उससे चिपककर उसे नीचे ले जाता है। इन दोनों के झगड़े में जब 'उसका' *पुद्गल* भाव छूट जाता है तब ऑटोमैटिकली खुद मोक्ष में चला जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा का स्वरूप तो जो है, वही रहता है न?

**दादाश्री :** हाँ, और फिर वापस धर्मास्तिकाय उसे आखिर तक छोड़ने भी जाता है। धर्मास्तिकाय की मदद के बिना नहीं जा सकता। तो वह कर्म का इतना हिसाब ही चुकाता है, आखिर तक पहुँचाने का हिसाब।

**प्रश्नकर्ता :** किसके साथ का, धर्मास्तिकाय के साथ का?

**दादाश्री :** धर्मास्तिकाय चुकाता है न! 'मोक्ष स्वरूप हो गया', ऐसा तो हम व्यवहार से कहते हैं, बाकी आत्मा तो मोक्ष स्वरूप था ही। यह तो ऐसा है कि वह तो सहायक है। 'खुद की' इच्छा थी इसलिए सहायता करता है।

**प्रश्नकर्ता :** जब आत्मा मोक्ष में जाता है उस समय गति सहायक और स्थिति सहायक, ये दोनों ही तत्त्व रहते हैं, अन्य कुछ भी नहीं रहता। तो ये दो तत्त्व किस वजह से उसके साथ रहते हैं?

**दादाश्री :** जिन तत्त्वों का काम बाकी है, वे रहते हैं। जिनका

काम बाकी नहीं है, उनमें से कोई भी तत्त्व नहीं रहता। अब आत्मा को मोक्ष में ले जाने का काम बाकी है, वह काम है गति सहायक तत्त्व का और वहाँ पर स्थिर करने के लिए चाहिए स्थिति सहायक तत्त्व, फिर ये दोनों तत्त्व अपना-अपना काम करके चले जाते हैं, अपने घर। ऐसी ही सेटिंग रहती है।

**प्रश्नकर्ता :** तब आत्मा किसी खास दशा में होता है कि उसे ये दो तत्त्व...

**दादाश्री :** नहीं, दशा-वशा कुछ भी नहीं। आत्मा को मोक्ष में जाना है। ऐसा भाव किया है इसलिए उस भाव के आधार पर, ये गति सहायक तत्त्व और स्थिति सहायक तत्त्व जॉइन्ट हो गए। यहाँ से हमने नवसारी जाने का भाव किया तो गति सहायक तत्त्व काम करेगा और स्थिति सहायक तत्त्व भी काम करेगा।

**प्रश्नकर्ता :** अब जो केवली व तीर्थंकर, जो केवलज्ञान प्राप्त करके इस पृथ्वी पर से मोक्ष में गए, वे आत्मा जो मोक्ष में गए, उन्हें गति सहायक तत्त्व का सहारा मिला होगा न?

**दादाश्री :** वह जो गति सहायक तत्त्व है, उसका वह डिस्चार्ज कर्म अंदर तैयार ही है। वह उसे ऊपर ले जाता है, बस। उसमें खुद का कर्तापन नहीं है।

इसलिए श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है 'पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी, ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो।' (पूर्व प्रयोग के कारणों के योग से ऊर्ध्वगमन होकर सिद्धालय में स्थिति प्राप्त होती है)।

तो धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये सब पूर्व प्रयोग अर्थात् चार्ज हो चुका है। इसलिए डिस्चार्ज द्वारा वहाँ पर मोक्ष में पहुँचा देता है। यह अभी के कर्तापद से नहीं हैं। जो चार्ज हो चुका है, वही डिस्चार्ज होता है। कोई कहे, कि 'भाई, ऊर्ध्वगमन किस आधार पर हुआ? क्या उसने ऐसा खुद की शक्ति से किया?' तो कहते हैं, 'नहीं, ऐसा कुछ नहीं है।' व्यवहार निर्माल्य है। अत: जो पहले चार्ज हो

चुका है वह, अंतिम डिस्चार्ज होकर ठेठ वहाँ रख आता है। हमें ठेठ वहाँ सिद्धक्षेत्र में रख आता है। इतना ही नहीं लेकिन यहाँ पर आते हो और घूमते हो न, वह सब पूर्व प्रयोगादि योग से है। अपना पूर्व प्रयोग यहाँ पर लाता है और उनका कोई पूर्व प्रयोग सिद्धक्षेत्र में ले जाता है क्योंकि फिर कुछ बाकी नहीं रहा न अब!

अपना आना-जाना पूर्व प्रयोगादि कारण से चलता है। पूर्व प्रयोगादि कारण और नए पूर्व प्रयोगी तैयार हो गए हैं। फिर आगे जाकर ज़रूरत पड़ेगी न? ऐसे करते-करते जो अंतिम पूर्व प्रयोग है, वह अंत तक पहुँचा देगा, ऊपर सिद्धगति में। किसने पहुँचाया आपको? वे आत्मा को ऊपर कैसे ले गए? एक तो आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है और एक तरफ यह धर्मास्तिकाय उसकी हेल्प करता है। स्वभाव की मदद करता है गति सहायक, वह एकदम से अंत तक पहुँचा देता है। विज्ञान है यह तो।

## संसार काल में नहीं है कोई अड़चन आत्मा को

बस, छः तत्त्वों से ही यह संसार चल रहा है। और आत्मा इन छः तत्त्वों में से छूट जाएगा तो मोक्ष में जाएगा, सिद्धगति में जाएगा। फिर हमेशा के लिए सिद्धगति में ही, फिर परमानेन्ट सुख। वहाँ पर अन्य कोई तत्त्व नहीं है इसलिए फिर उलझन नहीं होती। यहाँ पर तत्त्व हैं, इसलिए उलझन खड़ी हुई है।

पूरे संसार काल में आत्मा, आत्मा ही रहा है और बिल्कुल भी नहीं चला है। जब अंतिम देह से मोक्ष में जाने लगता है न, तब भी गति सहायक तत्त्व ले जाता है। उसमें भी आत्मा तो निरंतर आत्मा ही रहता है। अतः मेरा कहना यह है कि किसी भी आत्मा को कोई भी परेशानी नहीं आई है। ऐसा है यह संसार काल!

## [ 4 ]
## काल तत्त्व

### नए को पुराना करता है काल तत्त्व

इस जगत् की सभी चीज़ें निरंतर परिवर्तित होती रहती हैं। यानी कि नए से पुरानी होती रहती है, वह काल के अधीन है। अर्थात् काल काम कर रहा है। वह इटर्नल वस्तु है, परमानेन्ट है, सनातन है। ये तत्त्व जो घूमते हैं, वह टाइम के कारण है।

**प्रश्नकर्ता :** यदि चेतन है, प्योर कॉन्शियंस है तो वह टाइम के अधीन क्यों है?

**दादाश्री :** नहीं! इस तरह कोई किसी के अधीन नहीं है लेकिन काल तत्त्व के कारण नया निरंतर पुराना होता रहता है। यह सब काल तत्त्व करता है।

**प्रश्नकर्ता :** यानी सभी के लिए काल एक सरीखा नहीं होता?

**दादाश्री :** उसमें काल तो बेचारा क्या करे? नए को पुराना करना उसका काम है और अंत में उसका नाश करना। वापस नया उत्पन्न करना, वही उसका काम है। उसे और कोई लेना-देना नहीं है न! अपना जो हिसाब होता है, वह चुक जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** आपने कहा न, कि नाश करना और वापस उत्पन्न करना, वह काल का धर्म है एक्चुअली?

**दादाश्री :** काल खुद नहीं करता है, काल के निमित्त से होता है यह।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, निमित्त से होता है, वह ठीक है, यानी कि काल उसमें निमित्त रूप बनता है न?

**दादाश्री :** निमित्त रूप बनता है। काल, जो कि नए को पुराना ही कर रहा है निरंतर। उत्पन्न होना, विनाश होना, यह सब काल तत्त्व का काम है। उत्पन्न होना और विनाश होना, वह इटर्नल नहीं है। इटर्नल की अवस्थाएँ हैं।

अब इसमें ये जो छः इटर्नल हैं न, वे निरंतर परिवर्तित होते ही रहते हैं, समसरण करते रहते हैं। यानी कि परमाणु, चेतन वगैरह सब यों घूमते ही रहते हैं। वह स्वाभाविक है। उनके परिवर्तित होने से अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं। जो अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, वे सब विनाशी होती हैं। तो अब, विनाशी अवस्था को किस तरह से नापा जा सकता है कि यह कितने काल तक रहेगी? तो कहते हैं, कि काल अर्थात् वह टाइमिंग नामक तत्त्व है।

यह काल कैसे हेल्प करता है? क्योंकि काल था तो उस काल में हम सब इकट्ठे हुए। वह तो, हमने तय किया हो कि दस बजे आएँगे लेकिन वह एक्ज़ेक्टली दस बजे नहीं होता, लेकिन उसमें कितने ही अलग-अलग समय-वमय होते हैं। हम सब यह जो बोल रहे हैं, वह सारा फोरकास्ट है। कमिंग इवेन्ट्स कास्ट दियर शैडो बिफोर। अतः आप उस आधार पर जानते हो, लेकिन यह काम कौन कर रहा है? काल ही कर रहा है, इस तरह जगत् चल रहा है।

यह *पुद्गल, पूरण-गलन,* संयोग-वियोग, ये सब जो मिलते हैं, वह किससे पता चलता है? काल से। काल नहीं होता तो नया कभी पुराना होता ही नहीं। यह काल तत्त्व है, ऐसी-वैसी वस्तु नहीं है। नए में से पुराना हुआ किस तरह से? इसका मेल कैसे बैठेगा? जवाब मिलेगा क्या? कितना गलत है! फिर इंसान को शांति कैसे मिलेगी?

## अवस्था देखने वाले को उपाधि

**प्रश्नकर्ता :** आपने जो बात की, कि लगातार सब बदलता रहता है, कुछ भी नाश नहीं होता।

**दादाश्री :** हर एक चीज़ को पुराना करना, वह काल का काम है। और फिर उन सभी अवस्थाओं का अपने आप ही नाश होता रहता है। इसमें कोई भी तत्त्व बदलता ही नहीं है। तत्त्व पुराना नहीं होता, सभी अवस्थाएँ पुरानी होती हैं। अवस्थाएँ ही उत्पन्न होती हैं, अवस्थाएँ ही पुरानी होती हैं और इन अवस्थाओं का नाश हो जाता है, बस।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर नया कुछ होता ही नहीं है?

**दादाश्री :** ऐसा है न, नई चीज़ इस दुनिया में है ही नहीं न!

**प्रश्नकर्ता :** तो जन्म होना भी अवस्थाओं में ही आता है?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन दुनिया में कुछ भी नया नहीं होता है। ऐसा तो लोगों को लगता है कि जन्म हुआ। 'अवस्था' देखने वाले को ही यह *उपाधि* (परेशानी) है, 'वस्तु' देखने वाले को कुछ भी नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वह सब काल करता है न?

**दादाश्री :** कोई नहीं करता है, काल भी इसमें निमित्त है। सभी निमित्त के रूप में हैं। यदि कोई कर्ता बन जाए न, तब तो चढ़ बैठेगा दुनिया पर।

**प्रश्नकर्ता :** तो अपने आप ही यह सब होता रहता है यहाँ पर?

**दादाश्री :** सहज स्वभाव से। जैसे कि नर्मदा का पानी वहाँ से बहता रहता है और अपने आप ही समुद्र में मिल जाता है। इसमें लोगों को बुद्धि से ऐसा लगता है कि इन्हें कौन ले जाता है? समुद्र इस तरफ है ऐसा कैसे पता चलता है इसे? सहज स्वभाव से। सहज स्वभाव से चलता ही रहता है यह। ऐसा देख लेना है इस पूरे जगत्

को। इसमें भगवान खुद भी हैं। वे स्वतंत्र कर्ता नहीं हैं। सहज स्वभाव! निमित्त हैं सब, काल के निमित्त से यह हो रहा है, तो अन्य निमित्त से यह होता है, अन्य के निमित्त से वह होता है, इस प्रकार निमित्तों के इकट्ठे होने से यह सब होता रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन हम आपसे मिले, वह भी निमित्त के कारण ही मिले हैं?

**दादाश्री :** सिर्फ निमित्त।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन पहले कभी मिले होंगे या नहीं? ऐसा हो सकता है या नहीं?

**दादाश्री :** हुए हैं न, वैसे सारे संयोग। ये जो देहधारी आते हैं, यह एक ही बार की गप्प नहीं है। अनंत जन्मों से आ ही रहे हैं। संयोग बदलते रहते हैं। जो पहले मिले होंगे न, तभी वे संयोग आज मिलते हैं। जिनके प्रति अच्छा अभिप्राय बैठ गया हो, वे मिलते हैं और जिनके प्रति खराब अभिप्राय बैठ गया हो, वे भी मिलते हैं। खराब अभिप्राय बैठे हो, वे दुःख देकर जाते हैं और अच्छा अभिप्राय बैठे हो, वे सुख देकर जाते हैं। ये अच्छे अभिप्राय बैठे हों तो उसे राग कहते हैं। खराब अभिप्राय बैठे हों तो उसे द्वेष कहा जाता है।

काल के अधीन जो वस्तुएँ अच्छी लगती हैं, उनका काम ही क्या है? यह गुलाब काल के अधीन आज अच्छा लगता है। कल काल के अधीन नीरस लगेगा। यह *सरसता* (रुचिकर) और नीरसता तो काल के अधीन है। आत्मा की स्वसत्ता काल के अधीन नहीं है। उसकी तो बात ही अलग है। काल के अधीन तो सबकुछ भूल जाते हैं। रूप तो आत्मा का ही, स्वरूप का ही देखने योग्य है।

## वह है काल का स्वभाव

**प्रश्नकर्ता :** तो दादा, क्या ऐसा है, कि काल के साथ सब बदलना चाहिए? और जीर्ण होने पर वह गिर जाना चाहिए?

**दादाश्री :** काल हर एक चीज़ को जर्जरित कर देता है। अपने यहाँ पर एक बाड़ा था, वह बहुत पुराना हो गया तो उसके खम्भे भी गिर गए। वह हमने देखा न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, बीच में से खम्भे गिर गए थे।

**दादाश्री :** लेकिन काठियावाड़ी भाषा में बाड़ा। ये दो खम्भे गिर गए हैं, यह ऐसा हो गया है। दूसरी तरफ छप्पर पर खपरैल तो हैं नहीं। उसे बाड़ा कैसे कहेंगे? जब वे थे, तब बहुत कीमती थे। अब उनका डिमॉलिशन करके ऊपर मकान बना दिए हैं न, इन लोगों ने। ऐसा ही होता है हर जगह पर। नया, पुराना होता जाता है हमेशा। काल हमेशा हर एक चीज़ को खा जाता है, अपने हिसाब से। सोना भी धीरे-धीरे खत्म हो जाता है। इसी प्रकार शास्त्र भी जर्जरित हो जाते हैं।

## ज्ञानी की वंशावली को भी काल कर देता है निर्वंश

जागृति होती है वहाँ पर अजागृत कर दे, इस काल का स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए हम बार-बार सचेत करते रहते हैं, 'बिवेयर!'

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन जागृति आने के बाद में फिर वह टिकती नहीं है?

**दादाश्री :** वह जागृति हटती नहीं है। लेकिन यह काल ऐसा है कि यह काल धूल उड़ाए, तब भी जागृति कम हो जाती है। ऐसा है यह। यह काल बहुत विचित्र है।

और साथ ही यह अक्रम विज्ञान है, यानी कि कर्म खपाए बिना प्राप्त हुआ विज्ञान है यह। अतः कर्म खपाते हुए आप पर धूल उड़ेगी। मुझे तो परेशानी नहीं आती। मेरे तो बहुत ज़्यादा कर्म नहीं बचे हैं।

ज्ञानी की वंशावली चलती है लेकिन काल की वजह से निर्वंश होती रहती है। काल का स्वभाव है कि वह हर एक को निर्वंश कर

सकता है। ज्ञानी अवतरित होते हैं तब वापस वंशावली होती है। काल निर्मूल कर देता है। निर्मूल करने की या नाश करने की ताकत अन्य किसी में नहीं है।

## साइन्टिस्टों की दृष्टि से काल

**प्रश्नकर्ता :** काल को भी चौथा परिमाण माना गया है। लंबाई, ऊँचाई और चौड़ाई उसके साथ में चौथा काल को भी रखा है।

**दादाश्री :** किसने?

**प्रश्नकर्ता :** इन साइन्टिस्टों ने। फोर्थ डाइमेन्शन अर्थात् काल, ऐसा कहते हैं।

**दादाश्री :** हाँ, वह काल तो है ही न! काल के बिना तो हो ही नहीं सकता। टाइम तो सभी के लिए एक ही प्रकार का होता है, लेकिन स्पेस एक ही नहीं होता कभी भी, स्पेस अलग ही होता है सब का।

टाइम निकला किस तरह से? तो कहते हैं कि यह जगत् गतिशील है, निरंतर गति का प्रवर्तन है। जब एक परमाणु दूसरे परमाणु को पार करता है, उतने टाइम को समय कहा गया है।

अर्थात् यह काल कालाणुओं के रूप में है, अणुओं के रूप में है। वह काल किसी एक खास भाग में आता है, तभी सब वस्तुएँ काम करती हैं, नहीं तो हेल्प नहीं करतीं।

## सूक्ष्मातिसूक्ष्म है तत्त्वों का ज्ञान

**प्रश्नकर्ता :** अन्य सभी तत्त्व समझ में आ गए हैं लेकिन आत्म तत्त्व क्यों समझ में नहीं आया?

**दादाश्री :** वे भी समझ में नहीं आए हैं, वह तो सिर्फ सतही तौर पर समझ में आया है अभी। उसकी इनर (गहरी) समझ आने में तो बहुत देर लगेगी।

**प्रश्नकर्ता :** दादाजी, काल में और क्या इनर (आंतरिक) समझना है? काल यानी काल।

**दादाश्री :** ओहोहो! काल के तो अणु हैं इतने सारे, यह पूरी दुनिया काल के अणुओं से भरी हुई है। यह सब तो बहुत गहरा है, यह तो कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। ऊपर-ऊपर से ही समझने से मोक्ष है। बहुत गहराई में समझने से मतलब ही क्या है तुम्हें? इतना जान लेना है कि पानी गटर में से जाता है। फिर गटर कितना गहरा और कितना चौड़ा है, कितना सड़ चुका है, कितना बिगड़ चुका है, वह सब जानने की क्या ज़रूरत है हमें? पानी आता है यहाँ से, और यहाँ से जाता है। बस इतना जान लिया तो बहुत हो गया।

**प्रश्नकर्ता :** तो आत्मा को समझना भी इतना ही आसान है, जितना आकाश, काल, स्थिति सहायक...

**दादाश्री :** नहीं, एक भी आसान नहीं है। आत्मा तो बहुत मुश्किल, आत्मा को तो किसी ने इतना सा भी नहीं जाना है। एक इतना सा, बाल जितना भी किसी ने नहीं जाना है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन आपकी कृपा से, ज्ञानी की कृपा से, आप मिल गए, फिर आसान ही है न?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन यहाँ सिर्फ अपने महात्मा ही जानते हैं। बाकी बाहर कोई नहीं जानता। हिमालय में भटकें, चाहे कहीं भी भटकें लेकिन ये संत-वंत कुछ भी नहीं जानते, राम तेरी माया। वे तो कहते हैं, 'भगवान क्रिएटर हैं। यह सब भगवान ने बनाया है और इन खम्भों में भी भगवान हैं।' ऐसा कहते हैं। तो भाई, लकड़ियाँ कैसे जलाएँगे?

## काल का कालाणु के रूप में प्रवहन

**प्रश्नकर्ता :** काल अणु रूपी है, ऐसा कहते हैं न?

**दादाश्री :** हाँ! अर्थात् काल के अणु हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो वे परमाणु कहलाते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, वे सब अणु अलग प्रकार के हैं!

**प्रश्नकर्ता :** तो ये जो अणु हैं, उन्हें जड़ नहीं कह सकते? ये जो कालाणु हैं, वे रूपी नहीं हैं? कालाणु अरूपी कहलाते हैं?

**दादाश्री :** सभी अरूपी, सिर्फ जड़ तत्त्व ही रूपी है।

**प्रश्नकर्ता :** दादाजी, आपने बताया कि काल के अनंत अणु हैं, वे अणु अर्थात् ये फिज़िक्स में जो अणु हैं, वैसे अणु?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन वे अणु दिखाई देते हैं, वे रूपी हैं और कालाणु अरूपी हैं।

**प्रश्नकर्ता :** समय निश्चेतन है या चेतन?

**दादाश्री :** निश्चेतन है और अरूपी है।

**प्रश्नकर्ता :** फिर भी कालाणु हैं उसके?

**दादाश्री :** अणु के रूप में कालाणु बह रहे हैं। काल, अणु रूपी है इसलिए उन्हें वापस बुलाया जा सकता है (कालाणुओं को)।

## एक कल्प जितने ही कालाणु...

कृष्ण भगवान ने जो कुछ कहा था, वह वाणी काल में चली गई और काल के अणु बन गए। उस समय के काल के अणु हैं। महावीर भगवान के समय का काल, ऋषभदेव भगवान के समय का काल, उसमें जो-जो बोला गया था वह सब, इस ब्रह्मांड में किसी जगह पर वे सभी अणु हैं। उन्हें बुलाने वाला होना चाहिए। तब वे वापस वही बोलेंगे। आज खींचा जाए तब भी बोलेंगे, वही के वही शब्द निकलेंगे।

लेकिन अपनी वे सारी शक्तियाँ, सारी विद्या खत्म हो गई है। वर्ना इन सब का उपयोग करते थे। आज कोई साधना करे, प्रयोग करे तो उन अणुओं को बुलाकर वापस सुन सकता है।

**प्रश्नकर्ता :** उन्हें किस प्रकार से बुलाया जा सकता है?

**दादाश्री :** तरीका नहीं होता उसका। वह तो यदि साइन्टिस्ट अंत तक पहुँचें तो बुला सकते हैं। लेकिन उन्हें कौन बुला सकता है? अंतिम ग्रेड के तीन सौ साठ डिग्री वाले, अन्य कोई भी उन परमाणुओं का नाम तक नहीं ले सकता। लेकिन ऐसे हैं सचमुच में।

**प्रश्नकर्ता :** तो दादा, वह क्या कहलाता है? यदि काल को वापस बुला सकें तो?

**दादाश्री :** वे काल को नहीं बुलाते। उन्होंने उस समय क्या कहा था, उसे बुलाते हैं। कालाणु इसलिए हेल्पिंग है कि आप फिर से उस दिन का सुन सकते हो। उसे सुन सकते हो लेकिन आप में वैसी शक्ति होनी चाहिए। इस काल में मैंने वैसी शक्ति वाला कोई नहीं देखा है। अभी मेरे पास भी ऐसी शक्ति नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** तो ऐसी शक्ति प्राप्त कहाँ से की जा सकती है?

**दादाश्री :** उस शक्ति को प्राप्त करके क्या करना है? इतनी सब्ज़ी-भाजी मिलती है, फिर उसकी क्या ज़रूरत है? वह शक्ति मिल जाए तो इंसान कहाँ जाकर बैठेगा फिर? कूदना सीख जाएगा। बाद में कूदने वाली जाति में जाना पड़ेगा। कूदने वाली जाति आपने देखी है? बंदरों के अलावा और कोई नहीं कूद सकता। नहीं?

अपना विज्ञान अभी वहाँ तक नहीं पहुँचा है, आंतरिक विज्ञान। यह केवलज्ञान के अलावा अन्य किसी का काम नहीं है। हमारा ही वह रुका हुआ है न, वहीं पर रुका हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** तो हिटलर के और चर्चिल के परमाणु अभी भी होंगे हवा में?

**दादाश्री :** नहीं, वाणी होगी, वाणी के कालाणु होंगे। वे कालाणु घूमते ही रहते हैं। जब यह *आरा* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) खत्म हो जाएगा तब सर्वस्व नाश हो जाएगा। फिर नए सिरे से वापस उत्पन्न होगा।

**प्रश्नकर्ता :** उन सब का विनाश हो जाएगा?

**दादाश्री :** हाँ, इस जगत् का नाश नहीं होगा। लोग कहते हैं कि प्रलय होती है लेकिन प्रलय नहीं होती। प्रलय क्या कभी हो सकती है दुनिया में? सनातन वस्तुओं का प्रलय हो सकता है? विनाशी वस्तुओं का प्रलय होता है, यानी कि अवस्थाओं का प्रलय होता है।

**प्रश्नकर्ता :** ये जो कालाणु हैं, उनमें एक कल्प की वाणी होती है या अनंत कल्पों की वाणी होती है?

**दादाश्री :** एक ही कल्प की, बाकी सब का नाश हो जाता है। कल्प बदलता है न, तब नष्ट हो जाती है सारी। एक हद तक जमा होने के बाद में फिर सब बंद। वर्ना तो इस दुनिया का अंत ही नहीं आएगा न! दो चौबीसियों तक, एक अवसर्पिणी चौबीसी और एक उत्सर्पिणी चौबीसी। अड़तालीस तीर्थंकर हो जाएँ और उसमें जो कुछ भी होता है, वह सब। फिर खत्म हो जाता है।

## निश्चय और व्यवहार काल

**प्रश्नकर्ता :** समय क्या है? जन्म-मरण के बीच का जो काल है, क्या वही समय है?

**दादाश्री :** नहीं, सिर्फ वही समय नहीं है। जन्म-मरण के बीच में तो बहुत सारे समय होते हैं, दो-चार बार तो डिवॉर्स भी हो चुके होते हैं। समय का अर्थ क्या है? नए को पुराना करना और पुराने को नया करना। वह है समय का अर्थ। अब समय के बारे में और कुछ जानना है? इसका अर्थ यह है।

**प्रश्नकर्ता :** आप जिसे काल कहते हैं, काल शब्द का उपयोग करते हैं उसमें, विचार की एक गांठ फूटी, विचार शुरू हुआ, उसका अंत आया, क्या आप उस अवधि को काल कहते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, वह काल तो बहुत बड़ा कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो आप काल किसे कहते हैं?

**दादाश्री :** काल तो, ऐसा है कि यह कमीज़ मैली है, इतना कहने जाएँ न, उससे पहले तो काल से बाहर निकल चुके होते हैं। काल तो समय परिणामिक है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो क्रमिक क्रिया है, वह काल के अंदर की है या काल से बाहर की है?

**दादाश्री :** मोटे काल की। कितना ही काल, संख्यात काल इकट्ठा हो जाए, तब क्रमिक क्रिया होती है।

**प्रश्नकर्ता :** क्रमिक क्रिया होती है लेकिन वह एक समय की अवधि में ही है न? समय के अधीन तो है न, वह क्रिया?

**दादाश्री :** सारी क्रमिक क्रिया समय के अधीन है। कोई भी मूल अविनाशी वस्तु (तत्त्व) समय के अधीन नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा मानें कि इस समय के अधीन जो क्रियाएँ हो रही हैं उनके द्वारा प्रगति होगी, तब तो फिर कभी भी मुक्त नहीं हो पाएगा न, दादा?

**दादाश्री :** नहीं! वह कभी भी मुक्त नहीं हो पाएगा। समय के अधीन तो सिर्फ *पुद्गल* ही है। मुक्ति समय के अधीन नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो जैन परिभाषा में 'समय' शब्द आता है और जो तीर्थंकरों ने बताया है, शब्द समय, वह ज़रा समझाइए न, कि समय क्या है?

**दादाश्री :** तू समय किसे कहता है?

**प्रश्नकर्ता :** छोटा-बड़ा सबकुछ जो बीत रहा है न, पास हो (गुज़र) रहा है, वह समय है।

**दादाश्री :** ओहोहो! ठीक है। अर्थात् मूल वस्तु को तू समय कह रहा है। काल के छोटे से छोटे भाग को समय कहा जाता है।

फिर उससे आगे सब अलग-अलग, घंटे कहलाते हैं, मिनट कहलाते हैं, पल कहलाते हैं।

यह जो काल है, उसका भी विभाजन होते-होते-होते समय तक जाता है। समय का फिर विभाजन नहीं हो सकता। समय के दो टुकड़े नहीं हो सकते। अब, यह समय इतना छोटा भाग है कि आँख झपकने से भी बहुत छोटा। हम जिसे पल कहते हैं न, समय उस पल से भी छोटा है। पल के भी भाग किए जा सकते हैं लेकिन समय का भाग नहीं हो सकता। एक समय, दो समय, तीन समय, लेकिन समय के टुकड़े नहीं, पीसेज़ नहीं। अत: काल में समय आ जाता है, सब से अंतिम। वह अविभाज्य भाग है उसका।

अब, काल दो प्रकार के हैं। एक है व्यवहार काल, उसे हम क्या कहते हैं? पल, विपल, फिर मिनट, घंटा, दिन, सप्ताह, पखवाड़ा, महीना और अंत में हम वर्ष तक कहते हैं। जबकि जो मूल, वास्तविक काल है, निश्चय काल है, उसे समय कहा जाता है।

हम कितने भाग को समय कह सकते हैं? तो, ये जो अणु रूपी हैं, उनका छोटे से छोटा भाग परमाणु कहलाता है। अणु विभाज्य होता है। ये लोग अणु को भी तोड़ते हैं, लेकिन परमाणु अविभाज्य होता है। अब परमाणु पूरे ब्रह्मांड में भरे हुए हैं। एक परमाणु दूसरे परमाणु को पार करे या जब एक परमाणु, एक स्पेस के प्रदेश का उल्लंघन करता है, गति करते-करते पूरे परमाणु को पार कर लेता है तो उसे समय कहा गया है। ऐसा नियम रखा गया है।

जो व्यवहार काल है, वह रिलेटिव है और जो निश्चय काल है, वह रियल है।

**प्रश्नकर्ता :** व्यवहार काल अर्थात् ये सभी साल जो बीते, आज दो साल हो गए, पाँच साल हो गए, वह?

**दादाश्री :** साल, मिनट, सेकन्ड, बारह बज गए, इतने बज गए, वह सब रिलेटिव है और निश्चय काल के तो वास्तव में परमाणु हैं,

उसके खुद के। इसलिए अविनाशी है, रियल है। वह द्रव्य है एक प्रकार का, तत्त्व है।

**प्रश्नकर्ता :** वह, जिसे टाइम कहा गया है यानी समय, क्या उसे हम देख नहीं सकते?

**दादाश्री :** नहीं। 'समय' वस्तु दिखाई नहीं देता।

**प्रश्नकर्ता :** 'आठ बज गए', ऐसा क्यों कहते हैं?

**दादाश्री :** वह तो व्यवहार काल है। वह तो हमारा सेट किया हुआ व्यवहार काल है। यह वह नहीं है जिसे निश्चय काल कहा जाता है। निश्चय काल तो समय को कहते हैं। उसके बाद आगे बढ़ते-बढ़ते काल, समय के बाद मेषोन्मेष यानी आँखों की पलकें झपकने में लगने वाला टाइम। ऐसा करते-करते मिनट, घंटे, साल चलते हैं लेकिन मूल शुरुआत यहाँ से हुई।

जगत् समयसार तक नहीं पहुँचा है। इस काल का जो अविभाज्य स्वरूप है, वह समय है। काल का भाज्य स्वरूप कहाँ-कहाँ कहा जा सकता है? यह तो ऐसा है कि साल के भाग किए जाएँ तो उसे बारह महीनों में विभाजित किया जा सकता है। महीनों का भाग किया जाए तो उसे तीस दिनों में बाँटा जा सकता है, दिनों का भाग किया जाए तो चौबीस घंटों में बाँटा जा सकता है, घंटों का भाग किया जाए तो साठ मिनटों में बाँटा जा सकता है, मिनट के भाग किए जाएँ तो साठ सेकन्ड में बाँटा जा सकता है लेकिन सेकन्ड का छोटे से छोटा भाग समय है, इन लोगों ने ऐसी खोज की है। स्पिरिचुअल साइन्टिस्टों ने कैसी खोज की है, इन वैज्ञानिकों ने! इन महावीर स्वामी और चौबीस तीर्थंकरों ने, उनके अपने समय में? काल का जो छोटे से छोटा भाग है, वह समय है, वहाँ तक पहुँचे थे। मेरा तो पाँच सौ समय तक भी नहीं है, वे एक समय पर पहुँच गए थे।

जो उस समय को पहचान ले, उसे केवलज्ञान हो जाता है। लोग पल को जानते है, विपल को जानते है, लेकिन विपल से आगे नहीं

जानते। लोग अणु तक पहुँचे हैं लेकिन परमाणु तक नहीं पहुँचे हैं। परमाणुओं तक पहुँचेंगे तो केवलज्ञान हो जाएगा। स्पेस के बारे में तो बहुत नहीं समझते हैं न, लोग अभी!

भगवान का रेवॉल्यूशन एक समय का होता है। इन लोगों का रेवॉल्यूशन एक सेकन्ड का भी नहीं होता। काल की यूनिट समय है। किसी के रेवॉल्यूशन यदि समय तक पहुँच जाएँ तो वह केवलज्ञानी है।

## काल दृश्य के लिए है, द्रष्टा के लिए नहीं

**प्रश्नकर्ता :** जो काल प्रवर्तमान है, उसमें जो सापेक्ष काल का प्रवर्तन है और दरअसल जिसके सानिध्य में यह सब फिरता है, क्या उसमें काल है? बिगिनिंग और एन्ड का जो चक्कर है, उसका खुद का जो काल है, क्या वह सापेक्ष काल है?

**दादाश्री :** हाँ, यह जो सापेक्ष काल है, वह काल देखने वाले का नहीं है। जो बिगिनिंग को देखता है, एन्ड को देखता है, वह देखने वाले का काल नहीं है। अब बुद्धि उस बिगिनिंग और एन्ड को देखती है। बुद्धि ऐसा देख सकती है कि बिगिनिंग हुई लेकिन वह सर्वांश रूप से नहीं देख सकती। अतः हम उसे (बुद्धि को) द्रष्टा नहीं मानते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अब जहाँ पर सर्वांश दर्शन है, क्या वहाँ पर काल है?

**दादाश्री :** 'दर्शन' में काल नहीं है। दृश्य में काल है, द्रष्टा में काल नहीं है।

## काल नहीं है इल्यूज़न

**प्रश्नकर्ता :** कुछ लोग तो कहते हैं कि टाइम भी एक इल्यूज़न (भ्रांति) है।

**दादाश्री :** नहीं-नहीं! इल्यूज़न नहीं है। दुनिया की कोई भी चीज़ इल्यूज़न नहीं है। नथिंग इज़ दी इल्यूज़न। इल्यूज़न इज़ दी

इल्यूज़न। नॉट इल्यूज़न इज़ दी इल्यूज़न। (कुछ भी भ्रांति नहीं है। ऐसा मानना कि भ्रांति है, वही भ्रांति है। जो भ्रांति नहीं लगती, वही भ्रांति है।) आप रेगिस्तान में जाते हो और वहाँ पर आगे-आगे पानी दिखाई देता है, वह इल्यूज़न है। इल्यूज़न इज़ इल्यूज़न। अन्य कोई भी चीज़ इल्यूज़न है ही नहीं। थोड़ा-बहुत समझ में आया या नहीं? ये दिमाग़ में उतर जाएँ, ऐसी बातें नहीं हैं? ये बातें तो बुद्धि से परे हैं, और जगत् में बुद्धि की बातें हैं।

मैंने इस प्रवाह को देखा है। यह प्रवाह किस प्रकार से बह रहा है, वह सब समझना तो पड़ेगा न? यों ही गप्प चलेगी क्या?

## संयोग होते हैं, संयोग काल के साथ ही

इस जगत् में जो कुछ भी हो रहा है, वह साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है। ये संयोग ही हैं। इनका कोई कर्ता नहीं है। संयोग ही सबकुछ चलाते हैं। संयोगों के मिलने पर कार्य होता है। संयोगों को कौन इकट्ठा करता है? कोई इकट्ठा नहीं करता। अपने आप ही, संयोग-काल उसे इकट्ठा कर देते हैं। किसी खास काल में जो होना होता है, वह काल तत्त्व है।

सब संयोगी प्रमाण इकट्ठे नहीं हो जाते तब तक कोई चाय भी नहीं बना सकता। हर एक संयोग काल सहित ही होता है।

संयोग और संयोग-काल, दोनों साथ में ही होते हैं और संयोग-काल का प्रमाण बहुत बढ़ जाता है तो *अटकण* (जो आगे नहीं बढ़ने दे) आकर खड़ी हो जाती है। तो उसे ढूँढ निकालना। और उसका सतत परिचय होने लगे, अधिक काल तक वही संयोग रहें, तब समझ लेना कि यह *अटकण* आई।

आठ और पैंतीस मिनट पर जो होना है, वह काल के *लक्ष* (जागृति) में रहता ही है। वह एविडेन्स है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव। ये सब इकट्ठे होते हैं, तब कार्य होता है। इन सब को काल मिलता है तब सारा कार्य हो जाता है।

## संयोग मात्र वियोगी स्वभाव वाले

ऐसा है न, जिस-जिसका हिसाब होता है न, उसे वहीं पर रखते हैं। अब, हम आएँगे, तब दस दिन मुंबई को मिलेंगे। अधिक नहीं मिलेगा न! और कुछ नहीं है। संयोग और शुद्धात्मा दो ही हैं। मन में विचार आए, दिखाई दे तो हमें जानना है कि संयोग आया, वह सूक्ष्म संयोग है और वे संयोग वियोगी स्वभाव वाले हैं।

इसलिए आपको ऐसा नहीं कहना पड़ेगा कि यह जाए तो अच्छा। यहाँ पर सभी मेहमान आते रहेंगे न? बड़ौदा से आते हैं, यहाँ से आते हैं, सब आते रहेंगे न? जो आएँ, उन्हें 'आइए, पधारिए' कहना, फिर उनकी सेवा करना लेकिन ऐसा सोचते ही नहीं हैं न, कि कब जाएँगे! ये सब तो इस ज्ञान को जान चुके हैं कि संयोग वियोगी स्वभाव वाले हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यहाँ पर तो, वह समय आने पर जाने वाला ही है।

**दादाश्री :** हाँ। वर्ना यदि आप कहो कि 'जाओ' फिर भी नहीं जाएँगे। आप कहते हो कि 'हमें ज़रा काम है, आज आप जाओ।' तब वे कहेंगे, 'मैं परसों ज़रूर चला जाऊँगा। आप ऐसा करना कि, आप नहीं होंगे फिर भी मेरा चल जाएगा, मैं खाने का कर लूँगा।' लेकिन वह जाता नहीं है। उससे काल चिपका हुआ है, उस काल के पूरे हुए बिना संयोग छोड़ेंगे नहीं न! लेकिन फिर कितनी ही जगहों पर तो ऐसा होता ही है न! मेहमान आएँ तब मन में ऐसा रहता है, 'ये कब जाएँगे, कब जाएँगे'। अब सिर्फ हमारे महात्मा ही जानते हैं कि 'व्यवस्थित है, संयोग वियोगी स्वभाव वाले हैं'। इसलिए फिर यदि उनके मन में उल्टे भाव हो जाते हैं, तब भी प्रतिक्रमण कर लेते हैं न! करते हैं या नहीं करते, उल्टे भाव आएँ तब? उल्टे भाव तो आते ही हैं मनुष्यमात्र को, लेकिन फिर प्रतिक्रमण कर लेते हैं ये सारे। ये वियोगी स्वभाव वाले हैं, फिर तू क्यों ऐसा करता रहता है? वियोगी स्वभाव वाले नहीं हैं क्या?

**प्रश्नकर्ता :** वियोग ही है। संयोग हुआ है उसका वियोग होना ही है।

**दादाश्री :** अपने आप ही हो जाता है, फिर चाहे सुख हो या दुःख। सुख भी वियोगी है और दुःख भी वियोगी है। सुख हमेशा रहता है क्या? ये सुख हैं ही नहीं न! ये तो कल्पित, कल्पना है सिर्फ।

**प्रश्नकर्ता :** सिनेमा के रोल जैसा है यह तो।

**दादाश्री :** जगत् अनादि से बह ही रहा है। इसलिए इसमें कोई भी संयोग टिकते नहीं हैं। कुछ देर के लिए दिखाई देते हैं और खत्म!

**प्रश्नकर्ता :** क्या यह काल का प्रभाव है?

**दादाश्री :** काल तो सभी जगह है। काल गलत नहीं है, अपनी समझ गलत है।

इसलिए कितने ही कालों में धर्म की विजय होती है। इस काल में ऐसा दिखाई देता है कि अधर्म की विजय हो रही है। वास्तव में ऐसा होता नहीं है।

## भावों का राजा, 'खुद' ही

**प्रश्नकर्ता :** तो दादा, ऐसी कोई विधि है जिससे कि अब काल को सुधार सकें? अच्छा काल लाया जा सके?

**दादाश्री :** आपकी भावना बदलेगी तो अच्छा काल आएगा। भावना खराब होगी तो खराब काल आएगा।

**प्रश्नकर्ता :** तो काल पर भाव का असर होता है?

**दादाश्री :** भाव पर ही आधारित है न, सब। काल को कोई लेना-देना नहीं है। वह न तो सुकाल है, न ही दुकाल है। आपका भाव अच्छा होगा तो सुकाल और भाव उल्टा होगा तो दुकाल।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या हमारे भाव से हमें काल से जो भी चाहिए, वह मिल सकता है?

**दादाश्री :** सभी चीज़ें मिल सकती हैं। आप ही राजा हो। ये सब बदलाव अपने भाव से ही होते हैं।

## पाँच आज्ञाएँ बनाती हैं, काल से परे

**प्रश्नकर्ता :** भूत-भविष्य-वर्तमान, उस अर्थ में, सापेक्षता और काल व निर्पेक्षता और काल, इन दोनों के काल में क्या फर्क है?

**दादाश्री :** निर्पेक्षता को काल टच ही नहीं होता, निर्पेक्ष वस्तु को। सापेक्ष पर ही काल का असर होता है।

**प्रश्नकर्ता :** अब, सापेक्ष में निरा भूतकाल ही है।

**दादाश्री :** उसे भूतकाल कहो या कुछ भी कहो लेकिन वह सब सापेक्ष पर लागू होता है। निर्पेक्ष पर तो कुछ भी लागू नहीं होता। उसी को कहते हैं निर्पेक्ष। भगवान निर्पेक्ष हैं। उन्हें कुछ भी स्पर्श नहीं करता और बाधक भी नहीं है, टाइमिंग-वाइमिंग, इसीलिए तो हम कहते हैं न, कि दादा के भक्तों को काल, कर्म और माया छू नहीं सकते।

**प्रश्नकर्ता :** भक्त की कोटि तो काल में आती है न? रिलेटिव में आया न?

**दादाश्री :** यह तो ऐसा है कि मुझे बोलना नहीं आया इसलिए भक्त कह रहा हूँ। बाकी, ये सब तो ज्ञानी कहे जाएँगे। अपने यहाँ भक्त तो कहा ही नहीं जाता न, महात्मा कहते हैं। यदि इस ज्ञान में, पाँच आज्ञा में रहें तो काल, कर्म और माया बाधक नहीं हैं।

**प्रश्नकर्ता :** मोक्ष प्राप्ति के लिए जो सापेक्ष है, जो काल से बंधा हुआ है, उसका अवलंबन लें तो क्या हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं?

**दादाश्री :** उसकी ज़रूरत ही नहीं है हमें। वह तो काल से बंधा हुआ है, तो वह काल आएगा तब मुक्त हो जाएगा। अपना तो यह अलग पद है।

**प्रश्नकर्ता :** ठीक है, लेकिन काल का अवलंबन ले लें तो हम पहुँच पाएँगे क्या?

**दादाश्री :** काल का अवलंबन लेना ही नहीं है न!

**प्रश्नकर्ता :** यह बात तो ठीक है कि लेना नहीं है लेकिन यदि लें तो पहुँच पाएँगे क्या?

**दादाश्री :** लेना ही नहीं है न। लेगा तो उसका बिगड़ेगा। काल का अवलंबन लेने की ज़रूरत ही क्या है? ऐसा कोई स्थिर काल है ही नहीं जिसका अवलंबन लिया जा सके। सरकता हुआ काल है, सरकता ही रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन उसमें जो 'मैं'पन बंध गया है और 'मेरा'पन बंध गया है, वह तो स्थिर काल है न?

**दादाश्री :** नहीं, वह भी स्थिर काल नहीं है, सरकता हुआ काल ही है। यह काल तो सरकता ही रहता है। इसीलिए उसके साथ संबंध स्थापित नहीं हो सकता न?

## ज्ञानी, कालातीत

**प्रश्नकर्ता :** भगवान कालातीत हैं, असमय। समय से नहीं मिल सकते, किसी भी साधन से नहीं मिल सकते। और हम सभी समय में जन्म लेते हैं, रहते हैं और यह सारी लीला और स्वप्न देखते हैं तो काल में रहकर कालातीत को कैसे पाया जा सकता है?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं। 'मैं काल से परे हूँ, द्रव्य से परे हूँ, क्षेत्र से परे हूँ, भाव से परे हूँ और भव से भी परे हूँ। देह से भी परे हूँ, मन से भी परे हूँ, वाणी से भी परे हूँ।' यह बात सही है। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव, वे दादा के लिए नहीं हैं। कोई हमें बंधन में नहीं बाँध सकता। समय हमें बंधन में नहीं बाँध सकता और आपको तो सोने के टाइम पर, 'अब मेरा टाइम हो गया', कहते हो। वे हैं टाइम के बंधन वाले। क्षेत्र का बंधन, मुझे इसके अलावा कहीं और नींद नहीं आएगी। तो भाई यहाँ पर बंध गया है तू!

**प्रश्नकर्ता :** यह सब तो मन की लीला हुई, लेकिन ये जो सांसें चल रही हैं, वह भी काल ही है न?

**दादाश्री :** उससे हमें क्या लेना-देना? सांसों से, इस शरीर से 'मैं' बिल्कुल अलग हूँ।

**प्रश्नकर्ता :** जीते जी मृत जैसी स्थिति हो जाए तो क्या उसे कालातीत स्थिति में पहुँचना कहा जाएगा? आपकी तरह?

**दादाश्री :** लेकिन ऐसा होना चाहिए न! जीते जी मृत। मृत की तरह जिए, तो बेटा पैसे उड़ा रहा हो तो मरा हुआ इंसान क्या करेगा? देखता रहेगा। जीवन वैसा होना चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, उनमें से विशेष रूप से कौन सा फैक्टर महात्माओं के सम्मुख आता है?

**दादाश्री :** ऐसा है, हमारे साथ अब क्या हुआ है? पर-द्रव्य रूपी थे, अब स्व-द्रव्य रूपी हो गए। परक्षेत्र में थे, अब स्वक्षेत्र में आ गए हैं। पर-काल में थे, अब स्व काल में आ गए। स्व काल कैसा है? सनातन है और पर-काल में विनाशी था। अब स्वभाव में आ गए, परभाव से छूट गए। और ये सारे जो *गलन* हैं, उनमें तो कोई बदलाव नहीं होगा। वे द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव, जिस भाव से *गलन* होने होंगे, उस अनुसार होते रहेंगे। वह हो चुकी चीज़ है, उसमें कोई बदलाव नहीं हो सकता।

ज्ञानी पुरुष का मतलब क्या है? दर्पण! जैसा आपका होगा वैसा ही दिखाई देगा। क्योंकि ज्ञानी पुरुष स्व-द्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वभाव, और स्वकाल में रहते हैं। चारों ही प्रकार से स्व में रहते हैं। सिर्फ अँगूठे को छू जाए तब भी कल्याण हो जाएगा।

## जहाँ विशेषण है, वहाँ काल की मर्यादा

**प्रश्नकर्ता :** कालातीत तत्त्व जो है, उसमें और अक्रम विज्ञान में समानता और अंतर समझाने की कृपा कीजिए।

**दादाश्री :** अक्रम विज्ञान में अक्रम तो विशेषण है लेकिन विज्ञान और कालातीत तत्त्व दोनों एक ही हैं। अर्थात् ये विशेषण दो प्रकार के हैं। इस विज्ञान को जानने के लिए क्रम मार्ग और अक्रम मार्ग हैं। तो अपना यह 'अक्रम' मार्ग है, सिर्फ। बाकी, जो विज्ञान शब्द है, वही कालातीत तत्त्व है। उसमें अंतर नहीं है। और जो विशेषण है, जहाँ पर ज़रूरत है वहाँ पर हमेशा ही विशेषण रहता है। बाद में आत्मा पर विशेषण टिकता ही नहीं है। विशेषण का मतलब क्या है कि कुछ काल तक वह टिकता है और फिर वह गायब हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** यानी कि यह जो विशेषण है, क्या उसके लिए काल की मर्यादा होती है?

**दादाश्री :** हाँ, काल की मर्यादा है ही, उसी को विशेषण कहते हैं। इसका मतलब क्या है कि काल के आधार पर उसे प्राप्त होने वाली चीज़। फिर जब काल की मर्यादा खत्म हो जाती है, तब विशेषण खत्म हो जाता है।

## निश्चित नहीं, व्यवस्थित है

यह तो अनुभव वाली वाणी कहलाती है। शास्त्र में ऐसा सब लिखा हुआ नहीं होता और हमें समझ में नहीं आता। करोड़ों उपाय करके, करोड़ों जन्मों में भी आत्मा प्राप्त हो सके, ऐसा नहीं है। साधु महाराजों से पूछने जाएँ, तो कहेंगे, 'भाई, आपने क्या त्याग किया है? ऐसा है कि अभी तो, कितने ही जन्मों तक त्याग करोगे तब भी आत्मा प्राप्त नहीं हो सकेगा, आसान चीज़ नहीं है यह।' अनंत जन्मों से हैं, क्या कोई दो-पाँच जन्मों से हैं हम सब? अनंत जन्मों से भटक रहे हैं तो क्या कभी भी हम ऐसी उच्च दशा तक नहीं पहुँचे होंगे? तो कहते हैं, 'नहीं! तीर्थंकरों के पास बैठे थे, तब भी यह बूझ (मुक्त नहीं हुआ) नहीं पाया।

चौबीसियाँ आती रहती हैं और वहाँ जाकर बैठा रहता है। सुनता सबकुछ है, लेकिन जैसा था वैसे का वैसा ही रहता है। भगवान ने

कहा है कि, 'भाई इसमें तीर्थंकरों का दोष नहीं है और इन जीवों का भी दोष नहीं है। इनका काल परिपक्व नहीं हुआ है।' काल परिपक्व होना चाहिए न।

**प्रश्नकर्ता :** तो दादा, यह सब निश्चित ही है?

**दादाश्री :** निश्चित है, लेकिन इस प्रकार से निश्चित नहीं है। निश्चित है भी सही और निश्चित नहीं भी है। इसलिए हम 'व्यवस्थित' कहते हैं न, आप काम करते जाओ। अगर निश्चित होगा तो बिगड़ जाएगा। निश्चित अर्थात् 'जो होना है, वह होना ही है', लेकिन ऐसा नहीं है। ऐसा निश्चित होता तो आप यहाँ पर आते ही नहीं। या फिर यहाँ पर आओगे तो सही लेकिन आपके भाव कैसे रहेंगे? नहीं गए होते तो भी क्या था, ऐसा भाव करते। इस प्रकार भाव बिगाड़ देते सभी, भाव बिगड़ जाते।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, नीति और भाव बिगड़ जाते।

**दादाश्री :** हं, ऐसा होता है। ज्ञानी पुरुष तो जैसा है वैसा बताएँगे। उस अनुसार चलना।

सभी लोग काल को धक्का लगाते हैं। हर एक कार्य में काल भी मुख्य वस्तु है। काल परिपक्व हुए बिना कुछ भी नहीं हो सकता। अतः काल परिपक्व होने देना। उसका विरोध मत करना। बाकी, काल परिपक्व हुए बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या सभी चीज़ों के लिए मुख्यतः काल की ज़रूरत है? क्या काल स्वतंत्र रूप से काम करता है?

**दादाश्री :** हाँ, और यदि काल मुख्य वस्तु होती तो काल सब पर रौब जमाता कि 'मैं हूँ इसलिए आप सब हो।' इसलिए काल से भी कहते हैं कि 'तू अपने बाप के घर जा। तू नहीं होगा तो भी चलेगा, तू रौब मत जमा।'

**प्रश्नकर्ता :** काल के अधीन भी नहीं है?

**दादाश्री :** नहीं। इसलिए व्यवस्थित के अधीन कहा है। हम सब इकट्ठे हो जाएँगे तो काम हो जाएगा। काल से कहते हैं कि हम सब इकट्ठे हो जाएँगे तो सब काम हो जाएगा। यदि सिर्फ काल के अधीन होता तो फिर करने को रहा ही क्या? ऐसा ही कहते, 'काल परिपक्व होगा तब इसका मोक्ष हो ही जाएगा।' लेकिन ऐसा नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** फिर अज्ञानता के भाव से कर्म बंधन होता है, तो उसका क्या करना चाहिए?

**दादाश्री :** वे तो बंधते ही रहेंगे। यानी कि भान नहीं है और ऐसा कहते हैं, 'काल परिपक्व होगा, तब होगा।' ऐसा उल्टा बोलते हैं इसलिए उल्टे कर्म बंधते हैं और फिर उल्टा ही होता है।

ऐसा है न, जब काल परिपक्व होता है तब हमें मोक्ष जाने के ऐसे सब साधन मिल जाते हैं, वैसे सत् शास्त्र मिल जाते हैं, ज्ञानी पुरुष मिल जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** उसी अनुसार सभी संयोग मिल जाते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, सभी साधन मिल जाते हैं। सभी संयोग बदलते रहते हैं। सभी साधन मिल जाते हैं या नहीं, काल परिपक्व होने पर?

**प्रश्नकर्ता :** सब मिल जाता है।

**दादाश्री :** ज्ञानी पुरुष मिल जाते हैं, सब मिल जाता है। अर्थात् आप भी थे और मैं भी था, लेकिन काल परिपक्व नहीं हुआ था। आज काल परिपक्व हुआ, तब आप मुझसे मिले।

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा काल परिपक्व हो जाए, तभी यह ज्ञान मिलता है न?

**दादाश्री :** काल परिपक्व हुए बिना तो कभी आम भी नहीं आता पेड़ पर।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, तो फिर मोक्ष का अवलंबन काल है, ऐसा हुआ न?

**दादाश्री :** यदि काल से ऐसा कहें कि 'काल तू ही कर रहा है', फिर तो काल पूरी दुनिया का *ऊपरी* बन गया। यानी कि सत्ताधीश बन गया और सत्ताधीश बन गया तो फिर वह वीतरागों का विज्ञान नहीं है। कोई भी वस्तु सत्ताधीश मानी जाए, तो वह वीतरागों का विज्ञान नहीं है। जगत् में कोई भी *ऊपरी* नहीं है।

कोई कहे कि यह जगत् ईश्वर ने बनाया है तो फिर वह वीतरागों का विज्ञान नहीं है। सत्ताधीश, यानी कि ऐसा कहा कि 'काल ही ऐसा करता है', तो (काल) सत्ताधीश नहीं है। फेडेरल कॉज़ेज़ (समुच्चय कारण) हैं। इसके ये सब जो कॉज़ेज़ हैं, वे फेडेरल कॉज़ेज़ हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर काल का क्या महत्व है? तो फिर कुछ भी नहीं है न?

**दादाश्री :** नहीं, काल वन ऑफ द कॉज़ेज़ है। पार्लियामेन्टरी पद्धति है यह सारी। इसमें अन्य कुछ भी नहीं है। यह जगत् निर्अहंकारी स्वरूप है। कोई ऐसा नहीं कह सकता कि 'यह मैंने किया'। इसलिए ज्ञानी कहते हैं न, हम तो खुले तौर पर कहते हैं न, कि भाई हम निमित्त हैं। हम इसके कोई कर्ता नहीं हैं।

## काल और पुरुषार्थ की भेदरेखा

एक व्यक्ति भगवान के पास आया और कहा कि 'भगवान, ऐसा कीजिए कि मुझे इसी जन्म में मोक्ष मिल जाए। आप (जो भी) कहें वह संयम लेने को तैयार हूँ।' तब भगवान ने कहा 'तू संयम लेने को तैयार हो जाएगा, लेकिन तेरी भव-स्थिति परिपक्व नहीं हुई है।' तब उसने कहा, 'साहब, यह भला फिर नया क्या है? हम और आप दो ही हैं यहाँ। मैं संयम लेने वाला हूँ और आप देने वाले हैं, बीच में ऐसा लफड़ा कहाँ लाए?' तब भगवान ने कहा, 'भव-स्थिति परिपक्व हुए बिना नहीं हो सकता।' संयम देने वाले हैं, लेने वाला भी ऐसा

शूरवीर है। तो कहा, 'नहीं।' 'भव-स्थिति का बहाना बना रहे हैं?' बहाना नहीं बना रहे हैं, सचमुच में कह रहे हैं। अर्थात् यह तो ऐसा है कि जिसकी भव-स्थिति परिपक्व हो चुकी हो, उसके लिए यहाँ पर यह काम का है। बेचारे की भव-स्थिति ही (यदि) परिपक्व नहीं हुई होगी तो उसका कैसे हो पाएगा?

**प्रश्नकर्ता :** वह भव-स्थिति अपने समय से पहले परिपक्व की जा सकती है या अपने समय पर ही परिपक्व होगी?

**दादाश्री :** वह अपने समय पर ही परिपक्व होगी। पहले परिपक्व किया जा सके न, तो वह भी, नियमानुसार होगा तभी परिपक्व किया जा सकेगा। खुद के हाथ में सत्ता नहीं दी है। लेकिन कोई ऐसा बलवान हो जो परिपक्व कर सके तो उसे ऐसा हिसाब (संयोग) मिल आएगा। तब हमें ऐसा लगता है इसने भव-स्थिति काटनी शुरू कर दी लेकिन वह कट ही जानी थी इसलिए इस तरह से कटी है। यह तो, इसी इगोइज़म को बढ़ाए, ऐसा फोर्स रहता है। कुछ भी चल सके, ऐसा नहीं है और नहीं चले, ऐसा भी नहीं है। हर एक का व्यवहार अलग है न! कितने ही लोगों के लिए चल सके ऐसा है, कितनों के लिए नहीं चल सकता। ये सब बैठे हैं लेकिन व्यवहार अलग है सभी का। किसी का भी चेहरा एक सरीखा है क्या? सभी की दो आँखें, नाक, कान सब एक सरीखा है लेकिन यों कितना फर्क दिखाई देता है। ऐसा सारा अलग हिसाब है अंदर।

**प्रश्नकर्ता :** यदि यह भव-स्थिति परिपक्व होने पर ही यह मिलना है तो फिर इसमें पुरुषार्थ कहाँ आया?

**दादाश्री :** पुरुषार्थ है ही कहाँ लेकिन? ये तो, भ्रांति को पुरुषार्थ कहा जाता है। प्रयत्न को पुरुषार्थ कहते हैं। पुरुष हुए बगैर, पुरुषार्थ किस तरह से हो सकता है? लेकिन यदि इसे पुरुषार्थ नहीं कहेंगे तो लोग फिर पानी में बैठ जाएँगे (प्रयत्न करना छोड़ देंगे)। क्रमिक मार्ग है इसलिए पुरुषार्थ तो कहना ही पड़ेगा न? 'हंअ... कुछ करूँ...।'

बस! हाँ, अहंकार से। आगे जाकर फिर इस अहंकार को विलय किया जाता है।

समय पुरुषार्थी नहीं है, पुरुष पुरुषार्थी है।

## शलाका पुरुष, तिरसठ क्यों?

**प्रश्नकर्ता :** जैनों में चौबीस तीर्थंकर भगवान कहे गए हैं। उसके अलावा चौबीस अवतार कहे गए हैं और चौबीस पैगंबर। ये सब चौबीस क्यों हैं, क्यों तेईस नहीं, कोई पच्चीस नहीं?

**दादाश्री :** वास्तव में चौबीस नहीं हैं, तिरसठ शलाका पुरुषों को इन सब में विभाजित किया गया है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वे तिरसठ क्यों हैं? यह किसने तय किया?

**दादाश्री :** वह कुदरती, नैचुरल एडजस्टमेन्ट है।

**प्रश्नकर्ता :** कबूल करता हूँ लेकिन तिरसठ किसने तय किया? क्यों बासठ तय नहीं किया?

**दादाश्री :** नहीं तो चौंसठ रखते। और वह सिर्फ एक बार के लिए नहीं है, निरंतर यही क्रम है। नैचुरल है! जैसे कि 2H और O, दोनों इकट्ठे होते हैं और अन्य कारण मिलने पर तुरंत ही पानी बन जाता है। अब कोई व्यक्ति कहे कि 'नहीं, यहाँ पर 1H क्यों नहीं है? 3H क्यों नहीं हैं? तो वह तो नैचुरल चीज़ है। इसमें तीर्थंकरों का शब्द और फिर वे तीर्थंकर खुद नहीं कहते कि यह मेरा ज्ञान है। कोई ऐसा नहीं कह सकता कि यह ज्ञान हमारी समझ है। परापूर्व से आया हुआ जो ज्ञान है, यह वही ज्ञान चल रहा है। काल भी नैचुरल रूप से बहता रहता है। वही नियम है। नैचुरल एडजस्टमेन्ट है यह। इसमें कुछ और नहीं चलेगा। नैचुरल में कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता। 2H और O, नहीं? उसके जैसी यह साइन्टिफिक चीज़ है। वर्ना तिरसठ के बजाय, 'तिरसठ अच्छा शब्द नहीं है' ऐसा करके चौसठ भी रखते लेकिन यह साइन्टिफिक है। बहुत अच्छी, कुदरत की सेटिंग कितनी अच्छी है! और व्यवस्थित सेटिंग है!

जब ज्ञान नहीं था तब हमें पहले ऐसे विचार आते थे कि ये साल और दिन भी लोगों की सेटिंग ही है। साल और दिन लोगों की सेटिंग का ही काम हैं। दिवाली भी उनके विकल्प से सेट की हुई है। यदि ये तीन ऋतुएँ ही इसका कारण है तो ये उनके विकल्प की सेटिंग लगती है। ऋतुएँ तो आती ही रहती हैं। ऋतुओं का स्वभाव है कि वे बदलती ही रहती हैं हमेशा। लेकिन उस वजह से साल बना, ऐसा कैसे तय हो सकता है? तब फिर हमने सब सोचा कि पिछले साल जेठ महीने में पेड़ पर आम दिखाई दे रहे थे और इस साल भी जेठ के महीने में ही मिल रहे हैं। इस प्रकार से कई पेड़ बारह महीने में फल देते हैं। अर्थात् इस जगत् का एक एसेन्स है, वह बारह महीने है। दूसरा एसेन्स, महीना है। महीना किस हिसाब से कि पंद्रह दिन चंद्र होता है और पंद्रह दिन नहीं होता। और फिर वापस चंद्र दिखाई देता है। अर्थात् यह महीना एसेन्स है।

इन सब पर हमने बहुत सोच रखा था। ऐसे तो बहुत सारे फेज़िज देख लिए, उसके बाद मैं इसमें घुसा हूँ। वर्ना मुझे भी पहले शंका होती थी कि यह सब कैसे हो सकता है? लेकिन यह सब निर्मित ही है। उसके बाद में समाधान हुआ। मुझे ऐसा लगता था कि इन लोगों ने ज़बरदस्ती घुसा दिया है। लेकिन नहीं, ज़बरदस्ती नहीं है। दिस इज़ बट नैचुरल। फिर लोग पाक्षिक कहते हैं न, उसे मानना चाहिए या नहीं? तो कहते हैं, हाँ, पाक्षिक को भी मानो क्योंकि पंद्रह दिन तक जो चंद्र है, वह कम-ज़्यादा होता ही रहता है। वह दिखाई ही देता है और पंद्रह पूरे हुए कि कुछ नई ही तरह का हो जाता है। अतः पाक्षिक को भी मानो। क्योंकि पंद्रह दिनों तक चंद्र छोटा-बड़ा होता ही रहता है। सप्ताह को मानना चाहिए या नहीं? तो कहते हैं, वह इफेक्टिव है। ये सात वार हैं, पंद्रह वार नहीं रखे तो उसके पीछे भी कारण हैं, कॉज़ेज़ है। ये सात वार निरंतर बदलते ही रहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** उसके क्या कारण हैं? कॉज़ेज़?

**दादाश्री :** बहुत सारे कॉज़ेज़ हैं। अभी तो यह जो चौबीस घंटों

का दिन है, वह ठीक है, बिल्कुल नियमानुसार है। अर्थात् यह जो व्यवहार काल है, वह विकल्प नहीं है। है विकल्प लेकिन नैचुरल विकल्प है, मनुष्यों द्वारा किया हुआ विकल्प नहीं है।

घंटा, मिनट, सेकन्ड सबकुछ पद्धति पूर्वक है। उस पर से घड़ी बनी है। तो क्या घड़ी रोंग है? वह भी सही एडजस्टमेन्ट है। फिर उस पर से हमने दूसरे प्रॉब्लम खड़े किए। वह काँच की शीशी (रेत घड़ी) बनाते हैं न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, सही है, सामायिक करने के लिए।

**दादाश्री :** हाँ, तो इतने मिनट में रेती गिर जाती है तब हमें समझना है कि अपना हो गया। उसी प्रकार से घड़ी वगैरह भी वही सब है। उसका बहाव देख लिया न, बहाव पर से पता चलता है कि कितना समय बीतता है। यह घड़ी भी बहाव ही है। अर्थात् यह सब बहुत समझकर किया गया है।

इस प्रकार से अनंत कालचक्रों में अनंत चौबीसियाँ आती ही रहती हैं। लेकिन चौबीस ही क्यों? वह बुद्धि का प्रश्न हुआ। यहाँ पर ज्ञान का प्रश्न होना चाहिए। यह बुद्धि का प्रश्न आ गया। जैसे कि मनुष्य में कुछ खास प्रकार के ही अंग हैं, दो आँखें हैं और नाक और ये सब हिसाब से हैं। अब वहाँ पर कोई आपत्ति उठाए कि, 'ऐसा क्यों', तो यह तो वैसी बात है। अर्थात् कुछ बातों में गहराई में नहीं उतरना चाहिए। जगत् व्यवस्थित है, सेट है, एक्ज़ेक्ट है, और अनादि प्रवाह है यह, और प्रवाह एक्ज़ेक्ट है, सिर्फ काल के हिसाब से बदलाव होता रहता है। बाकी, प्रवाह वही का वही है। काल के हिसाब से कि कौन सा *आरा* है, उस *आरे* के हिसाब से वहाँ पर उसकी सेटिंग होती रहती है। बाकी कोई भी चीज़ जो सेट हो चुकी है, वह क्रम में है। उसके लिए बुद्धि नहीं चल सकती। वहाँ पर हमें बुद्धि को बंद करना होगा। कुछ जगहों पर बुद्धि काम करती है, अंत तक लेकिन कुछ जगह पर एक हद से आगे नहीं। कोई ऐसा कहे कि इन इंसानों

में ऐसा क्यों है कि दो हाथ और दो पैर हैं? उनमें भी चार-चार होने चाहिए। वह सारी बात बुद्धि से आगे की है। जहाँ देखो वहाँ, मनुष्यों के दो हाथ और दो पैर ही होते हैं!

**प्रश्नकर्ता :** उसके बाद बुद्धि आगे जाकर ऐसा कहेगी कि ये चार क्यों हैं? छः क्यों नहीं?

**दादाश्री :** हाँ, फिर बुद्धि का अंत ही नहीं आएगा, एन्ड ही नहीं आएगा। एन्डलेस हो जाएगा वह।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह चौबीस तो मैथेमैटिक्स, गणित का एक नियम होगा न?

**दादाश्री :** गणित ही है सारा। पूरा गणित ही है। अन्य कुछ भी नहीं है। काल तो मानो कि गणित में आ गया। वह तो गिनती में आ गया है। बदलता सिर्फ क्या है? मनुष्य ग्रहित मिथ्यात्व स्वभाव वाले हैं। बड़े से बड़ा रोग यदि हो तो ग्रहित मिथ्यात्व का है। उस ग्रहित मिथ्यात्व को जो *पूरण* किया था, उसका *गलन* करने में बहुत परेशानी होती है। उस ग्रहित मिथ्यात्व की वजह से केवलज्ञान रुका हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** इस काल के हिसाब से?

**दादाश्री :** हाँ, इस काल की वजह से।

## मोक्षदाता ज्ञानी पुरुष

काल, जो डिसाइडेड वस्तु है, वह किसी को भी नहीं छोड़ता। डिसाइडेड वस्तु किसी को भी नहीं छोड़ती। इसीलिए लोग कहते हैं न, कि काल-धर्म को प्राप्त किया। इसका मतलब क्या है? काल का धर्म ही है, लेना यानी ले ही लेगा। किसी का भी नहीं चलता। भगवान का भी कुछ नहीं चलता। महावीर भगवान भी बहत्तर साल की उम्र में चले गए!

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या कर्म काल के अधीन है?

**दादाश्री :** मुख्य तो काल ही है न! और फिर काल औरों के अधीन है। वह दूसरी चीज़ों के अधीन है। कोई ऐसा स्वतंत्र नहीं है कि किसी के अधीन न हो। यदि स्वतंत्र होता तो वह अहंकार करता कि यह मेरी वजह से चल रहा है। यदि काल स्वतंत्र होता तो वह चिल्लाता कि, 'यह मेरी वजह से चल रहा है, मैं चला रहा हूँ'। यदि भगवान स्वतंत्र होते तो वे कहते कि, 'मैं चला रहा हूँ'। कोई ऐसा नहीं कह सकता कि मैं चला रहा हूँ, ऐसा है यह जगत्। भगवान (आत्मा) भी इसमें फँस गए हैं न! उनका फँसाव तो बेचारे वे ही जानें! अंदर से छूटना तो बहुत है लेकिन छूटें कैसे? ज्ञानी पुरुष मिल जाएँ तो सिर्फ वे ही छुड़वा सकते हैं, बाकी कोई नहीं छुड़वा सकता। ज्ञानी पुरुष खुद मुक्त हैं, इसीलिए छुड़वा सकते हैं। वह इसलिए कि, वे खुद मोक्षदाता हैं। मोक्ष का दान देने आए हैं।

# [ 5 ]
# आकाश तत्त्व

## [ 5.1 ] आकाश अविनाशी तत्त्व

### आत्मा है अलग, अन्य तत्त्वों से

**प्रश्नकर्ता :** आकाश और आत्मा, इन दोनों में क्या फर्क है?

**दादाश्री :** आकाश निश्चेतन है, चेतन नहीं है उसमें, और आत्मा में चेतन है। दोनों ही तत्त्वों के मूल गुणों में इतना अंतर है। अन्य कईं अंतर हैं। सभी तत्त्वों में से यदि सब से बड़ा मुख्य गुण है तो वह चेतन (अर्थात् ज्ञान-दर्शन) नामक गुण है, वह आत्मा में है इसीलिए वह परमात्मा है। आकाश में भी वह गुण नहीं है और अन्य किसी में भी वह गुण नहीं है। आत्मा अरूपी तो आकाश जैसा ही है। अरूपी में दोनों तत्त्व एक सरीखे हैं। आकाश का मुख्य गुण क्या है? तो वह है, स्थान देना। हर एक को स्पेस देना उसका मुख्य गुण है। आत्मा में स्पेस देने का गुण नहीं है और आत्मा का चेतन नामक गुण उसमें (आकाश में) नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** एक जगह पर आपने कहा था कि आत्मा आकाश जैसा है।

**दादाश्री :** वह तो आपको एक उदाहरण दे रहा हूँ कि जिस प्रकार से आकाश अरूपी तत्त्व है, आत्मा भी वैसा ही अरूपी है। लेकिन आकाश अचेतन है और आत्मा चेतन है। आकाश को किसी भी प्रकार की *लागणी* नहीं है, आत्मा तो *लागणी* वाला है, ज्ञान वाला

है। जबकि इसमें कोई *लागणी* और ज्ञान नहीं है, अतः हम कहते हैं कि इसमें आत्मा नहीं है।

'आत्मा आकाश जैसा है', ऐसा कहने का भावार्थ क्या है कि आकाश को कोई भी चीज़ नुकसान नहीं पहुँचा सकती। इसी प्रकार जगत् में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो आत्मा को नुकसान पहुँचा सके। आप जिसे शुद्धात्मा कहते हो, उसे कोई चीज़ नुकसान नहीं पहुँचा सकती। आकाश हर एक जगह पर है, आत्मा हर एक जगह पर नहीं है।

अब, चेतन रहता कहाँ है? चेतन है कहाँ? जहाँ आकाश है, वहाँ पर है। अन्य लोगों ने (जहाँ पर) जगह रोकी हुई हो वहाँ पर नहीं है। (जहाँ) आकाश है वहाँ पर (चेतन) है। जिसमें जितना आकाश है न, वहाँ पर उतना ही चेतन होता है।

**प्रश्नकर्ता :** आकाश अर्थात् यों जो खाली जगह, और आत्मा, इन दोनों में छोटे-बड़े जैसा कुछ है क्या?

**दादाश्री :** जब दो परमाणु जगह रोकते हैं तो उस जगह पर तीसरा परमाणु नहीं जा सकता, जबकि आत्मा सभी के आरपार जा सकता है। भाई, बहुत गहरी बातें हैं ये सारी। हमें शुद्धात्मा प्राप्त हो गया है न, वह मुख्य है। बाकी का यह सब तो लोग, उन्हें जैसा ठीक लगे वैसे प्रश्न पूछते हैं, (जैसे) दिमाग़ में से निकलते हैं वैसा।

सभी तत्त्वों से आत्मा को अलग कर दिया जाए तब आत्मा निर्लेप हो जाएगा। केवलज्ञान होगा तभी वह एक्ज़ेक्टली औरों से जुदा हो जाएगा। यह वैज्ञानिक बात है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, परमाणु और चेतन को अलग करना ही मुख्य है न! बाकी के तो लगभग अलग ही हैं न?

**दादाश्री :** अलग हैं, लेकिन उन्हें अलग करना है। यदि सिर्फ इन दो को अलग करेंगे तो बाकी के तत्त्व चिपट जाएँगे इसलिए सभी

को अलग करना पड़ेगा। आत्मा बिल्कुल *निव्वल* (शुद्ध, स्पष्ट अनुभव वाला), अलग ही है। सभी द्रव्यों के बीच ही है और सभी द्रव्यों से बंधा हुआ है वह।

**प्रश्नकर्ता :** आकाश तो आत्मद्रव्य के साथ ही रहा हुआ है न? उसे अलग नहीं किया जा सकता न?

**दादाश्री :** वह भी अलग हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** आकाश भी अलग हो जाता है?

**दादाश्री :** आकाश से भी अलग हो जाता है। अन्अवगाहक है। अवगाहना की उसे ज़रूरत नहीं है। है आकाश में, फिर भी वह खुद आकाश को रोकता नहीं है। इस प्रकार से रहा हुआ है सिद्धक्षेत्र में!

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा खुद आकाश (जगह) को नहीं रोकता, ऐसा किस प्रकार से होता है?

**दादाश्री :** बुद्धि का खेल नहीं है, वर्ना आकाश साथ में ही रहता न!

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, आकाश साथ में ही रहता।

**दादाश्री :** यदि आकाश साथ में रहता तब तो फिर उन दोनों का मिक्स्चर हुआ।

हर एक के भाव अलग-अलग ही होते हैं। इसलिए, क्योंकि स्पेस अलग-अलग है। स्पेस तो हमेशा अलग ही रहेगा न! जब तक मोक्ष में नहीं चले जाते तब तक स्पेस है, मोक्ष में स्पेस नहीं है। आत्मा को स्पेस की ज़रूरत नहीं है। सूर्यनारायण ने तो जगह रोकी हुई है। थोड़ा-बहुत समझ में आया?

**प्रश्नकर्ता :** दादा, देव लोक में ये सारे छः के छः तत्त्व हैं?

**दादाश्री :** सभी जगह पर। छः तत्त्वों के मिक्स्चर से रहित कोई भी चीज़ नहीं है इस दुनिया में।

**प्रश्नकर्ता :** तो आपने कहा न कि अलोक में सिर्फ आकाश तत्त्व ही है, अन्य एक भी तत्त्व नहीं है।

**दादाश्री :** अलोक से हमें कोई लेना-देना नहीं है न! आत्मा को तो आकाश की भी ज़रूरत नहीं है। जिसे किसी का भी अवलंबन नहीं है, वह आत्मा है! भगवान कहलाता है वह तो!

## जगह देने वाला आकाश तत्त्व

ये छः तत्त्व परमानेन्ट तत्त्व हैं। अब फिर हर एक के स्वभाव अलग-अलग हैं, आकाश एक ही है पूरा। इतना बड़ा आकाश भी एक ही है, अविभाज्य है।

**प्रश्नकर्ता :** अखंड है।

**दादाश्री :** आकाश किसी को उत्पन्न नहीं करता, न ही उत्पन्न होता है। आकाश अनुत्पन्न है। इस आकाश को जड़ भी नहीं कहा जा सकता और चेतन भी नहीं कहा जा सकता। आकाश! हं, वह भी तत्त्व है।

अब ये सभी तत्त्व काम कहाँ पर कर रहे हैं? तो कहते हैं कि, 'यह भूमि किसकी है? क्षेत्र किसका है? सब को खेलने के लिए जगह की ज़रूरत है या नहीं? सभी को रहने के लिए, चलने-फिरने के लिए जगह चाहिए, वह जगह कहाँ से लाएँगे? जगह देने वाला कोई चाहिए या नहीं चाहिए?' तो वह आकाश नामक तत्त्व है जो स्पेस देता है। वह भी इटर्नल है। यह जो खुला भाग है, जिसे जगह कहा जाता है, वह स्पेस एक तत्त्व है। उसमें अन्य सभी (तत्त्व) रहते हैं।

इन जड़ और चेतन (विभाविक चेतन) को रहने के लिए आकाश की ज़रूरत है, अवकाश की। आकाश के आधार पर रहे हुए हैं ये लोग। इन सभी की खुद की जगह नहीं है, मालिकी आकाश की है। यानी कि आकाश एक स्वतंत्र तत्त्व है। वह एक संपूर्ण तत्त्व है और अविनाशी है। यह जो तू बैठा है न, वह स्पेस कहलाता है।

## जो आँखों से दिखाई देता है, वह आकाश नहीं है

**प्रश्नकर्ता :** यह कैसे कहा जा सकता है कि आकाश तत्त्व अविनाशी है?

**दादाश्री :** तो कब उत्पन्न हुआ? जो उत्पन्न नहीं होता और जिसका विनाश नहीं होता, वह सब अविनाशी होता है। जो उत्पन्न होता है और (जिसका) विनाश होता है, वह विनाशी है।

साइन्टिस्ट भी इसे नहीं देख सकते। बुद्धि से जितना दिखाई देता है, उतना ही देख सकता है। और इससे ज़्यादा उनकी बिसात ही नहीं है न! आकाश तो परमानेन्ट वस्तु है। आपको परमानेन्ट नहीं लगता?

**प्रश्नकर्ता :** लगता है लेकिन उसमें परिवर्तन होता हुआ लगता है।

**दादाश्री :** परिवर्तन होता ही नहीं है किसी भी प्रकार का। परमानेन्ट तत्त्व की खुद की अवस्थाएँ होती हैं, तत्त्व में परिवर्तन नहीं होता। अवस्था तो हर एक की, प्योर चेतन अवस्था होती है। उसकी अवस्था मात्र विनाशी है और तत्त्व अविनाशी है। पानी एक अवस्था है इसलिए फिर भाप बन जाता है और फिर वह भाप वापस पानी बन जाती है, बर्फ बन जाती है। सभी अवस्थाएँ हैं। तत्त्व को कुछ भी नहीं होता। अब ऑल दीज़ रिलेटिव्स आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट, आइ इज़ परमानेन्ट। डू यू वॉन्ट टु रिमेन इन परमानेन्ट स्टेज ओर टेम्परेरी स्टेज? ऑल दीज़ आर फेज़िज एन्ड एवर चेन्जिंग, साइन्टिस्ट कैन नॉट सी इटर्नल्स। जगत् ने आकाश को देखा ही नहीं है, लोग उसकी अवस्थाओं को देख सकते हैं। आकाश कहाँ देखा है?

**प्रश्नकर्ता :** देखा नहीं है लेकिन उसका अनुभव होता है।

**दादाश्री :** वह ऐसी चीज़ नहीं है कि आँखों से देखी जा सके।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन उसका अनुभव हो सकता है न?

**दादाश्री :** ऐसा लगता ज़रूर है कि यह खोखला है, आकाश है। इन आँखों से वास्तविक कुछ भी नहीं दिखाई देता। वह तो

दिव्यचक्षुओं से ही देखा जा सकता है। जो दिव्यचक्षु जब एक्ज़ेक्टनेस में आते हैं, तब दिखाई देता है। पहले दिव्यचक्षु से समझ में आता है।

आकाश तो स्वतंत्र है, भगवान जितना ही स्वतंत्र है। परमाणु स्वतंत्र हैं। आकाश के टुकड़े नहीं हो सकते। आकाश एक प्रकार के स्वभाव वाला है।

स्कंध बनते हैं उसके। किसी जगह पर अधिक जम जाता है, किसी जगह पर कम जमता है लेकिन एकता नहीं टूटती।

इन अविनाशी वस्तुओं में से एक ही वस्तु को आप साधारण रूप से समझ सकते हो कि यह अविनाशी है, जैसे कि सिर्फ आकाश ही दिखाई देता है आपको। अन्य सभी अविनाशी वस्तुएँ दिखाई नहीं देतीं। आकाश का भी स्थूल भाग दिखाई देता है, मूल भाग नहीं दिखाई देता।

## आकाश का रंग

अत: आकाश भी नहीं दिखाई देता। यह जो दिखाई देता है न, वह खोखले भाग का रंग दिखाई देता है, बहुत अधिक खोखला हो न, तो खोखले में भी रंग नहीं होता। इस समुद्र का प्रतिबिंब पड़ता है। पूरे समुद्र का प्रतिबिंब उसमें पड़ता है और यह सारा कलर दिखाई देता है। सूर्य का प्रकाश समुद्र पर पड़ता है और उसका प्रतिबिंब ऊपर पड़ता है। उसकी वजह से यह नीला दिखाई देता है। वह आकाश नहीं है, अवकाश (खाली जगह) है। *पुद्गल* नहीं है। पानी *पुद्गल* है और उस पर सूर्यनारायण का प्रकाश पड़ता है तब उसके प्रतिबिंब से कलर दिखाई देता है। पानी भी कलरलेस (रंगहीन) है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या आकाश का रंग ब्लू (नीला) है?

**दादाश्री :** आकाश का किसी प्रकार का कलर ही नहीं है। यह स्पेस खुद परमाणु नहीं है, वह खाली भी नहीं है और उसका कोई रंग भी नहीं है। स्पेस ही है। स्पेस को तो इंसान समझ सकता है कि स्पेस जैसी कोई चीज़ है।

**प्रश्नकर्ता :** तो उसमें रंग नहीं, उसमें मटीरियल भी नहीं है, उसमें गुरुत्वाकर्षण भी नहीं है?

**दादाश्री :** कुछ भी नहीं है। स्पेस का मतलब क्या है कि अन्य पाँच वस्तुओं के रहने का स्थान। यह जो स्पेस है, वह परमानेन्ट है और अन्य पाँच परमानेन्ट वस्तुएँ हैं, उनके रहने का स्थान है। आकाश अन्य कोई वस्तु नहीं है। वह तो सिर्फ यह जगह ही है, अवकाश।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, वह ऊपर ही है न?

**दादाश्री :** ऊपर नहीं है, नीचे-वीचे सब जगह। आकाश एवरीव्हेर (सभी जगह) है। हम धनिया खाते हैं न, उसके अंदर भी आकाश है। हीरे में भी आकाश होता है। सोने में, चाँदी में, सभी में आकाश है। यदि किसी चीज़ में आकाश नहीं होता, तब तो वह टूटता ही नहीं। हीरे में आकाश कम होता है इसलिए हीरा देर से टूटता है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, हमें यह सब कब दिखाई देगा?

**दादाश्री :** वह देखना है या मोक्ष में जाना है?

**प्रश्नकर्ता :** मोक्ष में तो जाना ही है।

**दादाश्री :** तो फिर वह सारी झंझट क्यों करनी है? ऐसे तो बहुत सारी चीज़ें हैं, अरबों चीज़ें हैं ऐसी।

## आत्मा, अन्अवगाहक

**प्रश्नकर्ता :** तो सिद्धक्षेत्र में कौन-कौन से तत्त्व रहे हुए हैं?

**दादाश्री :** सिद्धक्षेत्र को तो इसमें गिनना ही नहीं है। सिद्धक्षेत्र में तत्त्व होते ही नहीं है न! वहाँ पर तो परमात्मा ही हैं। तत्त्व कहाँ पर होते हैं? अतत्त्व हो वहाँ पर तत्त्व होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** वहाँ अलोक में स्पेस तत्त्व है क्या? सिद्धक्षेत्र में?

**दादाश्री :** आकाश सभी जगह है न! आत्मा को आकाश की

ज़रूरत नहीं है। वह आकाश नहीं रोकता। आत्मा स्पेस नहीं रोकता। अन्अवगाहक है। अब उन सब की गहराई में बहुत मत उतरना। बहुत गहराई से क्या फायदा होगा आपको?

**प्रश्नकर्ता :** क्या आत्मा सिद्धगति में स्पेस रोकता है?

**दादाश्री :** ऐसा है न, उसे तो अवलंबन लेना कहा जाएगा। स्पेस-वेस नहीं है, अन्अवगाहक। अवगाहना रही नहीं उसे।

**प्रश्नकर्ता :** अन्अवगाहक का मतलब?

**दादाश्री :** स्पेस नहीं रोकता। बाकी सभी वस्तुएँ स्पेस रोकती हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, सिद्धक्षेत्र में स्पेस की ज़रूरत क्यों नहीं है?

**दादाश्री :** देखो वापस गहरे उतरे, सावधान रहो न, इसमें गहरे मत उतरो। इससे बल्कि बाकी का सब भूल जाओगे। एक हद से बाहर, आगे की बातें करने के लिए मना किया है। अभी तो इसमें कुछ ठिकाना नहीं है इनका, और फिर यहाँ तक का पूछ रहे हैं। उससे मनुष्य विकल्पी होता जाता है। उसके बाद क्या? उसके बाद क्या? उसके बाद क्या? उसके बाद क्या? मुख्य बात एक ही है कि आत्मा का स्वभाव अन्अवगाहक है। उसे स्पेस की ज़रूरत नहीं है। आकाश की ज़रूरत नहीं है। यहाँ पर यह शरीर धारण किया हुआ है तब तक स्पेस रोका है।

इस लोक का ज्ञान तो सिर्फ एक ही बार जान लेना है। *लक्ष* में तो सिर्फ इतना ही रखना है कि समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना है।

**प्रश्नकर्ता :** तो वहाँ सिद्धक्षेत्र में क्या है?

**दादाश्री :** वहाँ पर कुछ भी नहीं है। बस वहाँ पर सभी सिद्ध, उनकी देह-वेह नहीं होती, निर्देही होते हैं। और जिस देह से सिद्ध हुए होते हैं, उस देह के एक तिहाई भाग के नाप के होते हैं। वहाँ पर उनका आकार स्थिर होता है। निराकार होने के बावजूद भी आकारी

होते हैं। वहाँ पर उन्हें कुछ भी नहीं करना होता है, वहाँ पर परमानंद में रहना है, निरंतर परमानंद! खुद के स्वभाव में ही रहना होता है। और यह विशेष-भाव उत्पन्न हुआ है, भ्रांति-भाव उत्पन्न हुआ है, भ्रांति बंद हो जाए तो बस, खुद परमात्मा ही है।

**प्रश्नकर्ता :** वहाँ आत्मा को स्पेस की भी ज़रूरत नहीं है?

**दादाश्री :** कुछ भी नहीं, कोई अवलंबन ही नहीं है न! काल नहीं है, स्पेस नहीं है, धर्मास्तिकाय नहीं है, अधर्मास्तिकाय नहीं है, *पुद्गल* नहीं, सिर्फ आत्मा ही है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा ने स्वाभाविक रूप से खुद का स्पेस तो रोका हुआ होता है न, खुद का स्पेस तो होता है न?

**दादाश्री :** आत्मा स्पेस नहीं रोकता। लेकिन शरीर धारण किया हुआ है तब तक अवगाहना है। आत्मा अन्अवगाहक है। आत्मा को खुद के लिए स्पेस की ज़रूरत नहीं है। स्पेस रोकना किसे कहते हैं? आने-जाने में अड़चन पड़े तो माना जाएगा कि स्पेस रोका है। अत: आत्मा के लिए स्पेस-वेस, किसी की भी ज़रूरत नहीं है। स्पेस हो तब तो फिर किरायेदार... किराया... दावा दायर करेगा न! जगह रोकने के लिए दावा दायर करता है। यह पुद्गल है इसलिए जगह रुकती है न!

**प्रश्नकर्ता :** अच्छा! *पुद्गल* है, इसलिए जगह रुकती है।

**दादाश्री :** हं... निरालंब है फिर। किसी भी प्रकार का अवलंबन नहीं है इसलिए परम सुखी हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** आपने एक बार ऐसा कहा था कि वे सभी लौकिक बातें हैं और हम जो बताते हैं, उसमें अलौकिक की मुहर लगाई हुई है, स्टेम्प लगाई हुई है।

**दादाश्री :** अलौकिक की मुहर लगाई है इसलिए उसे समझ में आ गया। अन्य किसी की बात में अलौकिक की मुहर नहीं है।

## आत्मा का स्वक्षेत्र?

**प्रश्नकर्ता :** ये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, ये जो चार हैं, उनमें से, आत्मा, क्षेत्र से किस प्रकार रहा है।

**दादाश्री :** क्षेत्र अर्थात् अवकाश रोकता है, उसे क्षेत्र कहते हैं। अस्तित्व का जितना भाग अवकाश को रोकता है न, उतना ही उसका क्षेत्र कहलाता है। अवकाश अर्थात् आकाश कहते हैं न, उतने भाग को क्षेत्र कहते हैं। फिर वह क्षेत्र बदलता रहता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव बदलते रहते हैं और ये चार तो निरंतर बदलते रहते हैं। भव यानी कि मनुष्य भव मिला हो तो मनुष्यों का जन्म पाँच, पचास, सौ साल तक निभता भी है लेकिन ये चार तो बदलते ही रहते हैं निरंतर।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा का द्रव्य किस तरह बदलता है?

**दादाश्री :** आत्मा का द्रव्य नहीं लेकिन आत्मा पर जो द्रव्य लगे होते हैं, संसार भाव से, वे सभी द्रव्य बदलते रहते हैं। क्षेत्र बदलता रहता है, उसके आधार पर काल बदलता रहता है और उसके आधार पर भाव भी बदलते रहते हैं। अभी निर्भय भाव उत्पन्न होते हैं। भय वाली जगह पर जाने से भय उत्पन्न होता है। समय-समय पर बदलता ही रहता है, निरंतर। जीव मात्र में बदलता ही रहता है। सिर्फ ज्ञानी पुरुष ही अप्रतिबद्ध होते हैं। निरंतर द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से अप्रतिबद्ध रूप से विचरते हैं। ऐसे ज्ञानी पुरुष की शरण में जाए बिना कोई मोक्ष में नहीं जा सकता। ज्ञानी को कभी कोई भी जगह प्रतिबद्धपना नहीं करती। ये सभी बंधन में डालने वाली वस्तुएँ हैं, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। फिर भी ज्ञानी को बंधन में नहीं डाल सकतीं, वे अप्रतिबद्ध होते हैं। खुद बंधन करने वाली वस्तुओं के बीच में होते हुए भी (वस्तुएँ) उन्हें बाँध नहीं सकतीं। वस्तुएँ तो बंधन में डाल दें ऐसी ही हैं लेकिन अज्ञानी है इसलिए उसे बाँध लेती हैं। पर वे ज्ञानी हों तो नहीं बाँध सकेंगी। यहाँ पर क्षेत्र भी, अज्ञानी को जहाँ भी बिठाया हो न, वह क्षेत्र उसे पसंद आ जाता है। कहेगा 'मैं यहाँ हूँ। वहाँ पर मुझे नहीं जमेगा'।

खुलासा हुआ? वह बात समझ में आई आपको?

**प्रश्नकर्ता :** दादा, आप ये जो बातें कर रहे हैं न, वे परक्षेत्र की हैं। मुझे स्वक्षेत्र के बारे में पूछना है।

**दादाश्री :** ओहो... वह तो ऐसा है न कि खुद का स्वक्षेत्र, स्वद्रव्य, स्वभाव और स्वकाल, ये चारों भाव खुद के हैं। वह शुद्धात्मा ही है और कुछ है ही नहीं। यह तो सिर्फ, इस परक्षेत्र में से निकालने के लिए स्वक्षेत्र का वर्णन किया है। क्षेत्र अर्थात् खुद का जो अनंत प्रदेशी भाग है, उस क्षेत्र को वास्तव में क्षेत्र नहीं कहते हैं लेकिन उसे समझाने के लिए इस तरह समझाया है। उसकी ज़रूरत नहीं है। 'हम शुद्धात्मा हैं', इतना ही ज़रूरी है। बाकी, उसमें और गहरे नहीं उतरना है। उसमें काल भी नहीं है। आत्मा पर काल लागू नहीं होता। आत्मा में भाव नहीं होता, स्वभाव ही होता है। खुद स्वभाव से ही ज्ञाता-द्रष्टा है। लेकिन बाहर के इन चार को समझाने के लिए स्व, अर्थात् 'पर' में से स्व में आओ, ऐसा कहना चाहते हैं।

बाकी, शुद्धात्मा ही है। सर्व प्रकार से स्वभाव अर्थात् खुद का अन्य कोई स्वभाव है ही नहीं, वह ज्ञाता-द्रष्टा परमानंदी है, वही उसका स्वभाव है अर्थात् खुद का निज स्वभाव। जो भाव *पुद्गल* में नहीं है और जो भाव आत्मा का नहीं है, उस भाव को परभाव कहा है। आत्मा का नहीं है फिर भी आत्मा का माना जाता है, वह परभाव, परक्षेत्र के अधीन है। तभी तक परक्षेत्र कहलाता है। जब तक परभाव को मान्य किया है तब तक परक्षेत्र, द्रव्य भी सारा 'पर' कहलाता है। अतः स्व में ले जाने के लिए यह सारा हेतु समझाया है और शुद्धात्मा समझ में आ गया तो हो चुका, पूरा काम हो गया। बाकी उसको कोई क्षेत्र-वेत्र नहीं होता, स्वक्षेत्र। वह तो सिर्फ शास्त्रकारों ने वर्णन किया है।

ये मन-वचन-काया परक्षेत्र में हैं। 'मैं' स्वक्षेत्र में है। दोनों के क्षेत्र अलग ही हैं। आत्मा क्षेत्रज्ञ है। वह क्षेत्र को जानने वाला और देखने वाला है, लेकिन वह क्षेत्राकार हो गया है।

# [ 5.2 ] स्पेस के अनोखे असर

## क्षेत्र बदलने से, बदल जाता है सभी कुछ

अर्थात् क्षेत्र की, जगह की ही कीमत है न!

**प्रश्नकर्ता :** क्या हर एक मनुष्य के क्षेत्र भी अलग-अलग होते हैं?

**दादाश्री :** क्षेत्र, द्रव्य, काल और भाव - मनुष्य के ये चारों बदलते ही रहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वे सभी के अलग-अलग होते हैं न, चंदूभाई के अलग।

**दादाश्री :** सभी के अलग, इसीलिए चेहरे अलग-अलग हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** यानी कि एक ही रूम में दो लोगों के क्षेत्र अलग-अलग होते हैं। ये भाई यहाँ पर बैठे हैं, मैं यहाँ पर बैठा हूँ तो दोनों का क्षेत्र...

**दादाश्री :** फिर भी आप अपने क्षेत्र में और वह अपने क्षेत्र में है।

## अंतःकरण भी रोकता है स्पेस

यह शरीर है तब तक यह स्पेस है। स्पेस तो रहेगा ही न? देख न, तेरी जगह पर दूसरा कोई बैठ सकता है क्या अभी?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं बैठ सकता। तो क्या उसे अवलंबन लेना कहेंगे?

**दादाश्री :** फिर क्या लेना कहा जाएगा? किसी के (आकाश तत्त्व) घर पर रहते हैं और फिर वापस रौब जमाना है! यह किसी का घर है, सत्संग का घर तो अलग है। लेकिन फिर यह घर भी यानी कि यह शरीर भी अलग है किसी और का (परमाणुओं का)। यहाँ पर रहते हैं तो वह, यह स्पेस है। स्पेस लेना हो तो स्पेस वाले से पूछना चाहिए न हमें (आत्म तत्त्व को)?

**प्रश्नकर्ता :** यह शरीर स्पेस रोकता है, उसी प्रकार क्या मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार भी स्पेस रोकते हैं?

**दादाश्री :** सभी शरीर में ही हैं, उन्होंने शरीर में स्पेस रोका है। उसमें यह कॉन्ट्रैक्ट कर दिया कि, 'भाई, मुझे इतनी जगह की ज़रूरत पड़ेगी'। उन लोगों ने कॉन्ट्रैक्ट किया कि, 'शरीर में हमें इतना चाहिए, उस मुहल्ले में घुसने के लिए।' लोगों की जगह में बनाया है, ऐसा कुछ लगता है न?

**प्रश्नकर्ता :** वह तो है ही।

**दादाश्री :** रात को सोना भी लोगों की जगह पर।

**प्रश्नकर्ता :** तो आत्मा के अलावा बाकी सब स्पेस रोकता है?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** मूल *पुद्गल* का स्वभाव जगह रोकने का है न? *पुद्गल* स्पेस रोकता है न?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** तो इसमें से आत्मा निकल जाए, फिर भी यह तो जगह रोकेगा ही।

**दादाश्री :** शुद्ध परमाणुओं ने तो जगह रोकी हुई होती ही है। उनको कोई लेना-देना नहीं है, वे तो ओतप्रोत रहे हुए हैं।

**प्रश्नकर्ता :** जगह से?

**दादाश्री :** हं। जगह उनके आधार पर है और वे जगह के आधार पर हैं। वैसा सब है।

**प्रश्नकर्ता :** तो बीच में जो वह मालिकीभाव है इस *पुद्‌गल* का, तो क्या इसीलिए अवलंबन है?

**दादाश्री :** दुनिया में सभी को ऐसा मालिकीभाव रहता है कि 'मेरा ही है'। जबकि उन लोगों (परमाणुओं) को, ''कुछ भी 'मेरा' नहीं है।''

**प्रश्नकर्ता :** परमाणुओं को लेना-देना नहीं है?

**दादाश्री :** कुछ भी नहीं है न!

## स्पेस के आधार पर बढ़ते हैं आगे

**प्रश्नकर्ता :** सभी में अलग-अलग अहंकार है। उनमें इंजीनियर का अहंकार है, मुझ में डॉक्टर का अहंकार।

**दादाश्री :** हाँ, अलग-अलग।

**प्रश्नकर्ता :** वह किस आधार पर है?

**दादाश्री :** स्पेस अलग है, इसलिए।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या कर्म के आधार पर नहीं है?

**दादाश्री :** नहीं। स्पेस अलग है, उस आधार पर। कर्म के आधार पर बाद में है। मूलतः सभी का स्पेस अलग है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, इसमें यह स्पेस अलग है, वह समझ में आ सके ऐसा है लेकिन यह आंतरिक स्पेस की बात किस प्रकार से है? ये भाई इस जगह पर बैठे हुए हैं, वे उस जगह पर बैठे हुए हैं। वह जो वस्तु है स्पेस, वह डेवेलपमेन्ट में काम नहीं आती?

**दादाश्री :** क्यों नहीं आती?

**प्रश्नकर्ता :** वह किस प्रकार से? यानी कि अगर डॉक्टर बनना हो या इंजीनियर बनना हो, तो उसमें स्पेस किस तरह से काम आता है?

**दादाश्री :** स्पेस होगा तभी आगे चल सकेगा, वर्ना गाड़ी चलेगी ही नहीं (कुछ होगा ही नहीं)।

**प्रश्नकर्ता :** वह समझ में नहीं आया।

**दादाश्री :** अगर स्पेस नहीं होगा तो गाड़ी चलेगी ही नहीं न! कोई यों ही डॉक्टर नहीं बन जाता। टाइमिंग, स्पेस, बाकी सभी कारण मिलते हैं तब उसे डॉक्टर बनने का विचार आता है। खुद स्वाधीनता से कर्म नहीं कर सकता।

**प्रश्नकर्ता :** आपने इस तरह से बात की थी, कि समसरण मार्ग में (जब) वह एक लेवल तक पहुँचता है तब कुछ आवरण टूटते हैं फिर उस पर उसे श्रद्धा बैठती है कि इस राजमिस्त्री के काम में ही सुख है, इसलिए फिर खुद राजमिस्त्री बनता है।

**दादाश्री :** लेकिन मुख्य रूप से, अगर स्पेस होगा तभी ऐसा सब हो पाएगा। इसमें स्पेस मुख्य है, सभी में।

## सभी कुछ है निमित्त-नैमित्तिक भाव से

**प्रश्नकर्ता :** तो पहले स्वभाव है या पहले स्पेस?

**दादाश्री :** स्वभाव की वजह से फिर वापस स्पेस भी मिलता है और फिर वैसे ही स्पेस की वजह से स्वभाव मिलता है, सब साथ में हैं।

**प्रश्नकर्ता :** एक-दूसरे के साथ में हैं?

**दादाश्री :** यानी कि एक-दूसरे का, यह तो सारा निमित्त-नैमित्तिक भाव से है। मुख्य तो स्पेस है।

**प्रश्नकर्ता :** आपके पास पहली बार यह स्पेस की बात सुनी है, दादाजी।

**दादाश्री :** ऐसी बातें तो हुई थीं।

**प्रश्नकर्ता :** नहीं, आपके ही सत्संग में हुई थी। और कहीं पर नहीं सुनी है।

**दादाश्री :** और कहीं हो सकती है क्या? यह बात ही नहीं होती न! हम ये जो सारी बातें करते हैं न, इनमें से एक भी बात बाहर नहीं है। क्योंकि ये बातें अपूर्व हैं। पूर्व काल में पहले कभी सुनी नहीं गईं, जानी नहीं गईं, अनुभव नहीं की गईं, सोची नहीं गईं, ऐसी बातें हैं। और स्पेस की बात तो किसी भी जगह पर हुई ही नहीं है न!

**प्रश्नकर्ता :** दादा, जो डॉक्टर बनता है तो क्या उसी में से वापस उसका वही जीव वकील बनता है, तो यहाँ से यह डॉक्टरपने का छूटना और वकीलपने का बनना इसमें कौन सा फैक्टर काम करता है?

**दादाश्री :** उसमें तो फिर स्पेस ही वैसा मिल जाता है, वैसी ही ड्रॉइंग होती है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादाजी, उसमें मूल तत्त्व तो अपना कर्म है न?

**दादाश्री :** कर्म मूल तत्त्व नहीं है। कर्म तो आधारित तत्त्व है। स्पेस के आधार पर कर्म है और कर्म के आधार पर स्पेस है। अत: मुख्य तो स्पेस है इसमें। कर्म तो मोटी (स्थूल) चीज़ है, बाद की, आगे की चीज़ है। लेकिन भगवान ने जो बात बताई है न, 'द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आधार पर यह जगत् चलता है।'

**प्रश्नकर्ता :** यानी क्षेत्र ही मुख्य है?

**दादाश्री :** क्षेत्र मुख्य है। काल तो, इस काल में तो सभी सुन रहे हैं लेकिन सिर्फ क्षेत्र ही सब का अलग है। उस क्षेत्र के आधार पर भाव हैं और भाव के आधार पर कर्म और कर्म के आधार पर सब चल रहा है। यह दुनिया चल पड़ी फिर। कर्म का परिणाम है यह सब।

**प्रश्नकर्ता :** दिखाई देता है आँखों से ऐसा।

**दादाश्री :** वह दिखाई देता है। जो नहीं देखा जा सकता, वह सब भी।

**प्रश्नकर्ता :** तो इसमें द्रव्य कहाँ पर आया, द्रव्य? क्षेत्र के आधार पर भाव का उत्पन्न होना, अर्थात् क्षेत्र के आधार पर कर्म बंधन हुआ और कर्म के आधार पर दुनिया चली, तो द्रव्य कहाँ गया?

**दादाश्री :** उस स्पेस में कौन आया? तो कहते हैं, द्रव्य आया। मूल... दूल्हे बिना की बारात निकाल रहा है? कैसा इंसान है तू? कहता है, 'बारात गई तो इसमें दूल्हा कहाँ पर है'। अरे भाई, बिना दूल्हे के बारात निकलती ही नहीं है। अभी भी वापस द्रव्य के बारे में पूछ रहा है। क्षेत्र में जो आया, वही द्रव्य है। क्षेत्र के आधार पर वह द्रव्य हुआ। द्रव्य में से यह उत्पन्न हुआ और इसीलिए यह सब चल पड़ा। उसमें से भाव उत्पन्न हुआ काल के आधार पर। द्रव्य-क्षेत्र-काल... काल होने के बाद भाव उत्पन्न होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्षेत्र में पहले द्रव्य आया?

**दादाश्री :** क्षेत्र में द्रव्य आया और उसके आधार पर फिर...

**प्रश्नकर्ता :** भाव उत्पन्न हुआ।

**दादाश्री :** नहीं, काल मिलने पर फिर भाव उत्पन्न होते हैं और उसके बाद कर्म चार्ज होते हैं। कोई खास काल आए तभी उस प्रकार के भाव होते हैं, वर्ना भाव ही उत्पन्न नहीं होते।

ये सारी बातें तो बहुत सूक्ष्म हैं, इसमें उन सब की क्या ज़रूरत है? हमें तो आत्मा की ही ज़रूरत है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, इसमें आपने जो द्रव्य बताया है, वह द्रव्य क्या विशेष परिणाम वाला द्रव्य है?

**दादाश्री :** किसका विशेष परिणाम?

**प्रश्नकर्ता :** तो वह कौन सा द्रव्य कहा जाता है?

**दादाश्री :** 'यही'। 'यह' जो है, वही।

**प्रश्नकर्ता :** 'यही' अर्थात्? वह समझ में नहीं आया। अर्थात् चेतन या *पुद्गल*, ऐसा कौन सा द्रव्य?

**दादाश्री :** भ्रांति वाला स्वरूप, भ्रांतिचेतन।

**प्रश्नकर्ता :** भ्रांतिचेतन को द्रव्य कहा है?

**दादाश्री :** हाँ। भ्रांति रहित चेतन होता ही नहीं है स्पेस में, यहाँ पर आएगा ही नहीं। कर्म तो अंत में बनता है। बाकी और कुछ लेना भी नहीं है और देना भी नहीं। मूल रूप से स्पेस मिल जाए तो गाड़ी आगे चलती है। अत: भगवान ने कहा है कि क्या क्षेत्र बदला है? तो कहते हैं, 'हाँ'। तो फिर गाड़ी चल पड़ी।

**प्रश्नकर्ता :** तो स्पेस किस आधार पर मिलता है दादाजी?

**दादाश्री :** वह तो नियम के आधार पर। जैसे कोई समूह आगे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उन सभी की जगह बदलती जाती है। ऐसा नहीं है कि खुद हमेशा उसी स्पेस में रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आधार पर जो कर्म उत्पन्न होते रहते है, वह क्या किसी प्रकार की पूरी स्वाभाविक क्रिया है?

**दादाश्री :** नहीं तो और क्या?

**प्रश्नकर्ता :** उसमें कर्तापन नहीं होता है?

**दादाश्री :** कर्तापन तो, जब उसमें बुद्धि वाला बनता है तब कर्तापन उत्पन्न होता है।

सभी लोग अभी एक ही काल में बात सुन रहे हैं, लेकिन फिर भी स्पेस अलग-अलग है। जहाँ देखो वहाँ पर हर एक का स्पेस अलग है।

**प्रश्नकर्ता :** और इसीलिए अलग-अलग समझ में आता है।

**दादाश्री :** और भाव अलग ही होता है। स्पेस अलग है इसलिए भाव अलग ही होता है। एक स्कूल में पढ़ रहे होते हैं, फिर भी भाव अलग ही होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अत: बॉडी का यह जो आकार है, वह अहंकार का फोटो है न?

**दादाश्री :** नहीं तो और किसका? मोटा अहंकार हो तो मोटा शरीर। पतला हो तो पतला। पागल अहंकार हो तो पागल। अहंकार लालची हो तो इंसान लालची बन जाता है। जैसा अहंकार वैसा ही यह है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो मुझे स्पेस मिला है, क्या उसके कारण मेरा अहंकार ऐसा हो गया या फिर मेरा अहंकार ऐसा होना था इसीलिए मुझे ऐसा स्पेस मिला है?

**दादाश्री :** वह तो, स्पेस की वजह से अहंकार है और अहंकार की वजह से स्पेस है। दोनों अन्योन्य (एक-दूसरे पर आधारित) हैं।

यह साइन्टिफिक जगत् है। यह जगत् क्या कोई गप्प है? किसी के भी किए बिना चल रहा है न, देखो! आप भी गहराई में उतर गए। ऐसे तो ये लोग उतरते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादाजी, हम तो सिर्फ यही मान कर बैठे हैं कि मोक्ष में जाना है।

**दादाश्री :** हाँ, बस।

एक स्पेस में दो जीव नहीं रह सकते। उसमें भी स्पेस अलग-अलग होने की वजह से अलग-अलग कर्म बने।

**प्रश्नकर्ता :** ये संयोग तो फिज़िकल के लिए हैं, लेकिन आत्मा के लिए कौन सा संयोग है?

**दादाश्री :** आत्मा को तो बहुत सारे संयोग मिले।

**प्रश्नकर्ता :** कोई कुत्ता बना और मैं चंदूभाई क्यों बना?

**दादाश्री :** संयोग अलग-अलग हैं, इसलिए।

स्पेस की वजह से भाव बदलते हैं। स्पेस व भाव का गुणन होता है, इसलिए सब अलग-अलग बना है और यह संसार खड़ा हो गया।

**प्रश्नकर्ता :** क्या फिज़िकल संयोग आत्मा को बाँधते हैं?

**दादाश्री :** बाँधा हुआ ही है न! इसीलिए तो (व्यवहार) आत्मा चिल्लाता है कि, 'मुझे छुड़वाओ, मुझे छुड़वाओ', तो ज्ञानी पुरुष छुड़वा देते हैं।

## कर्म और ज्ञान, एक ही स्पेस में

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञान और कर्म, क्या ये दोनों साथ में रहते हैं? इनमें पहले क्या करना पड़ता है?

**दादाश्री :** साथ में रहने में क्या हर्ज है?

**प्रश्नकर्ता :** यह प्रश्न हुआ कि साथ में रह सकते हैं क्या?

**दादाश्री :** ऐसा है न, कर्म को जगह की ज़रूरत है और ज्ञान को जगह की ज़रूरत नहीं है इसलिए एक ही जगह पर साथ में रह सकते हैं। एक को स्पेस की ज़रूरत है और दूसरे को स्पेस नहीं चाहिए, इसलिए साथ में रह सकते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** ज़रा और अधिक स्पष्टता से समझाइए न! समझ में नहीं आया!

**दादाश्री :** किसी भी तरह का कर्म स्पेस माँगता है और ज्ञान को स्पेस की ज़रूरत नहीं है, इसलिए दोनों एक साथ रह सकते हैं। बाकी अन्य कोई स्पेस वाली चीज़ हो, तो एक साथ नहीं रह सकती।

**प्रश्नकर्ता :** कर्म के अलावा अन्य और कौन सी चीज़ें स्पेस वाली हैं? व्यवहारिक तौर पर।

**दादाश्री :** ये भक्ति-वक्ति वगैरह सब स्पेस वाले हैं। सिर्फ ज्ञान ही स्पेस रहित है। उसे स्पेस की ज़रूरत नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** एकदम साइन्टिफिक जवाब है। एक्ज़ेक्ट साइन्टिफिक है, दादा। ज्ञान को स्पेस चाहिए ही नहीं।

**दादाश्री :** आपको समझ में आया न?

**प्रश्नकर्ता :** पता चल गया।

**दादाश्री :** यानी साथ में रह सकते हैं। ऐसा है न, कर्म यानी ज्ञान का परिणाम। साथ में न हों तो कर्म, कर्म ही नहीं है। दोनों साथ में बैठ सकते हैं, क्यों बैठ सकते हैं दोनों? ज्ञान को स्पेस नहीं चाहिए और कर्म को स्पेस की ज़रूरत है। तो दोनों एक जगह पर बैठ सकते हैं एक साथ। कर्म और भक्ति, दोनों साथ में नहीं बैठ सकते। दोनों को स्पेस की ज़रूरत पड़ती है और ज्ञान को तो स्पेस की ज़रूरत नहीं है। और इस दुनिया में ज्ञान के बिना भक्ति नहीं की जा सकती, ये सब भक्तियाँ। ज्ञान के अनुसार भक्ति कितनी?

## स्थल का असर, विचारों पर...

**प्रश्नकर्ता :** स्थल व काल का इफेक्ट विचारों पर होता है क्या?

**दादाश्री :** उसके इफेक्ट से ही इन विचारों पर असर होता है। वे स्थल और काल बदलते नहीं हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् मूल रूप से मेरा क्या कहना था कि अभी मैं सूरत गया था, तो वहाँ पर आंतरिक दर्शन ज़रा ज़्यादा ही धुंधला गया। यहाँ बड़ौदा आता हूँ तब और अधिक स्पष्ट दर्शन खुलता है और सूरत या मुंबई जाता हूँ तब दर्शन पर असर होता जाता है।

**दादाश्री :** उसका असर होता है। हर एक जगह का असर होता है। जगह तो ऐसा है न कि इस पेड़ के नीचे बैठो तब अलग असर होता है, उस पेड़ के नीचे बैठो तो अलग असर होता है। उस पेड़ का असर होता है। स्थल, काल और फिर यह पेड़, द्रव्य या चीज़, सभी का असर होता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर कर्म चुकाने के लिए अथवा कर्म का *निकाल* करने के लिए सभी जगहों पर घूमना तो पड़ेगा ही न, तो उस समय स्थल और काल के असर का निवारण करने के लिए क्या करना चाहिए?

**दादाश्री :** जिस पर वह असर होता है, वह 'आप' नहीं हो। जिस पर असर होता है, 'आप' उसे देखो। 'आपकी' जगह असर मुक्त है। वर्ल्ड में कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है जो असर मुक्त हो जबकि 'आप' असर मुक्त हो। अतः असर होता है तो कोई परेशानी नहीं है। असर तो होता ही रहेगा। कोई भी जगह ऐसी नहीं है जहाँ पर असर न हो। और असर होना *पुद्गल* का स्वभाव ही है, इफेक्टिव ही है, मन-वचन-काया पूरा ही इफेक्टिव है। और फिर पज़ल है, और उसका पता नहीं चलता। पज़ल शब्द एप्रोप्रिएट (योग्य) है या कोई दूसरा शब्द रखना होगा?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं। सही है। बिल्कुल एप्रोप्रिएट है।

**दादाश्री :** ठीक है। जो-जो परमाणु लिए हैं उन्हें फिर से शुद्ध करना पड़ेगा।

**प्रश्नकर्ता :** जिस प्रकार इंसानों के वाइब्रेशन होते हैं उसी तरह क्षेत्रों के भी वाइब्रेशन होते हैं न? वैसा ही वातावरण रहता है?

**दादाश्री :** सभी का वातावरण होता है। कोई पेड़ हो तो उसका भी वातावरण होता है, क्षेत्र का भी वातावरण होता है। कुछ क्षेत्रों में जाने पर खराब विचार आते हैं।

अपने यहाँ कुरूक्षेत्र है न, वहाँ पर जाएँ तो वहाँ पर लड़ने के ही विचार आते हैं। अगर दो जने वहाँ से होकर जाएँ, तो लड़ ही पड़ते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यानी इस रूम का भी वातावरण है न?

**दादाश्री :** हर एक जगह का वातावरण।

**प्रश्नकर्ता :** किसी भूमि पर जाने से ज्ञान आता है, किसी और भूमि पर जाने से क्रोध आता है, भूमि-भूमि से फर्क पड़ता है? क्या ऐसा है कि, हर क्षेत्र में अलग-अलग भाव होते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, हर एक क्षेत्र में भाव अलग-अलग बदलते रहते हैं।

## क्षेत्र स्पर्शना के हिसाब

**प्रश्नकर्ता :** यह जो क्षेत्र स्पर्शना है, मान लीजिए कि औरंगाबाद के क्षेत्र की स्पर्शना हुई तो वह किस कारण से हुई? उसका क्या कारण रहा होगा?

**दादाश्री :** स्पर्शना तो, या तो पुण्य हो तब स्पर्शना अच्छी लगती है, ठंडक लगती है...

**प्रश्नकर्ता :** नहीं, लेकिन दादा यहाँ औरंगाबाद आना पड़ा...

**दादाश्री :** हाँ, भूमि का (जगह का) हिसाब है न। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और भव निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं। तो एक स्पर्शना ऐसी है जो हमारा टकराव करवाती है, दूसरी स्पर्शना हमें ठंडक देती है। यहाँ की स्पर्शना कैसी लगी?

**प्रश्नकर्ता :** ठंडक वाली लगी।

**दादाश्री :** ठंडक, और फिर कैसी ठंडक?

**प्रश्नकर्ता :** सुख, सुखमय।

**प्रश्नकर्ता :** अमीन परिवार का महात्माओं के साथ जो संबंध बना, वह किन कारणों से? क्या हमारा आगे-पीछे का कोई हिसाब रहा होगा?

**दादाश्री :** हिसाब।

**प्रश्नकर्ता :** या फिर वे संयोग कहलाएँगे?

**दादाश्री :** यह तो ऐसा है कि हिसाब वाले ही मिलते रहते हैं। फिर चाहे दिन में दस बार हमें कोई कुत्ता मिले तब भी हमें यही समझना है कि, 'अरे इससे कोई पहचान है।' और रूम में घुसते ही छिपकली दिखाई दे और चिढ़ मचती रहे तो हमें समझना है कि हिसाब है। बार-बार क्यों मिलती है यह? तो अंदर घुसते ही वापस सामने छिपकली दिखाई देती है और चिढ़ मचती रहती है। हिसाब के बिना हमें कोई चिढ़ा ही नहीं सकता और हिसाब के बिना कोई हमें आकर्षित नहीं कर सकता। कोई आकर्षित करता है तो वह भी हिसाब है। किसी पर चिढ़ मचती है तो वह भी हिसाब है।

**प्रश्नकर्ता :** उस हिसाब को ही आग लगा दीजिए न, ताकि खत्म हो जाए?

**दादाश्री :** हाँ, तो उस हिसाब में ही यह आग लगाई है इसीलिए तो इतना खत्म हो गया।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन और अधिक एसिड छिड़किए न!

**दादाश्री :** हाँ, ज़्यादा छिड़केंगे।

**प्रश्नकर्ता :** क्षेत्र स्पर्शना के प्रतिक्रमण किए जा सकते हैं या नहीं? किसी भी *पुद्गल* के प्रतिक्रमण नहीं करने हैं न? सिर्फ मिश्रचेतन के ही प्रतिक्रमण करने हैं न?

**दादाश्री :** वास्तव में तो आपको समझदार हो जाना है। ऐसा रखना है कि जगह तो सही ही है। वास्तव में तो अपनी गलती की वजह से जगह बिगड़ी थी। जगह खराब है ही नहीं न! आप टेढ़े हो इसलिए जगह खराब लगती है।

**प्रश्नकर्ता :** यह समझ में नहीं आया, दादा।

**दादाश्री :** वास्तव में जगह अच्छी या खराब नहीं होती। पर, (अज्ञानी) भोक्ता वहाँ पर जाता है न, तब भाव उल्टे हों तो वे भाव

उस व्यक्ति को वहाँ पर फल देते हैं। जगह ऐसी नहीं होती। जगह वैसी होती तब तो ज्ञानी पुरुष जहाँ जाते हैं, क्या वहाँ उन पर भी असर होता है? तो कहते हैं, 'नहीं'।

वर्ना सब वीतराग ही हैं, जगह-वगह सभी कुछ! सिर्फ यही एक राग-द्वेष वाला है। इसलिए जहाँ जाते हैं वहाँ ऐसा लगता है कि यह सामने वाला राग-द्वेष कर रहा है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या अब उस क्षेत्र को और काल को सुधारने के लिए कोई सिस्टम है? ताकि उसी का अभ्यास करके... हमारे अकेले के लिए नहीं, सभी के लिए सुधरे, ऐसा...

**दादाश्री :** हमें तो अब सुधारने की ज़रूरत ही नहीं रही। क्योंकि अपना तो डिस्चार्ज है न! जगत् के लोगों को तो सुधारने ही चाहिए, उनके भाव सुधरेंगे तो चारों ही सुधरेंगे। भाव से सभी कुछ सुधर जाएगा। उसने भाव बदला कि सबकुछ सुधर जाएगा।

मारने का भाव किया कि, 'अरे, इसका तो क्या हिसाब! इसे तो एकदम ठिकाने लगा दूँगा।' ऐसा भाव किया तो झगड़ालू लोगों वाला क्षेत्र मिलेगा, काल भी झगड़ालू यानी कि संध्या काल मिलेगा और भाव भी ऐसा होगा और वह व्यक्ति भी सामने आ जाएगा, और फिर... संध्या काल में मारपीट हो जाएगी।

**प्रश्नकर्ता :** संध्या काल ही क्यों कहा है?

**दादाश्री :** सभी प्रकार के कालों में से संध्या काल ज़रा विकट है। प्रकाश और अंधेरे की, दोनों की संधि को कहते हैं संध्या।

हर एक व्यक्ति को इतना तैयार हो जाना है कि किसी भी जगह उसे बोझ न लगे। जगह उससे परेशान हो जाए लेकिन वह खुद परेशान न हो। उस हद तक तैयार हो जाना है। वर्ना जगहें तो अनंत हैं, क्षेत्रों का अंत नहीं है। अनंत क्षेत्र हैं।

## क्षेत्र का भी प्रभाव

**प्रश्नकर्ता :** दादा, इस पृथ्वी पर जितनी जगह हैं, वही सारा क्षेत्र हैं न? हम मनुष्यों के लिए तो यही सब क्षेत्र हैं न! क्षेत्र तत्त्व?

**दादाश्री :** मनुष्यों के लिए कुछ क्षेत्र हैं और कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ पर ऐसी ठंड और ऐसी गरमी होती है कि वहाँ पर मनुष्य रह ही न सके। ऐसे भी क्षेत्र हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह जो क्षेत्र है, मान लीजिए कि ये भाई यहाँ पर रहते हैं, अब आप यहाँ पर आकर रहे तो यह क्षेत्र पुण्यशाली तो है ही न? इसे ऐसा कहा जाएगा?

**दादाश्री :** पुण्यशाली तो है ही न!

**प्रश्नकर्ता :** आप यहाँ पर रहे, इसलिए?

**दादाश्री :** नहीं, वर्ना फिर भी दूसरे लोग तो यहाँ पर रहते ही हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन यह विशेष प्रकार का तो है या नहीं?

**दादाश्री :** हाँ, वह पुण्य तो है न! क्षेत्र का, जगह का। वहाँ पर लाभ भी होता है लोगों को।

**प्रश्नकर्ता :** वहाँ पर लाभ भी होता है?

**दादाश्री :** हाँ, यदि वह भगवान को नहीं मानता हो और वहाँ पर आ जाए तो सोचता है और कहता है, 'है तो सही, भगवान जैसी चीज़ होनी चाहिए। आनंद हो रहा है कुछ'।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, आनंद होता है। यानी आप जहाँ पर जाते हैं, वहाँ पर वह क्षेत्र पवित्र होता जाता है।

**दादाश्री :** इन तीर्थंकरों को इसीलिए तीर्थंकर कहा गया है, क्योंकि वे जहाँ जाते हैं, वहाँ तीर्थ बन जाता है। हमारा तीर्थंकरों जैसा नहीं हो सकता, कुछ कम होता है।

क्षेत्र का हिसाब तो बहुत... जौहरी बाज़ार में इतनी सी दुकान हो तो उसकी भी बहुत कीमत है, और दूसरी जगह पर चाहे कितनी भी बड़ी हो, फिर भी क्या कीमत! अतः क्षेत्र की, उस जगह की ही कीमत है यह।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या हम महात्माओं को काल और क्षेत्र के लिए भाव नहीं करने चाहिए?

**दादाश्री :** करते ही हैं। वे सब तो डिस्चार्ज भाव हैं। भाव तो, जब तक आप, 'मैं चंदूभाई ही हूँ', तभी तक भाव हो सकते हैं, वर्ना भाव नहीं हो सकते!

क्षेत्र परिवर्तन कब होता है? स्वभाव परिवर्तन होने पर। दूषम स्वभाव हो तो इस क्षेत्र में आता है। मेरा भी दूषम स्वभाव रहा होगा, इसलिए यहाँ पर आना हुआ। अब स्वभाव परिवर्तन होगा तो क्षेत्र परिवर्तन होगा, महाविदेह क्षेत्र में जा सकेंगे।

## हद में से बेहद की ओर...

**प्रश्नकर्ता :** आपने एक बार दूसरे शब्दों में कहा था किसी जगह पर, कि खुद ने एक बाउन्ड्री बना ली है।

**दादाश्री :** हर कोई बाउन्ड्री में ही होता है। बेहद नहीं हो सकता और बेहद हो जाए तो उसका कम्प्लीट हो जाएगा। बाकी, बेहद नहीं होता, उस बाउन्ड्री में से, घेरे में से बाहर नहीं निकलता। (बुद्धि बाउन्ड्री वाली, लिमिटेड है। ज्ञान बाउन्ड्रीलेस, अन्लिमिटेड होता है।)

**प्रश्नकर्ता :** वह घेरे में रहकर समझने का प्रयत्न करता है। वह घेरे में रहकर समझना चाहता है या बेहद की समझ इसमें आ जाती है?

**दादाश्री :** जो बेहद की हद में आ गया, उसका काम हो गया। लेकिन एक ही रास्ता है कि जो बेहद तक पहुँच चुके हैं, उनसे वैसा मिल जाएगा।

## [ 5.3 ] रहस्य अलग-अलग मुखड़ों का

### हर एक को किसने गढ़ा?

किसी एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा कि, 'भगवान ने ये चेहरे अलग-अलग बनाए हैं, तो किस प्रकार से बनाए होंगे? ये किसमें बनाए होंगे?' 'अरे भाई, भगवान ने नहीं बनाए हैं'। फिर मुझसे पूछता है, 'लेकिन भगवान के बिना ये सब लोग अलग-अलग किस प्रकार से गढ़े गए होंगे?' मैंने कहा, 'नए-नए सांचे रखे होंगे अलग-अलग तरह के!' तो कहने लगा, 'ऐसे तो कितने सांचे!' अरे, नहीं है यह सांचे की बात। 'तो किस आधार पर ये सब अलग-अलग हैं?' मैंने कहा, 'यदि कभी भगवान वहाँ बना रहे होते तब तो (जैसे) कारखाने में एक सांचे से बनाई हुई चीज़ें होती हैं, वैसे ही होते ये सब भी'।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, जैसे, गुलाब का फूल यानी गुलाब का फूल।

**दादाश्री :** एक सरीखा ही! एक सरीखे ही दिखाई देते हैं लेकिन ऐसा है नहीं। तब पूछता है, 'यह किस प्रकार से है? यह क्या है? इन सब के चेहरे भगवान ने अलग-अलग बनाए। किस प्रकार से बनाए होंगे?' तब मैंने कहा, 'जीव मात्र में कोई भी सेम (सरीखे) नहीं है, बिल्कुल भी एडजस्टेबल नहीं है। उसका कारण यह है कि वह बिल्कुल अलग ही चीज़ है।

यह डिज़ाइन किसने बनाई? मुश्किल खड़ी होती न? इसीलिए

लोगों ने कल्पना की, कि भगवान के अलावा और कोई बना ही नहीं सकता।

**प्रश्नकर्ता :** वह भी असंगत बात है। कोई बनाता तो इस प्रकार से बना ही नहीं पाता।

**दादाश्री :** सांचे एक ही तरह के होते हैं न! वे सब दस तरह के या सौ तरह के होते, ऐसा होता तो हर सौ-दो सौ लोग मिलते-जुलते चेहरे वाले होते और फिर मुश्किल तो खड़ी ही रहती न? जमाई आएँ, तब फिर हम देखें, 'अरे, हमने तो कुमकुम लगाया हुआ था! यह वे नहीं हैं!' कोई निशानी रखनी पड़ती न? निशानी लगा कर काम करना पड़ता।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादाजी, उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती कि क्या घोटाला होता उस वजह से?

**दादाश्री :** भगवान ने नहीं किया है। लोग तो ऐसा ही मानते हैं कि भगवान हैं इसलिए वे ऐसा सेट कर देते हैं कि सब अलग-अलग ही रखो, वर्ना फिर उसकी पत्नी उसे पहचानेगी कैसे? लेकिन भगवान के बिना ऐसी सब सेटिंग किस तरह से हो गई? तो उसके जवाब में ऐसा कहते हैं कि, 'स्पेस अलग-अलग है। हर एक जीव बैठा है, खड़ा है या सो जाता है, तो उसका स्पेस अलग है और उसी की वजह से ये डिफरन्स है'।

तो मुझसे कहने लगा, 'भगवान ने बहुत अच्छा बनाया है कि देखो, किसी का भी चेहरा एक सरीखा नहीं है'। मैंने कहा, 'यदि भगवान ने बनाया होता न, तो भगवान बेचारे को फुरसत ही न मिलती। यह तो ऐसा है कि स्पेस अलग है इसलिए उसके आधार पर यह सब हो गया है'। काल एक ही है सभी का। मैं जब बात करता हूँ न, तब सभी का सुनने का काल एक ही है लेकिन स्पेस अलग है। आप पी.एच.डी. वालों को तो समझ में आ जाता है न, कि स्पेस अलग है?

**प्रश्नकर्ता :** अलग है।

**दादाश्री :** अतः ये सब (बातें) अलग हैं। इसलिए हमने 'व्यवस्थित' कहा है। इतना अधिक व्यवस्थित है कि किसी भी प्रकार की भूल नहीं निकाली जा सकती। भगवान यदि खुद बनाते तो भूल वाला हो जाता क्योंकि भगवान में ज़रा भी अक्ल नहीं है जबकि यह तो अक्ल का काम है। भगवान में ज्ञान है लेकिन अक्ल ज़रा सी भी नहीं है। यह तो कुदरत का बनाया हुआ है, दिस इज़ बट नैचुरल! कितना सुंदर बनाया है? और वह व्यवस्थित के अधीन रहकर बनाया है। हम (यदि) भगवान के लिए ऐसा कहें कि उनमें अक्ल नहीं है, तब भगवान बल्कि हँसेंगे और (यदि) आप कहोगे तो चिढ़ जाएँगे। इसलिए आप ऐसा मत कहना। जो मैं कहूँ वह आप मत कहना। मेरी उनके साथ अलग तरह की दोस्ती है। मेरिज अलग तरह की है और आपकी अभी मेरिज नहीं हुई है। आपने उन्हें पहचाना ज़रूर है लेकिन मेरिज नहीं हुई है।

**प्रश्नकर्ता :** लग्न नहीं हुआ है, विवाह तो हुआ है न?

**दादाश्री :** हाँ, विवाह हुआ है, लेकिन लग्न नहीं हुआ है।

## दाना-दाना अलग

किसी जगह पर छोटा सा झरना बह रहा हो, लेकिन वहाँ जाएँ तो बुलबुले बनते हुए दिखाई देते हैं या नहीं? कोई बुलबुला इतना बड़ा होता है, कोई इतना बड़ा होता है, कोई इतना बड़ा, वहाँ कोई क्रिएटर दिखाई देता है?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं।

**दादाश्री :** छोटे-बड़े बुलबुले बनते हैं लेकिन क्या उनकी डिज़ाइन में चेन्ज है? हाफ राउन्ड और उसकी डिज़ाइन-विज़ाइन, आकार सभी के एक जैसे हैं लेकिन साइज़ एक जैसा नहीं है और वे अलग-अलग टाइम पर फूटते हैं। अब कोई पूछे कि, ये बुलबुले छोटे-बड़े क्यों बनते हैं? तो कहते हैं कि गिरते समय स्पेस बदलता है। एक ही स्पेस नहीं होता। स्पेस कितना अधिक काम करता है!

**प्रश्नकर्ता :** यह बहुत अच्छी बात है, दादाजी।

**दादाश्री :** खिचड़ी में दाने सभी अलग-अलग। एक जैसे दिखाई देते हैं? सभी में अंतर है क्योंकि सब का स्पेस अलग है। खुद की स्पेस में ही उबला है।

देखो तो सही, यह सब स्पेस के आधार पर है। यह तो बहुत बड़ा साइन्स है, विज्ञान है जानने जैसा!

## 'स्पेस' के आधार पर फेस

इन सभी मनुष्यों के चेहरे (यदि) एक सरीखे ही होते तो अलग से पहचान ही नहीं पाते न, फिर अपना व्यवहार ही नहीं चल पाता। सिनेमा से बाहर निकलने के बाद फिर पति को ढूँढना बहुत मुश्किल हो जाता न?

**प्रश्नकर्ता :** हर एक के आत्मा की केटेगरी तो एक ही है न, दादा? फिर भी उनमें अंतर क्यों है?

**दादाश्री :** स्पेस हमेशा अलग ही होता है, जीव मात्र का। वह जिस जगह पर है, उस जगह पर दूसरा नहीं आ सकता।

**प्रश्नकर्ता :** अच्छा! वह स्पेस रिप्लेस नहीं हो सकता?

**दादाश्री :** नहीं। खुद के उसी स्पेस को लेकर ऐसा बदलाव है। देखो न, कितनी सुंदर व्यवस्था है! स्पेस की वजह से चेहरा, लंबाई वगैरह सभी स्पेस के आधार पर।

**प्रश्नकर्ता :** क्या यह प्राकृतिक गुण के कारण अलग है?

**दादाश्री :** यह सब अलग है। बाप-बेटे की एक ही जगह हो सकती है क्या? स्पेस अलग होता है या नहीं? या एक ही होता है? अर्थात् स्पेस के आधार पर यह बॉडी वगैरह सब है। अर्थात् जितने जीव उतना ही स्पेस और उतने-उतने सभी चेहरे अलग, वर्ना हम अपने बेटे को बुलाने जाते तो मिलता ही नहीं।

और यदि अलग नहीं होता तो पति की पत्नी बदलती ही रहती और पत्नी के पुरुष बदलते ही रहते। इसके यहाँ पर वह चला जाता, और उसके वहाँ पर यह चली जाती। अब चेहरे एक जैसे होते, तो कैसे पहचान पाते?

देखो न! लोगों के तरह-तरह के आकार, नए-नए आकार। आकार में कितने सारे चेन्जिस हैं!

यदि स्पेस में अंतर नहीं होता तो सभी चेहरे एक सरीखे होते। तो फिर क्या दशा होती? लोग परेशानी में पड़ जाते!!! कितनी सुंदर सेट की हुई दुनिया है! किसी ने नहीं रची है। बिना रचे बन गई है।

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है कि किन्हीं दो लोगों के एक सरीखे फोटो हों।

**दादाश्री :** बहुत कम नहीं, एक भी इंसान नहीं। दो लोग एक जैसे कहाँ पर देखे हैं आपने?

**प्रश्नकर्ता :** ऐसे फोटो आए हैं, अभी ही ऐसे फोटो आए हैं, दोनों एक सरीखे।

**दादाश्री :** नहीं, वे एक सरीखे दिखाई तो देते हैं, लेकिन एक्ज़ेक्टनेस में ऐसा नहीं होता।

**प्रश्नकर्ता :** क्या दूसरे ग्रहों पर ऐसे ही लोग हो सकते हैं?

**दादाश्री :** सभी जगह ऐसा ही है।

**प्रश्नकर्ता :** उनके जैसे ही दूसरे होते हैं वहाँ पर? उदाहरण के तौर पर प्रवीण भाई हैं, तो उनके जैसे ही दूसरे प्रवीण भाई, उसी तरह के?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं, नहीं। उसका कारण क्या है? हर एक जीव का स्पेस अलग है, इसलिए हर एक की डिज़ाइन अलग है। एक ही स्पेस में दो जीव एक साथ नहीं रह सकते। चाहे काल सभी पर

एक ही लागू होता हो लेकिन स्पेस अलग है। इसलिए चेहरे एक प्रकार के नहीं होते किसी भी जीव में। गायें-भैंसें हमें ऐसे दिखाई देते हैं जैसे कि ये सब एक सरीखे हों। नहीं, लेकिन वे एक सरीखे नहीं होते, उनमें डिफरन्स तो है ही क्योंकि जिनका स्पेस अलग है, उनमें डिफरन्स रहेगा ही।

अभी इन साइन्टिस्टों को इसका बहुत पता नहीं है। इसका पता नहीं चल सकता। (जहाँ) बुद्धि नहीं पहुँच सकती, ऐसी जगह है यह। बताने के बाद सस्ता हो जाएगा। पहले बुद्धि नहीं पहुँच सकती लेकिन मुझे रिज़ल्ट मिल चुका है। फिर कोई आपत्ति नहीं उठाई कि क्यों यह अलग-अलग है और ऐसा क्यों है। कोई नाक इतना बड़ा, कोई एकदम छोटा होता है, कोई तीखा होता है, कोई नाक चौड़ा होता है, किसी का ऐसा होता है। चपटी नाक वाले देखे हैं? सभी देखे हैं? तरह-तरह के होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर इन मंदिरों में इन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ एक सरीखी क्यों हैं?

**दादाश्री :** एक सरीखी नहीं होतीं। मूर्तियाँ एक सरीखी नहीं होतीं। नेमिनाथ की काली ही होती है, हमेशा।

**प्रश्नकर्ता :** काली नहीं, फेस का आकार...

**दादाश्री :** वह तो इसलिए कि मूर्ति बनाने वाला यह है या किसी और ने बनाई है यह? यह क्या स्पेस ने बनाई है? स्पेस बनाता तो अलग-अलग होगा। इसमें तो मूर्तिकार है। यदि ज़्यादा टूट जाए तो नाक ऐसी बना देता है। ऐसी बनाने के बदले वैसी बना देता है।

## इमली के दो पत्ते भी अलग

**प्रश्नकर्ता :** एक भी चीज़ मिलती-जुलती नहीं है। आपने तो कहा है न कि इमली के पेड़ के दो पत्ते भी एक सरीखे नहीं होते।

**दादाश्री :** कुछ भी एक सरीखा नहीं होता।

**प्रश्नकर्ता :** इसका तो पता ही नहीं होता, दादाजी। इसमें साइन्टिस्टों को क्या पता चलेगा?

**दादाश्री :** नहीं चल सकता। खुद अलग क्यों है? यानी कि वह समझता है कि इसे बनाने वाला कोई और होना चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** वहाँ पर फिर रुक जाता है और फिर सोचना छोड़ देता है।

**दादाश्री :** थककर फिर छोड़ देता है। बाकी, यह स्पेस तो हमारी खोज है। हमारी यह खोज नहीं हुई थी तब तक ऐसा लगता था कि, यह अलग-अलग किस आधार पर है? ऐसे क्या लक्षण रहे होंगे कि अलग-अलग हैं? फिर यह मिला तब पता चला। नहीं तो हम किस-किसको आने देते? वैसे के वैसे, एक सरीखे ही दिखाई देते। फिर मज़ा भी नहीं आता। नहीं? दूल्हे राजा शादी करने आए... वे कहाँ गए? तो कहते कि, अब यह वापस दूसरा आ गया जबकि यह सब तो कितना अच्छा चलता है। नहीं? ये सारी डिज़ाइनें कहाँ से लाए? वह भी आश्चर्य है न!

**प्रश्नकर्ता :** ये फिंगरप्रिन्ट्स भी अलग-अलग होते हैं न सब के।

**दादाश्री :** हाँ, अलग-अलग।

**प्रश्नकर्ता :** उसी के आधार पर कोर्ट चलते हैं।

**दादाश्री :** हाँ, उसी के आधार पर कोर्ट चलते हैं। अँगूठे के आधार पर ऐसे-ऐसे करते हैं न, उसी के आधार पर कोर्ट चलते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** सब के हाथों की रेखाएँ भी कहाँ मिलती हैं, दादाजी? सब बिल्कुल अलग, हाथ की रेखाएँ अलग।

**दादाश्री :** स्पेस अलग है इसलिए सबकुछ अलग है। सिर के बाल भी अलग, नाक भी अलग, सभी कुछ अलग।

**प्रश्नकर्ता :** एक ही सिर में दो बाल पास-पास वाले लेकिन अलग तरह के?

**दादाश्री :** सभी अलग तरह के ही हैं। दोनों का स्पेस अलग है न! सभी का स्पेस अलग है। दोनों आँखें भी अलग हैं न! दोनों का स्पेस अलग है। दोनों कान अलग हैं, एक कान से सुनाई देता है और दूसरे से न भी सुनाई दे।

स्पेस अलग-अलग है इसलिए सभी में अलग-अलग परिवर्तन होते हैं। तो इतने वॉरियर्स (योद्धा) बनेंगे, इतने सुथार, इतनी स्त्रियाँ, ऐसी फसल होगी। यह व्यवस्थित कितना सुंदर है!

## देखो, ज़रा बारीकी से

**प्रश्नकर्ता :** हम ऐसा कहते हैं कि, वनस्पति में भी जीव है। अब जो आम का पेड़ है, तो आम के पेड़ पर कितने आम होते हैं, तो उन सभी आमों का स्वाद एक ही तरह का होता है। जबकि इन मनुष्यों के पाँच बेटे हों तो पाँचों के विचार, वाणी और वर्तन अलग-अलग होते हैं।

**दादाश्री :** आम में भी अलग-अलग होता है। इतनी अधिक सूक्ष्मता नहीं है, आप में समझने की शक्ति नहीं है। हर एक आम में स्वाद अलग-अलग होता है। हर एक पत्ते में भी अंतर है। एक ही तरह के दिखाई देते हैं, एक ही तरह की सुगंध होती है लेकिन कुछ न कुछ अंतर होता है, क्योंकि इस दुनिया का नियम ऐसा है कि स्पेस बदले तो अंतर रहता ही है। आपको समझ में आया न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** ये जो मनुष्य हैं न, उन सभी में आपको अंतर दिखाई देता है लेकिन गाय-भैंसों को नहीं दिखाई देता। गायों को सभी मनुष्य एक ही प्रकार के दिखाई देते हैं। उसी प्रकार से हमें इन पत्तों-वत्तों में, आम-वाम में अंतर नहीं दिखाई देता। हर एक चीज़ जिसका स्पेस

बदलता है, उन सब में अंतर होता ही है। यह स्पेस अलग है, वह स्पेस अलग है। आपको समझ में आया, इस साइन्स का नियम? काल बदलने पर भी स्पेस बदलता है।

अब, पहली रोटी बनाते हैं तो उस रोटी का स्वाद अलग और दूसरी रोटी का स्वाद अलग होता है। लगता एक ही तरह का है। सभी में इतनी अधिक सूक्ष्मता नहीं है न, इतना परीक्षण नहीं कर सकते न। बनाने वाला एक ही व्यक्ति है, जगह एक है, लेकिन टाइम बदलता रहता है न। इसलिए स्वाद में अंतर आता ही रहता है। इसलिए अपने यहाँ पर प्रख्यात हो जाते हैं न, कोई व्यक्ति पकौड़ों के लिए प्रख्यात हो जाता है। उसका क्या कारण है? अरे, पकौड़ों में तूने क्या कुछ अलग तरह का बना दिया? वह है उसका भाव, टाइम और स्पेस। यानी ऐसे यह दुनिया चलती है। टाइम और स्पेस बदलते ही सबकुछ बदल ही जाता है। अपना भाव बदलता है, अभी ये बहन रोटी बना रही हों तो, वे पहली दो बनाती हैं, तब मन में ऐसा होता है कि, आज अच्छे से अच्छी रोटी खिलाऊँ और इतने में एक मेहमान आ जाते हैं, जान-पहचान वाले, उनका चेहरा देखकर मन बिगड़ जाता है, अरे, 'ये भला कहाँ से आए?' उसके बाद रोटी बिगड़ जाती है। वही का वही आटा हो, फिर भी। एक गुलाब के पौधे के फूल एक सरीखे नहीं होते। सभी फूलों में चेन्ज (अंतर) है, वह सूक्ष्मता आपको नहीं दिखाई दे सकती। जगह बदलती है, इसलिए यह सारा अंतर है।

किसी जीव के अंदर दूसरा जीव नहीं हो सकता। यदि होता है तो सूक्ष्म रूप से जो होता है, वह उस जीव के अंदर नहीं लेकिन उस जीव के बाहर है, उसके शरीर में है लेकिन जीव में नहीं है। अत: उसकी खुद की जो जगह है, खुद का जो आकाश है, उसने उसी का उपयोग किया है, उस (जीव के) आकाश में नहीं है। यानी कि हर एक का अवकाश अलग है इसलिए उसका पुरुषार्थ भी अलग-अलग होता है, उसके कार्य अलग होते हैं। हर एक के संयोग अलग हैं अत: सब संयोगों के अनुसार होता है।

एक जगह पर खाद ज़्यादा डल जाती है तो पौधा बड़ा हो जाता

है, एक जगह पर खाद नहीं डली हो तो वहाँ पर पौधा छोटा रहता है। एक जगह पर गड्ढा हो और पानी भर गया हो तो पौधा सड़ जाता है। यह सारा जगत् भी उसी प्रकार से है। अर्थात् यह जगत् अलग-अलग प्रकार से है। समझ में आया थोड़ा-बहुत?

## वाणी एक, काल एक, स्पेस अलग

मैं जो बात बता रहा हूँ, वह सब लोग एक जैसा ही सुन रहे हैं। यानी सब को एक सरीखा ही मिल रहा है लेकिन फर्क किस वजह से है? इस शरीर ने जो स्पेस रोका है, यह सब उसी के आधार पर हो रहा है। आप जिस जगह पर बैठे हो, वहाँ पर अन्य कोई नहीं बैठा है न? (जहाँ पर) खुद बैठा है वह स्पेस, दूसरे का स्पेस, सब का अलग-अलग है। नहीं? स्पेस अलग है या नहीं?

**प्रश्नकर्ता :** जगह अलग है।

**दादाश्री :** बैठक अलग है और सुनने की बात समान है। एक काल में सुनते हैं सभी, लेकिन एक स्पेस में नहीं सुनते। एक काल में सुनते हैं और सुनाने वाला भी एक ही व्यक्ति है। सभी, लाख लोगों का काल एक ही होता है। हमारी बातचीत चल रही होती है तब एक ही लगती है, लेकिन स्पेस अलग है इसलिए सब को अलग-अलग रहेगा। यदि स्पेस एक हो जाए तो बाकी सब एक जैसा हो जाएगा। इसलिए लोग उलझन में पड़ जाते हैं कि ऐसा क्यों, यह अलग-अलग क्यों है? लोग ऐसा पूछते हैं।

जगह के अनुसार भाव होते हैं। फिर भीतर वह अलग, यानी स्पेस अलग होता है इसलिए अलग-अलग तरह के भाव उत्पन्न होते हैं। मैं बोलता हूँ एक ही चीज़ लेकिन तुझे अलग तरह के भाव उत्पन्न होते हैं, उन्हें अलग तरह के। दोनों को अलग। किसी को विरोधाभास लग सकता है कि, 'दादाजी जो कह रहे हैं, वह गलत है'। अर्थात् यह सब स्पेस पर आधारित है। सब का स्पेस अलग है इसलिए अलग-अलग परिणाम आते हैं इसलिए अलग-अलग ग्रास्पिंग होता है।

अर्थात् अस्तित्व है और स्पेस है। जहाँ पर मूल भूमिका है, मूल खुद के देश में (स्व-द्रव्य में), वह स्पेस कुछ अलग नहीं होता है।

## इसमें नियति कहाँ पर?

**प्रश्नकर्ता :** इन दो बच्चों को इतना ज्ञान इस व्यक्ति के माध्यम से प्राप्त होना था, इसलिए उन्हें हो गया। यह व्यक्ति तो वही वाणी बोलता है लेकिन बाकी के जो पंद्रह लोग हैं, उन्हें कुछ भी नहीं होता। तो इन्हें होना था इसलिए हो गया। तब तो वह नियति ही है न?

**दादाश्री :** नहीं, नियति नहीं। नियति कब लागू होती है? स्पेस एक ही हो, तब। सभी एक ही स्पेस में हों तब नियति लागू होती है। यहाँ तो, स्पेस अलग-अलग है। नियति लागू हो ही नहीं सकती। नियति तो एक फैक्टर है, वन ऑफ द फैक्टर।

**प्रश्नकर्ता :** तो यह विषमता क्यों है?

**दादाश्री :** यही नियति का नियम है। नियति अर्थात् प्रवाह बहता रहता है। यह प्रवाह बह रहा हो उसमें... मान लो (जिस प्रकार) पुलिस वाले जा रहे हों, सौ-सौ की लाइन में। लेकिन अभी यह यहाँ पर आया, और वापस उठकर आगे जाएगा तो उसकी जगह पर दूसरा आ जाएगा। तो स्पेस तो सब का अलग ही है न! अभी यहाँ सब बैठे हुए हैं, उनका स्पेस अलग है न!

**प्रश्नकर्ता :** हर एक को यह जो अलग-अलग स्पेस मिलता है, वह किस आधार पर?

**दादाश्री :** उसका आधार है नियति। नियतिवाद का मतलब क्या है? (जब) जीव अव्यवहार राशि में से व्यवहार राशि में आता है तभी से उसका नियति पद शुरू हो जाता है। तब से लेकर मुक्त होने तक वह उसी पद में रहता है। नियति अर्थात् वह जीव जिस माइल पर होता है, उस जीव को उसी माइल का ज्ञान-दर्शन होता है।

**प्रश्नकर्ता :** और क्षेत्र का आधार भी नियति है?

**दादाश्री :** हाँ, उसका आधार नियति है। नियति के अधीन ही इन सब के स्पेस हैं और नियति अकेले ही यह नहीं कर सकती। यदि नियति अकेली ही होती तो जगत् में किसी और सॉल्यूशन की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। लेकिन स्पेस मिलने के बाद में यह इगोइज़म सारा काम करता है।

**प्रश्नकर्ता :** मुक्त होने की प्रक्रिया भी नियति के अधीन है?

**दादाश्री :** यह जो स्पेस है, वह नियति के अधीन है। बंधन की प्रक्रिया थी न, तो जिसके निमित्त (माध्यम) से वह हो रही थी, उसी के निमित्त से मुक्ति की प्रक्रिया होती रहती है। यानी कि इसमें नियति को कोई लेना-देना नहीं है। नियति तो बीच में आपको स्पेस वगैरह सब एडजस्टमेन्ट देती है। नियति काम कर रही है लेकिन नियति तो सभी के लिए एक सरीखी, एक जितनी ही है। (यदि) सौ लोग निकलें, तब सौ लोगों के खड़े रहने का स्थान तो होना चाहिए न? अब, क्योंकि देह है इसलिए खड़े रहने के लिए उतनी जगह की ज़रूरत पड़ेगी। और आत्मा का खुद का स्थान तो है ही न! क्योंकि जब तक वह संसारी है तब तक जगह अवश्य रोकेगा ही न!

**प्रश्नकर्ता :** परतंत्र होने में भी नियति है न, दादा?

**दादाश्री :** परतंत्र होने में नियति निमित्त नहीं है। नियति तो हेल्पिंग है, परतंत्र होने में भी हेल्पिंग है और स्वतंत्र होने में भी हेल्पिंग है। नियति तो बेचारी कहीं परेशान नहीं करती।

**प्रश्नकर्ता :** तो हर एक जीव उस स्पेस में से गुज़रता ही होगा न?

**दादाश्री :** गुज़रता है न। (जब) कोई सोलहवें माइल पर आता है तब किसी एक जीव की, खुद की जो स्थिति थी, वैसी ही स्थिति उसकी (दूसरे जीव की) रहती है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या ऐसा है कि हर एक को उस माइल पर से गुज़रना ही पड़ता है और हर एक को एक सरीखा ही अनुभव होता है?

**दादाश्री :** हाँ, (जब) वह सोलहवें माइल के किसी विशेष स्टेप पर आता है, तब उसे जो अनुभव होता है, वैसा ही अनुभव जब कोई दूसरा व्यक्ति उस स्टेप पर आएगा तब उसे भी होगा।

## गतिबंध का नियम...

**प्रश्नकर्ता :** वह जगह कब तय होती है, जन्म के समय? (जिसे) आप स्पेस कहते हैं, वह?

**दादाश्री :** मरने से पहले, फोर्टी एट (अड़तालीस) मिनट पहले। मरते समय पूरी ज़िंदगी का सार आता है और वह भी विदिन फोर्टी एट मिनट्स... यदि वे फोर्टी एट मिनट्स संभाल लिए जाएँ तो भाई का कल्याण ही हो जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** तो पुनर्जन्म को किस प्रकार से समझना है?

**दादाश्री :** पुनर्जन्म तो, अपने जो कर्म के हिसाब हैं न, उनमें किसी ने या ईश्वर ने भी हाथ नहीं डाला है। यह तो ऐसा है कि हर एक के कर्म के हिसाब अलग हैं। कर्म के हिसाब एक ही प्रकार के क्यों नहीं हैं? तो वह इसलिए कि ये सब जो बैठे हैं, उनमें से हर एक की जगह अलग है या नहीं? यानी कि स्पेस अलग है इसलिए कर्म अलग हैं। इसलिए सब के हिसाब अलग-अलग हैं। और वह अहंकार करता है इसलिए निरे पाप-पुण्य बंधते हैं। उन्हें भोगने के लिए फिर से जाना पड़ता है।

**प्रश्नकर्ता :** आज ही मैं बस में बैठे-बैठे सोच रहा था कि इन सब के चेहरे कैसे हैं, कोई एक भी चीज़ मिलती-जुलती नहीं है।

**दादाश्री :** नहीं। लेकिन इसका मैंने स्पष्टीकरण दिया है, बहुत उच्च प्रकार का स्पष्टीकरण दिया है। स्पेस अलग होने की वजह से चेहरे अलग हैं और इसीलिए यह संसार चल रहा है।

## क्यों नहीं है, एक ही धर्म?

**प्रश्नकर्ता :** विविध-विविध प्रकार के धर्म क्यों बने?

**दादाश्री :** लोगों की जगहें अलग-अलग हैं इसलिए विचार अलग-अलग प्रकार के हैं, इसलिए धर्म भी अलग-अलग प्रकार के बने।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, मनुष्य का स्वधर्म सच्चिदानंद है तो फिर इतने सारे धर्म क्यों हैं? और ये धर्म एक कब होंगे?

**दादाश्री :** (जब) इन सभी के चेहरे एक सरीखे हो जाएँगे तब धर्म एक हो जाएँगे। आप कहो कि इसे काम में नहीं लेना है तो वह कहेगा, इसे काम में लेना चाहिए। दिमाग़ अलग, चेहरे अलग, स्पेस अलग। अभी ये सब जो बैठे हुए हैं न, तो इनका स्पेस अलग-अलग है न! जब तक स्पेस अलग है तब तक एक धर्म नहीं हो सकता।

**प्रश्नकर्ता :** तो एक कब होगा?

**दादाश्री :** स्पेस एक हो ही नहीं सकता न, इसलिए जितने-जितने इस प्रकार से स्पेस में आए, उतने आत्मा प्राप्त करके झट से निकल जाएँगे। तब तक आराम से दु:खी होते रहना है, सिकते ही रहना है। किसी को ज़्यादा डिग्री का बुखार है और किसी को कम डिग्री का।

**प्रश्नकर्ता :** वह तो ऐसा है कि अलग-अलग रूपों में, अलग-अलग नाम से हम पूजा करते हैं और उन्हें पुकारते हैं और उसमें उनकी प्रति और उनकी उत्पत्ति आदि देखते हैं तो वह सब क्या है?

**दादाश्री :** वेरायटीज़ ऑफ रिलेटिव हैं। अनंत तरह की वेरायटीज़ हैं। हर एक जीवात्मा का स्पेस अलग होने की वजह से वेरायटीज़ भी अनेक प्रकार की हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हर एक के चेहरे अलग-अलग हैं, उसका कारण यह स्पेस है लेकिन इस कारण की वजह से ऐसा इफेक्ट आया, उसका लिंक ठीक से समझ में नहीं आ रहा है, ऐसा किस प्रकार से हुआ?

**दादाश्री :** मुख्य तो स्पेस ही है और कुछ नहीं है। अब इसमें कैसा होता है? इस चीज़ में कॉज़ इस तरह से रहे हुए हैं कि पचास

प्रतिशत कारण स्पेस के कारण हैं और पचास प्रतिशत अन्य सब के कारण हैं। लेकिन जिसके प्रतिशत अधिक होते हैं, उसी को कारण माना जाता है। किसी एक चीज़ के लिए नहीं कह सकते कि सिर्फ स्पेस के ही कारण है लेकिन स्पेस को मुख्य इसलिए कहते हैं कि इसमें पचास प्रतिशत कारण स्पेस है।

## कर्म को भी चलाती है कुदरत ही

**प्रश्नकर्ता :** हर एक को जो स्पेस मिला है, क्या वह उसके कर्म बंधन से है?

**दादाश्री :** हाँ, वह सब तो कर्म की वजह से ही है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सब कर्म से ही बने हैं। उस अनुसार उसे क्षेत्र मिल आता है। अभी आप यहाँ इस क्षेत्र पर बैठे हो तो वह अवश्य ही आपका हिसाब है। यानी कि कर्म इसी प्रकार से सेट है। लेकिन इन कर्मों को कौन चलाता है? कुदरत चलाती है।

आप जिस स्पेस पर बैठे हो, क्या उस स्पेस को आप जानते थे कि, 'मैं इसी जगह पर बैठूँगा?' क्या आप यह जानते थे कि, 'इस समय पर दादाजी हमारे साथ बातचीत करेंगे?'

**प्रश्नकर्ता :** नहीं।

**दादाश्री :** तो व्यवस्थित ये सब संयोग इकट्ठे कर देता है और अपना काम हो जाता है। उसके लिए बीच में भगवान की ज़रूरत नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** संयोग कौन से कारणों से मिलते हैं?

**दादाश्री :** आप शराब नहीं पीते हो, लेकिन अगर अभी आप ऐसा कहो कि शराब पीना अच्छा है या शराब पीने में कोई हर्ज नहीं है तो उससे आपको शराब का संयोग मिलेगा। अर्थात् यह सब आपके भाव से, यह सारा संसार मिला है। आप ही, यू आर होल एन्ड सोल रिस्पॉन्सिबल फॉर युअर लाइफ। नो बडी इज़ रिस्पॉन्सिबल, गॉड इज़

नॉट रिस्पॉन्सिबल फॉर युअर लाइफ। भगवान तो कुछ करते ही नहीं हैं। अंदर वीतरागता से बैठे हुए हैं।

## भ्रांत पुरुषार्थ का आधार, ज्ञान और स्पेस

अब आप कभी चोरी नहीं करते हो लेकिन किसी ऐसी जगह पर बैठे हुए हों, उस समय *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) तो सब अच्छी ही होती है लेकिन वहाँ पर सोना व ज़ेवर पड़े हुए हों और वह व्यक्ति कुछ देर के लिए बाहर जाए। तब आपके मन में चोरी का भाव हो जाता है तो यह उल्टा पुरुषार्थ हुआ कहलाएगा लेकिन लेते नहीं हो। यह भाव हुआ वह उल्टा पुरुषार्थ हो गया।

**प्रश्नकर्ता :** यानी वापस बीज डाला। अब, वह नैमित्तिक धक्के से हुआ न?

**दादाश्री :** नहीं। वह उल्टे पुरुषार्थ से है। निमित्त से तो सिर्फ यहाँ आया और गया, लेकिन उल्टा पुरुषार्थ करता है।

**प्रश्नकर्ता :** हमें इस प्रकार से उलझन हुई थी, तो मन में ज़रा सॉल्यूशन नहीं आ रहा था कि यदि नैमित्तिक धक्के से यह भीतर भाव होता हो तो वह भी अपने हाथ की बात तो नहीं रही न।

**दादाश्री :** नहीं, ऐसा नहीं है। हाथ की बात तो है ही न! क्यों कुएँ में नहीं गिर जाता?

**प्रश्नकर्ता :** जिन्हें गिरना हो, वे गिर जाते हैं, दादाजी।

**दादाश्री :** वह गिरता है लेकिन दूसरा क्यों नहीं गिरता? जो उल्टे -सुल्टे भाव होते हैं न, वे अभी के ज्ञान के अधीन हैं। जैसे-जैसे जाति उच्च होती जाती है, वैसे-वैसे मारने के भाव कम अच्छे लगते हैं न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, वैसा वह (भाव) नहीं होता।

**दादाश्री :** उच्च जाति में खून-चोरी वगैरह नहीं होते हैं न?

सूक्ष्म चोरी भले ही हो लेकिन स्थूल चोरी नहीं होती। क्योंकि सभी लोग पुरुषार्थ करके चोरियाँ बंद करते आए हैं।

**प्रश्नकर्ता :** वह जो पुरुषार्थ करना...

**दादाश्री :** वह भ्रांति का पुरुषार्थ है।

**प्रश्नकर्ता :** जिसने ज्ञान नहीं लिया है उसे, खराब भाव में से अच्छे भाव लाने, ऐसा जो ऑटोमैटिक पुरुषार्थ हो, तो वह...

**दादाश्री :** वह ऑटोमैटिक है ही नहीं। भ्रांत पुरुषार्थ के पीछे ज्ञान रहता ही है, व्यवहारिक ज्ञान। जब तक मूल ज्ञान प्राप्त नहीं हो जाता तब तक व्यवहारिक ज्ञान रहता ही है। यदि हमने किसी को पीटा तो वह ज्ञान उसके लिए उपदेश का कारण बन जाएगा कि फिर से झगड़ा नहीं करना है।

अर्थात् यह ज्ञान प्राप्त होगा उसे। (यदि) नहीं पीटा गया होगा तो ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। खुद को, अपनी भूल दिखाई नहीं देती न! वह तो, जब बहुत मार पड़े तब ज्ञान प्राप्त होता है कि मैंने यह जो भूल की, उसका यह फल आया है तब फिर वह भूल नहीं करेगा।

**प्रश्नकर्ता :** अब यह जो कोई भी घटना घटी और अंदर से नैमित्तिक धक्का लगा भाव का, वह भी इस प्रकार के ज्ञान के आधार पर लगता है या कुदरती रूप से लग जाता है?

**दादाश्री :** इस ज्ञान के आधार पर। कुदरत-वुदरत कुछ भी नहीं। आप ही प्रोजेक्टर हो और यह प्रोजेक्शन है। आप जितना करोगे न, एक के बाद एक, वैसा ही फल आएगा... अब प्रोजेक्ट किस आधार पर करता है? तो कहते हैं, 'जो भी रिलेटिव ज्ञान उसे प्राप्त होता है, उसके आधार पर'।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन सभी को क्यों एक सरीखा ज्ञान नहीं मिलता? एक संयोग मिलने पर उसमें से हर एक को अलग-अलग ज्ञान होता है, वह किस आधार पर?

**दादाश्री :** अंत तक अलग ही रहेगा। क्योंकि उसकी सीट अलग है, स्पेस अलग है इसलिए अलग ही रहेगा। अंत तक विचार भेद रहेगा। काल-वाल सब एक ही है, स्पेस अलग है। हाँ, वर्ना सब नियति ही थी। सिर्फ नियति ही कहलाती तो फिर नियति के अधीन है पूरा जगत् लेकिन किसी का भी रौब जमे, कुदरत ने ऐसा होने नहीं दिया है। कोई ऐसा नहीं कह सकता कि, 'मैंने किया'।

सर्व काल फिक्स नहीं है इसलिए विचार भी फिक्स नहीं हैं, हर एक के विचार अलग-अलग होते हैं। सिर्फ स्पेस ही अलग है। अन्य कुछ भी अलग नहीं है।

जिस तत्त्व से यह शरीर बना हुआ है, उसी तत्त्व से गायें-भैंसें बनी हुई हैं। वही तत्त्व है, सिर्फ स्पेस के अंतर को लेकर ये सारे भाव बदल गए। और भाव बदल गए इसलिए पूरा जगत् खड़ा हो गया। अपने हाथ में क्या है करने को, वह तो आपको थोड़ा-बहुत समझ में आ गया न?

**प्रश्नकर्ता :** विचार अथवा भावनाएँ करना अपने हाथ में रहा।

**दादाश्री :** हमें उन्हें बदलना चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** जितना अवस्थित स्पेस होगा, उस अनुसार उसे मिलेगा न?

**दादाश्री :** स्पेस अलग-अलग। एक जगह पर दो लोग नहीं बैठ सकते न!

**प्रश्नकर्ता :** वह ठीक है और इंसान का खुद का कुछ तो होता होगा न?

**दादाश्री :** उसमें फिर भाव उसका खुद का है। वह उसका भाव कहलाता है। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव। उसमें काल एक ही प्रकार का, द्रव्य यानी कि 'मैं' एक ही प्रकार का लेकिन उसका यह भाव, ज्ञान लेने वाले का भाव और यह जगह। वह जगह असर डालती है और भाव असर डालता है, दोनों का असर है। ज्ञान तो एक ही प्रकार का है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या यह इफेक्ट भावकर्म में से आता है?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन भावकर्म किस आधार पर होते हैं? तो कहते हैं, 'स्पेस के आधार पर'।

**प्रश्नकर्ता :** तो स्पेस किस आधार पर है, दादा?

**दादाश्री :** स्पेस को आधार है ही नहीं, निराधार। स्पेस तो खुद की जगह पर ही है, वह खुद ही है। स्पेस अर्थात् आकाश। आकाश तो है लेकिन आकाश के जिस भाग में 'वह' आता है, उस भाग में वैसा ही असर होता है।

## अंतःकरण भी स्पेस के आधार पर

**प्रश्नकर्ता :** क्या चैतन्य की उपस्थिति से ही मन-चित्त-बुद्धि आदि स्फुरायमान हैं?

**दादाश्री :** हाँ, चैतन्य की उपस्थिति से यह सब टिका हुआ है। उसकी उपस्थिति से उत्पन्न हो गया है तभी यह सब टिका हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** यानी कि स्वतंत्र प्रकार से वह कुछ भी नहीं हैं?

**दादाश्री :** बिल्कुल भी स्वतंत्रता नहीं हैं किसी को, स्वतंत्र है ही नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** फिर भी चैतन्य की उपस्थिति से मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार, ये सभी स्फुरायमान हैं तो सभी को एक सरीखी स्फुरणा क्यों नहीं होती?

**दादाश्री :** नहीं होगी। सभी का स्पेस अलग है न! स्पेस एक ही होता तो होता।

हर एक जीव का स्पेस अलग-अलग होता है इसलिए हर एक जीव अलग-अलग देखता है। इसलिए हर एक जीव अलग-अलग परमाणु खींचता है, अलग-अलग भाव करके। इसलिए अलग-अलग आकार खींचता है।

## भाव बदलने से स्पेस में बदलाव

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा कैसे हो सकता है कि हर एक व्यक्ति को अलग-अलग अनुभव होते हैं? ऐसा क्यों होता है?

**दादाश्री :** स्पेस अलग है, इसलिए। 'स्पेस में फर्क है', ऐसा कहते हैं।

एक ही स्पेस होगा तो एक सरीखे भाव होंगे। अर्थात् किसी स्त्री के अंदर बालक बैठा हुआ हो, तो दोनों के भाव एक सरीखे, समान होंगे। स्पेस एक है, इसलिए, और स्पेस के अनुसार भाव बदलते हैं। किसी जगह पर जाओ तो वहाँ हिंसा के विचार आते हैं। किसी जगह पर जाओ तो किसी के साथ लक्ष्मी से संबंधित स्वार्थ के विचार आते हैं, अन्य विचार आते हैं। तरह-तरह के विचार बदलते रहते हैं जगह के अनुसार। जगह के अनुसार भाव बदलते हैं और भाव के अनुसार सब चलता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन उसे अलग-अलग स्पेस मिलता है तो उसका भी कोई कारण होगा न?

**दादाश्री :** हाँ, उसका भी कारण है।

**प्रश्नकर्ता :** उसका क्या कारण है?

**दादाश्री :** उसका कारण है, पहले का हिसाब।

**प्रश्नकर्ता :** उसी अनुसार स्पेस मिलता है इसलिए उसी अनुसार भाव होते हैं।

**दादाश्री :** और, स्पेस मिलना ही चाहिए उसे। हिसाब है इसलिए हर एक को स्पेस मिलना ही चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** अगले जन्म में स्पेस अच्छा मिले, उसके लिए हमें अभी क्या करना चाहिए?

**दादाश्री :** हाँ, भाव बदलने चाहिए। किस प्रकार से हर एक

व्यक्ति को सुख दूँ! जो आपको दु:ख दे, उसे भी सुख देने के भाव करोगे तो अगले जन्म में बहुत अच्छा मिलेगा।

## जौहरी ही परख सकता है हीरे को

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर सभी को क्यों अलग-अलग तरह की शंका हुई?

**दादाश्री :** वह तो इसलिए कि हर एक का स्पेस अलग-अलग है और हर स्पेस अलग है। यदि स्पेस एक होता न तो सभी को अलग-अलग तरह की शंका नहीं होती। स्पेस अलग-अलग होने की वजह से सभी को अलग-अलग (शंका) होती है। और वह स्पेस तो रखना ही पड़ेगा न हर एक को। रखना नहीं पड़ेगा क्या अलग-अलग? क्या लगता है आपको?

**प्रश्नकर्ता :** सही बात है लेकिन उसके लिए भी कुछ...

**दादाश्री :** वह स्पेस अलग है इसलिए हमें अलग-अलग दिखाई देता है। और एक ही स्पेस होता तो एक ही तरह के भाव आते सब को क्योंकि काल सभी का एक सरीखा ही होता है।

लड्डू एक प्रकार के होते हैं लेकिन सभी को अलग-अलग स्वाद आता है, वह आश्चर्य ही है न! बिल्कुल सोने जैसा इंसान हो फिर भी सारे अलग-अलग अभिप्राय।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। ये लोग क्षेत्र कहते हैं, उसे हम स्पेस कहते हैं इसलिए गड़बड़ हो गई। वे मुझसे कहते हैं कि यह 'स्पेस' शब्द तो सुना ही नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन इसे एक्ज़ेक्ट समझाया न, दादा। इस तरह बताने से समझ में आ जाता है न, ठीक से।

**दादाश्री :** पूरी तरह से समझ में आ जाता है। उसके बाद फिर से पूछने को रहता ही नहीं न! पूछना नहीं पड़े और शंका भी

न रहे कि किस आधार पर चेहरे और यह सब अलग-अलग हैं। कोई अपने दिमाग़ में डाल दे कि, 'भगवान नहीं हैं ऐसा कहते हो? तो चेहरे किस वजह से अलग हैं?' तो फिर हम बिल्कुल चुप! यों इस तरह से सिर खुजलाते हैं! एक बार ऐसा सुन लिया हो तो फिर कोई चुप नहीं कर सकेगा न? नीचा दिखाने वाले को तो बहुत कुछ आता है।

रात को आपको स्पेस कितने टाइम तक याद रहा था?

**प्रश्नकर्ता :** अभी तक चल रहा था।

**दादाश्री :** अब ये लोग तो बाहर निकलते ही भूल जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन भूल कैसे सकते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, लेकिन ये लोग सब भूल जाते हैं। लोगों का चित्त किसमें रहता है? 'घर पर मेथी के पकौड़े बनाए हैं, वह खा लूँगा, चाय-वाय पीकर।' इसका लोगों को बहुत ध्यान रहता ही नहीं है। लोगों का ज़रा-ज़रा सा ध्यान चटनी में रहता है। किसी को सिनेमा देखने की इच्छा होती है...

और इन जैसों को (जिन्हें) कुछ चाहिए ही नहीं, उनका चित्त वहीं पर रहता है। अब, सभी स्पेस के बारे में समझ गए होंगे न? सुनने की ही देर है, हं। आपको पूरी रात याद रहा है!

**प्रश्नकर्ता :** मुझे तो अभी तक वही फिल्म चल रही है कि दादा ने यह कैसी ग़ज़ब की बात निकाली!

**दादाश्री :** अब, औरों ने तो सुना, बस उतनी ही देर, उसके बाद कुछ भी नहीं। बाहर निकले कि जैसे थे वैसे के वैसे!

जौहरीपन होना चाहिए न, खुद में जितना जौहरीपन आया होगा, उतनी ही खुद को पहचान होगी। जौहरीपन अभी तक आया नहीं हो तो यों ही सब चला जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** यह तो वही बात आकर खड़ी हो गई कि, अपने स्पेस के अनुसार पहचान सकता है।

**दादाश्री :** बस, स्पेस के अनुसार पहचान सकता है। बहुत कम लोगों में थोड़ा-बहुत जौहरीपन होता है लेकिन फिर भी पूर्ण जौहरी नहीं बने होते। क्योंकि अपने यहाँ बड़ौदा में, अगर यहीं पर हीरा बेचने जाएँ और बड़ौदा के सभी जौहरियों से पूछें तो कोई हज़ार कहेगा, कोई एक हज़ार पचास कहेगा, कोई नौ सौ पचास कहेगा लेकिन सब इतनी ही रेन्ज (सीमा) में और मुंबई में जाएँ तो उसी हीरे का अठारह सौ कहेंगे। और उसी को लेकर वहाँ मद्रास में जाएँ तो पच्चीस सौ रुपये कहेंगे। और उसी हीरे को पेरिस में ले जाएँ तब सात हज़ार...

**प्रश्नकर्ता :** यह स्पेस जैसा शब्द आपके पास कहाँ से आया? यह स्पेस शब्द तो कितनों को समझ में नहीं आया। कुछ बड़े लोगों ने इसका उपयोग किया है, जिनका माध्यम अंग्रेजी है उन्होंने उपयोग किया है, कि जब तक स्पेस है तब तक मुक्ति नहीं है।

**दादाश्री :** ठीक है, सही कहा है।

# [ 6 ]
# संसार अर्थात् छः तत्त्वों की पार्टनरशिप वाला व्यापार

## छः पार्टनर्स

देयर आर सिक्स पार्टनर्स इन दिस बॉडी। इस संसार को चलाने के लिए छः पार्टनर इकट्ठे हुए हैं। ब्रह्मांड सिर्फ छः तत्त्वों से भरा हुआ है! इन छः पार्टनरों की 'लिमिटेड कंपनी' है। आपको क्या लगता है, छः पार्टनर कौन-कौन से हैं?

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु।

**दादाश्री :** और दूसरा?

**प्रश्नकर्ता :** अवकाश, और फिर काल।

**दादाश्री :** तीन। और फिर?

**प्रश्नकर्ता :** गति सहायक तत्त्व, स्थिति सहायक तत्त्व और आत्मा।

**दादाश्री :** हाँ, ये छः लोग मिलकर कहते हैं कि 'हम सब पार्टनरशिप में व्यापार करेंगे'। छः पार्टनरों का खेल है यह सारा। छहों पार्टनरशिप में धंधा करते हैं, कॉर्पोरेशन बनाया है।

## जगह दी आकाश ने

ये छः पार्टनर कहते हैं कि 'हमें बिज़नेस शुरू करना है'। तब

फिर इन सब ने मिलकर कहा, 'अरे, लेकिन जगह कहाँ है? कम्पाउन्ड की ज़रूरत पड़ेगी न, अपने कारखाने की जगह?' हमें कारखाना बनाना हो तो यह सब नहीं चाहिए?

**प्रश्नकर्ता :** चाहिए।

**दादाश्री :** अब आत्मा कहता है कि यह जगह किसकी है? तो आकाश कहता है 'जगह सारी मेरी, जितनी चाहिए उतनी। बेहिसाब जगह है, जितनी काम में लेनी हो उतनी लो। पूरा स्पेस मेरा, जाओ'। जैसे लोग नहीं कहते कि कारखाना बनाना हो तो जगह सारी मेरी। बाकी सब आपका। पैसे-वैसे, नकद कुछ नहीं दूँगा। आकाश ने 'उसे' जगह दी। ऐसे वह वन ऑफ द पार्टनर्स बन गया।

## माल-सामान जड़ का

तब फिर माल-सामान चाहिए, उसका क्या? उसका सप्लायर कौन? तब कहते हैं, 'परमाणु'। जड़ तत्त्व सिर्फ सप्लायर है। यह मैटर वाला कहता है कि 'जो भी चीज़ चाहिए, आप हमें फोन कर देना। आपको हर चीज़ देंगे।' यानी सारा ही सामान परमाणुओं का, रूपी तत्त्व का। फिर परमाणु कहते हैं कि 'जितना भी चाहिए, वह सारा मटीरियल मेरा। वह भी विदाउट कार्टिंग चार्जेज़। कार्टिंग-वार्टिंग हमारा नहीं है। कार्टिंग की ज़िम्मेदारी मेरी नहीं है।' फिर वह कार्टिंग चीज़ अलग है।

## कार्टिंग करता है गति सहायक

तब यदि हम सप्लायर से कहें कि, 'तू यहीं पर डाल जा न!' तो कहेगा 'नहीं, कार्टिंग कॉन्ट्रैक्टर को सौंपो, हमारा काम नहीं है। आपको जो चाहिए, वह माँग लो। कार्टिंग वाले को सौंप दो'। तो फिर कार्टिंग वाला कौन है? तब कहते हैं, गति सहायक नामक तत्त्व है। गति सहायक जो है, वह कार्टिंग करके ले जाता है और लाता है। तो क्या वही है ले जाने वाला? तब कहता है, 'हाँ। कार्टिंग कॉन्ट्रैक्टर से कहना कि भाई, माल लेकर डाल जा'। कार्टिंग, गति सहायक का है

तो जितना माल होता है, वहाँ पर लाकर रख जाता है, बस। माल-सामान लाने वाला और ले जाने वाला गति सहायक तत्त्व है। गति सहायक कहता है, 'कार्टिंग पूरा मेरा'। यानी फिर तीसरा पार्टनर हुआ, यह गति सहायक तत्त्व।

## स्टोरेज करता है स्थिति सहायक

और चौथा पार्टनर है, स्थिति सहायक तत्त्व। कार्टिंग करने वाले व्यक्ति की कार्टिंग एक बार चली तो फिर चलता ही रहेगा, खड़ा नहीं रहेगा तो फिर हम माल कैसे उतारेंगे? तो फिर वापस स्थिति सहायक तत्त्व उसकी हेल्प करता है। लाने वाला लाता है, ले जाने वाला ले जाता है, अपने आप ही कार्टिंग-वार्टिंग सबकुछ, साफ-सफाई वगैरह सभी कुछ करता है। और स्थिति सहायक कहता है, 'एक जगह पर स्टोरेज रूम में सामान रखना है।' ऐसे स्थिति सहायक वाला उस माल को उतारने का और स्टोरेज करने का, दोनों ही काम करता है।

## मैनेजमेन्ट है, काल तत्त्व का

**प्रश्नकर्ता :** काल का बाकी रहा, काल! काल तत्त्व का क्या फंक्शन है?

**दादाश्री :** काल यानी कि इतनी मुद्दत में ही यह चाहिए तो उतनी ही मुद्दत में यह सब काम हो जाना चाहिए। यानी काल, काल का काम करता है। टाइम (काल) कहता है, मैनेजमेन्ट सारा मेरा है। काल जो है, कालाणु, वे संयोगिक प्रमाणों को इकट्ठा कर देते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, यानी कि जो भी एक्शन और रिएक्शन होना है, वह इन कालाणुओं की वजह से होता है?

**दादाश्री :** नहीं। उनकी वजह से नहीं, लेकिन उस पर से हम हिसाब लगा सकते हैं कि यह पुराना हो गया, यह नया है। काल के अणु होते हैं। अब काल क्या कहता है कि लेकिन यह किस आधार पर तय होगा? तब कहता है, 'हमारे आधार पर। हम नए को पुराना

करते रहते हैं'। यानी मैनेजर से कहता है, 'फिर आप फेंक देना। नए को पुराना करना मेरा धंधा है।' यानी कि काल का मैनेजमेन्ट है।

## चेतन, सभी का सुपरवाइज़र

इन सब पार्टनरों में से जो चेतन तत्त्व है, वह सब का ध्यान रखता है। हर एक वस्तु का क्या हुआ है वगैरह, और सभी का ध्यान रखता है। अर्थात् सुपरवाइज़र जैसा। उसे कुछ करना नहीं है। सिर्फ सुपरविज़न ही करना है। इसमें चेतन तत्त्व का यह काम है। छः की पार्टनरशिप में उसका फर्ज क्या है? तो वह है 'सुपरविज़न करना'। बोलना-करना नहीं है, डाँटना नहीं है, कुछ भी नहीं करना है। कुछ भी लाना-ले जाना नहीं है। इसमें आत्मा को सब का ध्यान रखना है कि यह सब किस तरह से हो रहा है। भूलचूक हो तो उसे बताना है, समझाना है। आपको ओन्ली (सिर्फ) निरीक्षण करना है कि किस तरह से चल रहा है। आपको ज़रा देखरेख रखनी है कि क्यों भाई, ये कार्टिंग में देरी हुई? इतना ही। डाँटना-करना नहीं है। निरीक्षण! आपको सिर्फ देखते ही रहना है। ये सभी जो काम कर रहे हैं, उसे देखते ही रहना है। इन सब की निगरानी करते रहना है। किसी को डाँटना नहीं है, ऐसा सब नहीं करना है। हम क्या करते हैं? इन सब की देखभाल करते हैं। देखभाल अपना काम है। व्यवस्था औरों के हाथ में है। सुप्रिन्टेन्डेन्ट पना, सिर्फ देखना और जानना है, बस। दूसरी झंझट नहीं करनी है। क्या माल-सामान आया या गया, वह सारा ध्यान रखना है। वह तत्त्व चेतन है, जो कि आप खुद हो।

## इस तरह चलता है छः से व्यापार

इन सब तत्त्वों से यह व्यापार शुरू हो गया है। छः पार्टनर्स हैं, उनमें से जगह आकाश की है और दूसरे पाँच पार्टनर्स हैं। सब ने अपना-अपना काम करके शुरू की है यह पार्टनरशिप।

सिक्स इटर्नल पार्टनर्स इन दिस वर्ल्ड। चेतन भी पार्टनर है, परमाणु भी पार्टनर है, गति सहायक पार्टनर है, स्थिति सहायक पार्टनर

है, आकाश देने वाला भी पार्टनर है। टाइम पार्टनर है। अपने-अपने काम कर रहे हैं इसमें। अपना-अपना काम बाँट लिया है। आत्मा को इन सब का निरीक्षण करना है, देखभाल करनी है। इसकी पार्टनरशिप इतनी ही थी। देखभाल करने जितनी ही। उसके बजाय इसने पकड़ लिया कि 'यह मेरा है, मेरा है'। पूरा ही कब्ज़े में कर लिया। 'आप सब क्या करते हो? मैं ही सब कर रहा हूँ, मेरे बिना यह सब कैसे हो सकता है?'

इन छः पार्टनरों में से आत्मा वन सिक्स्थ (छठे हिस्से का) पार्टनर है और यह कहता है, 'मैं ही कर रहा हूँ, यह सब', इसलिए बाकी के छः पार्टनर्स चिढ़ गए हैं। इसलिए उसका तेल निकाल देते हैं। चिढ़ जाएँगे या नहीं? सच-सच बताओ न? 'मैं ही कर रहा हूँ', इस तरह पूरा ही ले बैठा है। तब वे पार्टनर कहते हैं, 'भाई, सारा काम हम करते हैं और तू अकेला अपने सिर पर ले लेता है?'

## बन बैठा मालिक, चेतन

तब वे कहते हैं, 'तू कहाँ था पहले, कार्टिंग पर मैं हूँ।' तब जड़ कहता है कि, 'अरे, सामान मेरा है'। 'अरे, जगह मेरी है फिर तू क्यों बीच में किच-किच कर रहा है?' वे सब कहते हैं, 'तू कैसा? अरे भाई, अभी तो ये सभी चीज़ें हम पर आई हैं न'। बाकी के पाँच पार्टनर कहते हैं कि 'जब तू सो जाता है तब अंदर कौन चलाता है। क्या हम पार्टनर नहीं हैं? हम सब बराबर के पार्टनर हैं'।

यानी कि ये जो सारे तत्त्व हैं, वे काम कर रहे हैं। उसमें हम, (विभाविक) आत्मा, खुद कहता है, 'यह मैं हूँ, यह मैंने किया, यह मैंने किया, यह मैंने किया। यह मेरा है'। 'यह मेरा', कहकर बाकी सब की पार्टनरशिप ही उड़ा दी इसलिए सब पार्टनरों ने दावे दायर किए हैं। बोलो, यों दावे दायर किए हों तो ऐसे में कोई सुखी रह सकता है क्या? कर रहे हैं सभी मिलकर, तो क्या हमें उनकी पार्टनरशिप स्वीकार नहीं करनी पड़ेगी कि, 'भाई यह आपने किया!'

वे सारे पार्टनर्स कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं। कैसे हैं? कहेंगे, 'आ जा, तेरे बाप को सीधा कर देंगे'। वे उसे मारते रहते हैं और फिर देखो दावे चलते हैं। फिर इन जैसे वकील भी मिल आते हैं। जब वकील इनके पक्ष में पड़े रहते हैं तब वह विरोध करने लगता है। अंदर झगड़े, सारी झंझट चलती है।

## विशेष-भाव से बना संसार

बोलो, वकील नहीं रखना पड़ेगा फिर? उन सब ने तो फिर वकील रखे हैं, इन भाई जैसे।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, हमारे लिए एक आर्बिट्रेशन क्लॉज था। यदि ज्ञानी मिल जाएँ तो *निकाल* कर देंगे, तो वह कबूल है सभी को।

**दादाश्री :** 'लेकिन ये झगड़े किसलिए हैं भाई? मैं अकेला हूँ। अंदर अभी कौन किच-किच कर रहा है? अभी सो जाने दो न?' लेकिन नहीं सोने देता। कभी ऐसा नहीं हुआ? अनुभव नहीं हुआ?

**प्रश्नकर्ता :** चलता है, अरे खूब!

**दादाश्री :** अनुभवी हो? एक्सपर्ट?

**प्रश्नकर्ता :** अनुभवी, एक्सपर्ट नहीं। झगड़े देखते हैं, झगड़े खूब चलते हैं।

**दादाश्री :** बाकी, मैं तो एक्सपर्ट था। नींद ही नहीं आती थी न! कैसे आती पर? जब तक ज्ञान नहीं हुआ था तब तक नहीं आती थी। इसी वजह से आबरू चली गई। आए बड़े आबरूदार! गाँव में दस बीघा ज़मीन और एक छप्पर (घर), उसमें भी देखो तो, जैसे खंभात के कोई बड़े नवाब नहीं आए हों, ऐसा रौब रहता था! अरे, खंभात के नवाब की भी नहीं सुनते थे फिर! गायकवाड़ की भी नहीं सुनते, ऐसे थे!

**प्रश्नकर्ता :** आप्तवाणी में लिखा हुआ है कि बाकी के तत्त्व शुद्धात्मा की नहीं सुनते तो आपने उन तत्त्वों को कैसे अनुकूल किया?

**दादाश्री :** खुद जब ज्ञान स्वरूप हो जाता है तब वे अपने आप ही अनुकूल हो जाते हैं। अज्ञान होगा तो अभी भी नहीं सुनेंगे। अहंकार होने लगे तो बाकी के तत्त्व कहते हैं कि 'क्या तेरे अकेले के बाप का है? हम सब की पार्टनरशिप है'। ज्ञान होता है तब अहंकार चला जाता है इसलिए फिर वे सब शुद्ध हो जाते हैं। अज्ञान को लेकर ये सारे लड़ाई-झगड़े हैं। अज्ञान को लेकर पूरा मालिक बन बैठता है। छः पार्टनर्स हैं, उनमें से सिर्फ यही अकेला कहता है कि 'मेरा है, मैं ही हूँ'।

विशेष-भाव उत्पन्न हुआ, अहंकार उत्पन्न हुआ, आत्मा में नहीं। आत्मा तो वैसा ही है लेकिन इन दोनों के इकट्ठे होने से फिर विशेष-भाव उत्पन्न हो गया, इसलिए, ऐसा आ गया कि, 'मैं कर रहा हूँ'। इसलिए ये सारे झगड़े चल रहे हैं। अतः वह अलग हो जाए न, एक बार खुद का यह (स्वरूप) जान जाए, फिर ऐसा सब (अहंकार) नहीं करेगा। फिर झगड़ा नहीं रहेगा। यह सब अज्ञानता से चलता रहता है, लौकिक प्रकार से उसके तूफान चलते हैं।

अब बाकी सभी पार्टनर रूठ गए हैं। देखो दावा दायर किया, ज़बरदस्त मारपीट करते रहते हैं। अब छुटकारा कैसे हो, वह पता नहीं चलता। उसे ऐसा लगता है कि ये सब खराब हैं। लेकिन नहीं, 'तू अलग हो जा भाई, नहीं तो मारा जाएगा'। तो हम अलग कर देते हैं, इस फँसाव में से।

इस देह की, चंदूलाल नाम की दुकान में हम छठे हिस्से के पार्टनर थे और उन सभी का भाग छीन लिया कि 'मैं ही चंदूलाल हूँ और मैं ही सब कर रहा हूँ।' उसी के ये सारे झगड़े हैं। फिर अब तो हमने अपना भाग ही निकाल लिया, इसलिए छूट गए। अब उसमें हमें सिर्फ देखते रहना था, तो फिर हम क्यों उसमें हाथ डालें?

## इसमें भगवान हैं छठे पार्टनर

**प्रश्नकर्ता :** यह उदाहरण देकर, आपने छः तत्त्वों की बहुत बड़ी बात की।

**दादाश्री :** बहुत बड़ी बात है। एक शरीर में छः तत्त्व होते हैं, तब जाकर शरीर बनता है। अब छः तत्त्व यानी देयर आर सिक्स पार्टनर्स इन दिस बॉडी।

इस वर्ल्ड में कोई ऐसा नहीं कह सकता कि 'यह मैं कर रहा हूँ!' ऐसा किसी को हक़ लागू नहीं होता। भगवान से भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह मैंने बनाया है! भगवान ऐसा कहें कि 'मैंने बनाया है' तो बाकी के तत्त्व कहेंगे कि 'ले भई, तो फिर बना दूसरी दुनिया, हम हट जाते हैं।' वे हट जाएँगे तो भगवान तो यों कंचे खेलते रहेंगे! अब, जब दूसरे तत्त्व रौब जमाने लगे, तब भगवान कहते हैं, 'मैं हट जाता हूँ।' तब फिर दूसरे सभी तत्त्व कहते हैं, 'नहीं भई, हम सब का हक़ है!' यह तो छहों तत्त्वों की 'ईक्वल पार्टनरशिप' (समान भागीदारी) है। अतः गॉड इज़ नॉट यूनिवर्स एन्ड यूनिवर्स इज़ नॉट गॉड। (भगवान ब्रह्मांड नहीं हैं और ब्रह्मांड भगवान नहीं है।)

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा कहा जाता है कि गॉड नहीं है। यह सारा नैचुरल प्रोसेस ही है।

**दादाश्री :** नो-नो! हंड्रेड परसेन्ट रोंग। गॉड इज़ वन सिक्स्थ पार्टनर इन दिस ब्रह्मांड। ही इज़ नॉट द ओनर, ही इज़ वन ऑफ द पार्टनर। (भगवान इस ब्रह्मांड में छठे भाग के पार्टनर हैं। वे मालिक नहीं हैं, वे एक पार्टनर हैं।)

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या आप ऐसा कहना चाहते हैं कि जहाँ पर जीव है, चेतन है वहाँ पर गॉड की 1/6 पार्टनरशिप है?

**दादाश्री :** गॉड इज़ इन एवरी क्रीचर व्हेदर विज़िबल ऑर इनविज़िबल, नॉट इन क्रिएशन। इन क्रिएशन देयर इज़ नो गॉड। (हर एक जीव चाहे दिखाई दे या न दिखाई दे, उनमें भगवान हैं। वे क्रिएशन में नहीं हैं। क्रिएशन में भगवान नहीं हैं।)

इस बॉडी को चलाने के लिए देयर आर सिक्स पार्टनर्स। वन

गॉड, एन्ड फाइव अदर्स। नाउ गॉड इज़ सेइंग देट आइ एम डूइंग एवरीथिंग। (इस शरीर को चलाने के लिए छः पार्टनर हैं। एक तो भगवान और बाकी के पाँच। अब भगवान ऐसा कहते हैं कि मैं ही सबकुछ कर रहा हूँ।) इसीलिए कोर्ट के ये झगड़े चल रहे हैं, उन फाइव पार्टनरों ने दावा दायर कर दिया कोर्ट में।

## अंदर के झगड़े

इस देह में ये छः पार्टनर्स हैं। हम पूछते हैं कि मतभेद क्यों हो रहे हैं, अंदर ही अंदर? अपने यहाँ अंदर मतभेद होते हैं या नहीं होते? एक पक्ष ऐसा कहता है और दूसरा पक्ष ऐसा बोलता है, बोलता है या नहीं बोलता?

पूरे शरीर में अन्य कोई मतभेद होने ही नहीं चाहिए। शरीर में मतभेद नहीं होना चाहिए। लोग तो पहले हिन्दुस्तान के मतभेद निकालने के प्रयत्न करते हैं। अपने अंदर मतभेद नहीं होना चाहिए और अगर यहाँ पर मतभेद हो जाए तो घोटाला। फिर टेन्शन। क्या होगा? फिर कम्प्रेशन आएगा न?

**प्रश्नकर्ता :** अंदर के मतभेद का मतलब क्या है? उदाहरण देकर समझाए।

**दादाश्री :** अब, चंदूभाई किसी को बुला रहे हों, किसी को देखा तो कहेंगे, 'आइए, आइए।' तो अंदर वाला कहता है, 'इस नालायक का क्या काम है?' अंदर फिर ऐसा कहता है। वह तीसरा, तृतीयम कहता है। ऐसा कभी होता है?

**प्रश्नकर्ता :** कभी क्या, लगभग हर बार होता है।

**दादाश्री :** रोज़?

**प्रश्नकर्ता :** भूल से बुलाने के बाद हो जाता है कि साला, इन्हें कहाँ बैठा दिया?

**दादाश्री :** यानी कि ये मतभेद जगह-जगह पर, घर में, अंदर

झगड़े व मतभेद रहते हैं। यह तो, यह ज्ञान देने के बाद में कम हुए हैं, वर्ना पहले तो दिन भर चलते ही रहते थे अंदर तूफान। 'अरे, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है कि आप सब मेरे घर में झगड़ रहे हो?' तब वे कहते हैं कि 'क्या आप नहीं जानते कि आपने हमारा क्या बिगाड़ा है? छः पार्टनरों का बराबर का व्यापार है और आप कहते हो कि, 'मैंने किया'। इससे हम सहमत नहीं है।' उसी से यह झगड़ा हो गया है।

आप कहते हो कि 'मैंने किया', ऐसा मत बोलना। आप साधारण रूप से वाणी में बोलो कि 'मैंने किया', व्यवहार में। यानी कि 'मैंने किया' कहने में आपकी इतनी गलती नहीं है। सब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है। सभी का साथ में है। यह तो 'आपने' पकड़ लिया कि, 'मैंने ही किया है' और आपने ही मन में यह मान लिया है। बाकी सब पार्टनरों को तो निकाल दिया है। इसलिए ये सभी पार्टनर अंदर किच-किच, झगड़े-झगड़े, मारपीट, तूफान, तूफान, तूफान मचा कर रख देते हैं। यानी वह 'मैं'पना छूट गया, तो फिर अब झगड़ा नहीं है किसी भी प्रकार का। देखो, झगड़े कम हो गए न सारे? हं... वर्ना 'मैं, मैं, मैं...' इस सेठ के भी ऐसे बहुत झगड़े होते थे न? अब सब कम हो गए हैं न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, दादा।

**दादाश्री :** क्योंकि यह खुद अकेला नहीं करता, सभी मिलकर करते हैं यह सब। सभी की पार्टनरशिप है। जबकि यह अकेला सिर पर ले लेता था। उसके बाद फिर क्या हो सकता है? इसलिए अब आपको ऐसा लगता है कि 'अरे! बहुत झगड़ा, पहले जितना झगड़ा नहीं है अब!' पहले जितना नहीं है न?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं, दादा।

**दादाश्री :** धीरे-धीरे वह भी बंद हो जाएगा। इस भाई में तो घमासान चल रहा था। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान जैसा चल रहा था,

तो वह सब बंद हो गया। अब थोड़ा-बहुत यों ही अंदर आता है, इधर से एक आदमी आता है, इधर से दो आते हैं, ऐसा सब। इधर से आते हैं और उधर से आते हैं, तब फिर चलता है थोड़ा-बहुत।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, आत्मा नहीं होता तो बाकी के पाँच पार्टनर क्या कर सकते थे?

**दादाश्री :** ऐसा नहीं कह सकते। वे पाँच कहते हैं, 'हम में से एक भी नहीं होता तो आप टूट जाते'।

**प्रश्नकर्ता :** तब फिर मोक्ष में जाने के बाद बाकी के पाँच तत्त्व कहाँ जाते हैं?

**दादाश्री :** वे स्वयं खुद के स्वतंत्र मज़े करते हैं। उन्हें कोई नुकसान नहीं हुआ।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन पार्टनरशिप उन्हीं की वजह से है न?

**दादाश्री :** नहीं, उनकी वजह से नहीं है। कोई भी किसी की वजह से नहीं है, कोई किसी की मदद में भी नहीं, कोई किसी का नुकसान भी नहीं करता, कोई किसी को धक्का नहीं मारता, कोई किसी की मदद नहीं करता, ओब्लाइज नहीं करता, कुछ भी नहीं है। यह तो अहंकार खड़ा हो गया है कि 'मैंने किया' और अहंकार निर्मूल हो जाता है तब उसका भी पता चलता है न तुरंत?

**प्रश्नकर्ता :** तुरंत ही पता चल जाता है।

**दादाश्री :** देखो, अंदर सारे झगड़े कम हो जाते हैं न? अब आपके बहुत झगड़े नहीं रहे न?

हर एक में छः ही पार्टनर हैं। गुलाब में भी छः पार्टनर हैं लेकिन झगड़े नहीं हैं। पाँच इन्द्रियों का स्वामी बना तो मारामारी कर देता है। गुलाब में छहों एक सरीखे हैं इसीलिए पत्ते एक सरीखे, सुगंध एक सरीखी। समभाव से *निकाल* करेंगे, मात्र ज्ञाता-द्रष्टा रहेंगे तो फिर

बाकी के पाँचों पार्टनर सीधे चलेंगें, अच्छी तरह से काम करेंगे। शिकायत नहीं करेंगे।

ऐसी यह दुनिया लोगों को किस प्रकार से समझ में आएगी? वह तो जब इसकी स्पष्टता हो जाएगी कि, कर्ता कौन है? खुद कौन है? तब हम 'उससे' कहें कि, 'भाई, तू ज्ञायक स्वभाव वाला है, तुझे देखते रहना है। कर्ता तो यह व्यवस्थित है'। समझाते हैं न? फिर उसका निबेड़ा आता है।

## छः में से किए बारह और...

यह दुकान है न, उसका नाम चंदूभाई है लेकिन आपका कौन है? इस दुकान में तो छः पार्टनर हैं। उनमें से सिर्फ 'आप' ही पकड़ लेते हो, 'मेरा ही है, मेरा ही है।' इसलिए फिर झगड़े होते हैं।

छः पार्टनर हैं इसमें। फिर शादी करवाते हैं तब चंद्रा बहन नामक दुकान में दूसरे छः पार्टनर, उससे बड़ा कॉर्पोरेशन बन जाता है। फिर कॉर्पोरेशन में एक बच्चे का जन्म होता है, वह छः पार्टनर लेकर आता है। फिर बेबी का जन्म होता है, उसके भी छः पार्टनर आ मिलते हैं और ये पति-पत्नी बारह। फिर बेटे की बहू आती है, बहू का बच्चा होता है, इस तरह पार्टनर बढ़ते जाते हैं। फिर झगड़े नहीं होंगे तो और क्या होगा?

अब ये छः पार्टनर मिलकर यह चलाते हैं और दूसरे छः इकट्ठे किए, तो उससे कॉर्पोरेशन बना। इन लोगों को पता नहीं है। ब्राह्मण भी नहीं बताते कि यह कॉर्पोरेशन बन रहा है। कॉर्पोरेशन बढ़ता जाता है न, दिनोंदिन? इसमें से उसका छुटकारा कैसे हो पाएगा? दुःख में से मुक्ति कैसे हो पाएगी फिर?

ऐसी है यह दुनिया। इसे जानना पड़ेगा न! इसे समझने पर ही हल आएगा। इसे नहीं समझोगे तो यह सब उलझता रहेगा न! यानी कि आपको यह जो देहाध्यास हो गया है न, हम आपका वह छुड़वा देते हैं। वर्ना किसी भी जन्म में देहाध्यास नहीं छूट सकता।

## चेतन को रहना है, सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा

आपको ये पार्टनर अच्छे लगे?

**प्रश्नकर्ता :** अच्छे लगे।

**दादाश्री :** अब ये पार्टनर अपने आप ही काम कर रहे हों तो हमें क्यों यह सारी बेकार की झंझट? तुझे पसंद है या नहीं पसंद?

**प्रश्नकर्ता :** पसंद है।

**दादाश्री :** तो अब तू क्या करता है, सारा प्रबंध...

**प्रश्नकर्ता :** देखते रहने का।

**दादाश्री :** बस, बस, बस, देखते रहने का। हम आपको ज्ञान देते हैं न, उसके बाद आपको यही रहता है, आपको देखते रहना है।

अब आप ऐसा ही करते हो या जो कहा है, उससे कुछ अलग करते हो?

**प्रश्नकर्ता :** वैसा ही करता हूँ।

**दादाश्री :** अब सुप्रिन्टेन्डेन्टपना कर रहे हो? 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा नहीं करते न?

हम अपनी तरह से निरीक्षण-परीक्षण करते हैं और सभी के सुप्रिन्टेन्डेन्ट रहते हैं। कोई झंझट नहीं है। सभी के काम चलते रहते हैं। किसी भी पार्टनर की तरफ से शोर नहीं, शराबा नहीं। जो भी सामान-वामान चाहिए, वह सब लाते हैं और ले जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** मुख्यत: तो वह वीतरागी ही है लेकिन उसमें से उसने यह नाटक शुरू कर दिया?

**दादाश्री :** और तत्त्व भी सारे वीतरागी ही हैं। उन्हें राग-द्वेष नहीं हैं। नाटक करते-करते 'हमने' अहम् किया और वहीं से आमने-

सामने ये सारे झगड़े होने लगे कि 'क्या तेरे अकेले का है यह सब, तुझे देख लेंगे।' फिर वैसा चला...

**प्रश्नकर्ता :** दादा, आपने छः तत्त्वों की पार्टनरशिप का बहुत सुंदर उदाहरण दिया है!

**दादाश्री :** हाँ... कितना सुंदर!

जो किसी भी शास्त्र में नहीं होगी, वैसी यह बात है। बहुत सूक्ष्म बात है यह। छः पार्टनरों की, एक सरीखी मालिकी है। अपना और औरों का, इन सहकारिता वालों को यदि अलग कर दिया तो कोर्टें बंद हो जाएँगी।

## आराधना करो, मात्र आज्ञा की

ये सारी बातें तो सब को समझाने के लिए कर रहे हैं। बाकी, ऐसा नहीं है कि छः तत्त्वों को समझने से कोई हल आ जाएगा। हमें हमारे उलझाने वाले प्रश्न हों तो पहले वे सॉल्व करवा लेने हैं। छः तत्त्व तो एक विज्ञान है। वह जानने जैसी बात है और जानने जैसी बात की आराधना रोज़ नहीं करनी होती। एक ही बार जान लिया तो मन में समाधान हो जाएगा। अपने रोज़ के प्रश्नों का सॉल्यूशन लाना, वही आराधना करने जैसी चीज़ है। किसी शहर में काफी कुछ देखने जैसा हो तो कहेंगे कि हम एक बार देख आए हैं तब फिर उस शहर का बोझा नहीं रहेगा न! उसी प्रकार से इन छः तत्त्वों की बात निकली, वह आपने सुन ली, इसके बाद फिर कुछ भी नहीं। इसे, 'जान लिया', कहते हैं। हेल्प नहीं करेगी। जिससे अपने हर रोज़ के व्यवहार में उलझाने वाले प्रश्नों का समाधान हो, उसे हेल्प कहा जाएगा। आपको इन सूक्ष्म बातों में नहीं उतरना है। हमें आत्मा का करते रहना है।

# [ खंड - 2 ]
# परमाणु, अविनाशी द्रव्य

## [ 1 ]
## परमाणुओं का स्वरूप

### रूपी हैं, स्वरूप से वे

जगत् में परमाणु तो जहाँ-तहाँ सभी जगह पर हैं। पूरा जगत् परमाणुओं से ही भरा हुआ है।

यह सब जो आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, इन इन्द्रियों से अनुभव में आता है, वह सारा रूपी तत्त्व है। मूल रूप से वह अविनाशी है और अवस्था के रूप में विनाशी है। परमाणुओं के तौर पर वह अविनाशी है और अणुओं के तौर पर यह सब जो दिखाई देता है, वह सब विनाशी है। सिर्फ यही एक तत्त्व रूपी है, जो कि दिखाई देता है। उसमें भी मूल तत्त्व दिखाई दे ऐसा नहीं है। यह उसकी अवस्था ही दिखाई देती है। जड़ रूपी है, चेतन अरूपी है इसलिए इस जड़ को हम पहचान पाते हैं लेकिन चेतन को नहीं पहचान पाते। इन आँखों से नहीं पहचान पाते, उसे तो दिव्यचक्षुओं से ही पहचाना जा सकता है।

**प्रश्नकर्ता :** ये जो परमाणु हैं, वे किसने ढूँढ निकाले?

**दादाश्री :** ढूँढे तीर्थंकरों ने और ज्ञानियों को समझ में आ गया। उन्होंने जो देखा था, वह इनकी समझ में आ गया।

**प्रश्नकर्ता :** वैज्ञानिक यह खोजना चाहते हैं कि उन *पुद्गल* परमाणुओं की उत्पत्ति कहाँ से हुई?

**दादाश्री :** क्या खोजना चाहते हैं? उत्पत्ति? उनसे कहना कि 'अविनाशी चीज़ की उत्पत्ति नहीं होती। जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश हो जाता है हमेशा के लिए, इसलिए उत्पत्ति नहीं हुई है', ऐसा कहना। लेकिन बुद्धि से समझना चाहेंगे तब तक उन्हें यह चीज़ समझ में नहीं आएगी न। हम भी केवलज्ञान से नहीं देख सकते लेकिन केवलज्ञान की बात हमें समझ में आ गई है।

इन लोगों ने वह ढूँढ निकाला है न! एटम ढूँढ निकाला है। परमाणु तो एटम से भी बहुत छोटी वस्तु है। एटम तो उन्हें दिखाई भी दिया।

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु सूक्ष्म हुआ न?

**दादाश्री :** वह आँखों से दिखाई न दे, ऐसा है। जिसका और विभाजन नहीं किया जा सकता, विभाजन नहीं हो सकता, वे परमाणु कहलाते हैं। ये जो *पुद्गल* हैं, वे परमाणुओं से ही बने हैं।

## परमाणु, एक या अनेक

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु एक है या अनेक हैं?

**दादाश्री :** परमाणु अनंत हैं लेकिन खुद एक-एक को अलग-अलग कर सकता है। अलग कर ले तो उसे परमाणु कहा जाएगा। ऐसे तो अनंत हैं।

**प्रश्नकर्ता :** क्या ऐसा कुछ है कि दो परमाणु हों तो कोई एक अवस्था होती है, तीन हों तो कोई अन्य अवस्था होती है, चार हों तो कोई अन्य अवस्था होती है?

**दादाश्री :** वह बदलती रहती है।

**प्रश्नकर्ता :** ये सब जब परमाणुओं के रूप में होते हैं तब एक ही परमाणु होता है या अनेक परमाणु होते हैं?

**दादाश्री :** अनंत परमाणु हैं और चेतन भी अनंत हैं। ये छ: वस्तुएँ हैं, अविनाशी। उनमें से कुछ अनंती हैं। सिर्फ, यह आकाश एक है, और ये धर्मास्तिकाय एक है और अधर्मास्तिाकाय भी एक ही है।

**प्रश्नकर्ता :** मुझे यह जानना है कि क्या एक परमाणु में से अनेक परमाणु बने हैं?

**दादाश्री :** कोई किसी में से नहीं बना है। किसी का किसी से लेना-देना ही नहीं है। एक में से अनेक नहीं बने हैं और अनेक में से एक नहीं बना है। अपने-अपने स्वभाव से हैं। अत: इसमें कोई कुछ करने वाला नहीं है। सिर्फ ऐसा है कि संयोगों के आधार पर दो परमाणु चिपक जाते हैं, तीन चिपक जाते हैं, चौथा चिपक जाता है और किसी भी साधन से वह दृश्यमान हो जाए तो लोग उसे अणु कहते हैं। बाकी, जो किसी भी साधन से दृश्यमान नहीं हो सकते, वे कहलाते हैं परमाणु।

**प्रश्नकर्ता :** तो आप जिन्हें परमाणु कहते हैं, जो कि दृश्यमान नहीं हैं, तो वह एक परमाणु है या कई परमाणु?

**दादाश्री :** परमाणु! ये सारे परमाणु तो बेहिसाब हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, तो मूल रूप से तो एक ही है न?

**दादाश्री :** नहीं, एक तो कुछ भी नहीं होता। एक होता तो अणु किस प्रकार से बनते?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, तो दो परमाणु मिले, तो इतने सारे परमाणु कहाँ से आए?

**दादाश्री :** आएँगे कहाँ से? यहाँ पर हैं ही। इस जगत् में उनका अस्तित्व है। आना-जाना किसी का हुआ ही नहीं है। ये थे, हैं और रहेंगे। निरंतर हैं ही।

**प्रश्नकर्ता :** अब पदार्थ दिखाई देते हैं। पदार्थ से आगे अणु हैं,

अणु से आगे परमाणु हैं। अब, क्या एक परमाणु का प्रसव होने से अनेक परमाणु बने हैं?

**दादाश्री :** नहीं, इस तरह से किसी का किसी से लेना-देना नहीं हैं। सब अपने-अपने स्वभाव से ही हैं लेकिन सब एक समान गुण वाले हैं। एक परमाणु का जो गुण है, वैसा ही गुण बाकी सब में भी है। कोई भी, इस (पदार्थ) में से ये (अणु) नहीं बने हैं या फिर इन (अणु) में से ये (परमाणु) नहीं बने हैं। यदि बने हैं, ऐसा कहा जाए न, तो वहाँ पर कुछ है, वह क्रिएशन (निर्माण) है। इस जगत् में तत्त्वों का क्रिएशन है ही नहीं। इस जगत् में यदि क्रिएशन है तो वह, यह सारा जो मैनमेड (मानव सर्जित) है, वही है। फिर, घड़े-वड़े, मकान-वकान सभी क्रिएशन हैं। ये तो सभी अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, निमित्त से। ये बादल क्रिएशन नहीं हैं, अवस्था हैं।

## स्कंध की सही समझ

**प्रश्नकर्ता :** क्या व्यवहार से ये सभी *पुद्गल* अलग-अलग हैं और निश्चय से एक ही हैं?

**दादाश्री :** निश्चय से एक नहीं है *पुद्गल*।

**प्रश्नकर्ता :** तो?

**दादाश्री :** वह तो, मुक्त होने वाले लोग अपनी-अपनी दृष्टि से, *पुद्गल* से मुक्त होने के लिए ऐसा कह गए हैं, मुक्त होने के लिए ऐसा है। बाकी, व्यवहार से भी अनंत हैं और निश्चय से भी अनंत हैं क्योंकि वह परमाणु रूप में शुद्ध है, *पुद्गल* पूरा परमाणु रूप से है।

**प्रश्नकर्ता :** स्कंध किसे कहते हैं, परमाणुओं का स्कंध? इन सब में क्या फर्क है?

**दादाश्री :** दो या दो से अधिक, बहुत सारे परमाणुओं का मिलन हो जाना, एकाकार हो जाना, वह सब स्कंध कहलाता है। स्कंध अर्थात् जो यों जम गया है, सब इकट्ठे हो जाएँ और इतना बड़ा टुकड़ा बन

जाए तो उसे स्कंध कहा जाता है। इस जगत् में जो कुछ दिखाई देता है, वह सारा ही स्कंध है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या जड़ को उसके लक्षणों से पहचाना जा सकता है?

**दादाश्री :** स्वभाव से। परमाणु तो नहीं होते न! वहाँ पर तो स्कंध होता है, बड़ी जथ्थे जैसी चीज़ होती है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल*?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** यहाँ अंदर से जो परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे भी जथ्थे में, स्कंध के रूप में होते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, पहले परमाणुओं के रूप में होते हैं, बाद में जथ्था बनता है। *पुद्गल* अर्थात् वह, जो *पूरण* हो चुका है और *गलन* होता रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा! यह, परमाणुओं में से जथ्था बन जाना, यह नई बात है। पहले परमाणुओं के रूप में होते हैं और बाद में जथ्था बन जाता है, ऐसा सब कैसे हो जाता है?

**दादाश्री :** इस शरीर में एक भी परमाणु नही है, जथ्थे में हैं, उन्हें स्कंध कहते हैं। परमाणु तो देखे नहीं जा सकते। अणु बन जाने के बाद फिर इन साइन्टिस्टों को पता चलता है, और अन्य किसी को पता नहीं चल सकता। हमें तो, वह इतना बड़ा, बाजरे जितना हो जाता है तब दिखाई देता है। अपनी आँख अधिक धारण नहीं कर सकती न! और दूरबीन (माइक्रोस्कोप) है नहीं अपने पास। दूरबीन हो तो देख पाएँगे।

ये जो परमाणु हैं, वे परमानेन्ट हैं, इटर्नल हैं। इन दोनों (अणु और स्कंध) का तो लोगों को समझ में आ जाता है लेकिन चेतन समझ में नहीं आता। इसके अलावा उन्हें आकाश समझ में आ सकता है।

## नहीं है उसका शब्द अंग्रेजी में

**प्रश्नकर्ता :** अणु के लिए 'एटम' शब्द है तो परमाणु के लिए कौन सा शब्द है इंग्लिश में?

**दादाश्री :** परमाणु शब्द यहाँ पर है ही नहीं। उसके लिए कोई शब्द नहीं है। जो दिखाई देता है, उसी के लिए शब्द मिलते हैं, जो नहीं दिखाई देता, उसके लिए शब्द नहीं मिल सकते।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, परमाणु का इंग्लिश शब्द नहीं है तो जब परमाणु की बात करें तब क्या उसे एटम कह सकते हैं?

**दादाश्री :** एटम तो परमाणु की अवस्था है।

**प्रश्नकर्ता :** वेर्स्टन फिलॉसफी 'मैटर' शब्द का उपयोग करती है। क्या वही परमाणु है?

**दादाश्री :** मैटर इज़ नॉट परमाणु, बट मैटर इज़ द फेज़ ऑफ परमाणु। (मैटर परमाणु नहीं है, वह परमाणु की अवस्था है।)

सिर्फ अवस्थाएँ ही बुद्धिगम्य हैं। जो आँखों से दिखाई दें या फिर बुद्धि से दिखाई दें, वे सिर्फ अवस्थाएँ ही हैं। वह मूल वस्तु नहीं है। अत: एटम को तो ये लोग देख पाए हैं और इतना सोच भी सके हैं कि इसके अभी और विभाजन किए जा सकते हैं जबकि परमाणु का विभाजन नहीं किया जा सकता।

**प्रश्नकर्ता :** वैज्ञानिकों का कैसा है कि यदि हम कहें कि ये परमाणु ऐसे हैं और नहीं टूटेंगे, तब फिर उन लोगों को उसका प्रयोग करना पड़ेगा और प्रयोग में यदि सिद्ध नहीं होता तो वे मानेंगे नहीं कि यह सही चीज़ है।

तो यहाँ के साइन्टिस्टों को आप इस बात का समाधान कैसे करेंगे कि परमाणु अविभाज्य है?

**दादाश्री :** वह तो अविभाज्य ही है न। उसके चाहे कितने भी

विभाजन करते-करते पहुँचे न, लेकिन फिर जब अंतिम विभाजन होना होता है तब वह आँखों से नहीं देखाई देता, दूरबीन से नहीं दिखाई देता। यानी कि वह इन्द्रियगम्य या बुद्धिगम्य नहीं है। यानी कि बुद्धि से परे जाना पड़ेगा और वहाँ पर उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि मूल हकीकत इस अनुसार है, बिगिनिंग इससे है। वे लोग यह एक्सेप्ट करते हैं कि बुद्धि से आगे का कुछ है, जहाँ बुद्धि नहीं पहुँच सकती।

## वैज्ञानिकों की भी है मर्यादा

**प्रश्नकर्ता :** क्या परमाणु बड़े साइन्टिस्टों से डिस्कवर नहीं हो पाएँगे? (वे खोज नहीं कर पाएँगे), जिस प्रकार से छोटे एटम्स की खोज की है...

**दादाश्री :** हाँ, एटम का पता चल सकता है, एटम दिखाई दे सकता है। लेकिन उन्हें इतना पक्का है कि इस अणु को विभाजित कर रहे हैं। इन्हें विभाजित किया जा सकता है। तो कोई अविभाज्य वस्तु होनी चाहिए, ऐसी शंका रहती है।

**प्रश्नकर्ता :** इन साइन्टिस्टों को परमाणु दिखाई नहीं देते, लेकिन शायद ऐसा कहेंगे कि परमाणु जैसी वस्तु है।

**दादाश्री :** हाँ। वे परमाणु नहीं कहेंगे, फिर भी वे ऐसा समझ जाएँगे कि यह विभाज्य है इसलिए कुछ न कुछ अविभाज्य होना ही चाहिए। उसका सामने वाला किनारा होना चाहिए। हर एक चीज़ का सामने वाला किनारा होता है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, एटम के बाद के जो छोटे पार्टिकल्स हैं, उन्हें ये लोग इंग्लिश में सब-एटॉमिक पार्टिकल्स कहते हैं। वहाँ तक ये लोग पहुँचे हैं।

**दादाश्री :** बस, उससे आगे नहीं जा सकेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** और अभी भी इन लोगों की मान्यता में, थ्योरी में ऐसा मानते हैं कि सब-एटॉमिक पार्टिकल्स भी अभी और छोटे पार्टिकल्स

में विभाजित किए जा सकते हैं लेकिन अभी तक वे लोग परमाणु तक नहीं पहुँचे हैं।

**दादाश्री :** परमाणु तक नहीं पहुँच सकेंगे न! क्योंकि वे इन्द्रियों से गम्य नहीं हैं और बुद्धि से भी गम्य नहीं हैं। बुद्धि और इन्द्रियों से समझ सके, ऐसा नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** कितने ही सालों से वैज्ञानिक इतिहास ऐसा है कि पाँच सौ साल पहले मानते थे कि एटम है उससे आगे नहीं जाया जा सकता। लेकिन अभी वैज्ञानिकों ने प्रयत्न से और इन्क्वायरी कर-करके आए हैं। अब आगे जाना हो तो परमाणु तक क्यों नहीं जा पाएँगे?

**दादाश्री :** परमाणु दिखाई देंगे तभी आप उन्हें अलग कर सकोगे न! वे बुद्धि से, आँख से दिखाई देंगे, इन्द्रियगम्य होंगे तब दिखाई देंगे न, लगभग वहाँ से आपको बंद कर देना पड़ेगा। क्योंकि मूल वस्तु दिखाई दे, ऐसी नहीं है। वह सिर्फ ज्ञानियों को समझ में आता है। वह भी केवलज्ञान में, अभी मुझे भी कुछ समय बाद जानना है।

केवलज्ञानी यानी जो एब्सल्यूट (संपूर्ण) हो चुके हों, संपूर्ण एब्सल्यूट। मैं भी एब्सल्यूट हो चुका हूँ लेकिन यह संपूर्णता नहीं है। यदि कोई संपूर्ण एब्सल्यूट हो जाएँ तब वे संपूर्ण रूप से जान सकेंगे कि यह क्या है!

## अंतर, पुद्गल और परमाणुओं में

**प्रश्नकर्ता :** ये मन-वचन-काया भी क्या परमाणुओं का इफेक्ट हैं दादा?

**दादाश्री :** सब परमाणु और परमाणु के अलावा अन्य कुछ है ही नहीं! परमाणु नहीं कहना है, *पुद्गल* कहना। *पुद्गल* मूल परमाणुओं के रूप में नहीं है, अवस्था रूपी है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* और परमाणु एक ही हैं या अलग-अलग?

**दादाश्री :** दोनों अलग कहा जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो *पुद्‌गल* और परमाणु की परिभाषा क्या है?

**दादाश्री :** जिसके और भाग नहीं हो सकते, वे परमाणु और वास्तव में परमाणु, परमाणु ही कहलाते हैं। जबकि *पुद्‌गल* है जो विभाविक हो चुका है। विशेष-भाव वाला है, यह *पुद्‌गल*।

दो प्रकार के *पुद्‌गल* हैं - एक, विशेष-भाव वाला (उसे विभाविक *पुद्‌गल* कहा जाता है), और दूसरा, मूल *पुद्‌गल,* स्वाभाविक, जो परमाणु रूपी है (उसे *पुद्‌गल* परमाणु कहा जाता है)। विभाविक *पुद्‌गल* में तो परमाणुओं का जथ्था होता है और जो स्वाभाविक हैं, वे परमाणु रूपी होते हैं।

*पुद्‌गल* तो, सिर्फ मनुष्यों से और जीव मात्र से उनका शरीर चिपका हुआ है, उसी को *पुद्‌गल* कहा जाता है, अन्य किसी को *पुद्‌गल* नहीं कहा जा सकता।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या इसे (टेपरिकॉर्डर को) *पुद्‌गल* नहीं कहेंगे?

**दादाश्री :** नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** यानी कि किसी में सिर्फ एटम्स हों तो ऐसा नहीं कह सकते कि यह *पुद्‌गल* है! *पुद्‌गल* अर्थात् जीवित होना चाहिए।

**दादाश्री :** यह क्रियाकारी है, ऐसा कहा जा सकता है। ये मिले हैं और अलग हो सकते हैं। जब वापस उसका टाइम बदलेगा तब अलग हो जाएँगे।

**प्रश्नकर्ता :** क्या एक *पुद्‌गल* में दो आत्मा समा सकते हैं?

**दादाश्री :** एक *पुद्‌गल* में तो करोड़ों आत्मा समा सकते हैं। क्योंकि जिसमें समाना होता है न, वह विभाविक *पुद्‌गल* होता है। विभाविक *पुद्‌गल* हो, वहाँ पर तो लाखों आत्मा होते हैं। इतना बड़ा करें तो समझ में आएगा कि कितने ही जीव होते हैं! विभाविक *पुद्‌गल*

का लोगों को पता ही नहीं है। अर्थात् ये जिसे *पुद्गल* कहते हैं न, वह विभाविक *पुद्गल* को ही *पुद्गल* कहते हैं।

*पुद्गल* (मूल स्वरूप से) परमानेन्ट है और तू भी (मूल स्वरूप से) परमानेन्ट है, जब ऐसा समझ में आ जाएगा तब कल्याण हो जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* भी परमानेन्ट है?

**दादाश्री :** हाँ, मूल *पुद्गल* परमाणु स्वभाव से परमानेन्ट हैं। इस विभाविक को तू विभाविक समझेगा तो फिर स्वाभाविक *पुद्गल* को भी समझ जाएगा कि वह परमानेन्ट है।

**प्रश्नकर्ता :** उसका दर्शन यहाँ तक खुल जाना चाहिए कि *पुद्गल* भी परमानेन्ट है और आत्मा भी परमानेन्ट?

**दादाश्री :** हाँ, यह *पुद्गल* तो विकृत *पुद्गल* है। मूल, स्वाभाविक *पुद्गल* परमाणु नहीं हैं न! विकृत *पुद्गल* विनाशी है, गुरु-लघु स्वभाव वाला है जबकि वास्तविक *पुद्गल* परमाणु तो अगुरु-लघु स्वभाव वाले हैं।

**प्रश्नकर्ता :** स्वाभाविक *पुद्गल* और विभाविक *पुद्गल* में क्या डिफरन्स है?

**दादाश्री :** स्वाभाविक *पुद्गल* दिखाई नहीं देता, इसलिए अभी बात करना ही बेकार है। लोग जानते भी नहीं हैं उसे। वह स्वाभाविक *पुद्गल* क्या है, उसे तो सिर्फ आत्मज्ञानी जानते हैं लेकिन साधारण पब्लिक तो कुछ भी नहीं जानती।

**प्रश्नकर्ता :** अब यह जो प्रकृति विभाग है, वह वास्तव में *पुद्गल* स्वरूप नहीं है न? यानी प्रकृति परमाणु स्वरूप नहीं हैं?

**दादाश्री :** प्रकृति, *पुद्गल* स्वरूप है। ये जो परमाणु होते हैं, वे शुद्ध होते हैं और प्रकृति रंगे हुए परमाणु हैं, भाव से रंगे हुए परमाणु। जैसे भाव से रंगा गया है, उसी प्रकार के परमाणु हैं। *पुद्गल*

बनने के बाद में वह रंग चढ़ा इसलिए *पुद्गल* कहलाते हैं। फिर उसी भाव से, वह रंग जिस रंग का है, वैसे रंग का फल देकर जाएँगे, तब जाकर वापस शुद्ध होंगे।

**प्रश्नकर्ता :** चेतना के बिना *पुद्गल* तत्त्व का अस्तित्व ही नहीं है न?

**दादाश्री :** वह ठीक है लेकिन *पुद्गल* मूल रूप से अपने परमाणुओं के रूप में रहा हुआ है। वह अन्य किसी रूप में नहीं है। इनका कहना सही है कि चेतन के बिना *पुद्गल* हो ही कैसे सकता है? इसलिए परमाणुओं के रूप में रहा हुआ है, हमेशा के लिए स्वतंत्र रूप से। वह चेतन के बिना रहा हुआ है।

## पुद्गल की स्वतंत्र शक्ति

**प्रश्नकर्ता :** तो आपने यह जो बात बताई कि यह सब *पुद्गल* है तो इस *पुद्गल* की शक्ति और आत्मा की शक्ति, इन दोनों में कितनी समानता है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* का पावर तो जैसे कि इस टॉर्च में सेल होते हैं न, पावर भरे हुए, तो जब तक आप टॉर्च में पावर डालते हो, तब तक टॉर्च चलती रहती है। पावर खत्म होने के बाद वह बंद हो जाती है। उसी प्रकार से इसमें आत्मा की उपस्थिति से जो पावर भरा गया है, वह मन-वचन-काया की तीन बैटरियाँ हैं। वे तीनों बैटरियाँ भरी हुई हैं तब तक लाइट है और जब उसके अंदर का पावर खत्म हो जाता है तो वे भी खत्म हो जाती हैं। फिर से वापस नया पावर भरता जाता है। पुरानी बैटरियाँ खत्म होती हैं और नई बैटरियाँ भरती जाती हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यानी यह तो परिवर्तन की बात की लेकिन उसमें, उस *पुद्गल* में पावर कितना है? *पुद्गल* की शक्ति कितनी है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* की तो पौद्गलिक शक्ति है, न कि आत्मशक्ति। अर्थात् उसकी शक्ति अलग है। *पुद्गल* तो, सिर्फ यह पावर नहीं भरा

होता तो *पुद्गल* परमाणु तो मुक्त ही थे। यह तो, पावर भर गया इसलिए चेतन जैसा काम करता है। इतना अच्छा काम करता है जैसे चेतन ही न हो! इसमें मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, क्रोध-मान-माया-लोभ सभी कुछ है। इस प्रकार चेतन जैसा ही काम करता है लेकिन उसमें चेतन बिल्कुल भी नहीं है। यह पावर ही है, पावर आत्मा ही है। व्यवहार आत्मा अर्थात् पावर आत्मा और वह जो निश्चय आत्मा है, वह रियल आत्मा है। वह जो निश्चय आत्मा है, वह इस शरीर में कुछ भी नहीं करता है। वह जीव मात्र को सिर्फ प्रकाश ही देता रहता है। अन्य कुछ भी नहीं करता। कर्तापन तो उसके स्वभाव में है ही नहीं। वह जो कुछ भी करता है, वह इस *पुद्गल* की दशा है। पावर आत्मा* ही कर रहा है।

वे बैटरियाँ खत्म हो जाएँ और नई चार्ज नहीं हों तो हर्ज नहीं है लेकिन जगत् के लोगों की तो पुरानी बैटरियाँ डिस्चार्ज होती रहती हैं और नई चार्ज होती हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन जिस प्रकार से आत्मशक्ति होती है, उसी प्रकार से इस *पुद्गल* की शक्ति कितनी है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* की शक्ति में एक भी तत्त्व कमज़ोर नहीं हैं, शक्तिशाली है। *पुद्गल* की शक्ति ज़बरदस्त है, अपार शक्ति है लेकिन हमें उसकी शक्ति को काम में लेने की ज़रूरत नहीं है। *पुद्गल* क्या हमारी हेल्प करता है? जिस प्रकार आत्मा की शक्ति अपार है उसी प्रकार यह भी अपार शक्ति वाला है लेकिन आत्मा की अपार शक्ति अलग प्रकार की है, इसकी शक्ति अलग प्रकार की है। यह (*पुद्गल* की) अचेतन शक्ति है और वह (आत्मा की) चेतन शक्ति है। यह रूपी शक्ति है और आत्मा की शक्ति अरूपी है।

**प्रश्नकर्ता :** अभी इस संसार में ये जो सारी शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, जैसे कि पानी के फोर्स से इलेक्ट्रिसिटी उत्पन्न करते हैं और ऐसा

* आप्तवाणी श्रेणी : 14, भाग-3 और भाग-4 में पावर चेतन संबंधी विस्तार से सत्संग है।

इस जगत् में कितना कार्य हो रहा है, उसी प्रकार से यह जो सारी पौद्गलिक शक्ति उत्पन्न हुई है वह, यदि यह ज्ञान-दर्शन और चेतना नहीं होंगे तो फिर क्या यह शक्ति रहेगी?

**दादाश्री :** ज़बरदस्त शक्ति है। यों भी। ज्ञान, दर्शन व चेतना नहीं हों तब भी परमाणुओं में ज़बरदस्त शक्ति है।

ये ज्ञान, दर्शन और चेतना से तो बल्कि विकृत शक्ति उत्पन्न हुई है। जो मूल शक्ति है न, वह तो ज़बरदस्त शक्ति है। इतना बड़ा दर्शन है, अभी गुप्त रूप से पड़ा हुआ है।

## अणु को तोड़ा जाए, तब शक्ति व्यक्त

**प्रश्नकर्ता :** जब इन लोगों ने एटॉमिक बम बनाया न, तब जड़ वस्तु में से उन्होंने सारी शक्ति पैदा की।

**दादाश्री :** जड़ में तो बहुत शक्ति है, चेतन से भी अधिक शक्ति है। जड़ में तो इतनी शक्ति है कि जगत् को भस्मीभूत कर दे। उसमें सिर्फ *लागणी* नहीं है। अणु का उपयोग किया है लोगों ने।

**प्रश्नकर्ता :** मैटर में इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रोन और प्रोटोन?

**दादाश्री :** वह सारा ही जड़ है।

**प्रश्नकर्ता :** इस विज्ञान में ये एटम्स हैं, जिन्हें हम इलेक्ट्रॉन्स कहते हैं, उन इलेक्ट्रॉन्स और एनर्जी के बीच में जो रिलेशन है, वे लोग उसे एक्ज़ेक्ट नहीं समझ पाते।

**दादाश्री :** परमाणु में एनर्जी नहीं है। परमाणुओं में से (जब) अणु बनता है तब उसमें एनर्जी आती है। अणु का जो छोटे से छोटा भाग है, वह परमाणु है। परमाणु अविभाज्य होता है। यानी कि उसमें, अविभाज्य में शक्ति नहीं है। ये जिनका विभाजन हो सकता है, उनमें शक्ति है। यानी कि अणु भाज्य हो सकता है, विभाज्य है वह। जिस-जिस प्रकार से स्कंध बनता है, उसी प्रकार से विभाजन हो सकता है।

**प्रश्नकर्ता :** पदार्थ के रूप में यह जो कुछ भी दिखाई देता है,

वह अणुओं और परमाणुओं से बना हुआ है, वह बात सही है न? हर एक पदार्थ में, जो कि अनात्मा है, वह मूल रूप से तो वे अणु-परमाणु तो हैं ही न?

**दादाश्री :** हाँ, हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** अणु-परमाणुओं में भी अभी तो इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन की बात आ गई है। उनके अंदर भी एक नए, अलग ही तत्त्व हैं और उनके पास शक्ति है, तो वह चेतन रूपी है?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं, उनकी वह शक्ति अलग है। चेतन शक्ति किसी में भी नहीं है। शक्ति हर एक में है, अलग-अलग है। शक्ति तो रहती ही है, उनमें शक्ति तो है। उन अणुओं और परमाणुओं की शक्ति कितनी अधिक है कि आत्मा छूट नहीं पाता। देखो न!

इन अणुओं में कितनी शक्ति है, जो पूरी दुनिया का नाश कर देती है! दो परमाणु मिलते हैं, तीन परमाणु मिलते हैं, उनके मिलने से शक्ति (अदृश्य रूप से) उत्पन्न होती है।

**प्रश्नकर्ता :** इन छः तत्वों में से फिज़िकल शक्ति किसमें है?

**दादाश्री :** वह अणु-परमाणु और *पुद्गल* में है। परमाणुओं के मिलने से शक्ति उत्पन्न हुई है। वह खुद अत्यंत शक्तिशाली है।

**प्रश्नकर्ता :** (जब) परमाणु मिलते हैं, तब फिर शक्ति आती है?

**दादाश्री :** अणु को तोड़ने पर शक्ति उत्पन्न होती है, व्यक्त होती है।

**प्रश्नकर्ता** : तो जब परमाणुओं का संयोजन किया जाए, तब...

**दादाश्री :** संयोजन करने से शक्ति नहीं आती। तोड़ने पर ही शक्ति आती है। तोड़ने से शक्ति उत्पन्न होती है।

**प्रश्नकर्ता :** अब अभी जिनकी बात चल रही है, उन परमाणुओं में भी शक्ति है?

**दादाश्री :** परमाणुओं में (खुद की स्वाभाविक) शक्ति है न! लेकिन परमाणु अविभाज्य होते हैं इसलिए उनकी शक्ति कम-ज़्यादा नहीं हो सकती।

**प्रश्नकर्ता :** ये जो परमाणु हैं, उनके संयोजन से कुछ प्रकार के अणु बने हैं। अब, जब उन अणुओं का विभाजन होता है तब परमाणुओं का क्या होता है?

**दादाश्री :** किसी भी उपाय से अणुओं का विभाजन किया जाए तो अणु टूट सकते हैं और ऐसा करने से शक्ति उत्पन्न होती है। अब लोगों ने अणुओं को तोड़कर, उस शक्ति को उत्पन्न करके निकाला है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वह शक्ति किसकी वजह से है? वह शक्ति किसकी है?

**दादाश्री :** उन अणुओं में बहुत शक्ति है।

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु तो वैसे का वैसा ही रहता है और परमाणुओं का संयोजन जो अलग हुआ...

**दादाश्री :** उन अणुओं के जो टुकड़े होते हैं न, वे छोटे अणु होते हैं। वे परमाणु नहीं बन जाते। अणुओं का विभाजन करने पर छोटे प्रकार के अणु बनते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अणुओं का उनकी खुद की आंतरिक शक्ति की वजह से नहीं होता, बाह्य शक्ति से होता है?

**दादाश्री :** बाह्य नहीं, आतंरिक शक्ति है। बहुत शक्ति भरी हुई है। बाह्य से कोई लेना-देना नहीं है। अपनी-अपनी शक्ति के अधीन हैं। इन सभी द्रव्यों की अपनी स्वाभाविक शक्ति है।

**प्रश्नकर्ता :** तोड़ने के लिए, बाह्य शक्ति अधिक होगी तभी वे अणु टूटेंगे, वर्ना नहीं टूटेंगे।

**दादाश्री :** वह तो, उपाय से सब टूट सकता है।

## इकट्ठा होने से शक्ति उत्पन्न होती है?

**प्रश्नकर्ता :** यह जो न्युक्लियर एनर्जी की बात करते हैं न, वह अणुओं को तोड़ने पर निकली हुई एनर्जी है। अणुओं को जब तोड़ते हैं तब वह शक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रमाण के आधार पर वे यह कहना चाहते हैं कि यदि उसे तोड़ने पर इतनी शक्ति उत्पन्न होती है तो इनको इकट्ठा करने में कितनी शक्ति की ज़रूरत पड़ेगी?

**दादाश्री :** इकट्ठा करने में शक्ति की ज़रूरत ही नहीं है, उसी को परमाणु कहते हैं। इकट्ठा होना उनका स्वभाव है और अलग होना, वह भी उनका स्वभाव है। वह तो, हम तोड़ने जाते हैं, वर्ना *पूरण-गलन* तो उनका स्वभाव ही है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर ये जो अलग होते हैं, उससे तो कितनी सारी शक्ति पैदा होती है?

**दादाश्री :** शक्ति तो इन्हें तोड़ने से उत्पन्न होती है। ये तो उल्टा करते हैं। ये कुदरती नहीं करते, अकुदरती करते हैं। परमाणु यों ही इकट्ठे होकर मिल जाते हैं और यों ही अलग हो जाते हैं। परमाणु सक्रिय स्वभाव वाले हैं इसलिए खुद अपने आप ही क्रिया कर रहे हैं।

**प्रश्नकर्ता :** जड़ करता है न! तो फिर आत्मा की शक्ति कितनी होती होगी?

**दादाश्री :** हाँ, भ्रांति की वजह से आत्मा की शक्तियाँ इसमें घुस गई हैं इसलिए ऐसा होता है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ! वह इस भ्रांति की वजह से है, तो फिर मूल आत्मा की शक्ति कितनी होगी? मैं ऐसा पूछना चाहता हूँ।

**दादाश्री :** अनंत शक्ति, उसकी तो बात ही अलग है न!

**प्रश्नकर्ता :** वह जो अनंत शक्ति है, वह तीर्थंकरों के अलावा अन्य किसी की समझ में आ सकती है?

**दादाश्री :** नहीं, औरों को पूरी तरह से समझ में नहीं आ

सकती। खुद को निरालंब लगना चाहिए। कोई भी वस्तु 'मुझे' कुछ भी नहीं कर सकती, 'उसे' ऐसा भान हो जाएगा न, तो कितनी सारी शक्तियाँ उत्पन्न हो जाएँगी! शक्ति वाले को छूने से ही परिवर्तन हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** जगत् जिसे शक्ति कहता है, वह संयोजन से या फिर वियोजन से उत्पन्न हुई है। दो चीज़ें साथ में मिल गई हों या फिर बहुत सारी चीज़ें एक साथ पड़ी हुई हों, तो (जब) वे अलग होती हैं तब शक्ति उत्पन्न होती है। यह जो शक्ति है वह, जगत् जिसे शक्ति कहता है वह, विभाविक परिणामों का एकीकरण होना और अलग होना, वही कहलाता है न?

**दादाश्री :** अलग-वलग कुछ भी नहीं। हर एक के अणु होते हैं, उनका विभाजन होने तक शक्ति रहती है।

**प्रश्नकर्ता :** जगत् ने जिसे शक्ति जाना है, उसे क्या संयोजित शक्ति के रूप में जाना है?

**दादाश्री :** संयोग (संयोजित) वस्तु में से (अलग किया जाए तब) शक्ति उत्पन्न होती है, संयोगी होकर।

**प्रश्नकर्ता :** संयोग-वियोग की शक्ति है यह, क्या इसलिए रिलेटिव है?

**दादाश्री :** हाँ, रिलेटिव है सारा। इतनी ज़बरदस्त शक्ति है!

**प्रश्नकर्ता :** कल पत्थर देखे थे, इस तरफ सफेद, उस तरफ से ग्रे था।

**दादाश्री :** हाँ, ऐसा सब अलग-अलग। यहाँ पर इस जगह में ऐसे पत्थर बने, वहाँ अलग तरह के पत्थर बने, वहाँ और भी अलग तरह के पत्थर बने। किसी का ऐसे हुआ और किसी का ऐसा हुआ, किसी का ऐसा हुआ। देखो न, घासलेट, कैरोसीन निकलता है, डामर निकलता है, ये सब कितनी अलग-अलग तरह की चीज़ें! बुद्धि काम ही न करे।

❖❖❖❖❖

## [ 2 ]
# पुद्‌गल परमाणुओं के गुण

### रूपी पूरा ही पुद्‌गल है

एक तत्त्व चेतन है और बाकी के पाँच तत्त्व जड़ हैं। (बाकी के पाँच में चेतन नहीं है) और जड़ में से एक रूपी है। छः में से एक ही तत्त्व रूपी है और बाकी के पाँच जो हैं, वे अरूपी हैं। क्यों कुछ कहते नहीं हो?

**प्रश्नकर्ता :** समझ रहा हूँ।

**दादाश्री :** लेकिन कोई पूछे कि अब, रूपी कौन है? अरूपी कौन है? तब मैं जवाब दूँगा न!

**प्रश्नकर्ता :** पूछने की ज़रूरत नहीं है, आप हमें समझाइए।

**दादाश्री :** तो मुझे जैसा ठीक लगेगा, उस तरह से समझा देता हूँ।

जो रूपी है, वह जड़ तत्त्व है, वह अणु व परमाणु के रूप में है। वह अरूपी होता ही नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् जिस प्रकार से इस दुनिया में जीव हैं, उसी प्रकार से अजीव भी हैं?

**दादाश्री :** हाँ, अजीव भी हैं। यह जो रूपी दिखाई देता है, जो

रूप आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, जीभ से चख पाते हैं, नाक से सूँघ पाते हैं, स्पर्श कर सकते हैं, वह सारा अजीव है। जहाँ रूपी है, वह अजीव है और अरूपी है, वह जीव है। जीव अरूपी होता है। वह दिखाई नहीं देता, कानों से सुनाई नहीं दे सकता। वह इन्द्रियगम्य नहीं है। इन्द्रियों से परे है, इन्द्रियों से पता नहीं चल सकता उसका। इन्द्रियों से जो अनुभव में आता है, वह सारा अजीव है।

इसमें *पुद्गल* रूपादि गुण युक्त होने की वजह से मूर्त है और बाकी के अमूर्त हैं। आत्मा भी अमूर्त है और बाकी के चार तत्त्व भी अमूर्त हैं।

इन परमाणुओं का स्वभाव कैसा होता है? निरंतर रंग बदलते ही रहते हैं। रंग-वंग का वैसा कोई भी गुण आत्मा में नहीं है। यह गोरा है और यह श्याम है, वह सब तो, जैसे परमाणु होते हैं न, उस अनुसार निरंतर रंग बदलते रहते हैं। फिर निरंतर स्पर्शना बदलती रहती है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, प्रकृति और पुरुष, इन दोनों में, 'प्रकृति का एक भी गुण मुझ में नहीं है और मेरा एक भी गुण प्रकृति में नहीं है', तो फिर दोनों के कुछ कॉमन गुण तो होंगे न, प्रकृति के और पुरुष के? क्या ऐसे गुण नहीं हैं?

**दादाश्री :** नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** यह अरूपी है, सूक्ष्म है। मन सूक्ष्म कहलाता है?

**दादाश्री :** नहीं, सब रूपी हैं।

**प्रश्नकर्ता :** विचारों को? जिन्हें सूक्ष्म संयोग कहते हैं, वे?

**दादाश्री :** सबकुछ रूपी है। पूरी प्रकृति ही रूपी है। मन-वचन-काया आदि सभी रूपी हैं।

**प्रश्नकर्ता :** इन दोनों में कोई भी गुण कॉमन नहीं है?

**दादाश्री :** नहीं, कॉमन कुछ भी नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** पर्यायों के हिसाब से मुझे ऐसा समझ में आया कि इनके अशुद्ध पर्याय कॉमन होते हैं। ऐसी दृष्टि नहीं है न?

**दादाश्री :** ऐसा कुछ भी नहीं है। वह रूपी प्रकृति, पूरी नाशवंत है और अरूपी अविनाशी है। रूपी बदलती रहती है और अरूपी नहीं बदलता। रूपी का *पूरण-गलन* होता है और आत्मा अरूपी है। अत: ये सभी गुण अलग हैं। दोनों के गुणधर्म बिल्कुल भी मेल नहीं खाते। कहाँ से लिखकर लाया यह सब?

**प्रश्नकर्ता :** दादा, सारे शब्द आते हैं न? वे, सूक्ष्म संयोग, स्थूल संयोग...

**दादाश्री :** स्थूल संयोग रूपी हैं लेकिन वे सूक्ष्म भी रूपी हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हम कहते हैं न, मैं सूक्ष्म हूँ। उसी प्रकार से संयोग भी सूक्ष्म...

**दादाश्री :** वह सूक्ष्म अलग है। हम जिसे सूक्ष्म कहना चाहते हैं, वह तो यह प्रकृति स्थूल है और आत्मा सूक्ष्म है, ऐसा कहना चाहते हैं। बाकी, वे परमाणु तो सूक्ष्मतम हैं। सूक्ष्मतम अर्थात् उन्हें (चर्मचक्षुओं से) नहीं देखा जा सकता। *पुद्गल* भी ऐसे हैं। उसके मूल परमाणु ऐसे हैं, जो देखे नहीं जा सकते, लेकिन स्वभाव से वे रूपी हैं (केवलज्ञान से देखे जा सकते हैं)। प्रकृति मात्र रूपी है। सबकुछ बदलता ही रहता है। फिर चेन्ज ही होता रहता है।

प्राकृत चाहे कितना भी सुंदर हो, फिर भी कहा नहीं जा सकता कि वह कब अपना रंग दिखा दे। फल चाहे कितना भी अच्छा हो लेकिन बाद में फिर वह सड़ जाएगा। खिला हुआ फूल भी कुम्हला जाएगा। प्राकृत कब बिगड़ जाए, उसका क्या भरोसा?

## रूप हमेशा व्यय होता ही है

इस रूपी तत्त्व, *पुद्गल* तत्त्व को लेकर यह जगत् खड़ा हो गया

है। रूपी तत्त्व ही उलझन में डालता है। क्योंकि वह रूप को देखता है इसलिए उलझ जाता है। रूप देखने से उसके अंदर बिगड़ा।

**प्रश्नकर्ता :** सुंदर मानता है। इसलिए पूरा बिगड़ा?

**दादाश्री :** रूप देखता है, इसलिए। सुंदर 'मानता' नहीं है। रूप होता है।

**प्रश्नकर्ता :** रूप होता है?

**दादाश्री :** रूप तो है न! रूप तो *पुद्‌गल* का स्वभाव है। उसका स्वभाव है न, रूप, रस, गंध, स्पर्श। (कोई स्त्री) यों परफेक्ट, गुलाब के फूल जैसी दिखाई देती हो लेकिन उसे यह ख्याल नहीं रहता कि यह रूप *पुद्‌गल* का गुण है, वह एवर चेन्जिंग है।

जब रूप टॉप पर पहुँचा हुआ हो तब वह पास करता है और फिर दो साल बाद वह बीमार पड़ जाए तो रूप खत्म हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** हर साल फिर रूप कम ही होता जाता है?

**दादाश्री :** हाँ, वह पचास साल की हो जाए तब तो देख लो। तब फिर देख-देखकर यों ऊब जाता है। जब पास की थी (शादी के लिए) तब, और यह पचास साल की, दोनों में कोई डिफरन्स होता है क्या?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, अब रूप चेन्ज हो गया है।

**दादाश्री :** इसलिए फिर उसे देख-देखकर बोर हो जाता है। फिर क्या कर सकता है? क्या हो सकता है? शादी करके बैठे हैं!

गोरी पत्नी लाया हो न, लेकिन फिर कोई रोग हो जाए तो काली पड़ जाती है। फिर क्या कर सकता है? पीतल का बर्तन हो तो हम उसकी बफिंग करवा सकते हैं। क्या इसकी बफिंग हो सकती है? होती है बफिंग? तब फिर गोरी पत्नी क्यों ढूँढें? जो मिल जाए, वही

सही है। वह गोरी बाद में काली हो जाएगी तो क्या दशा होगी? लोग यह सब नहीं समझते न?

**प्रश्नकर्ता :** समझते तो हैं, लेकिन मौका आता है तब भूल जाते हैं।

**दादाश्री :** हाँ, चालाक लोग हैं। नहीं?

तो यह रूप किसका गुण है? ये जो सारे रूपी गुण हैं, वे इस *पुद्गल* के हैं। ये तरह-तरह के फ्रूट कितने सुंदर दिखाई देते हैं! वे सब *पुद्गल* हैं और वे ड्राई फ्रूट नहीं देखे हैं? वह गोरी नहीं देखी? वह ड्राई फ्रूट कैसा दिखाई देता है? वे सब भी फ्रूट ही कहलाते हैं न! लेकिन जब चखते हैं तब पता चलता है। शादी करके लाया और चखता है न, लेकिन जब वह कुछ नई ही प्रकार का कहने लगती है, तब परेशान हो जाता है। जबकि फ्रूट तो वास्तव में सुंदर दिखाई देता है क्योंकि *पुद्गल* है न! और लोग खुश हो जाते हैं कि गोरी है। अरे भाई! गोरी से शादी करके तो देखो! अरे भाई! मूर्ख बन जाएगा। जो शादी करते हैं, वे फिर परेशान हो जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** रूप मात्र चक्षु का ही विषय है। चक्षु ने ही रूप को ग्राह्य किया है।

**दादाश्री :** ऐसा है, जो मूल स्वाभाविक रूप है, वह चक्षुगम्य नहीं है। यह विशेष-भावी रूप चक्षुगम्य है और इस जगत् में सारा विशेष-भाव रूप से ही है। स्वाभाविक रूप विनाशी नहीं है और यह विशेष-भावी रूप, यह टेम्परेरी एडजेस्टमेन्ट है।

**प्रश्नकर्ता :** रूप और नाम में क्या संबंध है?

**दादाश्री :** सबकुछ रूपी ही है। इन्हें पहचानेंगे कैसे? लोगों ने नाम दिया कि इसका नाम गाय है और इसे भैंस कहते हैं, इसे बैल कहा जाता है, इसे यह कहा जाता है। फिर मुस्लिम भाषा में कुछ अलग नाम या शब्द होते हैं लेकिन फिर भी आशय एक ही होता है सभी का। शब्द अलग-अलग होते हैं, जैसे-जैसे भाषा में भेद आता

जाता है तो एक तरफ गॉड कहते हैं, एक तरफ भगवान कहते हैं, एक तरफ अल्लाह कहते हैं। सब तरह-तरह का लेकिन पहचानने के लिए संज्ञा है वह। नाम एक संज्ञासूचक चीज़ है।

**प्रश्नकर्ता :** कितने ही वेदांत शास्त्रों में नाम और रूप को मिथ्या कहा गया है।

**दादाश्री :** नाम व रूप, वह टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अब उसका अस्ति, भ्रांति और प्रिय से क्या संबंध है?

**दादाश्री :** उसका अस्तित्व तो है ही। और (भ्रांति को लेकर) प्रिय की ओर ही 'उसका' संबंध है। श्रेय की ओर उसका संबंध नहीं हैं। यह प्रेयस की ओर ले जाता है जबकि श्रेयस की ओर जाने के लिए तो पुरुषार्थ करना पड़ता है। 'यह' स्वाभाविक रूप से प्रेयस की ओर जाता है। नाम और रूप। रूप ऐसा है कि वह इंसान को आकर्षित कर देता है। रूप ऐसा है कि असल ब्रह्मचारी को भी आकर्षित कर लेता है।

## सुंदर कौन, 'मैं' या परमाणु?

**प्रश्नकर्ता :** एक बार बात हुई थी कि व्यवहार में जिसका भी रूप आता (देखा जा सकता) है, उसका नाम पड़ जाता है।

**दादाश्री :** वह तो, यहाँ पर जो भी अव्यवहार राशि वाले जीव होते हैं, वे जीव (जब) व्यवहार राशि में आते हैं तब उनका नाम पड़ता है। व्यवहार उसी को कहा जाता है जो कि 'नाम' सहित हो।

**प्रश्नकर्ता :** तो पहले उसका रूप आता है?

**दादाश्री :** रूप तो होता ही है जीव मात्र का। सिद्धों का स्वरूप-रूप होता है। 'स्वरूप-रूप' मूल रूप है और बाकी सब जगह भ्रांति रूप है। इसीलिए 'मैं नाम व रूप से अलग हूँ'। अतः, 'मेरा जो पौद्गलिक रूप हो गया है, मैं उससे अलग हूँ'। यह जो रूप है, वह पौद्गलिक रूप है।

**प्रश्नकर्ता :** पौद्‌गलिक स्वरूप को भी रूप कहा गया?

**दादाश्री :** वह रूप और 'स्वरूप'। 'स्वरूप' भी रूप ही कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन खुद का वह स्वरूप तो स्व-स्वरूप है न?

**दादाश्री :** और इस पर-स्वरूप को खुद का मानता है, वह भी रूप ही कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह रूपी है न? पर-स्वरूप रूपी कहलाता है और यह अरूपी कहलाता है।

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन रूपी में 'मैं खुद' हूँ, ऐसा मानता है इसलिए वह स्वरूप कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन भ्रांत स्वरूप?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** रूप भी उलझाता है और ज्ञान भी उलझाता है न?

**दादाश्री :** ज्ञान नहीं उलझाता, अज्ञान उलझाता है। रूप से अज्ञान उत्पन्न होता है इसीलिए उलझा देता है। ज्ञान तो प्रकाश कहलाता है और प्रकाश उलझाता नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** नाम तो उलझाता है न?

**दादाश्री :** नाम? उससे तो सारी रोंग बिलीफें शुरू हो जाती हैं। वही मूल आदि कॉज़ है। खुद का स्वरूप गायब हो गया और नामधारी बन गया, वही रूट कॉज़ है।

रूपी तत्त्व, आत्मा की बिलीफ बदलवा दे, ऐसा हो गया है। फिर कहता है, 'मैं सुंदर हूँ, गोरा हूँ'। क्या कहता है? अरे! भाई, तू परमाणुओं को 'मैं हूँ, मैं हूँ' कह रहा है। इसका कब अंत आएगा? लोग इस तरह से उलझे हुए हैं। उसमें से कोई सन्यासी भी नहीं छूट सकता, सन्यासिनी भी नहीं छूट सकती। साधु भी नहीं छूट सकता,

साध्वियाँ भी नहीं छूट सकतीं। जब तक मूल वस्तु को ही नहीं जाना है, तब तक क्या हो सकता है?

आत्मा गोरा भी नहीं है, श्याम भी नहीं है, पीला भी नहीं है, लाल भी नहीं है, हरा भी नहीं है, कुछ भी नहीं है... ये सारे गुण रूपी तत्त्वों के हैं। कोई इंसान बहुत गोरा और सुंदर दिखाई देता है, तो वह रूपी तत्त्व है, उससे आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। जितने भी रूप-रंग हैं, वे अनात्मा के गुण हैं।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* को रूपी समझते हैं और आत्मा को अरूपी समझते हैं।

**दादाश्री :** आत्मा अरूपी ही है और *पुद्गल* रूपी है। यानी *पुद्गल* से मुझे कोई लेना-देना नहीं है। फिर कोई झंझट नहीं रही न! चाहे कितना भी रूपवान हो, गुलाब के फूल अधिक से अधिक, चाहे कितने भी सुंदर हों लेकिन हमें क्या लेना-देना? ये सब *पुद्गल* के गुण हैं। यह *पुद्गल* रूपी है और 'खुद' अरूपी है। दोनों के मिलने से इसका सर्जन हो गया है, विशेष-भाव उत्पन्न हो गया!

*पुद्गल* अर्थात् (जिसका) *पूरण* हुआ हो और (जिसका) वापस *गलन* हो जाएगा। *गलन* में से *पूरण* होता है, *पूरण* होने के बाद में *गलन* होता है। जगत् में यह सब जो दिखाई देता है, वह सारा ही *पुद्गल* है और यों अंदर कितना सुंदर दिखाई देता है! यों तो सुंदर लगता है न, नहीं लगता?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लगता है।

**दादाश्री :** इसीलिए तो जगत् इसमें फँस गया है?

**प्रश्नकर्ता :** दोनों लगता है, कुरूप भी लगता है और सुंदर भी लगता है।

**दादाश्री :** नहीं। यानी वह खुद सापेक्ष है। यदि सुंदर है तो कुरूप है, कुरूप है तो सुंदर है। कुरूप नहीं होती तो सुंदर भी नहीं

कहलाती। यानी कि ये सापेक्ष बातें हैं। इस *पुद्‌गल* के तो बहुत गुण हैं लेकिन इसमें जानपने का गुण नहीं है। खुद जान नहीं सकता और *लागणी* वाला नहीं है और न ही उसे अनुभव होता है। ये सभी *पुद्‌गल* के ही गुण दिखाई देते हैं, जितना भी जगत् दिखाई देता है, वे सभी। यह आँखों की पुतली (रेटिना) भी *पुद्‌गल* है। कितनी सुंदर–सुंदर पुतलियाँ होती हैं, कितनों की तो बिल्ली जैसी होती हैं, कितनों की काली होती हैं, कितनी ही तरह–तरह की पुतलियाँ होती हैं!

सभी प्रकार के रूप हैं। जितने भी रूप हैं न, वे सब *पुद्‌गल* के गुण हैं। आँखें चाहे कितनी भी सुंदर दिखाई दें लेकिन वह भी पौद्‌गलिक गुण है।

आँखें मुख्य रूप से तेजस परमाणुओं से बनी हुई हैं।

चाहे कैसा भी देहधारी हो, चाहे कितना भी लावण्य दिखाई दे फिर भी वह विनाशी है। आत्मा लावण्य वाला भी नहीं है, आत्मा तो और ही प्रकार का है।

## जड़ रूपी, आत्मा अरूपी

आत्मा को अरूपी किस आधार पर कहा गया है? तब कहते हैं, जड़ रूपी है इसलिए आत्मा अरूपी है, नहीं तो उसे कोई लेना–देना नहीं है। वहाँ पर सिद्धगति में जो आत्माएँ हैं न, वे अरूपी नहीं हैं और रूपी भी नहीं हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है। इनमें से कोई भी गुण नहीं है। यह तो इसके आधार पर, *पुद्‌गल* है इसलिए यह दिखाई देता है। इसलिए अरूपी कहना पड़ता है। उसे तो कुछ लेना–देना ही नहीं है। यह तो सोचने के लिए कहा है और सिर्फ अरूपी ही नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा के गुण और उसके धर्म अलग ही हैं न?

**दादाश्री :** ये अमूर्त, अरूपी वे गुण नहीं हैं। आत्मा के गुण तो

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति, अनंत सुख व अव्याबाध हैं। यह दूसरा सब तो विचारणा कहा जाता है। इसके आधार पर शास्त्रकार क्या कहते हैं कि अरूपी मानकर इसकी *भजना* करोगे तो उन्हें (अन्य चार तत्त्वों को) भी पहुँच जाएगी। यदि अमूर्त मानकर इसे *भजोगे* तो उधर पहुँच जाएगी। सिर्फ यह *पुद्गल* ही मूर्त है, बाकी के सभी (तत्त्व) अमूर्त हैं। असंग कहेंगे तो सभी असंग ही हैं। निर्लेप कहेंगे तो वह बात आत्मा पर लागू होगी कि इतना अधिक साथ में है, इसके बावजूद भी उस पर किसी भी प्रकार का लेप नहीं चढ़ता। वह बाकी के पाँचों पर भी नहीं चढ़ता और सभी निर्लेप हैं इसीलिए हम इसे टंकोत्कीर्ण कहते हैं। कुछ भी छूता नहीं है, चिपकता नहीं है, एक साथ रहने पर भी नहीं। फिर अविचल तो सिर्फ *पुद्गल* ही चंचल है, बाकी सब अविचल हैं। अविनाशी तो सभी तत्त्व अविनाशी हैं। सिर्फ आत्मा की ही बात नहीं है। अतः इस प्रकार *भजने* से मूल वस्तु तक पहुँचता नहीं है। दो वस्तुओं के आधार पर हमें जान लेना है कि भाई, यह *पुद्गल* पूरा ही मूर्त है 'मैं' अमूर्त हूँ लेकिन वास्तव में सिद्धगति के आत्मा मूर्त भी नहीं हैं और अमूर्त भी नहीं हैं। वहाँ पर तो आत्मा, आत्मा ही है। यह तो थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी है इसलिए ऐसा कहना पड़ता है। यह जो *पुद्गल* है, वह मूर्त है तो इसे अमूर्त कहेंगे तो पहचान पाएँगे। वर्ना पहचानेंगे कैसे? *पुद्गल* मूर्त न हो तो आत्मा को अमूर्त कहने की ज़रूरत ही क्या थी?

## षट्रस भी पुद्गल

छः प्रकार के स्वाद हैं - कड़वा, मीठा, तीखा, खारा, कसैला और खट्टा। ये जड़ के गुण हैं। जगत् में सभी रस हैं लेकिन रस मात्र पौद्गलिक हैं। वह *पुद्गल* का गुण है।

आम मीठे लगते हैं। यह क्यों मीठा हो गया है और यह क्यों खट्टा हो गया? वह भी जड़ का गुण है, भाव आत्मा का है। इस भाव का आप अभाव कर लो और उसके बाद उसे खाओ तो कोई हर्ज नहीं है। उसके बाद तो *पुद्गल, पुद्गल* को खाता है। आपको

भाव को (रस को, राग को) अभाव (नीरस, समभाव) नहीं कर देना चाहिए? या फिर अपने इस नए सिस्टम से ऐसा कहना चाहिए कि आहारी आहार कर रहा है और मैं निराहारी मात्र उसे जानता हूँ। तब फिर वह भाव निकल ही गया न!

## पौद्गलिक गुण-स्पर्श

यह तो सिर्फ परिवर्तित होता रहता है, अवस्थाएँ ही बदलती रहती हैं। वही के वही *पुद्गल* परमाणु हैं, उनके गुणधर्म हैं और अवस्थाएँ हैं। वे अवस्थाएँ कैसी-कैसी हैं? क्षण भर में पीला दिखाई देता है और क्षण भर में लाल दिखाई देता है, क्षण भर में सफेद दिखाई देता है, क्षण भर में ऐसा हो जाता है, क्षण भर में वैसा हो जाता है, बदलता ही रहता है। फिर उसके स्पर्श गुण, वे आठ प्रकार के हैं। हल्का, भारी, मुलायम, खुरदुरा, गरम, ठंडा, चिकना, रूखा। जो खुरदुरा है, वह मुलायम हो जाता है। क्षण भर में ऐसा हो जाता है, खुरदुरा हो जाता है, गरम हो जाता है, क्षण भर में ठंडा हो जाता है, ये सभी स्पर्श के गुण हैं। अर्थात् इन सब गुणों की वजह से यह पूरा संसार खड़ा हो गया है।

हाथ गरम हुआ हो तो कहता है, ओहोहो! मुझे बुखार हो गया है', 'अरे भाई, तुझे क्या है?' यह तो स्पर्श का गुण है, अब आत्मा में ऐसा गर्म होने का गुण है ही नहीं। यह बहुत समझने जैसा है। मनुष्य आरोपण क्या करता है कि, 'मुझे बुखार आया, मेरा शरीर गर्म हो गया'। अब, आत्मा में बुखार का गुण स्वभाव नहीं है। यह बुखार तो *पुद्गल* का स्वभाव है, उसे वह खुद के स्वरूप में ले जाता है कि मुझे बुखार आया। तो फिर बोलो, उलझन ही होगी न! फिर ऐसा बोलने से साइकोलॉजिकल इफेक्ट हो जाता है। फिर वह वास्तविक इफेक्ट नहीं है लेकिन साइकोलॉजिकल तो हो ही जाता है। पूरा जगत् यानी यह साइकोलॉजिकल इफेक्ट ही है। यह और कुछ नहीं है, लेकिन बहुत भारी साइकोलॉजिक इफेक्ट है।

**प्रश्नकर्ता :** यह तो हमारी समझ से कुछ अलग ही निकला।

**दादाश्री :** आत्मा में स्पर्श नाम का गुण नहीं है जबकि अनात्मा में स्पर्श गुण है। ठंडा लगता है, गरम हो जाता है, फिर मुलायम लगता है, खुरदुरा लगता है, ये सभी गुण आत्मा के नहीं हैं, ये *पुद्गल* के गुणधर्म हैं।

और फिर स्पर्शना निरंतर बदलती रहती है। क्षण भर में हाई लोड (भारी) हो जाती है और क्षण भर में लो लोड (हल्की) हो जाती है। यह सबकुछ बदलता ही रहता है। आत्मा में किसी भी प्रकार का लोड है ही नहीं। अभी आत्मा के साथ लोड (वज़न) करे और फिर कोई कहे कि मेरा आत्मा निकालकर लोड (वज़न) कीजिए तो दोनों एक सरीखा ही होगा। उसका लोड नहीं है। वह तो बाद में बदलता जाता है।

## नियम, पुद्गल स्पर्शना के

शरीर परमाणुओं से बना हुआ है। यह ज्ञान मिला है फिर भी अंदर हृदय लाल-लाल हो जाता है। वह खुद के ही स्वभाव से लाल होता है। प्रत्येक वस्तु का निज स्वभाव होता है, खुद के गुणधर्म होते हैं।

तो पूर्व काल में जैसे भाव किए होंगे, उसी 'भाव' के परमाणु अंदर हैं। उग्र भाव किया होगा तो अंदर उस (उग्र) भाव के परमाणु हैं। अंदर वे हॉट परमाणु हैं इसलिए वैसे संयोग मिल जाते हैं। साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स मिलते हैं तब वे फूटते हैं और आत्मा तन्मयाकार हो गया, तो उसे क्रोध कहते हैं। यदि तन्मयाकार नहीं हो तो उसे क्रोध नहीं कहा जाएगा। उग्रता कहा जाएगा। तो अपने महात्मा कोई तन्मयाकार नहीं होते क्योंकि आत्मा अलग हो चुका है।

**प्रश्नकर्ता :** क्रोध-मान-माया-लोभ के परमाणुओं की वैज्ञानिक समझ क्या है?

**दादाश्री :** इस शरीर में हॉट परमाणु भी भरकर लाए हैं और कोल्ड परमाणु भी भरकर लाए हैं। आकर्षण वाले परमाणु भी भरकर

लाए हैं और विकर्षण वाले परमाणु भी भरकर लाए हैं। लोभ आकर्षण वाले परमाणुओं से उत्पन्न होता है। अतः यह जगत् सभी प्रकार के परमाणुओं से बना हुआ है।

जब क्रोध होने वाला हो तब अंदर जो क्रोधक नामक मशीन होती है, वह चालू हो जाती है। वह क्रोध करवाती है। उसी क्षण उग्र परमाणु लाल, लाल, लाल, लाल हो जाते हैं, लगता है जैसे मशीनरी रेज़ (गर्म) हो गई। हमें ऐसा लगता है कि मशीन रेज़ हो गई। अब उस समय चेक नट दबाया जाए तो चेक नट नहीं चलता। कभी पुलिस वाला किसी को धमकाए तब भी उस व्यक्ति के अंदर क्रोध सुलगता रहता है। धमकाने पर बाहर से बंद हो जाता है लेकिन अंदर तो क्रोध सुलगता ही रहता है।

यह सब परमाणुओं से बना है। क्रोध-मान-माया-लोभ और उसके इफेक्ट होते रहते हैं। मन इफेक्टिव है, वाणी इफेक्टिव है और बॉडी इफेक्टिव है और उसमें (व्यवहार) आत्मा को खुद के स्वरूप का भान नहीं होने की वजह से उसे ऐसा लगता है कि यह इफेक्ट मुझे ही हो रहा है। ऐसा मानकर ये सभी लोग उसी में रमे रहते हैं। परमाणु अपने गुण में ही रमणता कर रहे हैं। तब खुद को ऐसा लगता है कि यह मुझसे चिपका। यानी शुद्धात्मा होने के बाद आपको पता चलता है कि यह तो पराई चीज़ है, यह सब बाहर हो रहा है।

**प्रश्नकर्ता :** सब से बड़ी बात तो यही है न, कि वह *पुद्गल* स्पर्शना के नियम को नहीं समझता।

**दादाश्री :** अभी इस वर्ल्ड में (जिन्हें) कोई भी नहीं जान सका है, *पुद्गल* स्पर्शना के ऐसे नियम के हम जानकार हैं। कोई कितने बम डाल सकता है? वह तो यही समझता है कि गोली चलाऊँगा तो हो जाएगा। तो भाई गोली चलाई लेकिन वह स्पर्श करेगी या नहीं, उस नियम को कैसे जान सकता है बेचारा? और उसके हाथ में सत्ता ही क्या है? व्यवस्थित की सत्ता है। सत्ता वाला कोई भी (ऐसा कोई अस्तित्व) नहीं है।

## गंध गुण है और सुगंध व दुर्गंध पर्याय हैं

**प्रश्नकर्ता :** गुलाब में जो सुगंध है, क्या उसे आत्मा कहा जा सकता है?

**दादाश्री :** नहीं। जितनी सुगंध और दुर्गंध आती है, वे सभी जड़ के गुण हैं लेकिन आत्मा में ऐसा कोई गुण नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** सूक्ष्म शरीर के गुण हैं - शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श। इन पाँच को तन्मात्रा (पंचभूतों का सूक्ष्म रूप) कहा गया है?

**दादाश्री :** वे तो स्थूल शरीर में हैं।

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा अनुभव है कि (जब) उपशम समकित होता है, तब अंदर से सुगंध प्रकट होती है।

**दादाश्री :** लेकिन सुगंध का क्या फायदा? सुगंध तो *पुद्गल* की है। समकित, आत्मा का है।

**प्रश्नकर्ता :** उसकी निशानी क्या है?

**दादाश्री :** वह सब तो हो सकता है, सुगंध तो, आत्मा प्राप्त होता है न, तब से सुवासित हो ही जाता है। कितने ही लोगों को, (जब) अपना ज्ञान मिलता है, तब फिर उसके पूरे मोहल्ले में सुगंध, सुगंध और सुगंध ही फैल जाती है। हर कहीं सुगंध ही फैलती है। वह अलग चीज़ है। वह पौद्गलिक चीज़ है। वह ज्ञान का प्रताप है। बाकी, आत्मा को इससे कोई लेना-देना नहीं है। आत्मा में सुगंध नामक गुण ही नहीं है लेकिन उसके प्रताप से ऐसा सब उत्पन्न होता है।

बल्कि *पुद्गल* में ये जो सारे गुण हैं न, उनमें से एक भी गुण खुद में नहीं है। सुगंध या दुर्गंध वगैरह। यदि सुगंध आए न, तो उसके सामने दुर्गंध रहती ही है। हाँ, इसलिए सुगंध में उपयोग ही मत रखो, वर्ना उपयोग दुर्गंध में चिपक जाएगा। अतः उपयोग आत्मा में रखो।

वाणी कड़वी-मीठी, आँखें सुदृश्य-कुदृश्य, जीभ के सुस्वाद-कुस्वाद, ये सभी पौद्‌गलिक गुण हैं।

आत्मा प्राप्त होने के बाद में, सुगंध या दुर्गंध जैसा कोई भी गुण आत्मा में नहीं है। आत्मा अनंत गुणधाम है। जैसे-जैसे गुण प्रकट होते जाएँगे वैसे-वैसे आनंद प्रकट होता जाएगा।

सुगंध आती है, वह गुण नहीं है, *पुद्‌गल* का पर्याय है। जिस *पुद्‌गल* में सुगंध है, उसमें दुर्गंध भी रही हुई है। जगत् के सर्व *पुद्‌गलों* में सुगंध व दुर्गंध, दोनों साथ में रही हुई हैं। सुगंध आती है तब दुर्गंध सत्ता में पड़ी हुई ही होती है। तेल दो महीनों बाद में बासी हो जाता है और फिर ऐसी दुर्गंध आती है कि उसकी गंध भी अच्छी नहीं लगती।

नौ बजे का दूध, वह नौ बजे नहीं बिगड़ता लेकिन उसी क्षण से बिगड़ने लगता है। वह कालचक्र के अधीन है। समय बदलने पर वह अपने आप ही बदलता जाता है और अंदर के संयोगों से ही बिगड़ता है।

कोई मुझसे पूछे कि आप फूल सूँघते हैं? हम अपने ज्ञान में हैं और *पुद्‌गल* ही *पुद्‌गल* को सूँघ रहा है।

## शब्द, पुद्‌गल का पर्याय

परमाणुओं के चार प्रकार के गुण हैं - रूप, रस, गंध और स्पर्श। शब्द उनका गुण नहीं है। परमाणु आपस में टकराते हैं, तभी शब्द प्रकट होता है। वह उनका नित्य गुण नहीं है। जब हॉर्न दबाते हैं तब क्या होता है?

**प्रश्नकर्ता :** आवाज़ होती है।

**दादाश्री :** अब गोले को दबाने पर आवाज़ क्यों होती है? यह सोचने जैसी बात है कि गोले में जो आकाश है, उसमें जो परमाणु भरे हुए हैं, क्योंकि जहाँ आकाश है वहाँ परमाणु हैं। जब हम यों

दबाते हैं न, तो दबाते ही परमाणु बाहर निकल जाते हैं और वे फोर्स से निकलते हैं, वे टकराकर निकलते हैं तो आवाज़ पैदा होती है, बस। वह परमाणुओं का गुण नहीं है।

आत्मा अर्थात् चेतन, परमात्मा। उसके एक भी गुण की नकल हो सके, ऐसा है ही नहीं। जो नकल होती है, वे *पुद्गल* के गुण हैं। वाणी टेपरिकॉर्डर है। विचार डिस्चार्ज हैं। जो डिस्चार्ज होता है, वह *पुद्गल* है।

**प्रश्नकर्ता :** मुझे कितने ही सालों से चौबीसों घंटे झींगुर का नाद सुनाई देता है, वह क्या है?

**दादाश्री :** तरह-तरह के नाद, अनाहद नाद आदि सब *पुद्गल* हैं, अनात्म भाग है। जब रोग होता है तब बंद हो जाते हैं। सिर्फ आत्मा की ही डोरी हाथ में आ सकती है। बाकी, कोई भी डोरी हाथ में नहीं आ सकती। वह मानसिक ठंडक पहुँचाती है लेकिन उससे आत्मा प्राप्त नहीं होता।

## जगत् अर्थात् पुद्गल की बदलती हुई अवस्थाएँ...

**प्रश्नकर्ता :** कहते हैं न, जगत् विनाशी है।

**दादाश्री :** नहीं-नहीं, जगत् विनाशी तो हो ही नहीं सकता न! जगत् शाश्वत है, एवरलास्टिंग।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा के अलावा क्या बाकी सब विनाशी नहीं कहा जाएगा?

**दादाश्री :** विनाशी तो, जो अवस्थाएँ निर्मित हुई हैं, वे हैं। यह पंखा बना, वह पंखा विनाशी है लेकिन मूल धातु के रूप में तो विनाशी नहीं है न!

**प्रश्नकर्ता :** क्या मूल धातु को ही जगत् माना जाएगा? उसकी जो मूल धातु है और जो मूल स्थिति है, क्या उसी को जगत् माना जाएगा?

**दादाश्री :** नहीं। अब, वह जो लोहा है, वह विलय होते-होते वापस मूल परमाणुओं तक पहुँचकर रहता है। एक ही (प्रकार के) परमाणुओं में से यह सब बना है। परमाणुओं से ये सभी चीज़ें बनी हैं। परमाणुओं से बनी हुई ये सभी चीज़ें विनाशी हैं जबकि परमाणु विनाशी नहीं हैं। इस दुनिया में एक भी परमाणु कम नहीं होता और एक भी बढ़ता नहीं है। आप जलाओ या काटो, एक भी आत्मा कम नहीं होता और एक भी बढ़ता नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** ये रस, रूप, गंध जो परमाणुओं में हैं, वे उसमें बीज के रूप में रहते हैं या संस्कारों के रूप में?

**दादाश्री :** बीज के रूप में नहीं हैं, बीज तो होता ही नहीं है न इसमें। ये परमाणु जो हैं, उसकी सारी अवस्थाएँ हैं, कुछ संयोगों में। कुछ और इकट्ठे होंगे तो इस प्रकार की अवस्था होगी, दूसरे नए इकट्ठे होंगे तो ऐसी दूसरी प्रकार की अवस्था, ये सभी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। दूध की छाछ बनाकर कढ़ी बनाते हैं और दूध की खीर भी बनाते हैं लेकिन चीज़ वही की वही है। अब अलग-अलग चीज़ों के मिलने पर अलग-अलग रूपांतरण होता है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या उसमें किसी संस्कार बल का आयोजन है?

**दादाश्री :** उस संस्कार बल को लेकर ही यह सब हुआ है न! वर्ना, वह *पुद्गल* अपनी तरह से ही खेलता रहता। लेकिन यह जो खून निकलता है न, वे हड्डी, माँस, मवाद जो बनते हैं, वे सब संस्कार बल की वजह से हैं। वर्ना *पुद्गल* में खून कहाँ से निकलता? लेकिन उसमें संस्कार बल यानी अपना आत्मा एकाकार हुआ।

आँखों से काली दिखाई देती है, कुछ और दिखाई देती है, ठिगनी दिखाई देती है, फलानी दिखाई देती है। कैसे-कैसे सुंदर लोग दिखाई देते हैं, वे सब परमाणुओं के गुण हैं। कितनी सारी शक्ति है! फिर भी इसमें आात्मा का कुछ भी उपयोग नहीं होता। आत्मा को धोकर पानी नहीं डाला है। यदि आत्मा को धोकर पानी डाला होता

तो आत्मा का शायद उतना भी उपयोग हो जाता। लेकिन आत्मा का उपयोग नहीं हुआ है।

## अंतर, पुद्गल परिणाम और परमाणुओं के परिणाम में...

**प्रश्नकर्ता :** यहाँ लिखा है कि 'मैं फिर से बता रहा हूँ, तू वह सुन। अंत:करण में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष और सुख-दु:ख जैसे भाव पराये हैं। रस-गंध वगैरह भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म *पुद्गल* के परिणाम हैं'। ये सब किसके परिणाम हैं?

**दादाश्री :** ये सभी *पुद्गल* परिणाम हैं। राग-द्वेष, वे *पुद्गल* परिणाम हैं, सुख-दु:ख भी *पुद्गल* परिणाम हैं। स्पर्श भी *पुद्गल* परिणाम है, रस भी परिणाम है, गंध भी *पुद्गल* परिणाम है और फिर भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, सब *पुद्गल* परिणाम हैं। ऐसा कहना चाहते हैं कि ये सभी *पुद्गल* परिणाम हैं।

ये सब, जो आँखों से दिखाई देता है, कानों से सुनाई देता है, वे सब नोकर्म हैं। सभी *पुद्गल* परिणाम हैं, इनमें से कुछ भी आत्मा का परिणाम नहीं है। चेतन परिणाम नहीं है, ऐसा कहना चाहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** रूप, रस, गंध व स्पर्श, वे तो, जो परमाणु हैं, उनके गुण हुए न?

**दादाश्री :** वे सब *पुद्गल* परिणाम कहलाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** इस प्रकार जो मूल परमाणु हैं, तत्त्व के रूप में जो परमाणु हैं, उनके चार स्थायी गुण बताए गए हैं न - रूप, रस, गंध और स्पर्श?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन वे सब *पुद्गल* ही कहलाते हैं और उसके परिणाम कहलाते हैं। कोई इंसान जो अभी लाल दिखाई देता है, फिर भूरा, पीला दिखाई देता है। क्षण भर में ये सारे परिणाम बदल जाते हैं यानी वे *पुद्गल* के परिणाम हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन गुण तो नहीं बदलते हैं न, दादा?

**दादाश्री :** हाँ, वे गुण तो सब उसी के हैं न, लेकिन ये सारे परिणाम *पुद्गल* के कहे जाते हैं। ये चेतन के परिणाम नहीं हैं।

बाकी का सब माथापच्ची है। दो भाग (जड़ और चेतन) अलग हुए कि अंत आ जाता है। वही समझाने के लिए हम रोज़ झंझट करते हैं। (जिन्हें) ज्ञान दिया है उन्हें और (जिन्हें) ज्ञान नहीं दिया है, उन्हें नए सिरे से बात समझाते हैं।

उसी प्रकार से ये *पुद्गल* के पर्याय और *पुद्गल* परमाणुओं के पर्याय बनते हैं, वे दोनों अलग प्रकार के हैं। *पुद्गल* के पर्याय लाल, पीला, हरा ऐसे सब रंग बदलते रहते हैं, मुलायम, गरम, ऐसा सब बदलता रहता है (ये सब पाँच इन्द्रियों द्वारा अनुभव किए जा सकते हैं)। वे सभी पर्याय बदलते रहते हैं।

## प्राकृत गुण, प्राकृत स्वभाव

*पुद्गल* के चार गुण हैं - स्पर्श, रूप, रस और गंध, उन्हीं में घूमता रहता है। शब्द, वह गुण नहीं है, वह पर्याय है। रूप, वह तेज है और सभी रूप स्वाभाविक हैं। उसके जो गुण हैं, वे तो स्वाभाविक गुण हैं। वे अन्वय गुण हैं, व्यतिरेक गुण नहीं हैं और ये बाकी के कुछ (क्रोध-मान-माया-लोभ) तो व्यतिरेक गुण हैं। लेकिन शब्द तो व्यतिरेक गुण भी नहीं है, वह पर्याय है। अतः हम संयोगवश दबा लें, तभी वैसा (आवाज़) होता है।

**प्रश्नकर्ता :** शब्द, रस, स्पर्श, रूप और गंध, ये पाँचों किन विषयों के गुण हैं?

**दादाश्री :** शब्द कानों का गुण है, रस जीभ का, स्पर्श चमड़ी का, रूप आँखों का और गंध नाक का है।

**प्रश्नकर्ता :** तो ये मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, क्या ये सभी *पुद्गल* के प्रभाव हैं?

**दादाश्री :** सब *पुद्गल* का ही है।

**प्रश्नकर्ता :** और क्रोध-मान-माया-लोभ?

**दादाश्री :** वह सब भी *पुद्गल* का लेकिन वह *पुद्गल* का गुण नहीं है। आत्मा की उपस्थिति में ही यह सब हो सकता है, वर्ना नहीं हो सकता है।

**प्रश्नकर्ता :** यदि *पुद्गल* के गुण नहीं हैं तो क्या *पुद्गल* और प्रकृति, दोनों एक ही हैं?

**दादाश्री :** एक ही हैं, उनमें कोई अंतर नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन प्रकृति के गुण तो हैं न?

**दादाश्री :** गुण तो हैं लेकिन वे गुण कैसे हैं? विनाशी हैं सब। उलट-पुलट होते रहते हैं। उन्हें बदलते देर ही नहीं लगती।

**प्रश्नकर्ता :** ये प्रकृति तो कुछ भी उल्टा-सीधा कर देती है। प्रकृति मटियामेट कर देती है।

**दादाश्री :** वे उलट-पुलट होते रहते हैं हर पल। प्राकृत गुणों का ठिकाना नहीं है न! यदि इन सभी प्राकृत गुणों को लिखकर लाएँ तो सुबह वापस नए ही प्रकार के गुण दिखाई देंगे। इसका तो कोई ठिकाना ही नहीं है जबकि आत्मा के गुण शाश्वत हैं। उसके जो भी गुण तय किए, वे सब हमेशा ही रहते हैं।

दुनिया में कई, बहुत प्रकार के प्राकृत गुण हैं। सत्यवान होता है, क्षमावान होता है, उच्च चरित्र वाला होता है, अन्य कई तरह के गुण इकट्ठे किए होते हैं। लोग कहते हैं कि ये पूज्य पुरुष हैं लेकिन उन गुणों का विनाश होते देर नहीं लगेगी। ये *पुद्गल* के गुण हैं, प्रकृति के गुण हैं। इन सभी गुणों को लेकर तुझे क्या करना है? ये तो *पुद्गल* के गुण हैं, इनका क्या करना है? क्या चटनी बनानी है? क्योंकि *पुद्गल* के गुण तो कभी न कभी फेंक देने पड़ेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** लोग *पुद्गल* में एक जगह पर रुक जाते हैं, उन सब का आपने तो क्षण मात्र में नाश कर दिया।

**दादाश्री :** मेरा कहना है कि ये जो सांसारिक गुण हैं, दया, शांति, क्षमा, दयालु-वयालु सब, दानेश्वरी-वानेश्वरी... ये सभी जो गुण हैं, और ये सब लोग कहते हैं कि 'यह बहुत समझदार है, ऑब्लाइजिंग नेचर है', हमें, कोई वे सारे गुण दे तो हमें क्या करना है? क्या उन्हें बैंक में जमा करवाना है? कोई कहे कि 'आपके लाओ और यह लो', तो क्या हम बैंक में जमा करवा देंगे?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं।

**दादाश्री :** वे सभी गुण विनाशी हैं, उन्हें लेकर हमें क्या करना है? इनके लिए तो बल्कि भगवान ने यहाँ तक कहा है कि इन विनाशी गुणों को इकट्ठा करने के लिए बहुत प्रयत्न मत करना। ये सभी विनाशी गुण इकट्ठे हुए होंगे और फिर सन्निपात हो जाएगा तो वही व्यक्ति काटने दौड़ेगा और गालियाँ देगा और पत्थर फेंकेगा और कुछ भी बोलेगा! कहाँ गए सब गुण? त्रिगुणों के आधार पर जो गुण हैं वे, वात, पित्त व कफ नहीं बढ़े हैं, तब तक ये गुण रहेंगे और तीनों के बढ़ने से सन्निपात हुआ कि ये धूल में मिल जाएँगे! इसलिए खुद के स्वगुणों में आ जाओ, आत्मा के गुणों में, जो शाश्वत हैं, जिनका कभी भी विनाश नहीं होता, जिनसे सन्निपात नहीं होता।

संसार के हिसाब से वे ठीक हैं। जगत् के लोग जो करते हैं, वह गलत नहीं है क्योंकि वे बेचारे जिस जगह पर हैं वहाँ से वे लोग ज़रा सा भी हिले नहीं हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या मोक्ष का पात्र बनने के लिए, इन गुणों की ज़रूरत है?

**दादाश्री :** नहीं, गुणों की ज़रूरत नहीं है। कैफ न रहे, उसकी ज़रूरत है। गुणों का क्या करना है? ये सब तो प्राकृत गुण हैं। ये तो पौद्गलिक गुण हैं, इनका क्या करना है? *पुद्गल* के गुणों की ज़रूरत ही नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** गुण तो आत्मा में ही होते हैं न! प्रकृति के कहाँ होते हैं?

**दादाश्री :** पाँच इन्द्रियों से अनुभव किया जा सके, उनमें एक भी गुण आत्मा का नहीं है।

आप प्रकृति के अधीन हो और प्रकृति के गुण और आत्मा के गुण पूर्णत: अलग हैं।

इस *पुद्गल* के (जो भी) गुण हैं, उनका वे लोग सार निकालने जाते हैं। उनमें से कभी भी सार नहीं निकलेगा।

*पुद्गल* का स्वभाव ही ऐसा है कि सबकुछ बदलता रहता है। 'हमें' देखते रहना है। ये सब जो आता है, वह वापस निकल जाएगा। वह निकल जाएगा तो वापस दूसरा आएगा। कोई नहीं छोड़ेगा। खुरदुरा छोड़ने के बाद में फिर मुलायम आएगा। फिर मुलायम को भी छोड़ देना है। फिर खुरदुरा आएगा। *पूरण-गलन* स्वभाव है इसका। यानी मुलायम से दोस्ती करेंगे, तभी परेशानी होगी न! खुरदुरे के साथ दोस्ती कर लेगें तो मुलायम आपको बाधक ही नहीं होगा! किसके साथ फ्रेन्डशिप करोगे? जब खुरदुरा आए तब उसे अच्छा कहना, 'हाँ, अब मुझे अच्छा लगा।' फिर वह (मुलायम) तो पसंद आना ही है। जो पसंद नहीं है, उसे पसंदीदा बना दो और आत्मा के तो अनंत पहलू हैं, आप उसे चाहे किसी भी पहलू से घुमाकर रखो तो वैसा दिखने लगेगा।

## पर्याय हैं स्वभाव का परिणाम

हर एक नारियल में पानी भरा होता है। फिर अपने बुद्धिशाली लोगों ने ऐसा कहा कि, 'भाई, यहाँ देखो, भगवान ने कैसा पानी भरा है! वर्ना इसमें पानी कैसे आता?' देखो अक्ल काम नहीं करती! अंदर पानी जा कैसे सकता है? इसलिए वह ऐसा समझता है कि भगवान ने भरा। इससे उसे भगवान पर प्रेम आता है। भगवान कहाँ से भर लाए, वह भी पता नहीं है। वे कहीं से लाते होंगे न, किसी तालाब में से?

**प्रश्नकर्ता :** नारियल के पेड़ समुद्र के किनारे उगते हैं, फिर

भी उनमें से पानी मीठा निकलता है। इस तरह पानी का भरना भी स्वभाव से है? तो वह क्या चीज़ है?

**दादाश्री :** स्वभाव ही है वहाँ पर। हर एक चीज़ स्वभाव सहित होती है।

**प्रश्नकर्ता :** इतने सारे अनंत प्रकार के स्वभाव होते हैं?

**दादाश्री :** जितने प्रकार की वस्तुएँ हैं, उतने ही प्रकार के स्वभाव हैं।

**प्रश्नकर्ता :** क्या अनंत पर्याय और अनंत स्वभाव का कोई लेना-देना है?

**दादाश्री :** अनंत पर्याय क्या हैं? स्वभाव का परिणाम। ऊपर गया या नीचे आया, वे सभी पर्याय कहलाते हैं। स्वभाव का वह जो दिखाई देता है, वह कैसा है? चढ़ता है, उतरता है, वे सभी पर्याय।

**प्रश्नकर्ता :** स्वभाव जो दिखाई देता है, वह बढ़ता है, घटता है, कम-ज़्यादा होता है, परिवर्तित होता है, क्या उसे अवस्था कहा गया है?

**दादाश्री :** हाँ। वह दुबला हो जाता है, मोटा होता है, वे सब पर्याय कहलाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** 'उस समय जो स्वभाव होता है, वे उस स्वभाव की अवस्थाएँ हैं', ऐसा कहना चाहते हैं न?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** और वही देखा जा सकता है न? यह नारियल का बनना, आम का बनना, नीम होता है, उन सभी को पौद्‌गलिक स्वभाव कहा जा सकता है न?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** और उसमें आत्मा की उपस्थिति है तभी ऐसा स्वभाव उत्पन्न होता है न?

**दादाश्री :** उपस्थिति के बगैर तो होगा ही नहीं न! उपस्थिति से ही सब चल रहा है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो *पुद्‌गल* कड़वा हुआ है न, वह *पुद्‌गल* का स्वभाव है। फिर आम का मीठा होना, खट्टा होना, नारियल में पानी भरा जाना, वह भी *पुद्‌गल* का स्वभाव है। लेकिन अब, आत्मा की उपस्थिति के बिना यह नहीं हो सकता, तो फिर आत्मा उसमें किस प्रकार से हेल्प करता है? आत्मा का और उसका क्या संबंध है?

**दादाश्री :** ऐसा है न, *पुद्‌गल,* वह तो किसी खास चीज़ को *पुद्‌गल* कहते हैं। बाकी तो परमाणुओं के स्वभाव हैं, वह आत्मा की उपस्थिति के बिना हो सकता है लेकिन *पुद्‌गल* आत्मा की उपस्थिति से ही उत्पन्न हुआ है। विकारी परमाणुओं को *पुद्‌गल* कहा जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** अब, क्या ये विकारी परमाणु आत्मा की उपस्थिति से ही बने हैं?

**दादाश्री :** हाँ, परमाणुओं की जो विकारी अवस्थाएँ हैं, उन्हें *पुद्‌गल* कहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अब इसका खट्टा होना, खारा होना, ये सभी जो रस हैं, वे मूल *पुद्‌गल* के ही गुण हैं न? लेकिन ऐसे सब गुण विकारी *पुद्‌गल* में ही हो सकते हैं!

**दादाश्री :** परमाणुओं के ही गुण हैं। लेकिन ये जो अनुभव किए जा सकते हैं, वे विकारी (*पुद्‌गल*) हो चुके हैं, इसलिए।

**प्रश्नकर्ता :** यानी जो विकारी नहीं हैं, उनमें भी वे गुण तो हैं ही?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या जगत् में ऐसे परमाणु होते हैं? यानी कि जगत् में ऐसे परमाणु जो आत्मा की उपस्थिति के बिना बने हों? विकारी यानी कि खट्टा, खारा...

**दादाश्री :** विकारी नहीं होते, फिर भी होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन उनमें भी ये गुण हैं न?

**दादाश्री :** हाँ, खट्टा, खारा वगैरह, ऐसे गुण होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु, जो शुद्ध स्वरूप में हों, जो बिल्कुल भी विकृत नहीं हुए हों, क्या इस जगत् में ऐसे शुद्ध स्वरूप के परमाणु हो सकते हैं? या सभी परमाणु विकारी होते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, काफी कुछ शुद्ध ही हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** अब, क्या इन शुद्ध परमाणुओं में खट्टा, खारा, ऐसे गुण होते हैं?

**दादाश्री :** मूल गुण सभी में हैं। स्पर्श के आठों-आठ गुण होते हैं उनमें। उसमें कुछ मिल जाए तो खुरदुरा बन जाता है, कोई ऐसा बन जाता है, कोई वैसा बन जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या आत्मा की उपस्थिति के बिना ऐसा हो सकता है?

**दादाश्री :** हाँ, अब विकारी अलग हैं और वे निर्विकारी अलग हैं। वे सहज स्वाभाविक गुण हैं। स्वाभाविक गुणों में से ये विकारी गुण उत्पन्न होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** वह स्वाभाविक हो, क्या तभी ऐसा विकारी बन सकता है? आत्मा की उपस्थिति के बिना ये विकारी गुण उत्पन्न नहीं हो सकते। तो उसके विकारी बनने में, (आत्मा की) उपस्थिति का निमित्त इसमें क्या काम कर जाता है?

**दादाश्री :** सूर्य की उपस्थिति से सैल में पावर भर जाता है न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, सोलर पावर।

**दादाश्री :** क्या सूर्य वह जानता है?

**प्रश्नकर्ता :** सूर्य नहीं जानता।

**दादाश्री :** तो उसकी उपस्थिति से ही सब हो जाता है। उसका प्रकाश ही काम करता है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, तो फिर उसी तरह आत्मा का प्रकाश भी इसमें कुछ हेल्प करता होगा न?

**दादाश्री :** काम करता है, प्रकाश ही काम करता है। मैं कह रहा हूँ न, कि आत्मा यानी भगवान कुछ भी नहीं करते, सिर्फ प्रकाश देते हैं जीव मात्र को।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन प्रकाश देना एक चीज़ है और...

**दादाश्री :** 'वे देते हैं', ऐसा सिर्फ कहा जाता है। बाकी, प्रकाश उत्पन्न होता है और 'उसे' (अहम् को) प्राप्त होता है, साथ में रहने की वजह से।

**प्रश्नकर्ता :** वह समझ में नहीं आया।

**दादाश्री :** सूर्य कहाँ देता है?

**प्रश्नकर्ता :** वह स्वभाव से प्रकाशमान है। परमाणु सहज स्वभाव वाले हैं, विश्रसा। भगवान तो सहज भाव से प्रकाशमान ही हैं तो फिर बीच में यह कौन है जो इन सब को विकारी बना देता है?

**दादाश्री :** वही, जो मोक्ष ढूँढ रहा है। वही, जो बंधा हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** तो उसका स्वरूप, प्रकाश विभाग वाला है? वह जो बंधा हुआ है, वह कौन से पक्ष में है? प्रकाश के पक्ष में है या इन परमाणुओं के पक्ष में है?

**दादाश्री :** परमाणुओं के पक्ष में।

**प्रश्नकर्ता :** क्या वह परमाणुओं से बना है?

**दादाश्री :** वह परमाणुओं से बना है। वह परमाणुओं का विकारी स्वरूप है।

**प्रश्नकर्ता :** वह भला कौन है दादा?

**दादाश्री :** अहंकार और ममता। जो बंधा हुआ है, वह छूटना चाहता है।

**प्रश्नकर्ता :** मूल में तो वह अहंकार ही है न?

**दादाश्री :** उसे बंधना पसंद है। इतने-इतने दु:ख पड़ते हैं फिर भी उसे बंधना पसंद है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, नीम का कड़वा होना और फिर नारियल में पानी भर जाना, यह सब होने में अहंकार किस तरह काम करता है? नीम का कड़वा होना, उस कड़वेपन में अहंकार किस तरह काम करता है?

**दादाश्री :** अहंकार और कोई भी काम नहीं करता, सहज रूप से भाव करता है। भावसत्ता है उसके पास। अन्य कोई सत्ता नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** और फिर वही कहता है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो शुद्धात्मा बन जाता है?

**दादाश्री :** हाँ, इस प्रकार से शुद्धात्मा बन जाता है, संयोगों के आधार पर।

**प्रश्नकर्ता :** छुड़वाने वाला मिल जाए तो छूट भी जाता है। फिर उन परमाणुओं का क्या होता है?

**दादाश्री :** वे सब डिज़ॉल्व हो जाते हैं, सभी जैसे थे वापस वैसे ही हो जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** विश्रसा?

**दादाश्री :** विश्रसा। निरंतर विश्रसा होते ही रहते हैं, वर्ना यों भी शुद्ध होते ही रहते हैं।

विभाविक *पुद्गल* वह है जो आत्मा को स्पर्श करके बैठा है। प्रत्येक देहधारी के साथ में है। जबकि स्वाभाविक *पुद्गल* की अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। यह शरीर अनंत परमाणुओं से बना है लेकिन वह विभाविक परमाणुओं से बना हुआ है। जबकि बाकी सब जो परमाणु हैं, वे स्वाभाविक हैं। ठंड लगती है, गरमी लगती है, जीभ को तीखा लगता है, सुगंध आती है, दुर्गंध आती है, वे सब *पुद्गल* के गुण हैं। उसमें व्यवस्थित को कोई लेना-देना नहीं है।

## पूरी बाज़ी पुद्गल की

**प्रश्नकर्ता :** संकल्प-विकल्प छोड़ देने पर क्या फिर अगले जन्म में वे रहेंगे?

**दादाश्री :** नहीं। जो छोड़ दिया, वह चला गया। अपने यहाँ पर खेत होते हैं, खेत में कपास बोते हैं और फिर देखने निकलते हैं, कपास के अलावा अंदर और क्या उगा है? तो उसे क्या कर देते हैं? उखाड़ देते हैं, ऐसा देखा है न, आपने?

**प्रश्नकर्ता :** निराई कर देते हैं।

**दादाश्री :** अब निराई करने के बाद फिर से नहीं उगते न! विकल्पों की निराई करने पर वे गए।

कोई कहे, 'आप बहुत काले हो' लेकिन हमने उस विकल्प को खत्म कर दिया होगा तो हम पर असर नहीं होगा। लेकिन (जब तक) हम खुद ही सामने वाले को 'काला, काला' कहते हों तब तक हमें विकल्प की कीमत है। तो हमें उस कीमत का डिवैल्यू कर देना है। (यदि) अन्य किसी को हम 'काला' कहें नहीं और हमें कोई 'काला' कहे तो असर न हो, तो वह डिवैल्यूएशन हुआ तो खत्म हो जाएगा। वैल्यू को बढ़ाना या कम करना अपने हाथ की बात है। 'मुझे काला

क्यों कहा', कहते ही वैल्यू बढ़ गई। यह कालापन, गोरापन, लाल, पीला, सभी जो रंग हैं, वे सब जड़ के गुण हैं और खुद में आरोपण करता है कि 'मैं काला हूँ'। 'अरे भाई, तू काला नहीं है।' फिर कड़वा, खट्टा, फीका, नमकीन, खारा, तीखा, मीठा, वे सब जड़ के गुण हैं।

अब, जड़ के गुणों पर खुद का आरोपण कर देते हैं, इसी वजह से यह परेशानी हो जाती है। जड़ के गुणों पर आरोपण करने से विकल्प होते हैं और विकल्प होने के कारण यह निर्विकल्पी पद खो दिया हमने, और फिर पत्नी के पति बन बैठते हैं। 'मैं तेरा पति हूँ, जानती नहीं है?' ऐसे कहता है। तब पत्नी भी कहती है, 'जानती हूँ, पहले से ही जानती हूँ न, आप पति बन बैठे हो'। कभी किसी के मालिक बनना चाहिए क्या? सरकार भी डेमोक्रेटिक रखते हैं तो हमें भी क्या अपने घर में डेमोक्रेटिक नहीं रहना चाहिए? डेमोक्रेसी नहीं रखनी चाहिए?

**प्रश्नकर्ता :** रखनी चाहिए।

**दादाश्री :** लेकिन लोग रखते नहीं हैं। नहीं?

यह बाज़ी किसकी है? पूरी बाज़ी *पुद्गल* की! सिर्फ इस *पुद्गल* की ही बाज़ी है। *पुद्गल* का स्वभाव, रूप, रस, स्पर्श, गंध वगैरह जो गुण उसे दिखाई देते हैं, वे। फिर रूप के भी कितने ही प्रकार हैं, स्वाद के कितने ही प्रकार हैं, गंध के, स्पर्श के, पूरी ही *पुद्गल* की बाज़ी है! उन गुणों को हम खुद का मानते हैं न!

जीवाणु जीव हैं और परमाणु जड़ हैं। दोनों ही शक्तिशाली हैं। अणु को फोड़ने पर उसकी शक्ति का पता चला था न! अतः जड़ में भी शक्ति तो है न! लेकिन वह जड़ शक्ति और यह चेतन की शक्ति, दोनों की शक्ति में इतना फर्क है।

आत्मा में अनंत शक्ति है लेकिन उस पर आवरण है। वह आवरण इस देह का नहीं है। देह तो निर्दोष है। लेकिन वह उसके साथ में आए हुए परमाणुओं का है। वह घोर अंधकार जैसा है।

❖❖❖❖❖

# [ 3 ]
# क्रियावती शक्ति

## क्रियावती शक्ति, चेतन की या जड़ की?

**प्रश्नकर्ता :** छः तत्त्वों में से जड़ और चेतन या फिर *पुद्गल* और चेतन, इन दोनों में क्रियावती शक्ति है, अन्य तत्त्वों में नहीं है, तो यह कौन सी शक्ति है?

**दादाश्री :** ऐसा है न, कि अपने-अपने स्वभाव की शक्ति तो हर एक तत्त्व में होती है न!

**प्रश्नकर्ता :** वह ठीक है, लेकिन *पुद्गल* और चेतन में ही क्रियावती शक्ति है और बाकी चार में नहीं है, ऐसा लिखा है।

**दादाश्री :** नहीं, क्रियावती शक्ति सिर्फ *पुद्गल* में ही है। दोनों में नहीं है, आत्मा में नहीं है। सिर्फ *पुद्गल* ही सक्रिय है। अन्य कुछ भी क्रियावान् है ही नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** वह किस प्रकार से करता है, वह समझना था।

**दादाश्री :** क्रियावान्, वह तो *पुद्गल* का स्वभाव ही है। यहाँ पर बर्फ गिर रही हो और हम देखें तो किसी जगह पर महावीर जैसी मूर्ति बन जाती है, किसी जगह पर किसी और प्रकार का, कोई जानवर जैसा दिखाई देता है, बर्फ गिरते-गिरते ये आकार नहीं बन जाते? ऐसा नहीं होता?

**प्रश्नकर्ता :** होता है।

**दादाश्री :** *पुद्गल* ऐसे आकारी स्वभाव वाला है। वह तो, *पुद्गल* का स्वभाव ही ऐसा है। *पूरण* होना और वही वापस *गलन* हो जाता है। आत्मा को भाव होते ही एकदम से वह क्रिया हो जाती है। क्योंकि उसके पास क्रियाकारी शक्ति है। आत्मा का भाव देखते ही स्पंदन होकर सबकुछ क्रियावान् हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् आत्मा का भाव होगा तभी क्रियावान् होगा न, नहीं तो क्रियावान् होगा ही नहीं न?

**दादाश्री :** वर्ना फिर भी क्रियावान् तो *पुद्गल* का स्वभाव ही है लेकिन हम में यह जो हड्डी, माँस वगैरह सबकुछ बदलता है न, ऐसा नहीं होता।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् *पुद्गल* में सुषुप्त शक्ति रही हुई है लेकिन क्या उस शक्ति को आत्मा जगाता है?

**दादाश्री :** सुषुप्त नहीं, वह शक्ति तो परमानेन्ट है ही। *पुद्गल* में वह शक्ति खुले तौर पर है। उसे किसी को जगाने की ज़रूरत ही नहीं है!

यहाँ (जब) बर्फ गिरती है तब पूरी मूर्तियाँ ही मूर्तियाँ नहीं बन जातीं? मूर्ति जैसे अलग-अलग तरह के आकार नहीं बन जाते? वह *पुद्गल* की शक्ति इकट्ठी होती है, *पूरण* होता है तो वह शक्ति है। वापस *गलन* होता है, वह भी शक्ति है। अन्य किसी में ऐसी क्रियावान् शक्ति नहीं है। सिर्फ *पुद्गल* में ही ऐसी क्रियावान् शक्ति है। और उसी को लेकर यह जगत् खड़ा हो गया है। उस *पुद्गल* की क्रियावान् शक्ति नहीं होती तो यह जगत् नहीं बनता। इनमें से हर एक की शक्ति अलग-अलग है। उसी की वजह से संसार खड़ा हो गया है, वर्ना संसार खड़ा ही नहीं होता न!

जैसे कि फोटो लेने वाले की इच्छा हो कि मुझे इसका फोटो

लेना है तो फोटो में फिर आँखें वगैरह सबकुछ कैसा दिखाई देता है? तो वह जो देखता है, वह सारी *पुद्गल* की शक्ति कहलाती है।

आप क्या पूछना चाहते हो?

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* तत्त्व और चेतन तत्त्व, इन दोनों में क्रियावती शक्ति है, ऐसा कहा गया है।

**दादाश्री :** नहीं, चेतन बिल्कुल अक्रिय है। ये सब तो भ्रांति से चेतन को कर्ता कहते हैं। क्रियावान् तो सिर्फ यही है, यह *पुद्गल* ही है। आत्मा यदि क्रियावान् होता न, तो कर्ता बन जाता। जो क्रिया करता है न, उसे कर्ता कहा जाता है और कर्ता बनने से बंधन होता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह तो खुद के स्वभाव का कर्ता है, ऐसा कहते हैं न!

**दादाश्री :** वह तो, हर एक द्रव्य खुद के स्वभाव का कर्ता है लेकिन यह जो *पुद्गल* है, वह तो स्वभाव, विभाव, हर प्रकार से कर्ता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो जहाँ पर चेतन नहीं है, वहाँ पर फिर *पुद्गल* की क्रिया का पता नहीं चलता, ऐसा क्यों?

**दादाश्री :** चेतन नहीं है, वहाँ पर भी *पुद्गल* की क्रिया चल ही रही होती है। यहाँ पर एक लकड़ी पड़ी हो तो वह लकड़ी पड़ी-पड़ी सड़ती रहती है। कोई हड्डी हो न, तो वह भी बिगड़ती ही रहती है। अभी माँस का लोथड़ा डाला जाए न, तो उसके बाद फिर वह सड़ता ही रहेगा। अर्थात् हर एक चीज़ निरंतर अपनी क्रिया में ही है। वह चेतन हो तब भी क्रियावान् है और चेतन नहीं हो तब भी क्रियावान् है। स्वभाव से ही क्रियावान् है।

इन चेतन और *पुद्गल,* दोनों को सक्रिय कहा इसीलिए तो इस सारी अज्ञानता में घिरे हुए हैं, उसी की वजह से यह पूरा जगत् भटक गया है। अब, उल्टा जानने से सबकुछ उल्टा हो जाता है। फिर भगवान

बेचारे क्या करें? और फिर अगर कहते हैं न, कि आत्मा के गुण बोलो तब कहते हैं, 'ज्ञाता, द्रष्टा व अक्रिय है।' फिर ऐसा कुछ कहते हैं! वह अक्रिय है, ऐसा आपने पढ़ा नहीं है?

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा पढ़ा है न!

**दादाश्री :** अर्थात् ऐसा सब जो पढ़ने मिलता है, उसे एक तरफ रख दोगे तो काम होगा, वर्ना अपना काम ही नहीं होगा न! अगर ज़रा सा भी यह दिमाग़ में घुस गया न, तो न जाने कौन सी टेढ़ी पटरी पर ले जाएगा! क्योंकि यह बात सही नहीं है। इसीलिए मैंने धर्म की पुस्तकें पढ़ने के लिए मना किया है! क्योंकि वह करेक्ट नहीं है। यदि आप मुझसे पूछोगे तो समाधान होगा, वर्ना समाधान नहीं होगा और आप उलझ जाओगे। (जब से) आत्मा को क्रियावान् कहा, तभी से भ्रांति उत्पन्न हो गई।

स्वाभाविक आत्मा कैसा है? तो कहते हैं, 'अक्रिय है।' और अभी अंदर शरीर में स्वाभाविक ही है। अभी ज़रा सा भी विभाविक नहीं हुआ है। जब भी पता लगाओ तो वह वैसे का वैसा ही है। उसमें विभाविक होने की शक्ति ही नहीं है। उसका रूप परिवर्तन हो सके ऐसा है ही नहीं! जो मैंने देखा है, उसमें मैंने कभी भी परिवर्तन होते हुए नहीं देखा है। फिर भी उसकी क्रिया के बारे में कहना हो तो लोग ऐसा कह सकते हैं कि आत्मा ज्ञानक्रिया का कर्ता है और दर्शनक्रिया का कर्ता है। वे उसकी स्वाभाविक क्रियाएँ हैं। यह धर्मास्तिकाय भी स्वाभाविक क्रिया में रहता है, अधर्मास्तिकाय भी स्वाभाविक क्रिया में रहता है, आकाश भी स्वाभाविक क्रिया में रहता है। फिर भी वे इस जैसे नहीं कहे जा सकते। इन छहों तत्त्वों में सिर्फ *पुद्गल* ही एक ऐसा तत्त्व है जो सक्रिय कहलाता है और उस सक्रियता की वजह से काल को पहचाना जा सकता है। वर्ना काल को पहचान ही नहीं पाते। काल तत्त्व को पहचानने का कारण यह है कि यह *पुद्गल* तत्त्व सक्रिय है, इसलिए। जैसे उस बोतल (रेतघड़ी) में रेत गिरती रहती है और जब सारी रेत गिर जाती है तब हम समझते हैं कि 'ओहोहो! अड़तालीस

मिनट हो गए'। अड़तालीस मिनट के आधार पर उस रेतघड़ी को भरा गया था। अर्थात् यह सब काल के आधार पर पुराना हो रहा है। सर्जन होता है और वापस विसर्जन होता है। सर्जन होता है और विसर्जन होता रहता है। मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह आपको समझ में आ रहा है? स्पष्ट हो रहा है?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** अगर कुछ कमी रह जाए तो बार-बार पूछना, बातचीत करना। अन्य ऐसा सब फिर से नहीं पढ़ना है। यह तो न जाने कौन सा रोग डाल देगा तो फिर अंदर जो समझ में आया है वह भी बिगड़ जाएगा इससे।

## अंतर, परमाणु और पुद्गल में

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर वहाँ *पुद्गल* का ही कर्तापन है, एक तरह से (साइड) ऐसा समझ में आता है।

**दादाश्री :** हाँ, *पुद्गल* ही कर्ता है। ये सारी क्रियाएँ भी *पुद्गल* की हैं। जड़ की ही क्रियाएँ हैं ये सारी। स्वभाव से ही सक्रिय है। कोई भी चेतन कोई क्रिया कर ही नहीं सकता।

**प्रश्नकर्ता :** सक्रिय का मतलब क्या है? दादा, आप ज़रा समझाइए।

**दादाश्री :** निरंतर किसी क्रिया में ही होता है।

यह सारा विभाव *पुद्गल* की करामात है। *पुद्गल,* चेतन नहीं है इसके बावजूद उसकी करामात से ही यह सबकुछ पैदा होता है। *पुद्गल* अर्थात् अनात्मा। करामात भूल-भुलैया वाली है। इंसान (जब) संडास जाता है तब उसे करवाता कौन है? *पुद्गल*। इस जगत् में जो कुछ भी करामात है, वह *पुद्गल* की स्वतंत्र करामात है।

और जो स्कंध बनते हैं, वे तो स्वाभाविक *पुद्गल* हैं, उनका

स्वभाव है स्कंध बनने का। स्वाभाविक रूप से इकट्ठे हो जाते हैं। दो अणु इकट्ठे हो जाएँ तो दो अणु, तीन अणु हों तो तीन अणु आमने-सामने मिलते हैं तब एक-दूसरे से जॉइन्ट हो जाते हैं सारे।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् इसका अर्थ ऐसा हुआ कि जो शुद्ध परमाणु हैं विश्रसा के रूप में, उन्हीं का *पूरण-गलन* है?

**दादाश्री :** वे क्रियाकारी हैं, सक्रिय हैं लेकिन *पूरण-गलन* ही कहलाता है। मिश्रचेतन को ही *पुद्गल* कहा जाता है, बाकी सब को *पुद्गल* नहीं कहा जाता।

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु और *पुद्गल* के बीच अंतर बताया है न आपने?

**दादाश्री :** परमाणु और *पुद्गल* में एक तो शुद्ध *पुद्गल* होता है और एक विशेष-भावी *पुद्गल,* दो प्रकार के *पुद्गल* हैं। शुद्ध *पुद्गल* जो है, वह... यहाँ पर बर्फ गिरे तो उससे बड़ा पुतला बन जाता है। फिर वापस पिघल जाए तो वह शुद्ध *पुद्गल* कहा जाएगा और यह अशुद्ध *पुद्गल* है। दो चीज़ों के मिलने से उत्पन्न हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** शुद्धात्मा में ऐसी कौन सी शक्ति है जो यह सब करती है?

**दादाश्री :** उसमें करने की शक्ति है ही नहीं। उसमें करने की शक्ति नहीं है इसलिए वह खुद ही बंध गया है *पुद्गल* में। यह सब करने की शक्ति *पुद्गल* की है। यह सब *पुद्गल* का ही कारोबार है, करामात है। *पुद्गल* अपने आप ही सक्रिय होता रहता है। करामात नामक सक्रिय गुण जगत् जानता ही नहीं है।

## उत्पत्ति, स्थिति, लय पुद्गल का...

**प्रश्नकर्ता :** उत्पत्ति, स्थिति और लय, यह सब *पुद्गल* की शक्ति ही करती है न?

**दादाश्री :** और क्या है? हर एक *पुद्गल* का स्वभाव है कि उत्पत्ति, स्थिति और लय होता ही रहता है निरंतर। आत्मा नहीं होता तब भी होता रहता है और आत्मा हो तब भी होता रहेगा। मनुष्य मर जाता है तब अंदर से जीव निकल जाने पर भी (*पुद्गल* में) परिवर्तन होता ही रहता है। उससे आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा की उपस्थिति के बिना तो मिश्रचेतन में उत्पत्ति, स्थिति और लय हो ही नहीं सकते न?

**दादाश्री :** सभी में होता रहता है। उसे लेना-देना नहीं है न! आत्मा और *पुद्गल* का लेना-देना नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** मिश्रचेतन में भी?

**दादाश्री :** यह जो *पुद्गल* है, वह डिस्चार्ज *पुद्गल* है। अर्थात् चार्ज करने में आत्मा की ज़रूरत है। (तन्मयाकार होने से चार्ज होता है)। आत्मा होगा तभी *पुद्गल* बनेगा न! आत्मा की उपस्थिति के (तन्मयाकार हुए) बिना तो कुछ भी होगा ही नहीं न!

**प्रश्नकर्ता :** यह जो धोती है, वह उत्पन्न होती है क्योंकि वह जड़ है लेकिन *पुद्गल* तो जड़ वस्तु नहीं है।

**दादाश्री :** यह *पुद्गल* भी मिश्रचेतन है, उसकी भी उत्पत्ति, स्थिति और लय होगा। क्योंकि जितनी भी विनाशी चीज़ें हैं न, उन सभी में होता है और अविनाशी में भी होता है। (लेकिन अलग प्रकार से समझना है)।

## ज्ञान-नेत्र देख सकते हैं, पुद्गल की करामात

एक-एक परमाणु से पूरा जगत् बना है। एक-एक परमाणु का नियम है। यानी यह जगत् कोई गप्प नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** हर एक परमाणु की खुद की ही शक्ति है न?

**दादाश्री :** हाँ, शक्ति है ही न, अंदर। जो ऐसी शक्ति वाला हो, वैसा सिर्फ एक ही तत्त्व है। वे, ये रूपी दिखाई देने वाले *पुद्गल* परमाणु हैं, स्वयं क्रियाकारी हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादाजी, लेकिन जो अरूपी *पुद्गल* है, जिन्हें हम प्योर (शुद्ध) परमाणु कहते हैं...

**दादाश्री :** वे परमाणु यों अरूपी तो हैं लेकिन केवलज्ञान में रूपी हैं, केवलज्ञान में दिखाई देते हैं। यानी कि अपनी चक्षु-इन्द्रिय से नहीं दिखाई देते। ज्ञानी को आभास होता है कि रूपी हैं, अर्थात् यों दिखाई नहीं देते, लेकिन उनके दर्शन में आता है।

**प्रश्नकर्ता :** '*करे छे कोण ए समजे तो उकले कायमी कोयडो.*' ('करता है कौन, यह समझें तो सुलझे हमेशा के लिए पहेली।')

**दादाश्री :** 'कर कौन रहा है?', इतना समझ जाए तो हल आ जाए, ऐसा है। आगे क्या कहना चाहते हैं?

**प्रश्नकर्ता :** '*करामत पुद्गलनी बाजी, स्वभाविक ज्ञाननेत्रे जो.*' ('करामात *पुद्गल* की बाज़ी, स्वाभाविक ज्ञान-नेत्र से देखो।')

**दादाश्री :** हाँ, स्वाभाविक ज्ञान-नेत्र से अर्थात् दिव्य दृष्टि से देखो, ऐसा कह रहे हैं कि फिर यह कौन कर रहा है। यह जो करामात है, वह *पुद्गल* की बाज़ी है, यानी क्या है कि कुछ देर पहले देखो तो कुछ भी नहीं होता और आधे घंटे में तो कोहरा, कोहरा, कोहरा, तो सामने वाला कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता। कौन ऐसा करने आया? कोई बीच में आ गया?

**प्रश्नकर्ता :** कोई भी करने नहीं आया, कुदरती है।

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन कैसा है? क्या बाहर ऐसा नहीं देखा? यह आँधी कौन करवाता है?

**प्रश्नकर्ता :** 'व्यवस्थित'।

**दादाश्री :** जबकि लोग कहते हैं, भगवान। भगवान ने हवा छोड़ी है, इसलिए हो रहा है! लोग तो ऐसा भी कहते हैं लेकिन ऐसा नहीं कहना चाहिए।

चलना-फिरना वगैरह अनात्म भाग के गुण हैं, आत्मा के नहीं हैं। आत्मा रात को भी नहीं सोता और दिन में भी नहीं सोता। अनात्म भाग सोता है, जो क्रिया करता है वही सोता है।

*पुद्गल* करामात बहुत सूक्ष्म चीज़ है। वह ऐसी नहीं जो समझी जा सके। हमने जो देखा है और जाना है, वह अपूर्व है। मैं उदारहण देता हूँ, यहाँ पर सब बैठे हों तब, किसी को छींकने की इच्छा नहीं है लेकिन यदि अंदर कोई छौंक लगाए तो सब को छींके आने लगती हैं। यदि तू कर्ता है तो बंद कर दे न छींके! लेकिन बंद नहीं होती। वह *पुद्गल* की करामात है।

फिर से कोई कहेगा कि *पुद्गल* का कर्तापन दिखाओ।

वे बहन दरवाज़े बंद करके छौंक लगाती है, उनकी इच्छा नहीं है और खांसने वाले की भी इच्छा नहीं है फिर भी लोग खाँसने लगते हैं! और ये कहते हैं कि 'मैंने खाँसा।' यह सारा इगोइज़म है।

यहाँ पर बैठे-बैठे मुझे *पुद्गल* की हर एक करामातें दिखाई देती हैं। यदि ऐसा नहीं है तो दूध पीना, अमृत पीना, शराब पीना और ज़हर पीना तो पता चल जाएगा कि *पुद्गल* की करामात कैसी है!

## हाज़िर है फिर भी निर्लेप

परमाणुओं में ज़बरदस्त बल है, उसी प्रकार चेतन में भी अनंत बल है। लेकिन बल के प्रकार अलग हैं। भगवान का (चेतन का) बल है, ब्रह्मांड के ज्ञाता-द्रष्टा रहना और इसका (परमाणुओं का) बल तो सर्जन-विसर्जन करवाता है। आत्मा खुद अक्रिय है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा निकल जाने के बाद में शरीर की सभी क्रियाएँ कहाँ जाती हैं?

**दादाश्री :** फिर शरीर की स्थूल क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। क्रिया के लिए भगवान की उपस्थिति की आवश्यता है। यह सब उनकी उपस्थिति से चलता है। उन्होंने यहाँ से डेरा उठा लिया तो बंद हो जाती हैं। वे कुछ भी नहीं करते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा की उपस्थिति से जो यह *पुद्गल* सक्रिय होता है तो उसका असर आत्मा पर होता है?

**दादाश्री :** आत्मा पर असर होता ही नहीं है, *पुद्गल* पर ही असर होता है। आत्मा पर असर हुआ ही नहीं है और मानते हैं कि मुझे ऐसा हो गया, लेकिन ऐसा हुआ ही नहीं है।

## दोनों में पुद्गल को ही होता है असर

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* की जो अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, अवस्थाएँ रूपांतरित होती हैं, क्या उसी को सक्रियता कहते हैं?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं, नहीं। सभी की अवस्थाएँ बदली जा सकती हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो *पुद्गल* की कौन सी सक्रियता की बात कर रहे हैं?

**दादाश्री :** यह पूरा जगत् सक्रियता से ही बना है। *पुद्गल* की, खुद की ही सक्रियता से। अत: यदि किसी के धक्का लगाने पर सक्रियता आती है तो वह सक्रियता गुण नहीं कहा जाएगा। सक्रियता उसका परमानेन्ट गुण है। इन छ: तत्त्वों में से *पुद्गल* का सक्रियपना हमेशा ही है, इसीलिए तो इन सब से अलग है। बाकी के सभी पाँच तत्त्व अक्रिय हैं और वे द्रव्य-गुण-पर्याय सहित हैं। सभी चेन्ज होते रहते हैं, परिणमन होता रहता है, सभी कुछ होता रहता है। इस *पुद्गल* का भी परिणमन होता रहता है लेकिन सक्रियता का गुण अलग है। किसी का धक्का लगे बिना, किसी के भी हस्तक्षेप के बिना, अपने आप ही, स्वभाव से ही *पुद्गल* का सक्रियपना है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* की जो अवस्था रूपांतरित होती है, वह उसकी सक्रियता नहीं कहलाती, जैसे कि पानी में से बर्फ बना...

**दादाश्री :** द्रव्य-गुण-पर्याय को सक्रियता नहीं माना जाता। सक्रियता तो उसका स्वभाव है। इसीलिए यह जगत् ऐसा दिखाई देता है, परमाणुओं की, खुद की सक्रियता की वजह से। यह सब इंसानों ने नहीं किया है, यह तो रियल सक्रियपना है और यह *पुद्गल* (मिश्रचेतन) का सक्रियपना है, वह एक्ज़ेक्ट सक्रियपना नहीं है, यह तो किसी के धक्के से हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो शरीर का *पुद्गल* है, वह क्या है?

**दादाश्री :** वह शरीर का विकृतपना है। यह जो सक्रियपना है, वह विकृतपना कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** जब आत्मा विभाव में परिणमित होता है और उसका धक्का लगता है, तभी इस *पुद्गल* में विकृति आती है न?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन वह विकृत क्रिया *पुद्गल* कहलाती है, स्वभाव *पुद्गल* नहीं कहलाता, और जड़ सक्रिय स्वाभाविक *पुद्गल* है। स्वाभाविक गुण है इसलिए विक्रिया हुई है जगत् में। वर्ना, भला आत्मा के भाव करने से शरीर बन जाए, ऐसा किस प्रकार का गुण है? किसने बनाया? हू इज़ रिस्पॉन्सिबल (कौन ज़िम्मेदार है)? तो कहते हैं, 'नो बडी इज़ रिस्पॉन्सिबल' (कोई भी ज़िम्मेदार नहीं है)। आँखें-वाँखें, आँख की पुतली-वुतली सबकुछ बन जाता है न?

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा जो भाव करता है, उसे हम क्या कहते हैं, सक्रियता या पर्याय या क्या मानते हैं?

**दादाश्री :** नहीं-नहीं! ऐसा नहीं है। वह सक्रियता भी नहीं है, वह उसका विभाविक भाव है, विशेष-भाव है। चेतन में सक्रियता होती ही नहीं है, सक्रियता नामक गुण बिल्कुल भी नहीं है, किसी भी जगह पर। और न ही किसी और में है, आकाश में भी नहीं है।

यह विभाविक अर्थात् विक्रिया हो गई है। यह *पुद्गल* की क्रिया है लेकिन विक्रिया, यानी कि इसमें से बदबू आने लगती है और ऐसा सब हो जाता है जबकि उनमें (स्वाभाविक *पुद्गल* परमाणुओं में) से बदबू आना वगैरह ऐसा कुछ नहीं होता, सिर्फ बदलते ही रहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** *पूरण-गलन* को ही सक्रियता कहते हैं न?

**दादाश्री :** हाँ, *पूरण-गलन* ही सक्रियता है, उसका (*पुद्गल* का) यह जो गुण है *पूरण-गलन* वाला, वही सक्रियता है, तो सिर्फ यहीं पर *पूरण-गलन* है ऐसा नहीं है, शुद्ध परमाणुओं में भी वही *पूरण-गलन* होता रहता है। *पूरण-गलन, पूरण-गलन, पूरण-गलन,* वही सक्रियता चलती रहती है। निरंतर परमाणु मात्र में रहता ही है।

**प्रश्नकर्ता :** इस *पुद्गल* का विकृत भाव, वही उसकी विशेष अवस्था कहलाती है?

**दादाश्री :** आत्मा का विकृत भाव और *पुद्गल* का विकृत भाव उत्पन्न होता है, वही विशेष अवस्था है।

## विभाव के बाद में विकृत पुद्गल

'आत्मा' का ज्ञाता-द्रष्टापना है। आत्मा के अलावा बाकी सब *पूरण-गलन* है, *पुद्गल* की करामात है। 'हमारे' राग की वजह से *पुद्गल* का स्वभाव विकृत हो जाता है। ये बादल, बरसात और ओले, ये सब क्या अलग-अलग चीज़ें हैं? एक ही *पुद्गल* है। इतने बड़े-बड़े ओले और इस *पुद्गल* में क्या कोई फर्क होता होगा?

**प्रश्नकर्ता :** वह भी *पुद्गल* है।

**दादाश्री :** एक ही *पुद्गल* है सब। यह तो इन सब के इकट्ठे होने से, दो चीज़ें, द्रव्य मिलने से, यह विकृतता उत्पन्न हो गई है। मूल आत्मा में विकृतता नहीं होती, *पुद्गल* में विकृतता होती है क्योंकि *पुद्गल* खुद क्रियाकारी है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* की खुद की परिणमन की शक्ति है या नहीं?

**दादाश्री :** है न! खुद की बेहिसाब शक्ति है। वह खुद की शक्ति से ही परिणमित होता है। यह शरीर *पुद्गल* ने खुद की शक्ति से ही बनाया है। इसमें आत्मा का हिस्सा बिल्कुल भी नहीं है। आत्मा ने तो सिर्फ प्रयोग किया था। वह भी मिलकर, दोनों की उपस्थिति में। 'मूल आत्मा' ने स्वतंत्र रूप से नहीं किया है यह प्रयोग। 'मूल आत्मा' वहीं के वहीं पर है।

**प्रश्नकर्ता :** जीव और *पुद्गल,* क्या ये दोनों द्रव्य सक्रिय हैं?

**दादाश्री :** जीव (अर्थात् बावा) सक्रिय है और *पुद्गल* सक्रिय है। *पुद्गल* (देह अर्थात् मंगलदास) अचेतन है और जो जीव है, वह भरा हुआ चेतन है, पावर चेतन है। लेकिन दोनों *पुद्गल* जैसे ही हैं! क्योंकि पावर चेतन किसमें भरा हुआ है? *पुद्गल* में भरा हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन *पुद्गल* को किस प्रकार से सक्रिय कहा जाता है?

**दादाश्री :** उसका स्वभाव ही सक्रिय है, काल के अधीन क्रिया होती ही रहती है।

## जैसी कल्पना करता है वैसा बनता है

**प्रश्नकर्ता :** तो *पुद्गल* का मुख्य गुणधर्म कौन सा है?

**दादाश्री :** रूपी, और खुद क्रियाकारी है, वे मुख्य गुणधर्म हैं। खुद अपने आप क्रिया कर सकता है। चेतन नहीं है फिर भी क्रियाकारी है। जैसे कि 'आप' कल्पना करो न, तो उसी अनुसार बाहर पुतला बन जाता है, अपने आप ही! और उसी से भ्रांति हो गई है 'इंसान' को कि मेरे सिवा और कौन करता है?

*पुद्गल* का स्वभाव है कि आत्मा जैसी कल्पना करता है, वैसा ही *पुद्गल* बन जाता है। इसीलिए पूरा जगत् उलझन में है कि यह सब करने वाला कौन है? अरे भाई, इस तत्त्व में इतना सुंदर गुण है कि खुद ही क्रियाकारी है इसलिए सक्रिय कहा जाता है। और आत्मा

को क्या कहा जाता है? आत्मा को अक्रिय कहा जाता है। अत: यह सारी करामात उसकी (*पुद्गल*) है। 'ये आँखें किसने बनाई? कान किसने बनाए?' तो कहते हैं, 'उसने बनाए।' आश्चर्य है न, यह! वह अकेला नहीं बनाता। आत्मा के सूक्ष्म विभाव भाव होते हैं, उस विभाव भाव की इच्छा, एक प्रकार की इच्छा के अनुसार, वह सब कर लेता है। जैसी-जैसी इच्छाएँ होती हैं, वैसा-वैसा सब कर देता है। पूरी दुनिया के इंसानों के दो ही कान होते हैं न? दो हाथ, दो पैर और यह सब कैसा है! और फिर लिमिट में है। यदि लिमिट नहीं होती न, तो कोई बारह हाथ वाला होता और कोई बीस हाथ वाला होता और कोई दस-पंद्रह पैरों वाला होता। लेकिन नहीं, उसकी लिमिट है, इच्छाओं की लिमिट है। मोह की भी लिमिट है। और फिर यह सारा लिमिट वाला है। अन्लिमिटेड नहीं है यह।

भैंस के पेट में बैठकर बच्चा कौन बनाता है? यह रचना कौन करता है? लोगों से इन प्रश्नों का समाधान नहीं हो सकता। ज्ञानी पुरुष ने देखा है कि किस तरह बनता है यह! अत: (विभाविक) आत्मा का ज़रा सा भाव हुआ कि अंदर डिज़ाइन बन जाती है, एक्ज़ेक्ट। इस प्रकार से रूपी तत्त्व खुद क्रियाकारी है।

इन पाँच इन्द्रियों से जो अनुभव किया जाता है, वह सारा आत्मा की शक्तियों को बताता है। कितनी शक्ति है! एक कल्प शक्ति क्या नहीं कर सकती!

लोक में छ: तत्त्व हैं। अर्थात् यह जगत् परमाणुओं से भरा हुआ है। उन परमाणुओं की वजह से आत्मा को इस संसार को पार करने में बहुत मुश्किल होती है। इसीलिए ऐसा सब बन जाता है।

परमाणु हैं तो विकल्प खड़ा होता है, वर्ना यह विकल्प होता ही नहीं न! अत: जहाँ पर *पुद्गल* नहीं है न, वहाँ पर कोई भी इफेक्ट नहीं है। ये अन्य पाँच तत्त्व बाधक नहीं हैं, *पुद्गल* ही बाधक है। सिर्फ इस *पुद्गल* की वजह से ही मुश्किल खड़ी हो गई है। *पुद्गल* का स्वभाव है कि आत्मा जैसी कल्पना करता है वहाँ पर वैसा ही

*पुद्गल* बन जाता है। खुद को जैसा विकल्प होता है, वैसा ही *पुद्गल* उसे धारण कर लेता है। खुद जैसी कल्पना करता है, वैसा ही वहाँ पर धारण कर लेता है। इसलिए फिर खुद को भ्रांति हो जाती है कि मैं यह हूँ या यह हूँ? फिर सारा ही भ्रांति में चल पड़ा!

उससे आत्मा को ऐसा हो गया कि यह मेरी क्रिया है ऐसी भ्रांति हो गई, ऐसी गांठ पड़ गई। और वह गांठ कभी भी खुलती नहीं है। खुद ब्रह्म है लेकिन ब्रह्मा बन गया और फिर वह ब्रह्मा भ्रमित हो गया। फिर गांठें खोलने की बहुत कोशिश की लेकिन और ज़्यादा गांठें बढ़ती गई। भ्रमित होने के बाद में गुणाकार ही होता जाता है, उसका जवाब भी भ्रमित में ही आता है।

यह तो, कितना ज़्यादा असर हो गया है आत्मा पर, कितना भयंकर दबाव आ गया है। उससे ये सारे आवरण आ गए और फिर वे सारे संयोग कैसे हैं? जैसा भगवान का ज्ञान होता है, वैसा ही वहाँ पर आकार बन जाता है! संयोगी परमाणुओं के गुण इतने अच्छे हैं कि जैसा इनका ज्ञान होता जाता है वैसा ही यहाँ पर आकार बन जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** यानी ऐसा आत्मा वाले ने किया था, तभी न?

**दादाश्री :** हाँ, आत्मा की उपस्थिति से ही तो यह *पुद्गल* ऐसा बनता है। ज्ञान, आत्मा का और करामात, सारी ही *पुद्गल* की। करामात में जिस ज्ञान का उपयोग होता है, वह आत्मा का ज्ञान है। बहुत सारे काम एक साथ कर सके, ऐसी शक्ति है। जिसमें करामात है, उसमें ज्ञान नहीं होता और जिसमें ज्ञान है, वह करामात नहीं करता। *पुद्गल* की सक्रियता में आत्मा की चेतन शक्ति भाग नहीं लेती, लेकिन आत्मा की विकल्प शक्ति भाग लेती है।

आत्मा नहीं बदलता। 'कल्प' में से विकल्प हुए। 'बिलीफ' से ही यह पूरा शरीर तैयार हो जाता है। इसमें 'बिलीफ' काम नहीं करती, उस 'बिलीफ' से परमाणु खिंचते हैं और परमाणु खुद स्वाभाविक रूप से क्रियाकारी हो जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यह *पुद्गल* किससे खिंचकर आता है?

**दादाश्री :** अपने आप ही खिंचकर आ जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** और फिर आत्मा के कॉन्टैक्ट में चार्ज हो जाता है?

**दादाश्री :** नहीं, वे खिंच कर आने के बाद उसका काल परिपक्व होता है तब वह चार्ज हो जाता है, अपने आप ही। अपने आप ही मूर्त हो जाता है, मूर्ति बन जाती है। आत्मा को कुछ भी नहीं करना पड़ता। विभाव हुआ कि खिंचा, विभाव हुआ कि खिंचा, खिंचने के बाद फिर अपने आप ही, खुद अपना कार्य करता रहता है। फिर उसमें से पूरा शरीर बनता है, सबकुछ बनता है। वह सारा *पुद्गल* का ही कार्य है, उससे आत्मा का कोई लेना-देना नहीं है।

*पुद्गल* का कोई कर्ता नहीं है। जैसी बिलीफ करता है वैसा ही बन जाता है। फिर भैंगा देखे तो वह भी बिलीफ है। भैंगा नहीं देखते? और फिर वह बिलीफ भी नियम से है! यह जगत् नियम के अधीन है। नियम से बाहर नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** वह समझ में नहीं आया।

**दादाश्री :** किसी भी मनुष्य में दो पैरों से ज़्यादा नहीं होते।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या बिलीफ में से बनने वाला *पुद्गल,* नियम के अधीन होता है?

**दादाश्री :** सबकुछ नियम के अधीन। कितनी रोंग बिलीफें होंगी, वह सब नियम के अधीन है!

**प्रश्नकर्ता :** क्या रोंग बिलीफ इटसेल्फ भी नियम के अधीन है?

**दादाश्री :** नियम है, वर्ना यदि वह नियम नहीं होता तो वह रोंग बिलीफ, राइट बिलीफ बनती ही नहीं, अनियम हो गई होती।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् जिस प्रकार से रोंग बिलीफें नियम के अधीन हैं, उसी प्रकार *पुद्गल* भी नियम के अधीन रहता है?

**दादाश्री :** सबकुछ नियम के अधीन है। कोई भी नियम से बाहर नहीं है। यमराज नहीं, नियमराज है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या रोंग बिलीफ *पुद्गल* नहीं है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* ही मानना हो तो माना जा सकता है लेकिन *पुद्गल* कब कहा जाएगा, कि बिलीफ तो निकाली जा सकती है जबकि *पुद्गल* तो अपने आप ही बदलता है, और कुछ नहीं। वही का वही, इस चेन्ज के बजाय दूसरा चेन्ज होता है (*पुद्गल* रूपांतरित होता है) जबकि बिलीफ का तो नाश ही हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या आप ऐसा कह रहे हैं कि यह *पुद्गल* परमाणु रूपी है?

**दादाश्री :** हाँ, परमाणु।

**प्रश्नकर्ता :** और बिलीफ?

**दादाश्री :** बिलीफ तो एक प्रकार की वृत्तियाँ कही जाती हैं।

इस तरफ देखने से समुद्र नहीं दिखाई देता, तो क्या समुद्र नहीं है? 'उसे' ऐसे घुमाओ तो फिर वापस समुद्र दिखाई देगा। और उसे लेकर झगड़े होते हैं इस दुनिया में। एक व्यक्ति ऐसा कहता है, कि 'आत्मा के अलावा अन्य कोई वस्तु है ही नहीं।' जबकि दूसरा कहता है कि 'आत्मा जैसी वस्तु इस दुनिया में है ही नहीं।' अब कैसे ताल मिलेगा? 'उसे' जैसा दिखाई देता है, वैसा ही कहता है।

**प्रश्नकर्ता :** बीच में यह देखने वाला कौन खड़ा हो जाता है?

**दादाश्री :** वह रोंग बिलीफ है। वह रोंग बिलीफ जब राइट बिलीफ हो जाती है तब आत्मा के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है। और 'आत्मा जैसी वस्तु नहीं है' वह रोंग बिलीफ है। यह सारी झंझट बिलीफों की ही है। बिलीफ के अलावा अन्य कुछ भी नहीं गया है। ज्ञान नहीं बिगड़ा है, बिलीफ बिगड़ी हुई है।

**प्रश्नकर्ता :** वह तो आपने जैसा कहा है न, दो तत्त्व मिलते हैं तो विशेष परिणाम आता है।

**दादाश्री :** हाँ, विशेष परिणाम। वह 'अपनी' भावना के अनुसार परिणामित होता है। (*पुद्गल* अपने) खुद के स्वभाव से परिणामित होता है, वह अलग है और यह तो अपनी भावना है, डिज़ाइन अपनी है। किसी की नाक ऐसी, किसी की नाक ऐसी, यह सब अपनी ही डिज़ाइन से बना है, अन्य किसी की नहीं। वर्ना पक्षपाती कहलाता। खुद पक्षपाती नहीं है। यह सारी जोखिमदारी अपनी ही है।

इसमें आत्मा कैसे गुनहगार बनता है, कि वे परमाणु 'उसके' खुद के भाव के अनुसार फूटते हैं। यदि वह अपने आप ही हो जाते तो हर्ज नहीं था। लेकिन फिर 'खुद' भाव करता है न, अज्ञानता से।

**प्रश्नकर्ता :** चार्ज करता है।

**दादाश्री :** चार्ज करता है इसलिए खुद उसमें गुनहगार बनता है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, (जब) ज़ोरदार फाइल आती है, तब कभी ऐसा हो जाता है कि 'मैं चंदू हूँ'।

**दादाश्री :** चाहे कैसी भी ज़ोरदार फाइल आए लेकिन तब हमें कहना चाहिए कि 'ओह! कहना पड़ेगा इस *पुद्गल* की करामात को!' चाहे कैसा भी हो फिर भी हमें क्या लेना-देना? सामने वाला व्यक्ति गुस्सा हो या कुछ भी करे, लेकिन अंत में वह है तो *पुद्गल* की ही करामात न! यह तो करामात ही कहलाएगी न, है अचेतन और बरतता है चेतन की तरह और इसे हमने प्रूव कर लिया है। तो हमें यह समझना है कि यह *पुद्गल* की करामात है।

लालचंद ने फूलचंद को तीन धौल लगाई, वह भी *पुद्गल* की करामात है। और फिर यदि फूलचंद, लालचंद को चार धौल लगाए तो वह भी *पुद्गल* की करामात ही है। आत्मा को *पुद्गल* की करामात के अनुसार रहना पड़ता है। अज्ञानी में एकाकार होकर बरतता है और

ज्ञानी में अलग रहकर बरतता है। *पुद्गल, पुद्गल* को तोड़ दे, तब लोग घबरा जाते हैं और फिर कहते हैं कि मैंने तोड़ा, मैंने फोड़ा, मुझसे टूट गया।

*पुद्गल* की तो अनेक प्रकार की, अनंत करामातें हैं, उनसे डरना कैसा? घबराना कैसा? सुथार की करामात, लुहार की करामात, उसी प्रकार यह *पुद्गल* की करामात है। अभी 'इसने' (आत्मा ने) इसमें किंचित्मात्र भी, कुछ भी नहीं किया है। यह तो मात्र उपस्थिति से ही होता रहता है।

## पुद्गल की शक्ति भी विराट है

**प्रश्नकर्ता :** जड़ चीज़ों में, जब अणु को तोड़कर परमाणु में बदलते हैं, तब अत्यधिक शक्ति पैदा होती है तो फिर क्या वह जड़ कहलाएगा?

**दादाश्री :** कृष्ण भगवान ने इस दुनिया में दो शक्तियों के बारे में बताया है। एक तो अनात्म शक्ति और एक, आत्म शक्ति। अनात्म शक्ति जड़ शक्ति है। जड़ में चेतन होता ही नहीं है और चेतन में भी जड़ नहीं होता, दोनों शक्तियाँ अलग-अलग हैं। लोगों को यह जो भ्रमित किया गया है कि जड़ में भी चेतन है, वह बेकार ही भ्रमित कर दिया है। फिर तो गेहूँ में से कंकड़ बीनने को रहे ही नहीं न? फिर तो आराम से सब भगवान ही हो गए न!

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा और कर्म का कैसा संबंध है?

**दादाश्री :** 'उनका' संबंध रिलेटिव है। कर्म 'खुद' के हैं, ऐसा मानने से आत्मा फँस गया है न! कर्म ही प्रबल है न! कर्म में ही सब भगवान फँसे हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** कर्म आत्मा को फँसाते हैं या आत्मा कर्म बाँधता है?

**दादाश्री :** नहीं, कर्म आत्मा को फँसाते हैं। *पुद्गल* की शक्ति इतनी अधिक है। यह तो, अणु को तोड़ा तब पता चला कि *पुद्गल* की इतनी शक्ति है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा चाहे तो कर्म खपा सकता है न?

**दादाश्री :** जो बंधन में है, वह किस तरह से खपा सकेगा? जब स्वभाव में आएगा, तब। आत्मा स्वभाव में कब आएगा? जो स्वभाव में आ चुके हैं, उनके पास जाने से। और स्वभाव में आने पर कर्म खप जाएँगे। स्वभाव में आ जाए तो चाहे कैसे भी कर्मों को खत्म कर दे। ज्ञानी पुरुष एक घंटे में कितने ही कर्मों के धुएँ उड़ा देते हैं, तभी तो *लक्ष* (जागृति) बैठता है, वर्ना *लक्ष* बैठेगा ही नहीं न।

**प्रश्नकर्ता :** दादाजी, चार्ज करने से पहले जो शुद्ध परमाणु होते हैं, उनमें भी खुद की शक्ति होती हैं न?

**दादाश्री :** परमाणुओं (अनेक परमाणु) में बहुत शक्ति, ज़बरदस्त शक्ति है। और हम चार्ज करते हैं तो उसमें अपनी शक्ति नहीं है, सिर्फ भाव ही है। उसमें सिर्फ अपना पावर ही जाता है। परमाणु की, खुद की शक्ति से ही है। 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा करने से ही यह उल्टा हो रहा है। आँखें जब कमज़ोर हो जाती हैं न, तब चश्मे की ज़रूरत पड़ती है। बाकी, कमज़ोर नहीं हों तो उसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। अर्थात् यह सब अपना खुद का ही अंधत्वपन है। दर्शन बदल गया है, (विभाविक हो गया है, दर्शन, ज्ञान और चारित्र) ज्ञान बदल गया है और इसीलिए चारित्र भी बदल गया है। अर्थात् दर्शन व ज्ञान के बदलने से सबकुछ बदल जाता है। यह जो मैंने '(केवल) दर्शन' दिया है, इसी से आपका पूरा बदल जाएगा।

इस शरीर में अनात्मा ही उल्टा-सीधा (*पूरण-गलन*) कर रहा है।

इस *पुद्गल* में इतनी शक्ति है कि आपको (अहंकार को) चूर-चूर कर दे, तो फिर इन अज्ञानी लोगों से टकराओगे तो आपकी क्या दशा होगी?

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा इस शरीर से अलग है लेकिन *पुद्गल* से आवृत है। वह खुद सर्व शक्तिमान है तो वह आत्मा खुद अपनी शक्ति से इस *पुद्गल* के आवरण से बाहर क्यों नहीं निकल सकता?

**दादाश्री :** *पुद्गल* की शक्ति कुछ कम नहीं है। एटम की जो शक्ति है न, वह कोई ऐसी-वैसी नहीं है कि यों धक्का लगाकर निकल सके। वह जड़ शक्ति है और यह चेतन शक्ति है। वह तो, उसे खुद का भान होता है, खुद 'कौन हूँ' ऐसा जानता है, तभी छुटकारा होगा, नहीं तो नहीं हो सकता। (जब तक) खुद के पास अपने आपको पहचानने का ज्ञान नहीं है तब तक यह कमज़ोरी है और खुद को स्वयं का ज्ञान उत्पन्न हो जाए, आत्मज्ञान हो जाए तो वह मुक्त हो जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा खुद चेतन होने के बावजूद भी इस जड़ शक्ति में कैसे फँस जाता है?

**दादाश्री :** इस ब्रह्मांड में सभी तत्त्व एक साथ ही थे इसलिए फँस गए हैं। दो वस्तुओं के मिलने से वे अपने-अपने गुणधर्म नहीं छोड़ते और तीसरा गुणधर्म उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार तीसरे गुणधर्म के रूप में यह अहंकार उत्पन्न हो गया है। जब उसे खुद का ज्ञान मिलता है तब अहंकार का नाश हो जाता है।

अर्थात् इस शरीर के जो सारे गुण हैं न, उन्हें आत्मा खुद स्वीकार कर लेता है कि यह मुझे हो रहा है, उसी को भ्रांति कहते हैं।

बाकी, आत्मा में तो राग नामक गुण है ही नहीं और राग नहीं होगा तो द्वेष नहीं होगा। एक गुण हो तभी उसके सामने प्रतिपक्षी गुण रहता है लेकिन उसमें ऐसे द्वंद्व गुण हैं ही नहीं। स्वतंत्र गुणों का धाम है, परमात्मा गुण हैं उसमें लेकिन भ्रांति से ऐसा हो गया है। इस *पुद्गल* की शक्ति इतनी अधिक है कि सामने वाले को भ्रांत कर देता है, ऐसी शक्ति है।

## ज्ञानियों ने ही देखी है पुद्गल की करामात

यह सब *पुद्गल* कर रहा है और लोग ऐसा मानते है कि, 'मैं कर रहा हूँ', वह 'मैं' भी *पुद्गल* है। अर्थात् यह सबकुछ *पुद्गल* कर रहा है। उस *पुद्गल* की करामात, तीर्थंकरों और ज्ञानियों के अलावा किसी को भी समझ में नहीं आ सकती। करामात तो, हमने जो देखी

है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका आकार और उसका जो तरीका देखा है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अवर्णनीय चीज़ है। शब्दों की सीमा है, लेकिन वह चीज़ तो असीम है।

*पुद्‌गल* की करामात को नहीं जानने और नहीं समझने की वजह से लोग कहते हैं, 'ईश्वर करते हैं' (भगवान चलाते हैं)।

सभी कलाएँ *पुद्‌गल* की करामात है। पहले मुझे ऐसा लगता था कि यह मेरी करामात है और मैं उसमें एकाकार रहता था लेकिन ज्ञान होने के बाद मैं समझा कि यह *पुद्‌गल* की करामात है। अरे, यह *पुद्‌गल* की करामात तो जड़ की करामात है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा को जो बिल्कुल ही अक्रिय कहा है, वह ज़रा स्पष्ट नहीं होता।

**दादाश्री :** वह अक्रिय ही है, हमेशा से अक्रिय ही है। खुद अभी ये क्रियाएँ कर रहा है, जब वह खुद अक्रिय दिखाई देगा न, तब भगवान बन चुका होगा। तब तक आपको कैसे दिखाई देगा? आपकी श्रद्धा में जो अक्रिय शब्द है, उसे तो प्रतीति कहा जाता है। लेकिन जब वह 'खुद' अक्रिय दिखाई देगा, अनुभव होगा, तब आप भगवान बन चुके होंगे। आपकी श्रद्धा में अक्रिय है या नहीं?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ है, लेकिन उसमें ज़रा स्पष्टता पाने की इच्छा है।

**दादाश्री :** अरे, वह स्थूल नहीं है। स्थूल में हमेशा ही क्रिया रहती है। वह स्थूल नहीं है, वह तो बहुत सूक्ष्म है। अत्यंत सूक्ष्म है, वह वस्तु। आप अपनी भाषा में ले जाते हो, क्रिया करने की बात को। जैसे कि यह कुम्हार चाक चलाता है, उस प्रकार से।

**प्रश्नकर्ता :** स्थूल क्रियाएँ किस पर आधारित हैं?

**दादाश्री :** वे अहंकार पर आधारित हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अहंकार किस पर आधारित है?

**दादाश्री :** अहंकार, खुद के अज्ञान के आधार पर है। अज्ञान

रूट कॉज़ है। वह चला जाएगा तो अहंकार चला जाएगा। अहंकार चला जाएगा तो सब काम हो जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** श्रीमद् राजचंद्र जी ने आत्मा को सक्रिय-अक्रिय कहा है, वह किस प्रकार से?

**दादाश्री :** हाँ, वह तो ठीक है। लेकिन अभी आपको समझाने के लिए बता रहा हूँ कि भाई, जब तक आप इगोइज़म वाले हो तब तक (आत्मा) सक्रिय है और जब ज्ञान वाले हो जाते हो तो अक्रिय है। अतः इसे सक्रिय न कहो। सक्रिय का मतलब क्या है? व्यवहार से कहते हैं। व्यवहार अर्थात्, अभी हमारी गाड़ी जा रही हो और कोई व्यक्ति उससे टकरा जाए तो पुलिस वाला सभी से कहेगा कि 'चलो'। उस क्षण मैं कहूँ कि, 'नहीं, मैं तो ज्ञानी हूँ', तो ऐसा नहीं चलेगा। 'मैं, ए.एम.पटेल हूँ' ऐसा कहना पड़ेगा। इसी को व्यवहार से सक्रिय कहते हैं।

## कर्ता व ध्याता, दोनों ही पुद्गल

**प्रश्नकर्ता :** दादा आपने कहा है न, कि क्रिया करने वाला और ध्यान करने वाला, ये दोनों अलग हैं तो वे दोनों कौन-कौन हैं? क्रिया करने वाला *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) है तो ध्यान करने वाला कौन है?

**दादाश्री :** वे दोनों ही *पुद्गल* हैं। लेकिन यह जो क्रिया करने वाला *पुद्गल* है, वह अचेतन *पुद्गल* है जबकि वह चेतन *पुद्गल* है, मिश्रचेतन *पुद्गल* है। अपने अक्रम के आधार पर दोनों ही *पुद्गल* हैं, उससे आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। और क्रम (क्रमिक) के आधार पर तो आत्मा ही ध्यान करता है, उनकी मान्यता के आधार पर वही आत्मा है।

अतः दोनों को अलग किया जा सकता है कि (मिकेनिकल चेतन वाला) *पुद्गल* भोगता है और मिश्रचेतन वाला *पुद्गल* ध्यान करता है। मिकेनिकल चेतन वाला *पुद्गल* कर्ता है और क्योंकि वह

कर्ता है इसीलिए वह *पुद्गल* भोगता है और ध्यान करने वाला, ध्यान का कर्ता है, ध्यान का ही भोक्ता है। जैसा ध्यान करते हो... बहुत ज़बरदस्त ध्यान नहीं किया होगा, तो चेहरा बहुत नहीं बिगड़ेगा। बहुत सख्त किया होगा तो चेहरा बिगड़ जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** अब दादा, यह जो *पुद्गल* कर्ता है और उसमें मिश्रचेतन कर्ता है तो फिर उस समय जो मूल आत्मा है, वह तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा ही रहता है न?

**दादाश्री :** हाँ। इसे तो इसी तरह उलझा दिया है। व्यवहार आत्मा को निश्चय में डाल दिया है। और दूसरा, व्यवहार में आत्मा को कर्ता माना, उसके बाद हमेशा के लिए मान लिया। इसलिए भोक्ता माना। इसीलिए त्यागी माना कि त्याग करेंगे तभी होगा, नहीं तो नहीं हो सकेगा। अर्थात् यह कितनी बड़ी भूल चली आई है! ऐसी भूल हुई है कि पूरा ही उलझ गया है। उस भूल को तोड़ने के लिए कुन्दकुन्दाचार्य ने लिखा है। सभी गलतियाँ खत्म कर दीं, लेकिन समझ में आना चाहिए न?

आत्मा तो व्यवहार से ही कर्ता है लेकिन निश्चय से अकर्ता है। निश्चय अर्थात् वास्तव में स्वाभाविक रूप से अकर्ता है। उसी प्रकार यह जो *पुद्गल* है, वह व्यवहार से कर्ता है और निश्चय से भी कर्ता है।

जगत् नैमित्तिक स्वभाव से ही है। कोई किसी का कर्ता नहीं है। *पुद्गल* का सक्रिय कर्ता स्वभाव है। दूसरों की मदद से होता है। आत्मा संपूर्ण अक्रिय है।

सिर्फ *पुद्गल* ही ऐसा है जो सक्रिय है और अक्रिय भी है। एक ही परमाणु है तब तक अक्रिय है।

आत्मा जानने योग्य है और ये सब तो नकल हैं।

**प्रश्नकर्ता :** जड़ क्रियाएँ हैं।

**दादाश्री :** जड़ क्रियाएँ भी अच्छी, ये सब तो नकल है।

यह तो, उदाहरण देकर समझाएँगे तभी समझ में आएगा।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन इस काल में ऐसा स्पष्ट समझाने वाला कौन है? अन्य कोई नहीं मिलेगा।

**दादाश्री :** मन-वचन-काया, सहज स्वभाव से क्रियाकारी हैं। वे सबकुछ करते ही रहते हैं और सहज स्वभाव से आत्मा का ज्ञान-दर्शन क्रियाकारी है। ये सभी चीज़ें पड़ी हुई हों तो आत्मा उन्हें सहज स्वभाव से देखता ही रहेगा, जानता ही रहेगा!

आत्मा तो निरंतर ज्ञानक्रिया ही करता है। अन्य सारी क्रियाएँ *पुद्गल* करता है। यह 'मैं कर रहा हूँ' ऐसा कहा कि ज्ञान पर आवरण आ जाता है। बुद्धि उसमें एकाकार हो जाती है। जैसे प्रकाश के गोले पर कपड़ा बाँधते हैं, उसी प्रकार आत्मा के ज्ञान पर बुद्धि का परदा है। जैसे-जैसे 'मैं'पन छूटता जाता है वैसे-वैसे कर्म कलंक दूर होते जाते हैं और वैसे-वैसे अनंत ज्ञान आता है, अनंत दर्शन आता है।

अनादिकाल से सभी प्रदेशों पर कर्म कलंक लगते ही आए हैं। ऐसे कर्मफल लगे हुए हैं, फिर आत्मा की शक्ति किस प्रकार जानी जा सकेगी?

मनुष्य में एक बाल नहीं बढ़ने दे, उतनी भी शक्ति नहीं है। अरे, बाल के सामने भी तेरी नहीं चलती, फिर और कहाँ चलेगी? किसी भी मनुष्य के पास सक्रिय होने की सत्ता नहीं है और किसी के पास अक्रिय होने की सत्ता भी नहीं है। संडास जाने की भी सत्ता नहीं है और संडास नहीं जाने की भी किसी की सत्ता नहीं है। क्योंकि इस पूरे ही जगत् को *पुद्गल* चलाता है।

क्रिया कौन करता है? *पुद्गल* करता है। तभी कृष्ण भगवान ने कहा है कि, 'भाई, तू इसका निरोध कैसे करेगा? इन्द्रियों का निरोध तू किस प्रकार से करेगा? ऐसा कौन सा उपाय है कि जिससे निरोध कर सकेगा?'

**प्रश्नकर्ता :** 'मुझे कुछ भी नहीं करना है', इसे निष्क्रियता कहेंगे या पूर्ण चेतनता कहेंगे?

**दादाश्री :** पूर्ण चेतनता कहेंगे। जिसे कुछ करना है न, वही

भ्रांति है। बड़ी मुश्किल से मैं आपको क्रिया में से अक्रियता में लाया हूँ। अब वापस क्रिया में कौन घुसे? इसलिए आपको गारन्टी दी है। आपका घर-संसार चलेगा। उसमें आपको क्रिया करने की ज़रूरत नहीं है, वह तो होता रहेगा, आप देखते रहना। अब क्रिया नहीं है। क्रिया में जाने का मतलब क्या है? फिर से वापस संसार में हाथ डालना। अक्रियता ही मुख्य चीज़ है। कोई अक्रिय रह ही नहीं सकता। इस वर्ल्ड में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो अक्रिय रह सके। और दादा की आज्ञा से जो अक्रिय रह सकता है, वह पूर्ण है। उसमें अक्रियता आ जाए तो हितकारी है, आशीर्वाद समान है।

## नहीं है किसी भी प्रकार से आत्मा कर्ता

**प्रश्नकर्ता :** अक्रिय अर्थात् अकर्तापन? तो प्रश्न यह है कि सक्रिय का मतलब ज्ञाता-द्रष्टापन?

**दादाश्री :** यह जो ज्ञाता-द्रष्टापन है, वही अक्रिय है। सक्रिय किसे कहा जाता है? इस *पुद्गल* को कहा जाता है। उसमें क्रिया करने का स्वभाव है।

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञाता-द्रष्टापन, क्या वह क्रिया नहीं है?

**दादाश्री :** नहीं, वह तो एक बार कुछ समझाने के लिए कहा था, दर्शनक्रिया और ज्ञानक्रिया करनी है। वह क्रिया वास्तव में क्रिया नहीं है, सक्रिय सिर्फ *पुद्गल* ही है। आत्मा निरंतर अक्रिय ही रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** हर एक पदार्थ जो परिणमन क्रिया सहित होता है, उसका जो परिणमन होता ही रहता है तो वह उसकी क्रिया ही कही जाएगी न?

**दादाश्री :** नहीं। क्रिया तो, सिर्फ यह *पुद्गल* ही क्रिया करता है। अत: ये सारी *पुद्गल* क्रियाएँ निरंतर होती ही रहती हैं। खुद ही सक्रिय है, यह जो हमारा शरीर बनता है और छूटता जाता है, बिखर जाता है। बनता है और बिखर जाता है। उसमें सक्रियता का गुण है

और अन्य किसी में सक्रियता नहीं है। बाकी के पाँच (तत्त्व) सक्रिय नहीं हैं, बाकी के पाँचों ही अक्रिय हैं।

*पुद्गल* तो नया-पुराना होता ही रहेगा, वही सक्रियता है।

**प्रश्नकर्ता :** कृपालुदेव ने उसे परमार्थ हेतु से अक्रिय कहा और ज्ञाता-द्रष्टापन को सक्रिय कहा है।

**दादाश्री :** यह तो, शास्त्रकारों ने लोगों को समझाने के लिए कहा है। उसमें लोग ऐसा समझ बैठे कि आत्मा की क्रिया है लेकिन शास्त्रकारों ने ऐसा जो कहा है कि, 'दर्शनक्रिया और ज्ञानक्रिया कहा है, अन्य कोई क्रिया नहीं करता।' वह तो आलंबन दिया है। लेकिन सक्रियता आत्मा का गुण है ही नहीं, वहाँ क्रिया कैसे हो सकती है? आप जैसा मानते हो, कृपालुदेव ने उस अर्थ में नहीं कहा है, ऐसा नहीं लिखा है। गैरज़िम्मेदारी वाला वाक्य नहीं लिखा है, महान जोखिम है। आज के कोई आचार्य भी नहीं लिखेंगे न। सक्रियता का गुण ही नहीं है उसमें, अक्रियता का ही गुण है।

**प्रश्नकर्ता :** कर्ताभाव नहीं है, उस दृष्टि से अक्रिय कहा गया है?

**दादाश्री :** नहीं, ऐसा नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** बाकी, हर एक पदार्थ क्रिया संपन्न ही होता है।

**दादाश्री :** नहीं। वह क्रिया संपन्न है ही नहीं। कृपालुदेव ने सभी जगह लिखा है कि 'हर एक पदार्थ क्रिया संपन्न होता है', उसका अर्थ ऐसा है कि ऐसी सक्रियता नहीं है उसकी। वह तो उसकी परिणमनता है, सक्रियता का गुण तो बहुत खराब कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** परिणमन की दृष्टि से सक्रिय कहा गया है?

**दादाश्री :** सक्रिय किसी भी दृष्टि से नहीं है, परिणमन तो उसका स्वभाव है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, यानी ये तो दर्पण के अंदर जो दृश्य दिखाई देते हैं, इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि ज्ञाता-द्रष्टा है।

**दादाश्री :** ज्ञाता-द्रष्टापन तो ऐसा है कि इसमें दर्पण अर्थात् खुद का कोई कर्तापन नहीं है उसमें। उसके खुद के अंदर ही झलकता है और कोई भी वस्तु परिणामित होती है तो उसे सक्रियता नहीं माना जाता।

**प्रश्नकर्ता :** श्रीमद् राजचंद्र जी ने एक जगह पर ऐसा लिखा है कि 'सर्व पदार्थ अर्थक्रिया संपन्न हैं, सभी पदार्थ किसी न किसी परिणाम क्रिया सहित ही देखे जाते हैं। आत्मा भी क्रिया संपन्न है इसीलिए कर्ता है। उस त्रिविध कर्तापन का श्री जिन ने विवेचन किया है, '*परमार्थथी स्वभावपरिणतिए निज स्वरूपनो कर्ता छे. अनुपचरित व्यवहारथी ते आत्मा द्रव्यकर्मनो कर्ता छे अने उपचारथी घर-नगर आदिनो कर्ता छे.*'

(परमार्थ से स्वभाव परिणिति को लेकर निज स्वरूप का कर्ता है। अनुपचरित व्यवहार से वह आत्मा द्रव्य कर्म का कर्ता है और उपचार से घर, नगर आदि का कर्ता है।)

(श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत पान-394)

**दादाश्री :** तो व्यवहार से आत्मा द्रव्यकर्म का कर्ता है, वास्तव में स्वभाव का कर्ता है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा भी क्रिया संपन्न है, यह जो यहाँ पर...

**दादाश्री :** ऐसा है न, कि आत्मा तो अपने यहाँ पर आपको पता चल गया है कि आत्मा क्या है? बल्कि क्रमिक मार्ग में तो वे इसी (क्रिया करने वाले) को आत्मा मानते हैं। और वह उसे क्रिया संपन्न लगता है! इसीलिए तो सब क्रियाएँ करता है, समितियाँ-वमितियाँ वगैरह बनाता है। आत्मा को घिस-घिस कर हीरा बनाता है जबकि केवलज्ञान क्या कहता है कि, 'ऐसा नहीं है, तू इसे घिसता क्यों जा रहा है? 'तू' इस 'आत्मा' को देख और वैसा ही आत्मा बना, ऐसा कहते हैं। मूल आत्मा को देख और तू उसे वैसा ही बना। जैसे एक बस को देखकर हमें बस बनानी होती है, वैसा ही तू कर।' ऐसा कहते हैं। तो यह क्या करता है कि खुद ही क्रिया करता रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** क्रमिक मार्ग में जो लोग ऐसी क्रियाएँ करते रहते हैं, उन लोगों के मन में वह (मूल आत्मा) वाला मॉडल है क्या?

**दादाश्री :** वह होगा, तब तो कल्याण हो जाएगा न! पूरे जगत् में वह है ही नहीं, बोलते ज़रूर हैं कि अंदर आत्मा शुद्ध ही है।

**प्रश्नकर्ता :** तो दादा, इस पर से क्रम और अक्रम के बारे में तो बहुत स्पष्टता हो गई है कि क्रमिक में ऐसा मॉडल है ही नहीं और आपने अक्रम में ऐसा मॉडल दिया है, 'शुद्धात्मा पद' दिया है।

**दादाश्री :** मॉडल में ही बैठा दिया है, अब आप इसे (*पुद्गल* को) सही कर लो।

**प्रश्नकर्ता :** यहीं पर बहुत ही बेसिक, फंडामेन्टल डिफरन्स (बुनियादी अंतर) आ जाता है। फिर उसके अंदर से अलग-अलग विस्तार होता है।

**दादाश्री :** उन्हें यों पीछे से हाथ घुमाकर कान पकड़ना है और हमें सीधा पकड़ना है।

**प्रश्नकर्ता :** उन लोगों को बहुत उच्च प्रकार की क्रियाएँ करनी हैं लेकिन उसके लिए छैनी की ज़रूरत तो है न, शिल्पकार जैसी छैनियों का उपयोग करता है, वैसी?

**दादाश्री :** छैनी की ज़रूरत है। आज उसके पास छैनी है, तब भी पहले, उसने पिछले जन्म में भावना की होगी तो क्रिया होगी! फिर आज ऐसा भाव करे कि, 'छैनी ले जाएँ', तो वह फिर अगले जन्म में होगा (क्रमिक मार्ग में)।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, और अक्रम में तो छैनी रखी ही नहीं है।

**दादाश्री :** कुछ भी नहीं है। इधर देखा और उधर देखा तो हो जाएगा। इस तरह से देखोगे न (देखते रहने से ही) तो हो जाएगा।

महात्माओं के अनुभवों के इन निवेदनों में सभी ने जो अक्रम की बलिहारी लिखी है, जो लिखी है! कितना सीधा और सरल! कुछ करना ही नहीं है!

इसमें उनका दोष नहीं है, क्रमिक मार्ग है ही ऐसा। मार्ग की पूरी मान्यता ही ऐसी है। 'यही', मैं आत्मा हूँ, इसे स्थिर करना है। वह बड़े-बड़े पत्थरों पर खड़े होकर, वहाँ आत्मा का ध्यान करते हैं ताकि वे इस भय को लेकर जागृत रहें कि गिर न जाएँ। इस प्रकार से कायोत्सर्ग करते हैं। वे कषाय आत्मा को ही आत्मा मानते हैं, वे लोग इन्द्रिय आत्मा को आत्मा नहीं मानते। क्योंकि वे इन्द्रिय आत्मा को तो काय कहते हैं। इससे उत्सर्ग अर्थात् इससे अलग हूँ। यानी कि इन्द्रिय आत्मा (मंगलदास), दूसरा है कषाय आत्मा (बावा) और तीसरा है दरअसल आत्मा, अकषायी आत्मा (मूल आत्मा)!

**प्रश्नकर्ता :** इस पावर चेतन की खबर नहीं है न किसी को?

**दादाश्री :** इसलिए मैंने कहा है कि, 'यह विज्ञान पहले से ही चला आया है, यह मेरा नहीं है।' तो कहते हैं, 'ऐसा मत कहना। आपका यह स्पेशल विज्ञान है, जो चला आया है उसमें ऐसा है ही नहीं। इसका एक भी अक्षर नहीं है और आपका तो यूनिक है और बहुत अद्भुत है।' मैंने कहा, 'नहीं, हमें जोखिम उठाकर क्या करना है? चौबीस तीर्थंकरों का जो है, वही सही है।

आपके पास से कोई दस हज़ार लूट ले, उस समय आपको भान रहे कि 'यह *पुद्गल* ज़ोरदार है कि इस *पुद्गल* के पास से दस हज़ार लूट रहा है', उस समय आपको ऐसा ध्यान रहे कि *पुद्गल* की करामात है तो वह केवलदर्शन है। इसे जगत् में कोई भी समझा नहीं था। इस जगत् में जो कुछ भी किया जाता है, वह जगत् को पुसाये या न भी पुसाये, फिर भी 'मैं' कुछ भी नहीं करता हूँ', निरंतर ऐसा ध्यान में रहे तो वह केवलदर्शन है। *पुद्गल* की करामात समझ में फिट हो जाए तो वह केवलदर्शन है। *पुद्गल* की, करामात की क्रिया को जान जाए तो वह केवलज्ञान है। *पुद्गल* की करामात में बरते तो वह केवलचारित्र है।

## [ 4 ]
# पुद्‌गल, प्रसवधर्मी

## एकोहम्, बहुस्याम्

**प्रश्नकर्ता :** एकोहम् बहुस्याम्, वह बात ज़रा समझाइए न?

**दादाश्री :** 'मैं' अकेला था और फिर ये सब उत्पन्न हो गए। मैं अकेला था और उसमें से ये सब बनाए? हाउ इज़ इट पॉसिबल? लोग इसे अलग तरह से समझे हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, वास्तव में इसका यथार्थ अर्थ क्या होता है?

**दादाश्री :** 'मैं' आत्मा के तौर पर अकेला हूँ और जगत् में तदाकार भाव से अनेक रूपी बन जाता हूँ। *पुद्‌गल* के बहुरूपी होने के कारण, 'मैं मामा हूँ और चाचा हूँ और फूफा हूँ और ऐसा हूँ, वैसा हूँ।' 'मैं' एक ही हूँ लेकिन बहुस्याम् बन जाता हूँ।

**प्रश्नकर्ता :** अब, वह कौन सी शक्ति है? इस शक्ति और उस शक्ति में क्या अंतर है?

**दादाश्री :** वह पूरी ही जड़ शक्ति है और यह चेतन शक्ति है! जड़ शक्ति रूपी शक्ति है, अनंत रूप, बहुरूपी है और प्रसवधर्मी है। एक में से अनेक दिखाता है।

बहुरूपी है यह जगत्। इसीलिए ये लोग उलझे हुए हैं। *पुद्‌गल*

का स्वभाव बहुरूपी है। जब यह समझ में आएगा तब निकल जाएगा, सब छूट जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** दोनों शक्तियाँ अलग हैं, ऐसा है न?

**दादाश्री :** बहुत अलग हैं, दोनों का लेना-देना ही नहीं है। संसर्ग ही है, बाकी जान भी नहीं है और पहचान भी नहीं है। अरे, कोई किसी से दबा हुआ नहीं है।

## प्रसवधर्म से उलझन

अत: यह जगत् समझने जैसा है। गेहूँ से कितनी चीज़ें बनती होंगी?

**प्रश्नकर्ता :** बहुत सारी बनती हैं। गेहूँ के तो बहुत व्यंजन बनते हैं।

**दादाश्री :** कितने बनते हैं?

**प्रश्नकर्ता :** वह तो मैंने नहीं गिना है लेकिन कईं चीज़ें बनती हैं।

**दादाश्री :** यह जगत् परमाणुओं की प्रसवता से भरा हुआ है। परमाणु प्रसवधर्मी हैं।

यह *पुद्‌गल* कैसे धर्म वाला है? प्रसवधर्मी है। इस दुनिया में यह सब जो दिखाई देता है न, वह सब प्रसवधर्मी है। अर्थात् हम यहाँ पर बैठे हुए हों और किसी व्यक्ति ने आसपास दर्पण लगा दिए हों तब यदि हम अकेले हों फिर भी दर्पण में कितने सारे दिखाई देंगे। दिखाई देंगे या नहीं?

**प्रश्नकर्ता :** दिखाई देंगे।

**दादाश्री :** अब उसमें हम तो यहाँ पर एक ही जगह पर हैं लेकिन प्रसवधर्मी है।

अरे, पाँच लाख काँच के टुकड़े रखे हों न तो पाँचों लाख में

एक-एक चंदूभाई जैसा दिखाई देगा। और एक ही टुकड़ा रखा होगा तो एक ही दिखाई देगा।

आप खड़े रहकर, दो हाथों को ऐसे करो तो सभी दर्पणों में दो हाथ दिखाई देंगे, वह उलझन, उलझन। हम दर्पणों से कहें, 'भाई, एक ही दिखाना, सब मत दिखाना', तो क्या वह छोड़ देंगे? सभी दिखाएँगे, नहीं? यह उलझन में पड़ जाता है, नहीं? तब क्या करे फिर?

अर्थात् प्रसवी स्वभाव है, अनंत प्रसवी। यानी कि एक तरफ जन्म होता ही रहता है। एक में से दो, दो में से चार और चार में से अनेक पैदा होते ही रहते हैं। *पुद्गल* का स्वभाव प्रसव वाला है। आत्मा में प्रसव नहीं है। अंडे बनते ही रहते हैं, अंडे बनते ही रहते हैं, बस। फिर तो मनुष्य उलझन में पड़ ही जाएगा न और उसे उसने खुद का स्वरूप माना कि 'ये अंडे मैंने ही दिए हैं और ये अंडे मेरे ही हैं।' तो कब अंत आएगा इसका, बताओ? इंसान उलझन में पड़ जाता है। वह भी कहाँ तक? भगवान को भी कर्ता मान लेता है। भगवान को भी कर्ता मान लेता है तो कहाँ तक मानता है? भगवान ने मेरे साथ यह सब किया, ऐसा मानता है। वह एक्ज़ेक्ट तो नहीं है न! और जो चीज़ एक्ज़ेक्ट नहीं होती, वह टिकती नहीं है। इसलिए वापस उलझन में पड़ जाता है। सही टाइम पर, खरे समय पर काम नहीं आता। आत्मा का स्वभाव प्रसवधर्मी नहीं है। इसीलिए काम हो गया न, आत्मा होने के बाद। *पुद्गल* में से तो सब प्रसव ही होता रहता है।

जैसे कि कोई व्यक्ति टी.वी. में बोलता है लेकिन पूरी दुनिया में जगह-जगह पर सुनाई देता है, वह प्रसवधर्म है।

## समुद्र में एक और घड़ों में अनेक

आकाश में एक चंद्रमा होता है लेकिन समुद्र के किनारे लाख घड़े रखे गए हों और समुद्र में देखें तो एक ही चंद्रमा दिखाई देता है और लाख घड़ों में लाख दिखाई देते हैं। इतना बड़ा समुद्र और चंद्रमा

एक दिखाई देता है और यह हर घड़े में देखो! सभी घड़े कहते हैं, हम में भी पूरा चंद्र है। बना हुआ, घड़ा बना न! घड़ा बना इसलिए अहंकार हुआ, उससे भेद पड़ा जबकि समुद्र को भेद नहीं है तो है क्या कोई झंझट? तो ये सब भेद पड़े हुए घड़े हैं। एक में से अनेक और यह सब होता ही रहता है, इसका अंत ही नहीं आता।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन *पुद्गल* का प्रसव होता है, फिर भी चंद्र तो एक ही दिखाई देता है।

**दादाश्री :** हाँ, एक ही दिखाई देता है। पूरे समुद्र में एक ही चंद्रमा दिखाई देता है, उसका क्या कारण है?

**प्रश्नकर्ता :** क्योंकि समुद्र पूरा एक ही जत्थे में है। जबकि घड़े अलग-अलग जत्थे में हैं। इसलिए सभी चंद्र अलग-अलग दिखाई देते हैं।

**दादाश्री :** चंद्र तो एक ही है लेकिन कितना बहुस्याम् हो जाता है यह सारा! अत: ऐसा उस भाषा में कहा गया है और लोग अपनी-अपनी भाषा में समझ जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** मैं छोटा था तब मुझे ऐसा कुछ समझ में आया था कि एक आत्मा में से दूसरा आत्मा बनता है और एक में से चार आत्मा बनते हैं और पाँच आत्मा बनते हैं। ऐसी सारी समझ थी।

**दादाश्री :** नहीं, वह तो सिर्फ आप ही नहीं, सभी ने ऐसा समझा है। इसलिए हम बहुस्याम् में बहुत नहीं पड़ते। वर्ना फिर लोगों का मन उलझन में पड़ जाएगा और हम कहाँ इस झंझट में पड़ें?

**प्रश्नकर्ता :** बहुस्याम् जो कहा है, वह क्या *पुद्गल* को संबोधित करके कहा है?

**दादाश्री :** इसका अर्थ यही होता है कि *पुद्गल* की वजह से बहुस्याम् है।

**प्रश्नकर्ता :** तो उसके लिए एक बार आपने मुझसे यह वाक्य कहा था। मैंने पूछा था, 'दादा, आप यह संक्षेप में क्यों कह रहे हैं? ज़रा विस्तार से समझाइए तो लोगों की समझ में आए।' तब आपने कहा था कि, 'यह विस्तार से बताएँगे तो 'वस्तार' (फैलाव, बाल-बच्चे, परिवार) हो जाएगा इसलिए हम संक्षेप में ही कहते हैं। समझ में आया तो ठीक, वर्ना फिर कोई बात नहीं।'

**दादाश्री :** ऐसा है न, विस्तार से बताने में वस्तार बढ़ता है। यह जो संसार है, यह पूरा संसार *पुद्गल* से ही बना है। *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना - डिस्चार्ज होना, खाली होना) का विस्तार करने से वस्तार।

आत्मा का उपयोग *पुद्गल* में जाए तो वह (*पुद्गल*) प्रसवधर्मी है। इसीलिए फिर जन्म देता ही रहता है। देखो न, बच्चे होते ही रहते हैं न! आत्मा का उपयोग (आत्मा में) रहे तो बच्चे नहीं होंगे।

**प्रश्नकर्ता :** इसमें आत्मा के उपयोग बारे में समझाइए।

**दादाश्री :** चाय पीने में आत्मा का उपयोग यानी कि सिर्फ देखना और जानना ही है, उसमें इन्टरेस्ट नहीं है।

आग्रह रखने से प्रसवधर्मी हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, यह प्रकृति है न, वह प्रसवधर्मी है तो क्या ज्ञान भी प्रतिप्रसवधर्मी है?

**दादाश्री :** नहीं। ज्ञान में, 'प्रति' भी नहीं आता और कुछ भी नहीं आता। ज्ञान पर कुछ स्पर्श भी नहीं करता, रोकता भी नहीं और लड़ता भी नहीं है, उसे ज्ञान कहते हैं और वही विज्ञान है! यह सांसारिक ज्ञान तो मतिज्ञान है। वास्तविक मतिज्ञान अलग है जबकि इसमें तो सुमति-कुमति दोनों साथ में ही हैं।

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञान लेने के बाद क्या विकल्पों में प्रतिप्रसव हो सकता है?

**दादाश्री :** फिर विकल्प रहते ही नहीं हैं। 'मैं' अर्थात् विकल्प और 'मेरा' अर्थात् संकल्प। ज्ञान देते हैं न, तब 'मैं और मेरा' गया। उसे संकल्प-विकल्प गए। फिर तो उसे सिर्फ देखना ही बाकी रहा। खुद का मन क्या-क्या सोचता है, वह देखते रहना है।

वैसा यह जगत् भूल-भुलैया वाला है। अबुध उसमें नहीं फँसते, बुद्धि वाले ही फँसते हैं।

परिणाम क्या आया? वह बुद्धि भी किस तरह से काम करती है? बुद्धि भी काम करते-करते थक जाती है।

**प्रश्नकर्ता :** बुद्धि से समझ में नहीं आता।

**दादाश्री :** इस किच-किच में पड़ने के बजाय, हम जिस गाँव के हैं, वहाँ अपने घर (आत्मा स्वरूप में, मोक्ष में) चले जाएँ तो अच्छा है। इसका ताल कहाँ बैठेगा? और ताल बैठ ही नहीं सकता न!

# [ 5 ]
# प्रयोगसा - मिश्रसा - विश्रसा

## तीर्थंकरों की मौलिक खोज

**प्रश्नकर्ता :** विश्रसा का मतलब क्या है?

**दादाश्री :** यह तीर्थंकरों का शब्द है। यों देखने में तो बहुत बड़े शब्द दिखाई देते हैं लेकिन समझ में नहीं आते लोगों को। अतः ऐसे तीन शब्द हैं। जैसे चंदूसा होता है न, हम लिखवाते हैं न, चंदूसा यानी... उसी प्रकार ये हैं प्रयोगसा, फिर दूसरे, मिश्रसा और तीसरे, विश्रसा। तीर्थंकर भगवंतों ने बहुत सुंदर बात बताई लेकिन वह समझ में नहीं आए तो उसका क्या कर सकते हैं? अक्ल लड़ाते हैं आमने-सामने। इसे तो ज्ञानी के थ्रू (द्वारा) समझ लेना चाहिए। अब पहले कौन सा शब्द आया?

**प्रश्नकर्ता :** विश्रसा।

**दादाश्री :** यह पूरा ही जगत् *पुद्गल* परमाणुओं से भरा हुआ है। वे बिल्कुल शुद्ध परमाणु हैं, वे अणु नहीं हैं। आँखों से दिखाई नहीं देते, दूरबीन से दिखाई नहीं देते, वे सिर्फ ज्ञानगम्य हैं। वह वस्तु अन्य किसी भी प्रकार से गम्य नहीं है। जब वे परमाणु इकट्ठे होते हैं तब अणु बनते हैं।

उन्हें जो *पुद्गल* परमाणु नाम दिया गया है न, वास्तव में वे

*पुद्गल* नहीं हैं बेचारे। वे तो विश्रसा परमाणु हैं। सिर्फ इनमें ही कोई (स्वाभाविक स्वरूप के) *पूरण-गलन* नहीं होता, लेकिन फिर उनका मूल स्वभाव ऐसा है कि सब इकट्ठे हो जाते हैं। फिर उनसे बड़े-बड़े स्कंध बनते हैं, बाद में बिखर जाते हैं। तीर्थंकर पूरे जगत् के शुद्ध *पुद्गल* परमाणुओं को विश्रसा कहते हैं। विश्रसा अर्थात् बिल्कुल शुद्ध हैं। सभी परमाणु इकट्ठे होकर अणु बन जाएँ, तब भी उनकी शुद्धता नहीं जाती। यह पूरा जगत् इन विश्रसा परमाणुओं से ठसाठस भर हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** शुद्ध स्वरूप में रहे हुए परमाणुओं को तीर्थंकर भगवान ने विश्रसा कहा है।

**दादाश्री :** उनके अलावा अन्य कोई इस विश्रसा को समझा ही नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** यह शब्द कहीं पर भी नहीं है।

**दादाश्री :** हो ही नहीं सकता।

## 'प्रयोगसा' खिंचता है, पूरे शरीर द्वारा...

**प्रश्नकर्ता :** विश्रसा परमाणु किस प्रकार से आकर्षित होते हैं?

**दादाश्री :** विश्रसा अर्थात् बाहर जो सारे शुद्ध परमाणु हैं, आकाश में, खुली जगह में सभी जगह रहे हुए हैं, वे विश्रसा कहलाते हैं। क्रोध-मान करते ही, गुस्सा करते ही तुरंत वे अंदर घुस जाते हैं। वे प्रयोगसा होकर अंदर प्रवेश करते हैं। प्रवेश करते समय प्रयोगसा होते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ करते ही तुरंत प्रयोगसा बन जाते हैं।

अब वह अज्ञानी व्यक्ति, 'मैं चंदूलाल हूँ', ऐसा मानकर ज़रा भी खराब विचार करे तो ऐसा करते ही परमाणु अंदर घुस जाते हैं। ये परमाणु बाहर तो शुद्ध ही थे, विश्रसा ही थे, पर उस खराब विचार के आते ही तुरंत वे परमाणु खिंच जाते हैं, उस क्षण फिर प्रयोगसा होकर अंदर घुस जाते हैं। अपने भाव करते ही वे तुरंत अंदर घुस जाते

हैं। भाव नहीं करेंगे तो प्रवेश नहीं करेंगे। अंदर प्रवेश करते ही वे विश्रसा में से प्रयोगसा बन जाते हैं। यानी कि प्रयोग में आ जाते हैं, लेबोरेटरी में आ जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** वे प्रयोगसा परमाणु पूरी बॉडी द्वारा खिंच जाते हैं न?

**दादाश्री :** प्रयोगसा तो, अंदर जाने के बाद में प्रयोगसा शुरू होता है, उसके परिणाम स्वरूप।

**प्रश्नकर्ता :** वे अंदर जाते हैं तो कहाँ से होकर जाते हैं?

**दादाश्री :** इन इन्द्रियों से। इंसान को जब क्रोध आता है तब वह नाक से परमाणु खींचता है, वह प्रयोगसा है। पहले प्रयोगसा होता है। गुस्सा किया कि तुरंत ही वे परमाणु अंदर खिंचते हैं। कितने ही लोगों में नाक और मुँह से खिंचते हैं और कितने लोगों में हाथ-पैर सभी से खिंचते हैं। ऐसे-ऐसे होता रहता है न, तब वे हाथों से-पैरों से हर एक जगह से खिंचते हैं। ऐसे-ऐसे होता है (काँपते हैं) किसी-किसी को?

**प्रश्नकर्ता :** होता है, क्रोध होता है तब ऐसे-ऐसे हो जाता है (काँपते हैं)।

**दादाश्री :** यानी कि सभी ओर से खिंचते हैं। यहाँ (नाक) से खिंचे तो खिंचे, लेकिन अन्य सभी जगह से भी खिंचते हैं। वे इस विश्रसा में से प्रयोगसा बनते हैं। प्रयोगसा बने हुए अगले जन्म में मिश्रसा कहे जाते हैं, और मिश्रसा फल देने के लिए तैयार रहते हैं। प्रयोगसा फल नहीं देते, वे अत्यंत सूक्ष्म परमाणु हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, वे सभी शुद्ध परमाणु तो एक सरीखे ही हैं न?

**दादाश्री :** शुद्ध परमाणुओं में कोई अंतर नहीं है। वे खिंचते हैं तो खिंचते ही प्रयोगसा में चले जाते हैं। प्रयोगसा में जाते ही वे सब क्रोध के परमाणु बन जाते हैं। वे जो क्रोध के परमाणु बने, वे अगले जन्म में वापस उतना ही क्रोध देते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अंदर जब क्रोध आया तब जो परमाणु खिंचे, वे शुद्ध परमाणु थे। जब उनमें कोई प्रक्रिया हुई, उनमें किसी और प्रकार से परमाणुओं में बदलाव हुआ होगा न? उनके साथ इलेक्ट्रिकल चार्ज या कोई और चार्ज खिंचता होगा न, साथ में?

**दादाश्री :** क्रोध आते ही परमाणुओं में क्रोध का रंग चिपक जाता है। और अहंकार होते ही वहाँ पर ये परमाणु अहंकार वाले बन जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो अहंकार के सभी परमाणु अलग होते हैं? अहंकार के परमाणु अलग और क्रोध के अलग?

**दादाश्री :** हाँ, सब अलग-अलग। फिर वही फल देते हैं। ये बाहर के परमाणु एक ही प्रकार के हैं। आप जैसा करते हो, वे परमाणु वैसे-वैसे बन जाते हैं। आप सीना तान कर घूमो तो सभी परमाणु मान वाले बन जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, उसका अर्थ ऐसा हुआ कि जब परमाणु अंदर खिंचते हैं, उस समय उन परमाणुओं में कुछ बदलाव हो जाता है?

**दादाश्री :** बदलाव हुआ इसीलिए तो प्रयोगसा बने।

**प्रश्नकर्ता :** जैसे अभी ऐसा कहते हैं कि परमाणुओं में सारे चार्ज होते हैं, इलेक्ट्रिकल चार्ज, तो क्या इनमें भी ऐसे चार्ज होते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, वे चार्ज हो ही जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो वैसा चार्ज कहाँ से आता है?

**दादाश्री :** अंदर इलेक्ट्रिकल बॉडी है, उस इलेक्ट्रिकल बॉडी के आधार पर ही सब चार्ज हो जाता है। लेकिन क्रोध करने से वापस क्रोध के परमाणु उत्पन्न होते हैं। लोभ किया तो लोभ के परमाणु, मान किया तो मान के परमाणु, इस तरह सारे परमाणु उत्पन्न होते रहते हैं, बीज डालता है।

प्रयोगसा बहुत सूक्ष्म होता है, और फिर मिश्रसा स्थूल होता है।

**प्रश्नकर्ता :** यानी कि उसका चार्ज तो अंदर से ही आता है न? उसके परमाणु खिंचने के बाद फिर अंदर चार्ज होता है न?

**दादाश्री :** वे चार्ज होने के बाद ही अंदर घुसते हैं। यहाँ घुसते समय अंदर से चार्ज हो ही जाते हैं, बाहर चार्ज नहीं होते। अपने शरीर में सहज रूप से खिंच जाते हैं, क्रोध से खिंचते हैं। उन्हें खींचने के लिए कोई साधन नहीं है। तो हाथ इस तरह से हिलते हैं, सभी तरफ से खिंचते हैं। पैर भी हिलते हैं। बाल खड़े हो जाते हैं और यहाँ से खिंचते हैं।

यह प्रयोगसा फिर अगले जन्म में मिश्रसा बन जाता है। ये मिश्रसा जब परिपक्व होते हैं, तब फल देकर जाते हैं। अंदर हैं तो सही सभी।

**प्रश्नकर्ता :** (जब) फल देकर जाते होंगे, तब फिर वापस नए बीज डालकर जाते होंगे?

**दादाश्री :** नए बीज तो, यदि आप, 'मैं चंदूभाई' कहते हो तो आप डालोगे, मन में तन्मयाकार होते ही नया बीज डलता है, वर्ना यदि तन्मयाकार नहीं होता है तो बीज नहीं डलेगा।

वे जो विश्रसा थे न, अब वे प्रयोगसा परमाणु कहलाए। उसने अपना भाव कहा तो परमाणु का रूप बदल गया। अब प्रयोगसा होने के बाद वे यों ही वापस नहीं जाते। प्रयोगसा परमाणु अपने आप ही स्वाभाविक रूप से मिश्रसा हो जाते हैं। और मिश्रसा होने पर यह बॉडी (शरीर) बनती है, अपने आप ही। किसी को बनाना नहीं पड़ता अपने आप ही बॉडी बन जाती है। प्रयोगसा बॉडी नहीं बनाता। यह जो प्रयोगसा है, वह योजना पर आधारित है और प्रयोगसा में से मिश्रसा होने के बाद बॉडी बनती है, उसमें किसी का भी प्रयत्न नहीं है।

## जो फल दे, वह मिश्रसा

**प्रश्नकर्ता :** वे परमाणु जो कि मिश्रसा बनते हैं, प्रयोगसा बनते हैं, वही *पुद्गल* कहलाते हैं?

**दादाश्री :** जो प्रयोगसा बनते हैं, वे *पुद्गल* नहीं कहलाते। मिश्रसा ही *पुद्गल* है।

**प्रश्नकर्ता :** प्रयोगसा बनने के बाद...

**दादाश्री :** प्रयोगसा का मतलब (खुद के भाव के अनुसार) लाल-पीले रंग परमाणु में घुस जाते हैं। फिर उनके फीड होने के बाद में उनका परिणाम आता है, तब वे मिश्रसा बनते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** इस तरफ जो भाव उत्पन्न होते हैं जिनके आधार पर वे परमाणु ग्रहण होते हैं तो वे भाव भी *पुद्गल* कहे जाएँगे न?

**दादाश्री :** वे भाव *गलन* कहलाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** वे *गलन* कहलाते हैं?

**दादाश्री :** उस *गलन* में से वापस यह उत्पन्न होता है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या वह *गलन* ही *पुद्गल* है?

**दादाश्री :** वह *गलन* वापस *पूरण* को खींचता है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या वह *गलन पुद्गल* का भाव कहलाता है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* का ही *गलन* है। यह जो है, वह *पुद्गल गलन* नहीं हो जाता, तब तक *पुद्गल* ही रहता है। *गलन* होने के बाद में वह वापस दूसरा *पूरण* (चार्ज) खींचता है। और (इस ज्ञान के बाद) हम ऐसा कहते हैं कि *गलन* होते समय चार्ज नहीं होता।

**प्रश्नकर्ता :** तो इसमें अहम् का स्थान कहाँ पर आता है? दादा जो कहते हैं न कि विशेष परिणाम उत्पन्न हो गया। विशेष परिणाम, जो अहम् उत्पन्न हुआ, वह भी *पुद्गल* में ही आता है न?

**दादाश्री :** *पुद्गल* ही है न, वह सब अहम् भाव! मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, सभी *पुद्गल* ही हैं। आत्मा के अलावा सब *पुद्गल* है। जितना संयोग मिला है, वह सारा ही *पुद्गल है*। प्रयोगसा है, तब तक

(विभाविक) *पुद्गल* नहीं कहलाता। (लेकिन वह विधर्मी *पुद्गल* कहलाता है)।*

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह अहम् किसका भाव कहलाता है? वह किसका परिणाम कहलाता है? ये जो *गलन* हो रहे हैं, क्या उनके आधार पर उत्पन्न होता है? अर्थात् ये जो परमाणु हैं, वे इसमें आते हैं या चेतन विभाग में आते हैं?

**दादाश्री :** मिश्रचेतन ही। यह सारा ही *पुद्गल* अर्थात् मिश्रचेतन। *पुद्गल* का अर्थ ही मिश्रचेतन है। प्रयोगसा अर्थात् प्रयोग चेतन। प्रयोग चेतन आपको दिखाई नहीं देता।

**प्रश्नकर्ता :** मिश्रचेतन एक्ज़ेक्टली किसे कहते हैं?

**दादाश्री :** आपका भाव और परमाणु, दोनों का जो मिक्स्चर है, वह मिश्रचेतन है।

प्रयोगसा, सूक्ष्म भाव से होता है। अगले जन्म में स्थूल भाव से (मिश्रसा) होता है और वह फल देकर जाता है।

जो प्रयोगसा परमाणु अंदर जाते हैं, वे कारण परमाणु हैं, वे कारण रूपी होते हैं और गर्भ में जाकर कार्य देह उत्पन्न करते हैं। हम मूल कारण परमाणु बंद कर देते हैं, वे कारण रूप नहीं बन सकते। लेकिन ऐसा तो शायद कभी ही, ऐसा अपवाद मार्ग दस लाख सालों में निकलता है। जब ज्ञान नहीं हो, तब वापस फिर से वे प्रयोगसा होते रहते हैं और उसके बाद फिर से मिश्रसा होते रहते हैं। चलता ही रहता है और यहाँ से रोटी खाते-खाते घास खाने जाना पड़ता है, ऐसा चल रहा है यह। कलियुग है न! कलियुग में तो फिसल पड़ते हैं न!

## कर्म बंधते हैं, कर्तापन से

**प्रश्नकर्ता :** तो इसमें सूक्ष्म कर्म किस प्रकार बंधते होंगे?

* आप्तवाणी श्रेणी : 14, भाग-1, चेप्टर 7 में छ: तत्त्वों के समसरण से विभाव पढ़ना।

**दादाश्री :** आपने कहा है कि 'यह मैंने किया', जबकि करता है उदयकर्म। आप अकेले नहीं कहते, बड़े–बड़े साधु–संत भी ऐसा ही कहते हैं कि 'मैं कर रहा हूँ।' और फिर वे ऐसा मानते भी हैं। अब कुदरत क्या कहती है कि जो हो रहा है उसे तू ऐसा क्यों कहता है कि मैं कर रहा हूँ? उसने जो ऐसा कहा कि 'वह कर रहा है', उससे कर्म बंधन हुआ। कहते ही कर्म बंधन किया उसने। अतः देहधारी बनेगा। परमाणु खिंचते हैं इसलिए एक तरफ मूर्ति को गढ़ता ही जाता है, वह है प्रयोगसा।

प्रयोग कर्म किसके पास जाते हैं? व्यवस्थित शक्ति के पास। और वहाँ पर 'व्यवस्थित' उन्हें स्थूल रूपी बनाकर फल देता है। प्रयोगसा कर्म, सूक्ष्म रूप में होते हैं और उन्हें मिश्रसा बनाकर फल देता है। यदि उसने विषय की भावना की हो तो सिर्फ स्त्री ही नहीं देता, सास–ससुर, साला–वाला सबकुछ देता है, सारा जंजाल। यानी एक विषय ढूँढने गए तो कितने ही लफड़े चिपक पड़े। यह सब व्यवस्थित का काम है। प्रयोगसा अर्थात् अभी तक और कुछ नहीं हुआ है, परमाणु अंदर आकर इकट्ठे हो गए। प्रयोग हो गया, उस पर रंग–वंग चढ़ गए। यानी इसी को कर्म कहा जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** कभी आपने ऐसा भी कहा है कि ये कर्म के परमाणु हैं। तो क्या ये शुद्ध परमाणु अलग और कर्म के परमाणु अलग हैं?

**दादाश्री :** हाँ, अलग हैं। अंदर जो आकाश है न, उसमें से खींचता है लेकिन वे सूक्ष्म हैं और सूक्ष्म के आधार पर बाहर से स्थूल (परमाणु) अंदर आ जाते हैं। उसके बाद ही फल देते हैं। अंदर पहले के हिसाब से कर्म बंधन होता है। उसके बाद फल देते समय बाहर से परमाणु प्रवेश करते हैं और फिर फल देते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** और कर्म बंधन के समय सूक्ष्म बंधन ही होता है, फल देते समय बाहर के स्थूल परमाणु आ जाते हैं।

**दादाश्री :** आ जाते हैं, हाँ। परमाणुओं में फल देने की शक्ति

है लेकिन सभी संयोगों के मिलने पर ही फल देते हैं। रूपी भाग को स्थूल माना जाता है।

## स्थूल - सूक्ष्म - कारण-देह

**प्रश्नकर्ता :** एक मृत देह को चिता पर रखने से उस समय जो स्थूल बॉडी है, वह तो जल जाती है और सूक्ष्म बॉडी तो तुरंत ही चली जाती है न?

**दादाश्री :** परमाणु जलते ही नहीं हैं न! वे परमाणु इतने सूक्ष्म हैं कि उनके सामने यह अग्नि स्थूल है। इसलिए परमाणुओं पर कुछ भी असर नहीं डाल सकती। तीनों ही शरीर *पुद्गल* हैं। (1) स्थूल देह (2) सूक्ष्म देह (3) कारण-देह। सभी गुनाह सूक्ष्म देह के गुनाह हैं। उसी वजह से कारण-देह परमाणुओं को खींचती है। इस स्थूल देह के परमाणु जलने के लिए आए हैं, सूक्ष्म देह जलने के लिए नहीं आया है। उससे कारण-देह उत्पन्न होता है, उससे कार्य उत्पन्न होते हैं। कारण-देह के परमाणु इतने अधिक सूक्ष्म हैं कि अपने शरीर जैसा आकार है। लेकिन जिस योनि में जाता है न, तब माँ और बाप के परमाणुओं का मिलन होने पर कारण-देह के जो सूक्ष्म परमाणु थे न, वे स्थूल होते जाते हैं, कार्य देह का विकास होता है और फिर बढ़ता जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** वे सूक्ष्म में से स्थूल हो गए, फिर स्थूल में से सूक्ष्म हो जाएँगे और वापस बीज पड़ेंगे?

**दादाश्री :** स्थूल में से सूक्ष्म और फिर सूक्ष्म में से स्थूल होंगे। फिर वापस जो था वैसा ही चक्र। वे जो सूक्ष्म परमाणु हैं न, वे परमाणु इतने अधिक सूक्ष्म होते हैं कि यहाँ से (जब) माता द्वारा लिया गया भोजन अंदर जाता है, तब वे सब स्थूल बन जाते हैं। इतने से बच्चे के जन्म के बाद वह स्थूल भोजन खाता है और बढ़ता जाता है। वे परमाणु वही के वही और उन परमाणुओं के अनुसार ही भोजन मिलता है। वे परमाणु, (बच्चे के लिए) माता का दूध तीन दिन के लिए हो

तो तीन ही दिन के लिए मिलता है। वर्ना भेड़ का दूध मिलता है। इतनी अधिक एक्ज़ेक्ट व्यवस्था सेट हो चुकी है यह।

लोग फिर क्या कहते हैं? छठे महीने में जीव आया। जब अंदर हिलने-डुलने लगता है, तब लोग गोद भराई करते हैं। तब तक ऐसा कहते हैं कि जीव था ही नहीं। लेकिन नहीं, ऐसा नहीं है। जीव यहाँ से गया न, तभी से शुरुआत हो गई। लेकिन जिस प्रकार से अंडे में गर्भ होता है न, वैसी सुषुप्त अवस्था में रहता है। उसके बाद जब कुछ इन्द्रियाँ प्रकट हो जाती हैं, उसके बाद वह होश में आता है। दिनोंदिन इन्द्रियाँ प्रकट होती जाती हैं, बढ़ती जाती हैं। अंदर देखते रहें न, तो कान बढ़ रहे होते हैं, नाक बढ़ रहा होता है, हाथ बढ़ रहे होते हैं, सब अपने आप ही बढ़ता जाता है। अंकुर फूटते ही जाते हैं। पहले तो इतना सा, आलू का पिंड होता है न, वैसा ही होता है, फिर धीरे धीरे धीरे...

**प्रश्नकर्ता :** वेदों में ऐसा कहते हैं कि मातृक श्वास के समय ही जीव आता है, प्राण आता है।

**दादाश्री :** नहीं, वे सारी बातें अनुभव सहित नहीं हैं, सही बातें नहीं हैं। वे लौकिक भाषा की हैं। जीव की उपस्थिति होने पर ही गर्भ धारण हो सकता है, वर्ना नहीं हो सकता।

**प्रश्नकर्ता :** मुर्गी के अंडे में छेद करके जीव अंदर घुसा?

**दादाश्री :** नहीं, ऐसा तो आप लौकिक में कहते हो, ऐसा ही लिखा हुआ है। क्योंकि गर्भ धारण वह तो, सभी साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स, काल भी मिले तब जाकर गर्भ धारण होता है।

**प्रश्नकर्ता :** कारण शरीर के परमाणु शरीर में कहाँ पर होते हैं?

**दादाश्री :** कारण शरीर तो पूरे शरीर में भरा रहता है, वह परमाणुओं के रूप में होता है। उन परमाणुओं में से फिर कार्य शरीर बनता है। ये परमाणु सूक्ष्म होते हैं। फिर अगले जन्म में उनसे इफेक्टिव बॉडी बनती है।

कारण में से ही कार्य होता है। कारण-देह बड़ के बीज जैसा है। उस बीज में पूरा बड़ होता है, उसी प्रकार से इस देह में कारण-देह है।

बड़ के बीज में चेतन भी है और पूरा बड़ भी है। पत्ते-वत्ते सभी कुछ बीज में ही हैं। सबकुछ कॉम्पैक्ट रूप में है। बाह्य साधन मिलते ही, वे प्रकट हो जाते हैं। पेड़ कहाँ से टेढ़ा होगा, वह भी बीज के अंदर ही चित्रित है।

## संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण कर्म

**प्रश्नकर्ता :** जो संचित कर्म बनते हैं, वे सब चित्त में बनते हैं। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार आदि जो हैं, उनमें से चित्त में संग्रह होता होगा न कर्म का?

**दादाश्री :** तीन प्रकार के कर्म हैं। वे हैं प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण। इस दुनिया में हमें प्रारब्ध और क्रियमाण दिखाई देते हैं और संचित दिखाई नहीं देता। संचित अर्थात् स्टॉक। जब काल परिपक्व होता है तब वह स्टॉक प्रारब्ध के रूप में आता है।

**प्रश्नकर्ता :** परिपक्व होने पर भोगने के लिए प्रारब्ध में आता है?

**दादाश्री :** हाँ, काल परिपक्व होने पर प्रारब्ध के रूप में आता है, तब उसे प्रारब्ध कहा जाता है। और क्रियमाण का मतलब क्या है कि उसके बाद में जो क्रिया दिखाई देती है, वह क्रियमाण।

**प्रश्नकर्ता :** संचित कर्मों का स्टॉक कहाँ पर जमा रहता है?

**दादाश्री :** संचित कर्म इस हार्ट वाले भाग में रहते हैं। संचित कर्म परमाणुओं के रूप में हैं, कर्म नहीं हैं। वे बहुत सूक्ष्म परमाणु होते हैं। हार्ट में ज़रा सी जगह की ज़रूरत पड़ती है और उतनी जगह में तो बहुत से परमाणु रहते हैं। फिर वे संचित कर्म फल देने लायक हो जाते हैं, तब मिश्रसा बनते हैं, और यह शरीर मिश्रसा हो चुका है। फिर फल देता रहता है। कड़वे-मीठे, दोनों ही फल भोगने हैं। भोग लेने पर परमाणु फिर से विश्रसा हो जाते हैं।

अब आप कहो कि, 'हमारे गाँव का एक जशु भाई नालायक था', तो उसी को भगवान की विराधना करना कहेंगे। उनमें भगवान तो बैठे हुए ही हैं न! अतः उस समय आप नाक में से जो श्वास लेते हो, उस समय परमाणु प्रयोगसा हो जाते हैं। आपने ऐसा कहा तो उससे प्रयोग हो गया। अर्थात् पाप का उदय हो गया, परमाणु पाप वाले बन गए। यदि आप कहो कि, 'मुझे दान देना है' तो उस समय परमाणु पुण्य वाले बन जाते हैं। अतः पाप वाले ऐसे होते हैं, दुःख देते हैं और दान देने का विचार आए तो उस समय भी परमाणु खींचता है लेकिन वे परमाणु पुण्य फल देते हैं।

## भाव के अनुसार गिलट

अब, जब हम ऐसा कहते हैं कि 'यह मैंने किया' और 'कितना अच्छा किया' तो कहते ही, जैसे भाव किए वैसे ही गिलट वाले प्रयोगसा परमाणु अंदर घुस जाते हैं। दो गालियाँ देने का भाव करता है न, तो परमाणुओं पर उन भावों का गिलट चढ़ जाता है। वे भाव उन परमाणुओं को भावात्मक बनाते हैं, गिलेटेड करते हैं। या फिर यदि आप कहो कि फलाने वकील नालायक हैं तो ऐसा कहते ही परमाणु अंदर दाखिल हो जाते हैं और आपने उसे नालायक कहा न, तो नालायक का वह गिलट चढ़ जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् वे जो शुद्ध *पुद्गल* थे, वे अंदर आकर बिगड़ गए। अंदर उन पर गिलट चढ़ गया।

**दादाश्री :** गिलट चढ़ गया। नालायकपने का गिलट चढ़ा और आप कहो कि बहुत सुंदर है तो उसका भी गिलट चढ़ जाता है। प्रयोगसा यानी क्या? गिलट चढ़ते ही प्रयोग हो गया। यह आयोजन कहलाता है। हाँ, गिलट होने का आयोजन!

अज्ञानी व्यक्ति कोई भी भाव करे, राग या द्वेष का विचार करे, तो उससे परमाणु खिंचते हैं। खिंचने के बाद जैसा भाव होता है, उसी भाव में रंग जाते हैं। सोने के भाव से तो सोने का गिलट चढ़ता है

और चाँदी का भाव हो तो चाँदी का गिलट चढ़ता है। जिस भाव से किया हो, फिर भोगते समय वे वैसा ही फल देता है। कषाय भाव से किया हो तो बहुत ही कड़वा फल देते हैं। विषय भाव से किया हो तो कड़वे–मीठे दोनों ही मिक्स्ड फल देते हैं। यानी कि जो–जो भाव किए होते हैं, वैसा ही सारा अपना हिसाब बंध जाता है। अच्छा गिलट *शाता* (सुख–परिणाम) देता है और कषाय भाव *अशाता* (दुःख–परिणाम) देता है, दोनों गिलट हैं। जब हम सोचते हैं कि उस व्यक्ति को आज मुझे नुकसान पहुँचाना है', तो उसे अशुभ भाव कहते हैं। उससे विश्रसा में से प्रयोगसा बन जाते हैं। यदि शुभ भाव हों तो वे परमाणु सुख देते हैं, अशुभ भाव हों तो दुःख देते हैं लेकिन प्रयोगसा तो हो ही जाता है।

## वाणी रंग जाती है, कषायों से

यह जगत् शुद्ध परमाणुओं से भरा हुआ है, विश्रसा। तो उनमें दखल कब होती है? आप किसी को कहो कि, 'ऐ! बेवकूफ हो। क्या कर रहे हो?' ऐसा कहने से तुरंत ही, जैसे आपके कषाय होते हैं, वैसा ही उन परमाणु पर असर हो जाता है। हमेशा ही अज्ञानी जो कुछ भी कहता है, वे कषाय ही होते हैं। प्रेमपूर्वक बोले तो राग कषाय, यानी लोभ कषाय। प्रेम वाला वाक्य बोले तब भी कषाय कहलाता है और द्वेष वाला बोले तब भी कषाय कहलाता है।

अब यह अपनी कषाय वाली वाणी निकलती है न, तो ये जो विश्रसा परमाणु होते हैं, उन पर असर डालती है यह वाणी। उन्हें रंजित करती है, रंग जाती है, रंगीन बना देती है। जैसा कषाय होता है न, वैसा ही रंग चढ़ा देती है और फिर वह खिंचकर अंदर आ जाते हैं, अपने अंदर। उसे प्रयोगसा कहते हैं!

**प्रश्नकर्ता :** इससे लेश्याएँ बदलती हैं?

**दादाश्री :** हाँ, लेश्याएँ बदल जाती हैं (कषाय परिणाम की वजह से)। कर्म कहाँ पर बनते हैं? प्रयोगसा होता है वहाँ पर कर्म बंधन होता है।

और जब हम (व्यापार करते समय) कोई कपड़ा खींचकर देते हैं तो उस समय वह योग क्रिया हुई और ध्यान, उन दोनों के गुणाकार के अनुसार परमाणु खिंचते हैं। अब शुद्ध परमाणु खिंचते हैं लेकिन इस क्रिया के ध्यान की वजह से वे (परमाणु) विश्रसा में से प्रयोगसा में आए। अब प्रयोगसा कैसा है? तो यदि वह धर्मध्यान में हो तो वैसे ही प्रयोगसा के परमाणु और रौद्रध्यान हो तो वैसे परमाणु। नर्कगति के हों तो वैसे प्रयोगसा परमाणु।

तो यह परमाणुओं को कब तक खींचता है? जब तक उसे भान है कि 'मैं चंदूलाल हूँ', 'मैं'पन है, तब तक इन विश्रसा परमाणुओं को खींचता है लेकिन जब स्वरूप का भान हो जाता है, 'मैं चंदूलाल हूँ' वह भान चला जाता है, तब परमाणु नहीं खींचता।

## व्यवस्थित है मिश्रसा

**प्रश्नकर्ता :** अंतिम घड़ी में दो शरीर साथ में जाते हैं, तेजस और कार्मण...

**दादाश्री :** कुल मिलाकर कहा जाए न, तो सिर्फ इस स्थूल शरीर को छोड़ देता है। यह स्थूल रूप जो बेकार हो गया है सिर्फ उसी को छोड़ देता है, बाकी सबकुछ साथ में जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो कार्मण शरीर है, वह किस तरह जाता है? क्या उसका आकार है?

**दादाश्री :** वह प्रयोगसा परमाणुओं के रूप में जाता है। वह कार्मण शरीर, प्रयोगसा परमाणु हैं, अन्य कुछ नहीं है। जब उसका वह उदय आता है तब मिश्रसा कहलाता है। प्रयोगसा, वह कर्म कहलाता है और मिश्रसा *भोगवटा* (सुख या दुःख का असर, भुगतना) कहलाता है। प्रयोगसा पिछले जन्म के बाँधे हुए परमाणु हैं और वे शरीर के अंदर हैं और उनके आधार पर इस जन्म में मिश्रसा (परमाणु) सारे फल देते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** खिंचने के बाद में फिर से प्रयोगसा हो जाते हैं?

**दादाश्री :** मिश्रसा जब फल देते हैं, तब (यदि) कड़वा लगे न, तब हम किसी पर चिढ़ जाते हैं, तो उस क्षण वापस प्रयोगसा उत्पन्न होते हैं और जब खुश हो जाते हैं तो उस घड़ी प्रयोगसा होते हैं। वे जो प्रयोगसा हो चुके हैं न, वे डिस्चार्ज होते समय मिश्रसा फल देकर जाते हैं। उसी को संसार फल कहा जाता है।

जो प्रयोगसा है, उसका आयोजन हो चुका है। फिर वे बनते हैं मिश्रसा। वे यों रूपक में आते हैं। और रूपक में आए हुए को हम अनुभव करते हैं और उससे वापस पूरे जगत् में, जीव मात्र में *निर्जरा* होते रहते हैं।

प्रयोगसा अवस्थित है और मिश्रसा व्यवस्थित है। बाद में अवस्थित रूपक में आता है। मिश्रसा जो फल देता है, वह व्यवस्थित के नियमों के आधार पर देता है। फिर जब *निर्जरा* होते हैं तब वे वापस जैसे थे वैसे के वैसे ही विश्रसा बन जाते हैं। कड़वे-मीठे भोग को भोग लेने के बाद वापस जैसे थे वैसे ही परमाणु, फल देने के बाद विश्रसा बन जाते हैं। अतः प्रयोगसा, मिश्रसा, विश्रसा का चक्र चलता ही रहता है।

प्रयोगसा अर्थात् जब (व्यवहार) आत्मा तन्मय होता है, तब जिन परमाणुओं का प्रयोग होता है, वह अवस्था है। प्रयोगसा को बदला जा सकता है। जैसे कि चिट्ठी लिखने और पोस्ट करने के बीच में जो समय मिलता है, उसमें उसे पोस्ट नहीं करना हो तो नहीं करता। वैसे प्रयोगसा के मिश्रसा में परिणमित होने से पहले यदि उसमें जागृति रहे तो उसे वापस बदल सकते हैं। और यदि एक बार मिश्रसा हो जाएँ तो फिर वे अवश्य फलित होते हैं। फिर उन्हें नहीं बदला जा सकता। चार्ज होने के बाद में परमाणु अंदर पड़े रहते हैं। वे प्रयोगसा फिर फल देकर जाते हैं, तब तक उनकी अवस्था को मिश्रसा कहा जाता है। मिश्रसा परमाणु फल देकर, शुद्ध होकर, विश्रसा में परिणमित होते हैं।

वे प्रयोगसा परमाणु हम पर असर नहीं डालते। जब अंदर कॉज़ेज़ होते हैं तब अंदर वे परमाणु प्रयोगसा बनकर अंदर ही रहते हैं। जब

असर बताने लायक हो जाते हैं और असर बताने के लिए बाहर आते हैं तब उदयकर्म के रूप में आते हैं, तब वे मिश्रसा कहलाते हैं। उससे कोई भी नहीं बच सकता। प्रयोगसा में बदलाव किया जा सकता है। हमारे पास आए न, तो बदलाव कर देते हैं। मिश्रसा तो भगवान से भी नहीं बदला जा सकता। जम चुके उदयकर्मों से तो छूट ही नहीं सकते न! और कड़वे-मीठे उदयकर्म भोग लेने के बाद, जो परमाणु झड़ जाते हैं, वे परमाणु, विश्रसा, प्योर।

## योजना आती है रूपक में...

**प्रश्नकर्ता :** जो संयोग आते हैं, उन्हें मिश्रसा में आने ही न दूँ तो...

**दादाश्री :** प्रयोगसा में दाखिल होने दिया तो मिश्रसा में आए बगैर रहेंगे ही नहीं। प्रयोगसा होने ही नहीं दे (तो मिश्रसा नहीं आएँगे)। पिछले जन्म में प्रयोगसा होने के बाद, (जब) जन्म होता है, तब मिश्रसा बन जाते हैं। प्रयोगसा में से मिश्रसा बन जाते हैं, तब देह के रूप में दिखाई देते हैं, और फिर फल देकर जाते हैं तब वापस विश्रसा बन जाते हैं। तब, हृदय में शुद्ध चारित्र (ज्ञाता-द्रष्टा) आते ही शुद्ध विश्रसा उत्पन्न होता है।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् प्रयोगसा परमाणु मिश्रसा बन जाते हैं। उसमें अपना कोई पुरुषार्थ है क्या?

**दादाश्री :** नहीं, प्रयोगसा में से मिश्रसा बन ही जाते हैं, उसमें कोई पुरुषार्थ नहीं है। प्रयोगसा अर्थात् योजना रूपी, मिश्रसा अर्थात् फल से संबंधित बात। योजना वे (अज्ञानी) लोग तय करते हैं। उसके बाद में जो (व्यवस्थित शक्ति) अपना काम शुरू करती है, वही है मिश्रसा। उनके मिश्रसा बनने के बाद उन्हें भोगकर कड़वा-मीठा फल देकर जाते हैं। भाई को कड़वा-मीठा भोगना ही पड़ता है। अंदर कड़वाहट आती है, मिठास आती है। मिठास आए तब कैसे मौज में आ जाता है! उसी प्रकार कड़वा टेस्ट आता है। वह भी टेस्ट तो है न एक प्रकार का?

अब, मिश्रसा को जब ज्ञानपूर्वक *निकाल* (निपटारा) करते हैं, तब विश्रसा होता है और जगत् के लोगों को मिश्रसा होता है, वे फिर फल देकर *निर्जरा* होते हैं, लेकिन अज्ञान की वजह से फिर नए (परमाणु) ग्रहण करते हैं। इस ज्ञान के बाद में नया ग्रहण करना बंद है। उसका कारण है कि उसे, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसी प्रतीति है और 'मैं चंदूभाई हूँ', वह प्रतीति चली गई है।

## नहीं होता प्रयोगसा, ज्ञान के बाद

यह पूरा जगत् *पुद्गलमय* ही है। लेकिन जो सारे स्वाभाविक परमाणु हैं, उन्हें विश्रसा कहा जाता है। तो जब तक, 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा था तब तक पूरे दिन धर्म क्रिया करने के बावजूद भी वे परमाणु अंदर दाखिल होते रहते थे, *पूरण* होते रहते थे। क्योंकि 'अरे भई परमाणु, आप क्यों मेरे घर में घुस रहे हो?' तब वे (परमाणु) कहते हैं कि, ''आप खुद ही *पुद्गल* हो। आप यदि आत्मा हो तो हम आ ही नहीं सकेंगे। हाँ! आप कहते हो, 'मैं चंदूभाई हूँ', इसलिए हम आते हैं।'' अब, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कहने से ये सारे परमाणु अंदर दाखिल नहीं होते। चाहे कोई भी क्रिया करो लेकिन परमाणु दाखिल नहीं होंगे और यदि परमाणु दाखिल हो जाएँ तो *पुद्गल पूरण* होता ही रहेगा और उसका वापस *गलन* होगा।

लेकिन जिन्हें आत्मा प्राप्त हो गया है, वहाँ पर परमाणु दाखिल हो ही नहीं सकते। फिर फल देने को कहाँ रहा? कड़वा भी नहीं और मीठा भी नहीं। खुद के सुख में रहना है। इस प्रकार कड़वे-मीठे, खुद का सुख नहीं आने देते और कड़वे-मीठे में ही रखते हैं। जबकि आत्मा का सुख खुद का स्वयं सुख है, जिसकी तृप्ति रहती है, निरंतर तृप्ति रहती है। खुद का सुख ऐसा है कि अन्य कोई चीज़ न हो, तब भी रहता है।

## जीवन भर मिश्रसा

विश्रसा स्वाभाविक है। उसे *पुद्गल* नहीं होता। वह अगुरु-अलघु

होता है। वह जो विकृत *पुद्गल* है, विकारी *पुद्गल,* जिसमें से खून-मवाद वगैरह सब निकलता है, वह मिश्रसा है। वह *पुद्गल* गुरु-लघु वाला होता है।

अब इस मिश्रसा में तो पूरा ही जगत् है। मिश्रसा का मतलब क्या है? इस जन्म से लेकर श्मशान में जाने तक मिश्रसा है। उसमें से और क्या उत्पन्न होता है? तब कहते हैं, फिर से नया प्रयोगसा उत्पन्न होता है। तो अभी जो प्रयोगसा उत्पन्न हो जाता है, वह अगले जन्म में मिश्रसा बनेगा। यह मिश्रसा तो हमेशा भोगता ही रहता है। *भोगवटा* मिश्रसा का है। अब यदि मिश्रसा में से नया बंध पड़े बगैर विश्रसा हो जाएँ तो मुक्त हो जाएँगे, वर्ना नहीं छूट सकते।

अब हमें क्या करना है कि हमें कोई दो गालियाँ दे, तो हमें उसका समभाव से *निकाल* कर देना है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', रखें और उनका शुद्धात्मा देखकर समभाव से *निकाल* कर लें तो फिर वे परमाणु जो मिश्रसा थे, वे वापस विश्रसा हो जाएँगे।

हम कहते हैं न, कि समभाव से फाइलों का *निकाल* करने से परमाणु शुद्ध होते हैं। उस समय शुद्धात्मा देखोगे तो परमाणु शुद्ध हो जाएँगे। ये परमाणु तो निकलते ही रहेंगे निरंतर, पर यदि वे शुद्ध होकर जाएँगे तो फिर दावा नहीं करेंगे। फिर जब परमाणु, परमाणु में सेटअप हो जाते हैं और आत्मा, आत्मा में सेटअप हो जाता है तब वह मोक्ष कहा जाता है। तब फिर बंधन में आने का प्रश्न ही नहीं रहता। एक बार अबंध (मुक्त) हो चुकी वस्तु को कोई बंधन नहीं रहता।

प्रयोगसा पिछले जन्म में किए थे। वे प्रयोगसा साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स में जाने के बाद मिश्रसा बनकर यहाँ पर आते हैं। मिश्रसा इस जन्म में भोगने होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, उन परमाणु को ज्ञान से भोग लिया जाए तो फिर वे वापस विश्रसा हो जाएँगे?

**दादाश्री :** हाँ, यदि उन्हें ज्ञान से शुद्ध कर देंगे न, तो विश्रसा हो जाएँगे। तब फिर उनके प्रति कोई ज़िम्मेदारी नहीं रहेगी। हमें परमाणुओं से जोखिम कब तक है? विश्रसा न हों तब तक। अत: जो अज्ञानता से हुए हैं, उन्हें ज्ञान से विलय करने की ज़रूरत है।

## नहीं होते हैं अब चार्ज, कर्म

**प्रश्नकर्ता :** अपने अंदर प्रयोगसा उत्पन्न ही न हों, ऐसा कुछ करना हो तो हमें क्या करना चाहिए?

**दादाश्री :** जिन्होंने ज्ञान लिया है, उनका ऐसा ही कर दिया है न!

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञान तो हमने लिया है, तो हमें यह जानना है कि हमारी स्थिति क्या है? प्रयोगसा हम में इकट्ठे होंगे क्या? मिश्रसा का उदय आता है और कड़वे-मीठे फल दे रहा होता है, तब हमारी क्या स्थिति मानी जाएगी, ज्ञान के बाद?

**दादाश्री :** कड़वे फल आपसे सहन नहीं होते, इसलिए आप उस पर चिढ़ जाते हो।

**प्रश्नकर्ता :** वास्तव में तो ऐसा ही होता है, हो जाता है।

**दादाश्री :** वह भी, वास्तव में आप नहीं चिढ़ते हो, आप तो शुद्धात्मा हो और ये चंदूभाई चिढ़ जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, चंदूभाई चिढ़ जाते हैं।

**दादाश्री :** हाँ, कोई अज्ञान दशा में चिढ़ जाता है तो उस क्षण वापस परमाणु खींचता है। लेकिन ज्ञान के बाद में अब परमाणु खींचने की जो शक्ति थी, वह ताकत नहीं रही। क्योंकि खींचने वाला चला गया, वह जुदा हो गया। इसलिए अब आपको क्या करना है? परमाणु नहीं खींचते हो लेकिन फिर से आप उसमें गए तो वह उदय फिर से आएगा, वापस वही उदय। अर्थात् हस्ताक्षर किए बिना जो कागज़

चला गया होगा, वह वापस आपके हस्ताक्षर के लिए आएगा, उस प्रकार से है।

**प्रश्नकर्ता :** तो उसका मतलब ऐसा हुआ कि अब हम में प्रयोगसा होगा ही नहीं?

**दादाश्री :** पर कैसे होगा वह? होगा ही नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, जो प्रयोग करने वाला है, वह अलग हो गया इसलिए प्रयोग होगा ही नहीं न!

**दादाश्री :** हाँ, करने वाला नहीं है न! करने वाला होता तो हो सकता था।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, अभी भी जो डिस्चार्ज भाव वाला अहंकार बचा है और गरमा-गरमी हो जाती है, वह सब तो...

**दादाश्री :** वह कुछ भी चार्ज नहीं कर सकता। लेकिन जितना यों ही चला जाएगा और उसके बाद पता चला कि यह गलती हो गई, तो वह वापस आकर आपको साफ तो करना ही पड़ेगा। यों ही हस्ताक्षर किए बिना गया हुआ तो नहीं चलेगा, हस्ताक्षर होने ही चाहिए, हर एक पर। हर एक पेपर पर हस्ताक्षर करने होंगे, समता के हस्ताक्षर करने होंगे।

**प्रश्नकर्ता :** समता के?

**दादाश्री :** हाँ, समभाव से *निकाल* के।

**प्रश्नकर्ता :** अतः खुद को अब उसमें अच्छी तरह से ध्यान रखकर सब जगह हस्ताक्षर कर ही देने चाहिए। क्या तभी समभाव से *निकाल* होगा?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन (जहाँ) गाढ़ हो, वहाँ पर हस्ताक्षर नहीं हो पाते और फिर रह जाता है, सफोकेशन (दम घुटना) हो जाता है, इसलिए इसी जन्म में फिर से वापस आता है। तो हमें वापस उतना

हिसाब चुकाना बाकी रहा न। कपड़े आएँ और दो धोए बगैर ही रह जाएँ, तो फिर वापस आएँगे न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** सभी धोने ही पड़ेंगे।

यह विज्ञान अलग प्रकार का है इसलिए आपकी ज़िम्मेदारी नहीं रहती। आप शुद्धात्मा बन गए हो न! क्रमिक मार्ग में तो ऐसा चलेगा ही नहीं। क्रमिक मार्ग में तो कर्म बंध ही जाते हैं। यह इतना इनाम है आपको। खा-पीकर मौज करने का।

यह ज्ञान लेने के बाद में आपको जो क्रोध आता है, और बाहर का व्यक्ति जो क्रोध करता है, उन दोनों में फर्क है। आप *पुद्गल* परमाणुओं को नहीं खींचते। आपका क्रोध ऐसा नहीं है कि *पुद्गल* को खींच सके और उन (अज्ञानी) लोगों का क्रोध तो अच्छी तरह से खींचता है, जथ्थे में खींचता है।

यानी कि वे जो विश्रसा थे, वे प्रयोगसा बन जाते हैं। प्रयोग अर्थात् इस (विभाविक) आत्मा के भावों के योग के साथ जॉइन्ट हुआ, वह। वे जो प्रयोगसा बने, वे कॉज़ेज़ परमाणु और बाद में इफेक्ट परमाणु, मिश्रसा के रूप में इफेक्ट देते हैं। तो आप में सिर्फ मिश्रसा बचे हैं और प्रयोगसा बंद हो गए। पूरे जगत् में अब प्रयोगसा और मिश्रसा चल रहा है लेकिन फिर भी जितने मिश्रसा हैं, उतने विश्रसा हो ही जाएँगे। जो मिश्रसा है, वे विश्रसा हो जाते हैं लेकिन (अज्ञान दशा में) उस समय वापस दूसरे (परमाणु) खिंच जाते हैं और आप में वे विश्रसा हो जाते हैं और नए नहीं बनते। आप में मिश्रसा में से विश्रसा होते ही रहते हैं, प्रयोगसा नहीं होता। प्रयोग चल रहा हो तो पूरी जोखिमदारी आएगी, लेकिन प्रयोग ही बंद हो गया है।

**प्रश्नकर्ता :** विसर्जित होते हुए परमाणुओं का पुनरावर्तन क्यों होता है?

**दादाश्री :** उसमें ऐसा रहे कि 'मैं कर रहा हूँ' तो पुनरावर्तन होगा और नहीं करोगे तो फिर नहीं होगा। वह पुनरावर्तन भी इसलिए होता है क्योंकि आपका गुनाह है। आपका गुनाह क्या है कि कर कोई और रहा है और आप ऐसा मानते हो कि 'मैं कर रहा हूँ'। उस गुनाह का दंड है यह।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो पुनरावर्तन होता है वह, 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा भाव रहे तभी होगा न?

**दादाश्री :** हाँ, वह तभी होगा।

**प्रश्नकर्ता :** तो जहाँ-जहाँ कर्ताभाव होता है, तो उससे वापस पुनरावर्तन होता है?

**दादाश्री :** पूरा जगत् कर्ताभाव में ही है। साधु-सन्यासी वगैरह सभी कर्ताभाव में ही हैं। 'हम ही कर रहे हैं', ऐसा भान हैं। सिर्फ इस ज्ञान की वजह से आपका कर्तापन छूट गया, इसलिए आप शुद्धात्मा बन गए।

## अब परिग्रह भी डिस्चार्ज

अत: अब हिसाब नहीं बंधेंगे। वर्ना पूरी दुनिया के साथ फैलाव ही रहा करता है। और अपनी तो यह लिमिट आ गई, डिस्चार्ज की लिमिट आ गई कि इतने ही।

**प्रश्नकर्ता :** बस, ये जो पूर्व के बाकी हैं, वही।

**दादाश्री :** हाँ, उतने ही परमाणु।

**प्रश्नकर्ता :** जिसे परिग्रह कहते हैं, वही लिमिट न? परिग्रह को कम करना, वह लिमिट है या परिग्रह की मर्यादा बनाना, वह लिमिट है?

**दादाश्री :** सभी कुछ डिस्चार्ज है। परिग्रह बढ़ाना भी डिस्चार्ज है और परिग्रह को मर्यादित करना भी डिस्चार्ज है।

**प्रश्नकर्ता :** वह भी डिस्चार्ज है?

**दादाश्री :** हाँ, और अपरिग्रही रहना भी डिस्चार्ज है। क्योंकि अपरिग्रही रहने का जो भाव किया था इसीलिए अपरिग्रह आया। लेकिन वह भी डिस्चार्ज है। उसे भी छोड़ देना पड़ेगा। वह भी कहीं मोक्ष में साथ में नहीं आएगा। वह तो जिस (क्रमिक मार्ग के) स्टेशन पर हेल्प कर रहा था, उस स्टेशन पर हेल्प करेगा। इस (अक्रम मार्ग के) स्टेशन पर कुछ भी हेल्प नहीं करता। इस स्टेशन का तो आपको सिर्फ समाधान ही लाना है। इन सब को सॉल्व कर देना है। क्योंकि सभी परमाणुओं का *निकाल* करना है।

## आज्ञा से होते हैं शुद्ध

किसी को गालियाँ दो न, तब गरम हुआ या कुछ भी हुआ, लेकिन (यदि) समभाव से *निकाल* किया तो विश्रसा होकर चले जाएँगे। अब वे क्या कहते हैं? *पुद्गल* की शिकायत है। *पुद्गल* कहता है कि आप तो शुद्धात्मा बन गए, हम भी यह स्वीकार करते हैं कि दादा ने आपको मुक्त कर दिया लेकिन हमारा क्या? हमें दादा मुक्त नहीं कर सकते। जितना हमें किया जा सकता था, उतना कर दिया है दादा ने, बाकी का आपको करना है क्योंकि आप ज़िम्मेदार हो। हम तो शुद्ध ही थे, आपने ही बिगाड़ा है। हमें शुद्ध किए बिना आप मुक्त नहीं हो सकोगे, क्योंकि परमाणु क्या कहते हैं, 'हम अपनी मर्ज़ी से अशुद्ध नहीं हुए हैं, आपने, अपने भावों का लेप लगाया इसलिए हम अशुद्ध हो गए। अत: आप हमें शुद्ध करोगे तभी आप मुक्त हो सकोगे, वर्ना नहीं हो सकोगे। हम जिस स्थिति में थे, उसी में ला दो। वह जोखिमदारी आपकी है।'

'आपने हमें पकड़ा हुआ है। अब आप कहो कि 'मैं तो अलग हो गया, अब अगर धक्का मारोगे तो नहीं चलेगा,' वे ऐसा कहते हैं। तब अगर पूछो कि, 'ऐसा कैसे करें?' तब वे कहते हैं कि 'दादा के कहे अनुसार आज्ञा का पालन करो और आराम से रस-रोटी खाओ।

फिर पेट पर हाथ रखकर सो जाओ। ज़रा आराम करो, लेकिन निरंतर दादा की आज्ञा अनुसार रहो।'

इसलिए फिर हमने ऐसा कहा कि समभाव से *निकाल* करते रहो। कोई गालियाँ दे तो समभाव से *निकाल* करते रहो। अब वे परमाणु तपे हैं इसलिए कड़वा फल आया। और अंदर आनंद हो गया, मीठा फल आया। उन्हें देखते रहो तो वे फल देकर चले जाएँगे तो शुद्ध हो जाएँगे, वे सभी परमाणु फिर चले जाएँगे।

## पूर्ण कलंक रहित अवस्था में मोक्ष

*''एक परमाणु मात्रनी मळे न स्पर्शता,*
*पूर्ण कलंक रहित अडोल स्वरूप जो,*
*शुद्ध निरंजन चैतन्यमूर्ति अनन्यमय,*
*अगुरु-लघु अमूर्त सहजपद रूप जो।''* अपूर्व...

- श्रीमद् राजचंद्र

**दादाश्री :** कहते हैं कि एक परमाणु का भी स्पर्श न हो, तो 'पूर्ण कलंक रहित स्वरूप अडोल (अविचल)' रह सकेगा। जिस-जिस के परमाणु ग्रहण किए हैं, जब तक वे ग्रहण किए हुए परमाणु सभी को पहुँच नहीं जाते और किसी की तरफ से लाल झंडी न रखी जाए, तब हमें समझना है कि सभी हरी झंडी दिखा रहे हैं। अतः परमाणु पहुँच गए।

**प्रश्नकर्ता :** अतः दादा, आप जो कहते हैं कि परमाणुओं को भी शुद्ध करना पड़ेगा, तो वह यह है?

**दादाश्री :** हाँ, करना ही पड़ेगा न!

हम पहले ट्रेन में सफर करते थे। तब पचास-सौ लोग स्टेशन पर छोड़ने आते थे और फिर पद वगैरह गाते थे और पूरे स्टेशन को गुँजा देते थे। उन्हें प्रेम आए तो वे क्या नहीं करते? अब (यदि) वहाँ पर एक व्यक्ति कहे कि, 'दादा, आज आपको नहीं जाना है।' तो हम

समझ जाते हैं कि यह लाल झंडी दिखा रहा है। बाकी सब हरी झंडी दिखा रहे हैं। फिर उसे समझाता हूँ और उसकी समझ में आए तो ठीक है वर्ना हमें जाना बंद रखना पड़ता था। क्योंकि मार-ठोककर मोक्ष में नहीं जा सकते। 'हट यहाँ से, मुझे मोक्ष में जाने दे', वह नहीं चलेगा। धक्का मारकर सिनेमा में घुसने देते हैं न, लेकिन मोक्ष में उस तरह से नहीं जा सकते। मोक्ष में तो (जब) सभी हरी झंडी दिखाएँ कि 'साहब, पधारिएगा और हमारा भी आप जैसा कोई रास्ता कर दीजिएगा', तब जा सकते हैं!

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, इसमें एक पॉइन्ट आता है कि निन्यानवे लोगों ने आपको हरी झंडी दिखाई और सिर्फ यही एक व्यक्ति लाल झंडी दिखा रहा है। अब उसे किस तरह से बैलेन्स करना है?

**दादाश्री :** बैलेन्स नहीं करना है। वह लाल झंडी दिखा रहा है न, इसलिए हमें उससे पूछना है और वह टेक्निकली राइट है या नहीं, वह देख लेना है और टेक्निकली राइट लगे तो हम नहीं जाएँगे। टेक्निकली राइट नहीं होगा और किसी और, उल्टे रास्ते पर होगा तो फिर बाकी के सब जो महात्मा हैं, वे उससे कहेंगे कि, 'भाई तू ऐसे मत चिपक।' बाकी, टेक्निकली देखेंगे, तब पता चलेगा कि क्या परेशानी हैं। (यदि) वह कहे कि, 'मेरा ब्रदर अभी मरणतुल्य स्थिति में है।' तो हम देखेंगे कि, 'हाँ, वह टेक्निकली राइट है।' तो आज जाना बंद रखो। ऐसा देखना पड़ेगा न, या यों ही धक्के मारकर चले जाना है? आपको कैसा लगता है, नहीं देखना पड़ेगा? और धक्के मारकर कोई मोक्ष में जा सके हैं?

यानी कि सभी परमाणु चुका देने पड़ेंगे। एक-एक परमाणु का हिसाब चुका देना पड़ेगा। ये जो सारे परमाणु लोगों से लिए हैं, वे परमाणु लोगों को दे दिए, तो हम मुक्त हो जाएँगे!

फिर कलंक नहीं रहेगा, क्योंकि किसी ने लाल झंडी नहीं दिखाई। इसलिए, कलंक रहित अडोल (अविचल) स्वरूप अर्थात् उसमें हमारी स्थिरता है तो अब ऐसा नहीं है कि उसे कोई डिगा सके!

## ...प्रतिक्रमण से नहीं, मात्र 'समता' और 'देखने से' ही

**प्रश्नकर्ता :** बिगाड़े हुए परमाणु, जो शुद्ध करके देने पड़ते हैं, वह किस प्रकार से?

**दादाश्री :** (यदि) कोई गालियाँ दे और हम समता रखें तो उस घड़ी सभी परमाणु शुद्ध हो गए।

**प्रश्नकर्ता :** (यदि) समता नहीं रही तो फिर वे परमाणु अशुद्ध ही रहें?

**दादाश्री :** समता रखी तो ही परमाणु शुद्ध हो गए।

**प्रश्नकर्ता :** और नहीं रखी तो?

**दादाश्री :** नहीं रखेंगे तब तो बिगड़ेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** बाद में उसके प्रतिक्रमण कर लें तो?

**दादाश्री :** फिर भी बिगड़ेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** प्रतिक्रमण करने से धुल जाएँगे न?

**दादाश्री :** कचरा रहेगा, समता जैसा नहीं हो पाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** आपने जो कहा है न कि, ऐसा ही तय रखना है कि 'मुझे तो फाइलों का समभाव से *निकाल* करना है', फिर चाहे हो पाए या नहीं, वह नहीं देखना है। तो फिर मान लीजिए कि समभाव से *निकाल* नहीं हो पाया तो फिर वापस साफ करना बाकी रहेगा?

**दादाश्री :** हाँ, रहेगा तो सही न! लेकिन आज्ञा पालन करोगे तो काफी कुछ खत्म हो जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, यदि ऐसा तय किया जाए कि समभाव से *निकाल* करना है तो काफी कुछ खत्म हो जाएगा?

**दादाश्री :** हाँ, खत्म हो जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** फिर प्रतिक्रमण करने से पूरी तरह से खत्म हो जाएगा न?

**दादाश्री :** हाँ।

## निबेड़ा, सामायिक-प्रतिक्रमण से

दाग़ दिखता जाएगा और हम प्रतिक्रमण करते जाएँगे।

**प्रश्नकर्ता :** सामायिक से साफ हो जाते हैं न?

**दादाश्री :** होते हैं न, बहुत हो जाते हैं। सामायिक से तो पूरा निबेड़ा आ जाता है। यह जो प्रतिक्रमण है, वह प्रज्ञा का काम है। इसलिए बहुत फर्क पड़ जाता है, और सामायिक में वह देखता है, इसलिए धुल जाता है सारा। जितने दोष दिखाई देंगे, उतने धुल जाएँगे।

**प्रश्नकर्ता :** सामायिक में तो आत्मा का ही काम है न?

**दादाश्री :** सीधा, डायरेक्ट।

**प्रश्नकर्ता :** एक-एक परमाणु को शुद्ध करने के लिए जो-जो होता है, हम उसे ज्ञाता-द्रष्टा रहकर देखते जाएँ तो शुद्ध हो जाएगा?

**दादाश्री :** बस।

**प्रश्नकर्ता :** या प्रतिक्रमण करने से शुद्ध होगा?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं, ज्ञाता-द्रष्टा रहने से ही शुद्ध हो जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** तो प्रतिक्रमण से क्या होता है, दादा?

**दादाश्री :** प्रतिक्रमण से क्या होता है कि कोई ऐसा बड़ा दोष हो गया हो, जिससे सामने वाले को दु:ख हुआ हो, तो हमें इन्हें (खुद को, चंदू को) कहना पड़ेगा कि, 'चंदूभाई, ऐसा मत करो।' अतिक्रमण किया है इसलिए आपको प्रतिक्रमण करना है। ऐसा अतिक्रमण नहीं किया हो जिससे कि किसी को दु:ख हुआ हो तो प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या प्रतिक्रमण से परमाणु शुद्ध नहीं हो जाते?

**दादाश्री :** नहीं, प्रतिक्रमण से परमाणु शुद्ध नहीं होते। देखते ही हम अलग हो जाते हैं। उसे शुद्ध देखा तो वह अलग और हम अलग। जगत् अशुद्ध देखता है। क्योंकि 'मैं कर्ता हूँ', उस भाव से करता है। और अब ऐसे भाव हुए हैं कि, 'मैं इसका कर्ता नहीं हूँ' तो वे अलग।

**प्रश्नकर्ता :** प्रतिक्रमण का क्या इफेक्ट होता है? आपने ऐसा कहा है कि प्रतिक्रमण से परमाणु शुद्ध नहीं होते, तो प्रतिक्रमण से क्या होता है?

**दादाश्री :** परमाणु तो कब शुद्ध होंगे कि (जब) उन्हें 'देखेंगे', तब। और प्रतिक्रमण से परमाणुओं पर क्या इफेक्ट होता है? कि उसे जो दुःख हुआ है, उसका उस पर असर रह जाएगा, तब वह बैर बाँधेगा। जहाँ तक हो सके अपने कारण वह असर नहीं होना चाहिए। तो हमें चंदूभाई से कहना है, 'प्रतिक्रमण करो।' ताकि सामने वाले पर असर न रहे, बस।

**प्रश्नकर्ता :** मान लीजिए कि आपने मेरे मन को ठेस पहुँचाई और आप प्रतिक्रमण कर लें तो क्या मुझ पर उसका इफेक्ट नहीं रहेगा?

**दादाश्री :** बाहर सभी से ऐसा कह सकते हैं कि प्रतिक्रमण से शुद्ध होता है, साधारणतया। वास्तव में *पुद्गल* को ज्ञान से स्वच्छ करना है। (यदि) वह नहीं हो पाए तो साधारणतया कह देता हूँ कि प्रतिक्रमण करना। प्रतिक्रमण करने से उससे अलग रहा इसलिए उसे स्वच्छ करना कहा जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, हमें इतना पता चलता है कि यह प्रकृति है। प्रकृति है इसलिए ऐसा कह देते हैं।

**दादाश्री :** प्रकृति करती है उतना पता है लेकिन उसे ज्ञान से

विलय करना चाहिए। अज्ञान से भरे हुए को ज्ञान से जाने दो क्योंकि वह सारी प्रकृति है और परमाणु हैं। वे परमाणु कैसे हैं? तो कहते हैं, कि मिश्रसा परमाणु हैं। मिश्रसा अर्थात् भरे हुए और फल देने वाले कहे जाते हैं। भरे हुए माल की वजह से ऐसा कह देते हैं यानी इन्होंने फल दिया। उस समय वे जो परमाणु हैं, उन्हें यदि स्वच्छ करके भेज देंगे तो फिर हमारा उन परमाणुओं से झगड़ा नहीं रहेगा।

यानी आप इस प्रकार से शुद्धिकरण करके, इसे *निकाली* बात बना दो। यदि परमाणु विश्रसा हो जाएँगे तो आप छूट जाओगे। अब इन सभी से शुद्ध करने की क्रिया नहीं हो पाती, इसलिए इनसे कहते हैं कि प्रतिक्रमण करना तो हो जाएगा शुद्ध। इनसे यह सब कैसे हो पाएगा? यह तो साइन्टिफिक विज्ञान है। जागृति इतनी और फिर वह आपको नहीं करना है, चंदूभाई को करना है। आपको जानना है कि चंदूभाई ने किया या नहीं किया। अतिक्रमण भी चंदूभाई ही करते हैं न?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, अतिक्रमण भी वही करता है। इसलिए प्रतिक्रमण भी उसी से करवाना है?

**दादाश्री :** हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा अतिक्रमण करता है और प्रतिष्ठित आत्मा को ही प्रतिक्रमण करना है। प्रतिक्रमण 'आपको' नहीं करना है। जो गुनाह करता है, उसे करना है। डिस्चार्ज के गुनाह और डिस्चार्ज का प्रतिक्रमण। अतिक्रमण भी डिस्चार्ज का और प्रतिक्रमण भी डिस्चार्ज का (यह बात ज्ञान प्राप्त लोगों के लिए ही है)।

**प्रश्नकर्ता :** निश्चय आत्मा तो कर्मबंध करता ही नहीं है तो फिर निश्चय प्रतिक्रमण तो है ही नहीं न?

**दादाश्री :** निश्चय आत्मा तो खुद अलग ही हो गया है। लेकिन यह प्रकृति क्या कहती है? 'आपने हमें बिगाड़ा था, हम शुद्ध परमाणुओं के रूप में ही थे। तो अब हमें शुद्ध करो।' वे क्या कहते हैं, 'हम विश्रसा परमाणु थे और आपने हमें प्रयोगसा बना दिया, और उसके परिणाम स्वरूप मिश्रसा हो गए हैं। मिश्रसा को विश्रसा बनाओ। यानी शुद्ध परमाणु बनाओ।' अब करने को और कुछ भी नहीं रहा है।

## जहाँ निष्कंपायमान हो जाए, वहाँ...

**प्रश्नकर्ता :** इस तरफ परमाणु स्थिर होने की प्रकिया, आपने प्रोसेस बताया। अब, दूसरी तरफ वे अस्थिर और चंचल कैसे हो जाते हैं?

**दादाश्री :** इस *पुद्गल* का स्वभाव ही चंचल है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर वह स्थिर कैसे होगा?

**दादाश्री :** ज्ञान के बाद में दिनोंदिन स्थिर होता जाता है, मूल स्वभाव तक पहुँचता जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** उसका मूल स्वभाव तो फिर स्थिर ही है?

**दादाश्री :** मूल स्वभाव स्थिर ही है। यह तो विकृत स्वभाव है। *पुद्गल* का विकृत स्वभाव चंचल और अस्थिर है।

**प्रश्नकर्ता :** वह विकृत किस प्रकार से हुआ, दादा?

**दादाश्री :** दोनों (जड़ और चेतन) के साथ में रहने से विशेष-भाव उत्पन्न हो गया। कृपालुदेव की पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मुझे इस विशेष-भाव का पता चल गया।[६]* कृपालुदेव ने लिखा है कि, 'विभाव अर्थात् विरुद्ध भाव नहीं परंतु विशेष-भाव।'[७]* तो देखो हमने साइन्टिफिक बात ही की है न! ऐसा है न, समुद्र और सूर्य दोनों साथ में होते हैं तब भाप बन जाती है। वह सूर्य ने नहीं बनाई है और न ही समुद्र

* दादाश्री ने लोगों को प्रमाण देने के लिए, रेफरन्स के तौर पर, कन्फर्मेशन के तौर पर कहा है, बाकी, 1958 में ज्ञान प्रकट होते ही उन्हें तो अनंत गुह्यतम प्रकार के स्पष्टीकरण मिल ही गए थे।)

* श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत, पेज : 759

(205) विभाव अर्थात् 'विरुद्ध भाव' नहीं परंतु 'विशेष-भाव'। आत्मा, आत्मा के रूप में परिणामित होता है, वह 'भाव' है अर्थात् 'स्वभाव' है। जब आत्मा और जड़ का संयोग होता है तब आत्मा स्वभाव से भी आगे बढ़कर 'विशेष-भाव' में परिणामित होता है, वह विभाव है। जड़ के बारे में भी इसी प्रकार से समझना है।

ने बनाई है लेकिन भाप बनती है, वह हकीकत है और फिर बाद में भाप खुद बादल बन जाती है और फिर बरसात होती है। कहेंगे, किसने किया?

**प्रश्नकर्ता :** स्वभाव से *पुद्गल* चंचल है, परंतु मूल स्वभाव से स्थिर है, वह ठीक से समझ में नहीं आया।

**दादाश्री :** स्थिर ही है सब। मूल स्वभाव से हर एक चीज़ स्थिर ही होती है, चंचल होती ही नहीं है। सिर्फ *पुद्गल* ही चंचल कहलाता है। लेकिन मूल स्वभाव अर्थात् मूल, असल सहज स्वभाव, परमाणुओं का स्वभाव स्थिर है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या ऐसा हुआ कि विश्रसा के रूप से स्थिर हैं?

**दादाश्री :** विश्रसा होने से पहले भी, लेकिन उस *पुद्गल* के सामने भगवान महावीर जैसी दृष्टि आ जाए न, जितनी महावीर भगवान की थी, वहाँ तक की, दृष्टि तीन सौ साठ डिग्री पर आ जाने के बाद में फिर उसे स्थिर ही कहा जाएगा। स्थिर कहा जाएगा, इसका मतलब क्या है कि जिन्हें किंचित्मात्र भी राग-द्वेष नहीं हैं, (जो) किंचित्मात्र भी इमोशनल नहीं हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् कंपायमान नहीं होते कहीं भी?

**दादाश्री :** कंपायमान नहीं होते। कंपायमान शब्द सही है। अविरत स्थिरता आने पर शुद्ध विश्रसा होता है।

## स्थूल से सूक्ष्मतम तक का वीतरागों का साइन्स

**प्रश्नकर्ता :** स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम, इन सब की बाउन्ड्री कौन सी है?

**दादाश्री :** स्थूल तो, यह सब जो डॉक्टरों को दिखाई देता है, वह है। बड़े-बड़े दूरबीन (माइक्रोस्कोप) से दिखाई देता है।

जो परमाणु शुद्ध हैं, विश्रसा, वे हैं सूक्ष्मतम।

जो परमाणु प्रयोगसा हैं, वे हैं सूक्ष्मतर। प्रयोगसा ही कारण-देह है।

जो परमाणु मिश्रसा हैं, वे सूक्ष्म हैं, वही प्रतिष्ठित आत्मा है।

अंदर जो परमाणु हैं, उनके अनुसार वाणी निकलती है। मन भी परमाणुओं से बना हुआ है। अभिप्राय अर्थात् अहंकार। वह अहंकार के परमाणुओं से बना हुआ है। यह ज्ञान हाज़िर रहे न, तब सभी कारण परमाणुओं का नाश हो जाएगा और वीतराग पद आ जाएगा, लेकिन इतना जल्दी से नहीं हो सकता।

वीतरागों ने अनंत ज्ञेयों को एक ही ज्ञेय में देखा था, वैसा इन 'दादा' ने एक ही ज्ञेय, एक *पुद्गल* को देखा है। *पुद्गल* तो स्वाभाविक प्रकार से एक ही है, मूल स्वभाव वाला *पुद्गल,* विश्रसा से बना हुआ! जगत् एक है, नेट, शुद्ध परमाणुओं से बना!!

प्रयोगसा से इम्प्योरिटी उत्पन्न हुई, मिश्रसा में इम्प्योरिटी रिज़ल्ट में आई और इम्प्योरिटी खत्म हो गई, तो वह विश्रसा। *पुद्गल* की अंतिम दशा है, विश्रसा।

'बाहर संसार में सभी कुछ पराया है', वैसा जाने और अनुभव करे तब समझ में आएगा कि देह के परमाणु पराए हैं। ऐसा करते-करते, ऐसा समझ में आएगा कि 'एक-एक परमाणु पराया है'।

प्रयोगसा समझ में आ जाए तो बहुत काम निकाल लेगा। हम प्रयोगसा को चार्ज कहते हैं और मिश्रसा को डिस्चार्ज कहते हैं।

लोग यह बात समझते नहीं हैं, इसलिए अपनी इस सादी भाषा में बताया, तब सीधे होते गए। क्योंकि तीर्थंकरों की खोज क्या कोई ऐसी-वैसी है? अभी कहते हैं न, कि सब ने पढ़ाई तो ज़्यादा की है जबकि पहले तो लोग अनपढ़ थे, तो इन लोगों को तीर्थंकरों के समय के शब्द अभी लिखने भी नहीं आएँगे। उन्होंने टंकोत्कीर्ण कहा, वह तो, पूरे जगत् में कोई उसका जवाब ही नहीं दे सकता, उसका अदर वर्ड (दूसरा शब्द) है ही नहीं।

धन्य हैं तीर्थंकरों को कि, जिन्होंने प्रयोगसा की खोज की है! जीव मात्र प्रयोगसा में आए बिना रह ही नहीं सकता। प्रयोगसा में आने के बाद में मिश्रसा होता है। मिश्रसा अर्थात् क्या? कड़वे-मीठे फल देने का काम ही मिश्रसा का है। लोग कहते हैं, भगवान फल देते हैं। नहीं, मिश्रसा ही फल देते हैं और फल में से वापस बीज डलते हैं। उसमें भी भगवान के घर से बीज नहीं डालने पड़ते!

# [ 6 ]

# लिंक, भाव और परमाणुओं के बीच

## परमाणु सेट हो जाते हैं, भाव के अनुसार

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु और भाव की लिंक कहीं पर तो होनी चाहिए न?

**दादाश्री :** हाँ, वह सब है और भाव के अनुसार परमाणु सेट हो जाते हैं। ये भाई ऐसा भाव करते हैं कि 'मुझे दान देना है' और वे भाई भी ऐसा भाव करते हैं कि 'मुझे दान देना है' तो दोनों में परमाणु सेट हो जाते हैं। लेकिन दोनों के परमाणु अलग-अलग होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, वह ठीक है कि हर एक के अपने-अपने हिसाब से अलग-अलग भाव होते हैं।

**दादाश्री :** भाव किस प्रकार से, कैसे-कैसे प्रकार से, किस हेतु से, वह फिर देखना होता है। उसमें सबकुछ आ जाता है। दोनों के अलग होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हर एक के अलग-अलग होते हैं लेकिन मुख्यत: परमाणु तो हैं ही न?

**दादाश्री :** परमाणु इकट्‌ठे हो जाते हैं, और कुछ नहीं। लेकिन भाव का ही परिणाम है, व्यवस्थित!

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, मुख्य असर भाव का है।

**दादाश्री :** परमाणुओं का तो बीच में एक खिलौना बन जाता है। भावों के अनुसार परमाणु आ जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** परमाणुओं का खिलौना? वह क्या है?

**दादाश्री :** इन परमाणुओं से यह बॉडी बन गई है, यह भावों से हो गया है न! यह बॉडी जो बनी है, वह भावों के अनुसार बनी है न!

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन वे परमाणु स्थूल हैं या सूक्ष्म हैं?

**दादाश्री :** परमाणु सूक्ष्म हैं लेकिन यों दिखाई देते हैं स्थूल। रूपी हैं न, उनका मोटा-मोटा भाग बनता है तो स्थूल हो जाता है। जो मूल परमाणु होते हैं, वे सूक्ष्म होते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** और भाव स्थूल हैं या सूक्ष्म?

**दादाश्री :** भाव सूक्ष्म हैं और भाव जिन परमाणुओं को खींचते हैं, उन्हें भी सूक्ष्म कहते हैं। फिर परमाणु स्थूल हो जाते हैं। फिर रूपक में पूरा शरीर दिखाई देता है।

**प्रश्नकर्ता :** ये परमाणु सूक्ष्म हैं, भाव भी सूक्ष्म हैं, दोनों उतने ही सूक्ष्म हैं लेकिन दोनों के मिलने से स्थूल बन जाता है?

**दादाश्री :** नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** तो?

**दादाश्री :** भाव से जो परमाणु खिंचते हैं, वही परमाणु सूक्ष्म हो जाते हैं, फिर दूसरे और परमाणुओं के इकट्ठे होने से स्थूल बन जाता है, मूर्ति बन जाती है।

**प्रश्नकर्ता :** उसमें दूसरे कौन से परमाणु मिल जाते हैं फिर?

**दादाश्री :** इच्छा हो, भाव में जैसा हो न, बाहर स्थूल रूप से सब वैसा ही बन जाता है। मूर्ति बन जाती है, भाव के अनुसार।

**प्रश्नकर्ता :** यह शरीर, क्या यह परमाणुओं का समूह है?

**दादाश्री :** परमाणुओं का समूह है और यह शरीर रूपी है।

**प्रश्नकर्ता :** इस जगत् में यह सबकुछ जो है, जो परमाणुओं के समूह हैं, क्या उसी अनुसार सब आकार बन गए हैं?

**दादाश्री :** हाँ, सभी आकार बने हैं, बस।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन अलग होकर सभी परमाणु अलग हो जाते हैं, और फिर वापस इकट्ठे हो जाते हैं?

**दादाश्री :** उसी की झंझट है।

**प्रश्नकर्ता :** देह का विलय होने पर वे परमाणु अलग हो जाएँगे न?

**दादाश्री :** फिर वे परमाणु निकल जाते हैं। जलाने पर वे निकल जाते हैं और जैसे थे वापस वैसे के वैसे ही बन जाते हैं। मूल तत्त्व घटता या बढ़ता नहीं है। हम ऐसा समझते हैं कि यह सब कितना नुकसान हो गया लेकिन उसे कुछ भी नुकसान नहीं होता। उसके बाद कुछ भी नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** आज कोई व्यक्ति मर जाए, फिर उसका दूसरा जन्म होना हो तो उसके जो परमाणु होते हैं तो वही परमाणु शुद्धात्मा के साथ जाते हैं न?

**दादाश्री :** नहीं, स्थूल देह के परमाणु साथ में नहीं जाते।

**प्रश्नकर्ता :** तो वे किस तरह जाते हैं, जिससे उसका दूसरा जन्म होता है?

**दादाश्री :** वह तो, वे कॉज़ेज़ परमाणु जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, वे कॉज़ेज़, लेकिन कोई से भी कॉज़ेज़ परमाणु तो हैं ही न?

**दादाश्री :** जो राग-द्वेष किए हैं, वे परमाणु तो हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** राग-द्वेष के भाव वाले परमाणु, वे परमाणु और भाव मिक्स होकर कारण शरीर के रूप में दूसरे शरीर में जाते हैं?

**दादाश्री :** राग भाव किया, उससे परमाणु खिंचे, उनके खिंचने के बाद उन पर राग का गिलट चढ़ जाता है और द्वेष किया तो परमाणु खिंचने से द्वेष का गिलट चढ़ जाता है। वहाँ पर फिर गिलट चढ़ने के बाद वे परमाणु आत्मा के साथ में जाते हैं। अज्ञान दशा में तो यह क्रिया चलती रहती है, यह चक्कर चलता ही रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो वे जो राग-द्वेष किए हुए परमाणु हैं, वे परमाणु दूसरे (अगले जन्म के) शरीर में साथ में जाते हैं?

**दादाश्री :** सूक्ष्म रूप से साथ में जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** और दूसरे शरीर में परिणामित होते हैं।

**दादाश्री :** गिलट वाले सूक्ष्म रूप से जाते हैं और वे दूसरे शरीर में परिपक्व होते हैं। जैसे कि आम के पेड़ पर जो फूल आते हैं तो उन्हें आम नहीं माना जाता। उनमें से रस नहीं निकल सकता। लेकिन वे परिपक्व हो जाते हैं तब आम बनते हैं। पहले खट्टा लगता है, उसके बाद आखिर में परिपक्व हो जाता है तब मीठा लगता है। वे राग वाले परिपक्व होकर फल देते हैं और द्वेष वाले भी परिपक्व होकर फल देते हैं। राग वाले सुख देते हैं और द्वेष वाले दुःख देते हैं। दुःख देकर वापस चले जाते हैं। फल देकर तुरंत ही वापस शुद्ध हो जाते हैं, तब गिलट खत्म हो जाता है। दुःख मिलते ही गिलट खत्म हो जाता है। ऐसा चक्कर चलता ही रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** जो राग-द्वेष उदय में आ जाते हैं, उसके बाद वे परमाणु अलग हो जाते हैं?

**दादाश्री :** परमाणु अलग। जब वे अलग होते हैं, उस समय वापस उसने जो भाव किए होते हैं, दुःख आया वह कड़वा लगता है, उस क्षण शोर मचाता है कि इसने मेरे साथ ऐसा किया, फलाने ने

ऐसा किया। अरे... वापस द्वेष के नए परमाणु खींचता है। तब वह पुराना द्वेष-वेष खत्म हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** पुराना खत्म हो जाता है और नया शुरू होता है। उस जगह पर ज्ञाता-द्रष्टा भाव रहे तो वापस दूसरे नए नहीं आएँगे न?

**दादाश्री :** तो तुरंत शुद्ध होकर चले जाएँगे, गिलट नहीं चढ़ने देंगे।

## गुह्य विज्ञान, परमाणुओं का

इतना अधिक गूढ़ साइन्स है कि आपके एक खराब विचार करने पर तुरंत ही ये बाहर के जो परमाणु हैं न, फिर वे जॉइन्ट होकर अंदर दाखिल हो जाते हैं और उस जैसा हिसाब बनता है, वे वापस वैसे ही फल देकर जाते हैं। यों ही नहीं चले जाते। अत: किसी को फल देना-करना नहीं पड़ता। बाहर से फल देने वाला कोई है ही नहीं, ऐसा कोई ईश्वर है ही नहीं जो कि आपको फल देने के लिए आए! कोई देवी-देवता भी नहीं हैं जो कि आपको फल दें। इन देवताओं के तो हमने रूपक दिए हुए हैं। इन्हें (लोगों को) भक्ति उत्पन्न हो इसलिए रूपक दिए हैं। अंदर शक्तियाँ मिलें, इसलिए रूपक दिया है। सभी ग्रह वगैरह भी सब रूपक दिए हुए हैं। बाहर जो ग्रह हैं, अंदर भी फिर उन्हीं जैसे ग्रह हैं।

हम इस प्रकार जो द्वेष से खींचते हैं न, जो खराब बोलते हैं या खराब भाव किया तो परमाणु ऐसे खराब आते हैं कि कड़वे फल देते हैं, नापसंद। अच्छा भाव किया कि अच्छे फल देते हैं, मीठे फल देते हैं और भाव-अभाव नहीं किया, 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' कर्ताभाव बंद हो गया तो पुराने परमाणु फल देकर चले जाएँगे, दूसरे नए नहीं आएँगे। इस प्रकार से यह साइन्स है, पूरी पद्धति है। यह कोई धर्म जैसी चीज़ नहीं है। धर्म तो, जब तक साइन्स में न आए, तब तक योग्यता लाने के लिए है। उसमें कोई योग्यता आए, वह अधिकारी बने, इसलिए धर्म है। बाकी, साइन्स तो साइन्स ही है पूरा।

परमाणु ही सब कर रहे हैं। जैसे कि एक व्यक्ति इतनी सी अफीम या ऐसा कुछ घोलकर पी जाए तब फिर क्या भगवान को मारने आना पड़ेगा? कौन मारता है? इसी प्रकार से यह सब भी अफीम जैसा है। परमाणु ही अंदर अलग प्रकार के बन जाते हैं। अमृत जैसे, अफीम जैसे, तरह-तरह के परमाणु, जैसे भाव होते हैं न, वैसे ही परमाणु बन जाते हैं। वह आत्मा की इतनी अधिक अलौकिक शक्ति है। जड़ की भी इतनी अधिक अलौकिक शक्ति है कि वह बहुत धारण कर सकता है। जड़ की शक्ति मैंने देखी है इसलिए मैं बता देता हूँ कि बहुत बड़ा साइन्स है, यह। आत्मा की शक्ति तो है ही, वह तो पूरा जगत् भी एक्सेप्ट करता है लेकिन जड़ की भी ज़बरदस्त शक्ति है। आत्मा से भी बढ़ जाए ऐसी शक्ति है। इसीलिए यह सारा फँसा हुआ है न, वर्ना फँसने के बाद में आत्मा जब चाहे तब छूट क्यों नहीं सकता? तो कहते हैं, 'नहीं, जब तक इस विज्ञान को नहीं जानेगा तब तक नहीं छूट सकेगा। खुद असल विज्ञान में नहीं आएगा तब तक नहीं छूट सकेगा।'

अतः यह पूरा साइन्स है। धर्म तो कुछ हद तक ही है। मनुष्यों में योग्यता लाता है, एक प्रकार के फॉर्मेशन में आता है। फॉर्मेशन में आने के बाद में उसे इसकी प्राप्ति हो जाती है। कुछ प्रकार की नॉर्मेलिटी में आने के बाद में, उसे यह साइन्स मिलेगा तभी काम होगा, वर्ना नहीं होगा।

यों भाव करते ही पूरे परमाणु चेन्ज हो जाते है, और आत्मा का मूल स्वभाव भी ऐसा ही है कि जैसी कल्पना करता है वैसा ही बन जाता है। इसलिए हम आपको कौन सी कल्पना देते हैं? कि 'तू शुद्धात्मा ही है।' आप अन्य किसी प्रकार से और कुछ हो ही नहीं और वास्तव में एक्ज़ेक्ट ऐसा ही है, गप्प नहीं लगवाते। लगाई हुई गप्प रहेगी नहीं। एक घंटे के लिए भी नहीं टिकेगी। शायद अंधश्रद्धा से छः महीने तक टिक जाए, लेकिन लंबे समय तक नहीं रहेगी। वह तो टूट ही जाएगी और वह अंदर शांति नहीं देगी। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह निर्विकल्प दशा है, उस दशा में परमाणु नहीं घुस सकते। विकल्प से परमाणु घुस जाते हैं।

## गुह्य विज्ञान - कारण-देह में से कार्य देह तक का

**प्रश्नकर्ता :** अब वे जो चार्ज हो चुके परमाणु हैं, वही कारण-देह है?

**दादाश्री :** हाँ, कारण शरीर अर्थात् चार्ज हो चुके परमाणु, वह कॉज़ल बॉडी है। कॉज़ल बॉडी आत्मा के साथ-साथ आती है।

**प्रश्नकर्ता :** और फिर जन्म होते ही डिस्चार्ज होना शुरू हो जाता है?

**दादाश्री :** नहीं। इसके गर्भ में आने के बाद इफेक्टिव बॉडी बनने की शुरुआत होती है। जन्म होने तक वह इफेक्टिव बॉडी तैयार हो जाती है। अब, बॉडी होती तो छोटी है लेकिन उसमें पूरी ज़िंदगी के सभी इफेक्ट, उसमें इतने से में रहे हुए हैं। अतः जैसे-जैसे बाहर संयोग मिलेंगे, वैसे-वैसे इफेक्ट फल देते जाएँगे।

उसमें शरीर इतना (छोटा) सा है लेकिन अंदर स्त्री (से संबंधित) विषय-विकार हैं। विषय के परमाणु हैं लेकिन वे अभी जन्म के बाद तुरंत नहीं होते। तेरह-चौदह सालों के बाद, पंद्रह सालों के बाद, बीस सालों के बाद उसमें विषय फूट निकलेगा। जब काल परिपक्व होता है तब वह फल देने के लिए तैयार हो जाते हैं। बाकी, अंदर माल-सामान पूरा ही भरा हुआ है, इतने से में।

**प्रश्नकर्ता :** वह तो, जैसे कि बड़ के पेड़ का बीज होता है तो उसमें पूरा ही बड़ समाया रहता है।

**दादाश्री :** बीज में पूरा ही बड़ समाया हुआ है, उसी प्रकार से यह सब भी बीज में समाया हुआ है। बीज जन्म स्थान कहलाता है, तो उसके आधार पर फिर हमने यहाँ जन्म लिया। गर्भ में दाखिल होता है, तभी से शुरुआत हो जाती है इफेक्टिव बॉडी के बनने की, तो (जब) जन्म होता है तब इफेक्टिव बॉडी बनकर तैयार हो चुकी होती है। उसके बाद बच्चा होता तो इतना सा है लेकिन उसमें सारा ही

सामान, चार बार शादी करनी हो, तो चार बार शादी-वादी करना, सभी कुछ रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** कितने बच्चे हैं, यह सब कितना है, क्या होना है, वह सब...

**दादाश्री :** वह सारी झंझट! फिर इफेक्ट (जैसा) फल देते जाते हैं, वैसा डिस्चार्ज होता जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** डिस्चार्ज-चार्ज दोनों ही होता जाता है, ज्ञान न ले, तब तक?

**दादाश्री :** डिस्चार्ज-चार्ज दोनों होता जाता है, उसी को संसार कहते हैं न। डिस्चार्ज भोगता है और चार्ज भी होता है। वर्ना फिर अगले जन्म में क्या करेगा? अज्ञानी है न!

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् ये जो परमाणु हैं, वे बीज में ही होते हैं या बाहर होते हैं? बीज, वह जो कारण शरीर आता है, वह कारण शरीर, वही चार्ज हो चुके परमाणु हैं न?

**दादाश्री :** जो कारण शरीर होता है न, उसी से बन जाती है इफेक्टिव बॉडी। गर्भ में जाने के बाद में चार्ज हो चुके परमाणु, वे बीज के अंदर ही होते हैं न! अब, वह इफेक्टिव बॉडी बनी और वही फल देती है। वह तो, ये जो चार्ज हुए परमाणु थे, उनसे यह इफेक्टिव बॉडी बन गई, वे सभी परमाणु खर्च हो गए। खर्च हो गए और अन्य स्वरूप में परिवर्तित हो गए। जो परमाणु कॉज़ेज के रूप में थे, वे सभी खर्च हो गए और अब डिस्चार्ज, इफेक्टिव के रूप में रहा। अब वह इफेक्टिव फल देता है। उसके लिए पिछले परमाणुओं की ज़रूरत नहीं रहती।

**प्रश्नकर्ता :** चार्ज परमाणु बीज में होते हैं या बाहर भी होते हैं? बीज के अलावा बाहर भी वे चार्ज परमाणु होते हैं क्या? क्योंकि आपने यह बताया कि जो चार्ज हो चुके थे परमाणु, उनमें से कॉज़ल बॉडी बनी।

**दादाश्री :** ये चार्ज हो चुके परमाणु ही कॉज़ल बॉडी है। उन चार्ज परमाणुओं का मतलब क्या है? उसने परमाणु लाल रंग के किए होंगे तो लाल हो जाता है, हरा किया तो हरा हुआ, किसी ने पीला किया तो पीला हुआ। फिर वह जो पीला हो चुका है, वह इफेक्ट में जाता है। उससे इफेक्ट बनता है और फिर वह इफेक्ट फल देता है। काले परमाणु हों तो पूरा ही शरीर काला दिखाई देता है, वे परमाणु नहीं रहते उस समय।

**प्रश्नकर्ता :** फिर इफेक्ट आ जाता है।

**दादाश्री :** परमाणु तो इफेक्टिव हो चुके हैं सारे। अब काल परिपक्व होने पर इफेक्ट फल देने लगता है।

**प्रश्नकर्ता :** बीज के समय जिन चार्ज हो चुके परमाणुओं का संयोग हुआ न, बीज में उनका समावेश हुआ, उसके अलावा बाहर भी कोई परमाणु बाकी रहते हैं क्या?

**दादाश्री :** बीज तो इफेक्टिव हो जाता है इसलिए अन्य (पुराने) परमाणु रहे ही नहीं, लेकिन वे वहाँ (गर्भ में) नहीं रहे, (नई इफेक्टिव) बॉडी में नहीं रहे। जो इफेक्टिव बॉडी है न, उसके परमाणु सूक्ष्मातिसूक्ष्म होते हैं लेकिन बाहर स्थूल रहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** बाहर यानी कहाँ?

**दादाश्री :** बाहर, यह सब जो आँखों से देखते हैं, खाते हैं, पीते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** वह तो है, बाहर तो फिर जो भी है, वह है।

**दादाश्री :** नहीं-नहीं! ऐसा नहीं। हम जो खाते हैं न, वे पहले के बीज हैं। पहले के जो परमाणु होते हैं, उन्हीं परमाणुओं के उदय में आने पर बाहर से चीज़ें मिलती हैं। लेकिन बाहर कैसे हैं? स्थूल में जो (भोजन) लेते हैं, बाहर का स्थूल है। आप राई के दो दाने खाते हो तो अंदर राई के दो परमाणु तैयार हुए होंगे तो दो ही दाने लिए जा सकेंगे, फिर तीसरा नहीं लिया जा सकेगा।

**प्रश्नकर्ता :** अच्छा, उन बाहर के परमाणुओं से इफेक्ट आता है?

**दादाश्री :** हाँ।

**प्रश्नकर्ता :** इस विषय का भी ऐसा ही है, दादा?

**दादाश्री :** सभी कुछ, सभी कुछ। आज (यदि) आप अमरूद खाते हो, रोज़ तो कहीं वह नहीं खाते, और आज अमरूद खाया, उसका क्या कारण है? तो वह यह है कि अंदर अमरूद के परमाणुओं का उदय आया। जिन परमाणुओं के जो भी उदय आते हैं, तब वे उदय सब मिलवा देते हैं। इफेक्ट के रूप में सभी संयोग मिल जाते हैं और फिर वह खाता भी है। फिर कहता क्या है कि, 'मैंने अमरूद खाया।' अरे भाई, तू क्या खा सकता था? तू खाने वाला होता तो कल क्यों नहीं खाया? ऐसा पागल जैसा बोलता है।

**प्रश्नकर्ता :** सभी कहते हैं न, दादा। पूरी दुनिया ऐसा ही कहती है।

**दादाश्री :** यह तो हम किसी को नहीं बताते। यह बात करते हैं कि भाई, ऐसा पागल जैसा क्यों बोल रहे हो। कहता है, 'मैंने अमरूद खाया' तो कल दे रहे थे तब क्यों नहीं खाया था? अतः ये बाहर से जो परमाणु मिलते हैं, वह बात डॉक्टरों की समझ में नहीं आ सकती। एक डॉक्टर से मैंने कहा कि 'आप लोगों से कहते हो कि आज यह ज़्यादा खाना और यह कम खाना, और ऐसा सब कहते हो' इसमें खाना या न खाना किसके अधीन है? तब उन्होंने कहा कि 'हम नहीं खाना चाहें तो नहीं खाएँगे और खाना चाहें तो खा पाएँगे।' ओहोहोहो... अंदर डिज़ाइन है उसी अनुसार खा पाएँगे। अंदर जैसी डिज़ाइन है उसी अनुसार खाओगे। डिज़ाइन में इतना सा भी बदलाव नहीं हो सकेगा।

**प्रश्नकर्ता :** आप ऐसा कहना चाहते हैं कि वैसा ही व्यवस्थित गढ़ा जाता है?

**दादाश्री :** उसे जो कहो वह। फिर आपको जो कहना हो वह

कहना, लेकिन हमारा यह कहना है कि अंदर जो डिज़ाइन है, उसी अनुसार खा पाओगे।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् वहाँ बीज में (इफेक्टिव बॉडी में) जो सूक्ष्म परमाणु हैं, उनका संयोग उन स्थूल परमाणुओं से होता रहता है?

**दादाश्री :** वह आकर्षण ही होता है एक प्रकार का। यानी हम कहीं पर भी गए हों और हम घर पर कहकर नहीं जाते कि आज करेले की सब्ज़ी बनाना लेकिन घर पहुँचते हैं तब करेले की सब्ज़ी तैयार होती है, बाकी सब होता है और हम खाते भी हैं। इसका आधार क्या है? क्या यह निराधार है? तब कहते हैं, 'नहीं, एक भी परमाणु निराधार नहीं है।' तब कोई पूछे कि 'ये लालभाई सेठ खाते हैं?' तो कहेंगे, 'नहीं, लालभाई सेठ में संडास जाने की भी शक्ति नहीं है, वे क्या खा सकते थे? यह स-आधार है। दूसरे परमाणुओं का, सामने वाले परमाणुओं का आकर्षण है।

थाली में चार रोटियाँ आईं हों और दो ही खाई जाती हैं व दो पड़ी रहती हैं। किस हिसाब से? अत: समझ में नहीं आती न, यह सूक्ष्म बात!

## हिसाब, नए-पुराने कषायों का

**प्रश्नकर्ता :** अभी मुझ में जो अहंकार है, मृत्यु के बाद में वह अहंकार उतना ही साथ में जाता है या कुछ कम या ज़्यादा जाता है या अगले जन्म में नया उत्पन्न होता है?

**दादाश्री :** नया उत्पन्न होता है।

**प्रश्नकर्ता :** पिछला वाला बिल्कुल भी नहीं?

**दादाश्री :** पिछला वाला पूरा विलय हो जाता है। नया हिसाब होता है। वह अहंकार, क्रोध-मान-माया-लोभ सबकुछ नया, पुराना नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** वह नया कम-ज़्यादा किस आधार पर होता है?

**दादाश्री :** यह है नया, लेकिन वह तो बैलेन्स शीट (सार) है। उसके पास पूरी ज़िंदगी का जो माल है न, उसका सार लेकर जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो वह पिछला हुआ न?

**दादाश्री :** नहीं, पिछला नहीं कहलाएगा वह। उस माल का सार निकाला जाता है और उस सार के आधार पर वह माल निकलता है। अभी जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वे सब तो विलय हो जाएँगे।

यह जो माल है, वह मुख्यत: तो पिछला ही है। पिछला अर्थात् उसका अर्थ ऐसा नहीं है, आप जैसा कह रहे हो वैसा नहीं है। पूरी ज़िंदगी आपने जो कुछ भी किया है न, उसके सार के रूप में है और आपके क्रोध-मान-माया-लोभ तो इस जन्म में विलय हो ही जाते हैं। अभी जो हैं, वे विलय हो जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लोभ और अहंकार?

**दादाश्री :** कुछ भी नहीं रहेगा। अलग ही प्रकार का होगा। अभी तो यह सब ऐसा नहीं हैं कि आपके कन्ट्रोल में रहे।

**प्रश्नकर्ता :** बच्चे के जन्म के बाद में, अहंकार कहाँ से उत्पन्न होता है?

**दादाश्री :** जो अप्रकट था, वह प्रकट हो जाता है। उत्पन्न नहीं होता।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् साथ में तो है ही न?

**दादाश्री :** हाँ, साथ में तो है ही। लेकिन माल तो सारा पिछला वाला ही है लेकिन पिछला अर्थात् पिछले जन्म का माल नहीं है, पिछले जन्म के क्रोध-मान-माया-लोभ का तो विलय हो गया और पिछले जन्म में जो अन्य किसी हिसाब से बाँधे थे, उनके सार के रूप में निकलता है यह। हिसाब का सार आता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर जन्मोंजन्म के कर्म क्यों रहे हुए हैं?

**दादाश्री :** वह बीज डालता जाता है न, वही की वही चीज़, फिर से बीज डालता जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** पिछले वाले विलय हो जाते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, पिछले वाले विलय हो जाते हैं और वापस नया बीज डालता जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** या तो अधिक बाली (जैसे गेहूँ की बाली) होती है या कम।

**दादाश्री :** हाँ, कम होती हैं लेकिन वह बीज डालता जाता है। तो आप में बहुत बीज नहीं डले हैं इसलिए आपका अब नए ही प्रकार का होगा, जैसा यह है वैसा नहीं। आप तो यहाँ पर (ज्ञानी के पास) आए हो और वही सारे बीज डले हैं।

किस-किस चीज़ के बीज डले हैं, वह तो जातिस्मरण ज्ञान हो तब पता चले।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन जातिस्मरण ज्ञान होगा तो सही न?

**दादाश्री :** किसलिए? उसकी ज़रूरत क्या है?

**प्रश्नकर्ता :** हम नहीं कहते कि वह उत्पन्न होता है?

**दादाश्री :** नहीं-नहीं। लेकिन उसकी ज़रूरत ही नहीं है न! उसकी ज़रूरत है, ऐसा करने जाएँगे तो अपना मुख्य (काम) रह जाएगा फिर।

**प्रश्नकर्ता :** सूक्ष्म बॉडी के साथ में क्या-क्या जाता है? यदि पिछले हिसाब में से नया ही अहंकार उत्पन्न होना है, तो उस हिसाब में, सूक्ष्म बॉडी के साथ में पूरा हिसाब जाता है?

**दादाश्री :** सभी परमाणु जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यानी कि लोभ के, मान के, सभी?

**दादाश्री :** नहीं-नहीं। अभी तो वे सब इकट्ठे होने के बाद वहाँ पर प्रकट होंगे। अभी तो यहाँ पर मिले-जुले (मिक्स्चर) परमाणुओं के रूप में हैं वे कॉज़ेज़ के परमाणु। और फिर (जब) इफेक्ट आएगा तब वे क्रोध-मान-माया-लोभ कहलाएँगे। तब तक तो ये परमाणुओं के रूप में रहते हैं। इसीलिए हम कहते हैं कि यह इस जन्म का नहीं है। इस जन्म के (अभी तक हो चुके कॉज़ेज़ परमाणु) जलकर साफ हो गए।

इस जन्म का हिसाब तो खत्म हो जाएगा (हिसाब का सार अगले जन्म में साथ में जाएगा), अतः अभी आपका जो स्वभाव है, वह पूरा ही खत्म हो जाएगा। नए सिरे से वह पूरा ही विलय हो जाएगा। अब अगले जन्म में आपका स्वभाव ऐसा नहीं रहेगा।

# [ 7 ]
# परमाणुओं के असर का साइन्स

## परमाणु से परमाणु का मिलन

आपको 'व्यवस्थित' समझ में आ गया है? अपमान हो, ऐसी जगह जाना पड़े तो आपको क्या होगा?

**प्रश्नकर्ता :** दादा, आपने कहा है न, कि एक परमाणु से दूसरे परमाणु का मिलन* व्यवस्थित के लॉ के बिना नहीं हो सकता, तो यह गालियाँ वगैरह जो सब मिलती हैं, वह सब तो थोक में आता है, तो वह व्यवस्थित ही है?

**दादाश्री :** बहुत अच्छी बात कही। हमारी यह सूक्ष्म बात आपने पकड़ ली। एक परमाणु से दूसरे परमाणु का मिलन व्यवस्थित के नियम से बाहर नहीं है। तो यह एक शब्द जो वाणी के रूप में निकलता है, यदि उसके परमाणुओं को अलग किया जाए तो पूरा रूम भर जाएगा। दो एकदम साफ परमाणुओं का मिलन व्यवस्थित के नियम से बाहर नहीं हो सकता, तो इन विकृत परमाणुओं की तो बात ही क्या करनी? हर एक परमाणु व्यवस्थित के नियम के अधीन है। और एक भी

* यहाँ सभी जगह पर जो साफ या कुरूप, उन्हें विभाविक *पुद्गल* परमाणु समझना है। यह शुद्ध परमाणुओं की बात नहीं हैं। शुद्ध परमाणु अलग ही हैं। 'व्यवस्थित' विभाविक *पुद्गल* परमाणुओं पर ही लागू होता है।

परमाणु ऐसा नहीं है जो कि एक जगह पर खड़ा रहे। निरंतर समसरण होता ही रहता है।

जो ग्रहण होते हैं, वे सूक्ष्म, रूपी परमाणुओं के रूप में होते हैं। वे भर जाते हैं और फिर स्थूल रूपक में आता है, उसके बाद क्रिया होती है। पूरे ही ब्रह्मांड के परमाणु भरे हुए हैं। कोई एक भी व्यापार बाकी नहीं रखा।

तो यह सब परमाणुओं के असर वाला है। तो यह सारा साइन्स मुख्य रूप से तो अपने यहीं पर था। बाद में यह साइन्स यहाँ से फॉरेन में गया।

अब, वे परमाणु कैसे थे? वर्ल्ड में वे जो सारे परमाणु हैं, रूपी परमाणु, वे सभी प्योर हैं। लेकिन लोग ऐसा कहते हैं, 'आप नालायक हो।' 'नालायक' बोलने वाले को यह भान नहीं है, सुनने वाले को भी भान नहीं है। अब सुनने वाले पर जितना असर हुआ, उसमें उतने ही परमाणु प्रविष्ट हुए और बोलने वाले में भी परमाणु पहुँचते हैं। सिद्धों को नहीं पहुँचते। सिद्धों पर परमाणुओं का असर नहीं होता।

आप जितना क्लेश करोगे, सामने वाले के उतने ही परमाणु आप में प्रविष्ट होंगे। उससे सामने वाला भी बिगड़ेगा और आप भी बिगड़ोगे।

आपने किसी से कहा हो कि, 'यह जज अच्छा नहीं है'। फिर उसके बाद आप उन जज के पास जाएँगे तो, पहले जो खराब बोले थे उन परमाणुओं का, जज को आपकी आँखों पर से ही पता चल जाता है। परमाणु पहुँच जाते हैं। उसी प्रकार यदि हम किसी के सामने बोलें कि ये जज अच्छे हैं तो क्योंकि हमारे अंदर उनके लिए अच्छे परमाणु भरे हुए हैं इसलिए कुछ समय बाद जज पर अच्छे का असर होगा ही। कुछ भी उल्टा सोचने योग्य नहीं है और सीधा भी सोचने योग्य नहीं है (शुद्ध देखना है)।

जो-जो परमाणु इकट्ठे (चार्ज) किए हैं, (डिस्चार्ज होते समय) वैसे ही विचार छप जाते हैं और वही परमाणु उदय में आते हैं। यदि

खुद ही सोच रहे होते तो मनचाहे विचार ही आते लेकिन जैसे परमाणु भरे हैं, वही निकलते हैं। विचार संयोगों के अधीन हैं।

हर एक परमाणु का एक कोना पॉज़िटिव होता है, एक नेगेटिव होता है। अपने देश में सभी को एक ही आवाज़ में बरसात को 'वैलकम' कहना चाहिए। लेकिन (जब) बरसात आती है तब कोई कहता है 'अभी नही आना'। कोई कहता है, 'जल्दी आना' और कोई कहता है 'दो दिन बाद आना।' नए कपड़े पहने हों और बरसात आ जाए न, तो बरसात को गालियाँ देता है। हर कोई अपनी-अपनी सहूलियत के अनुसार बरसात से कहते हैं तो फिर बेचारी बरसात भी क्या करे।

जो भी परमाणु निकलते हैं, वे वेग हैं लेकिन उन पर सोचकर लोग उन्हें आवेग में ले आते हैं। विचारों में तन्मयाकार होने पर बीज डलते हैं। लेकिन यदि उसके ज्ञाता-द्रष्टा बन जाएँ तो सभी परमाणु शुद्ध होकर चले जाएँगे।

सूक्ष्म अहंकार के परमाणु इकट्ठे हो जाने पर उन्हें निकालना बहुत मुश्किल है। इन परमाणुओं की सेटिंग ही ऐसी है कि अहंकार उत्पन्न हुआ कि उसे मार पड़ती है।

हर एक परमाणु का हिसाब अलग होता है। तेरे परमाणु यदि इन्हें देंगे तो उनके लिए हल्के रहेंगे, कहेंगे कि इतने हल्के! और यदि वैसे परमाणु मुझे मिलें तो मुझे नहीं जैसा लगेगा। ऐसा है परमाणुओं का इफेक्ट! इसका कारण क्या है कि मन का विकास नहीं हुआ है, मनोबल का विकास नहीं हुआ है। तो अब धीरे-धीरे विकास होता जाएगा। (जैसे-जैसे) आत्मा की शक्ति बढ़ती है वैसे-वैसे विकास होता जाता है। क्या सभी को एक सरीखे दुःख महसूस होते होंगे? नहीं। क्योंकि सभी के मन में हिम्मत के अलग-अलग परमाणु होते हैं। जिसमें हिम्मत के परमाणु होते हैं, वह क्या कहता है कि 'ये तो चार ही लुटेरे आए हैं!' वह शांति से खाना खाता है, उन पर ध्यान नहीं देता, जबकि दूसरे तो काँप जाते हैं।

## भिन्न परमाणुओं का प्रमाण

कोई आत्मा पिता-पुत्र बन ही नहीं सकता। कोई आत्मा स्त्री-पुरुष बन ही नहीं सकता। सब परमाणुओं की वजह से है।

क्योंकि आपका (पुरुष का) शरीर भी परमाणुओं से बना हुआ है। उनका (स्त्री का) शरीर भी परमाणुओं से बना है लेकिन आपका क्रोध और मान से बना हुआ है और उनका माया यानी कपट व लोभ से बना हुआ है। दोनों शरीर परमाणुओं से बने हैं। यदि कोई पुरुष, स्त्री के साथ रहकर कपट और मोह के परमाणु भरे तो अगले जन्म में स्त्री बन जाता है और कोई स्त्री, पुरुष के साथ रहकर पुरुष जैसे परमाणु भरे, कपट और मोह के परमाणु कम भरे तो पुरुष बन जाती है। आत्मा वही का वही है। सत्संग से मोह और कपट के परमाणु कम हो जाएँ तो पुरुष में जाता है।

पुरुष में तीन जेंडर (जाति) होते हैं। स्त्री में और नपुंसक में भी तीन जेंडर होते हैं। हर एक में नर, नारी और नान्यतर के परमाणु होते हैं। देह परमाणुओं से बना है, उसमें तीनों प्रकार के परमाणु होते हैं। वे सभी परमाणु मिक्स्चर हैं। जीव मात्र में तीन प्रकार के परमाणु होते हैं। पुरुष लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग, सभी जीव इन तीनों प्रकार के परमाणुओं से ही बने हैं, वर्ना पुरुषों में स्तन नहीं होते। उनमें यदि परमाणु बढ़ जाएँ तो वह पुरुष, स्त्री जैसा दिखाई देगा। स्त्रियों में यदि पुरुष के परमाणु बढ़ जाएँ न, तो ज़रा-ज़रा, छोटी-छोटी सी मूँछें होती हैं यहाँ पर। यह सारा बैलेन्स परमाणुओं पर ही आधारित है और उन तीनों (प्रकार के) परमाणुओं का। नपुंसक के परमाणु खूब बढ़ जाएँ तो वह नर्क में जाता है। नर्कगति के सभी जीव नपुंसक कहलाते हैं। नपुंसक को तो बहुत वेदना होती है। स्त्री जाति को सेकन्ड नंबर की वेदना होती है और पुरुष का अंतिम नंबर (सब से कम वेदना) आता है, वेदना के बारे में।

स्त्री के परमाणु बढ़ जाएँ तो उसमें स्त्री-सहज गुण होते हैं और

पुरुषों के परमाणु इकट्ठे हो जाएँ तो उसमें पुरुष-सहज गुण होते हैं। उसमें अन्य कोई विशेषता नहीं है।

इसीलिए पुरुषों से कहा है कि (यदि) वे माताजी की भक्ति करेंगे तो क्या होगा? स्त्री परमाणु सुंदर हो जाएँगे। अत: पुरुषों में जो स्त्री के परमाणु हैं, वे परमाणु सुंदर हो जाएँगे। तो क्या होगा? वह बहुत चंचल होगा तो वह सब खत्म हो जाएगा और स्थिरता आ जाएगी। चंचल नहीं होते? टिकते नहीं हैं, किसी भी जगह पर टिककर नहीं बैठते।

ये स्त्री परमाणु मोह वाले होते हैं और वे (माता जी की भक्ति से) स्त्री परमाणु सुंदर हो जाते हैं, पुरुष मोह रहित होते हैं, उससे उनमें स्थिरता आ जाती है। स्त्रियों जैसी स्थिरता आ जाती है। यह तो धमाचौकड़ी करता रहता है पूरे ही दिन। चैन से बैठता ही नहीं है, पल भर भी और स्त्रियाँ, आराम से, जैसे कुछ भी नहीं गिरने वाला, उस तरह रहती हैं! और इन्हें तो मन में ऐसा होता है कि यह गिरेगा कि वह गिरेगा, यह गिरेगा कि वह गिरेगा?

**प्रश्नकर्ता :** लिंग का अर्थ क्या है?

**दादाश्री :** अपने आत्मा के अलावा, बाकी सब लिंग कहलाता है। आत्मा के अलावा *पुद्गल* को लिंग कहते हैं। वे तीन प्रकार के लिंग हैं, स्त्रीलिंग, पुरुष लिंग और नपुंसक लिंग।

फिर लिंग का अर्थ तो ये कपड़े पहनते हैं, वह भी लिंग (त्यागी लिंग, गृहस्थ लिंग) कहलाता है। फिर सब लिंग ही कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** मूर्ति को भी लिंग कहते हैं?

**दादाश्री :** सभी को लिंग ही कहा जाता है। यह सब जो *पुद्गल* भाव है न, वे लिंग कहलाते हैं। (और आत्मा अलिंग है)।

यह तो पूरा साइन्स है, विज्ञान है। आप तो मुक्ति से लेना-देना रखो। इस विज्ञान का तो अंत आ सके, ऐसा नहीं है। एक बार समझ

लेना चाहिए कि, 'दादा, हमें बात समझाइए कि हकीकत में यह क्या है'। तब फिर मन में भाव नहीं रहेगा या यह जानने की इच्छा नहीं होगी।

## परमाणु क्रोध के...

क्रोध का अर्थ क्या है? वे तो बाह्य (डिस्चार्ज) प्रकृति के परमाणु हैं। अंदर से यदि अवस्था के साथ तन्मयाकार हो जाएँ तो स्पार्क होगा। लेकिन (यदि) तन्मयाकार नहीं होगा, अंदर पॉज़िटिव और नेगेटिव तार जॉइन्ट नहीं होने देगा तो स्पार्क नहीं होगा। हम शुद्धात्मा हैं इसीलिए वे उग्र परमाणु अपने नहीं हैं। वे उग्र परमाणु निकलें तो उनमें हमें तन्मयाकार नहीं होना है और उन्हें देखते ही रहना है। यह सब अज्ञानता से ही उत्पन्न होता है। व्यवहार की (नासमझी) और ज्ञान की, इस प्रकार दो अज्ञानताएँ हैं। व्यवहार की नासमझी से उग्रता आ जाती है। वास्तव में तो व्यवहार में उग्र होने जैसा है ही नहीं। चीज़ बिगड़ जाए लेकिन मन नहीं बिगड़े, ऐसा होना चाहिए। ज्ञान के बाद में क्रोध नहीं रहता, वह गुस्सा कहलाता है। क्योंकि फिर ज़रा सा भी तंत नहीं रहता।

**प्रश्नकर्ता :** आसक्ति और तंत में क्या फर्क है? क्या आसक्ति में ज़बरदस्त अटैचमेन्ट रहता है? क्या उसमें मेरा या मालिकीपन रहता है?

**दादाश्री :** 'मेरा', वह अलग चीज़ है और आसक्ति, वह चीज़ अलग है।

**प्रश्नकर्ता :** और तंत?

**दादाश्री :** तंत तो एक श्रद्धा है, उल्टी श्रद्धा, मिथ्या श्रद्धा। इसलिए वह तंत रहता है। मिथ्या श्रद्धा गई और सम्यक् श्रद्धा बैठ गई और सम्यक् दर्शन बैठ गया कि यह (आत्मा की तरफ का) तंत शुरू हो जाता है। अत: यह क्षायक समकित है। इस काल में समकित का भी ठिकाना नहीं है जबकि यह तो क्षायक समकित है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह तंत शब्द तो मैंने नया सुना।

**दादाश्री :** मैं आपको समझाता हूँ। हम वहाँ यात्रा में गए थे, वहाँ पर रात को आपसे कोई कुछ कह देता था तो सुबह आपको उसका तंत नहीं रहता था। वह (जब) फिर से मिलता था न, तो आप इस तरह से बैठते थे जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो और यह ज्ञान मिलने से पहले अंदर असर होता रहता था, वह कहलाता है तंत।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन जैसे इस खराब चीज़ के लिए हम तंत शब्द का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार जब बहुत राग हो, अत्यंत, तो वह क्या कहलाएगा?

**दादाश्री :** उसका भी तंत रहता है। सभी तंत टूट जाने के बाद में आसक्ति रहती है। विकर्षण और आकर्षण, ये दो रहते हैं, तंत छूट जाता है।

मानी और क्रोधी तो अच्छे हैं, लोभी और कपटी अच्छे नहीं हैं। लोभ के परमाणु क्या एक जन्म के हैं? अनंत जन्मों से इकट्ठे होते आए हैं। क्रोध के परमाणु सूक्ष्म हैं, फिर भी वे आँखों से दिखाई देते हैं। जिन परमाणुओं के साथ मरता है, वही परमाणु वापस मिलते हैं। एक साधु ने खूब क्रोध किया तो उसके ब्रेन की नस फट गई, वह मर गया। उसके बाद (अगले जन्म में) नाग बना, चंडकोशिया नाग। तो महावीर भगवान ने जाकर उसका कल्याण किया। साधुपने में क्रोध के परमाणु इकट्ठे किए और एडजस्टमेन्ट किया इसलिए डिस्एडजस्टमेन्ट होने के लिए उसे ज़हरीला नाग बनना ही पड़ा। तो वह उसका एक जन्म का एडजस्टमेन्ट होता है। उसे भोगकर वह वापस जहाँ था वहाँ चला जाता है।

आत्मा में गुस्सा और प्रेम है, वह तो भ्रांति वाले संसार ने ढूँढ निकाला है। (मूल) आत्मा में प्रेम नामक गुण है ही नहीं और (व्यवहार) आत्मा का जो प्रेम है, वह शुद्ध प्रेम है। उसे लौकिक प्रेम जैसा प्रेम नहीं कहा जाता, अलग ही चीज़ है वह तो। (उस प्रेम में वीतरागता होती है)। यह प्रेम तो घड़ी भर में चढ़ता और घड़ी भर में उतर जाता है। यह तो आसक्ति है। शुद्ध प्रेम नहीं है। आलपिन और चुंबक के

बीच क्या प्रेम है, पूछ आओ न? क्रोध, वह हॉट (गरम) परमाणु हैं और प्रेम, माइल्ड (ठंडा) परमाणु हैं। सब परमाणुओं का ही हैं, *पुद्गल* की करामात है। चर्मचक्षु से जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब यथार्थ नहीं है।

(यदि) जाने तो वह ज्ञान कहलाता है, और करे तो वह कहलाता है क्रोध। भान ही भूल जाती है पूरी दुनिया। उस समय कुछ होश ही नहीं रहता। कोई बाप जी हों तो बाप जी को तो होश ही नहीं रहता न! तुझे उग्रता रहती है या नहीं? शायद कभी देह उग्र हो जाए, तो देह के वैसे गुण होते हैं। इन *पुद्गल* परमाणुओं के बहुत प्रकार के गुण हैं। हाँ, ठंडे परमाणु होते हैं, उग्र परमाणु होते हैं, शुष्क परमाणु होते हैं, कोमल परमाणु होते हैं। अर्थात् ये सारे परमाणुओं के गुण होते हैं, वे गुण दिखाते हैं। बोलो, अज्ञानी तमन्याकार हो जाता है, क्रोध होते ही और खुद क्रोध करता है। ऐसा कहता है, 'मैंने क्रोध किया' जबकि ज्ञानी सिर्फ जानते हैं, इतना ही फर्क है। और बाद में धीरे-धीरे वे परिणाम भी कम होते जाते हैं।

ज्ञान देने के बाद में क्रोध के बजाय उग्रता के परमाणु रहते हैं और लोभ के बजाय आकर्षण के परमाणु रहते हैं। यह तो जानता है कि चंदूभाई सख्ती से बोले, कमज़ोर रहे, (जब तक) वह ऐसा जानता है, तब तक वह उग्र है लेकिन आत्मा उसमें एकाकार नहीं होता तब तक वह क्रोध नहीं कहलाता। वे परमाणु के गुण हैं और (यदि) आत्मा उनमें एकाकार हो जाए तो वह क्रोध कहलाता है। नहीं तो कहा जाएगा कि वीतरागता में बोले।

## वह है, पॉज़िटिव और नेगेटिव का आकर्षण

यह सारा ही परमाणुओं का आकर्षण है। आकर्षण-विकर्षण में दो प्रकार के परमाणु हैं। जो द्वेष के परमाणु भरकर लाया है वह द्वेष करता है। जो राग परमाणु लाया है, वह राग करता है। क्रोध आता है, क्रोध में परमाणुओं की उग्रता रहती है और लोभ में लक्ष्मी से संबंधित परमाणुओं के प्रति आकर्षण रहता है। लोभ होता है, राग

आता है, तो वह कैसे बंद हो सकते हैं? जो परमाणु लेकर आया है, वे निकलेंगे ही। लोग *पुद्गल* के आकर्षण को राग कहते हैं। राग वास्तव में राग नहीं है परंतु मान्यता की भूल है। राग, वह एक सरीखे स्वभाव वाले परमाणुओं का आकर्षण नामक गुण है। वह तो *पुद्गल* की करामात है। माता और बालक बैठे हों और माता वहाँ से उठकर जाने लगे तो बालक भी पीछे-पीछे जाता है। वह ऐसा समझकर नहीं जाता कि माता गई तो पीछे-पीछे जाना है लेकिन पौद्गलिक परमाणुओं के आकर्षण से पीछे-पीछे जाता है। पॉज़िटिव और नेगेटिव के मिलने पर ही परमाणुओं का आकर्षण होता है।

सांसारिक संबंधों का एन्ड आना है और ये जो अवस्थाएँ हैं, उनमें पत्नी-पति, बेटा और माँ वगैरह ये सब ओन्ली साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स हैं। लोग मन में मान बैठे हैं कि मैं इसका बाप बना। अरे, बाप कैसे बनेगा तू? तू तो बेटा था फलाने भाई का! फलाने भाई का बेटा इसका बाप बना है। ये सब गलत मान्यताएँ हैं।

**प्रश्नकर्ता :** खून (के संबंध) के जो परमाणु एक सरीखे होते हैं, वे तो संबंध बनाए ही रखते हैं।

**दादाश्री :** वे तो, संबंध बनाए भी रखते हैं और उखाड़ते भी हैं। वे राग-द्वेष के परमाणु भरे होते हैं। घड़ी भर में खुश हो जाता है, तब फिर ऐसे प्यार से ऐसे (छाती से) दबाता है और घड़ी भर में नाखुश हो जाए तब तमाचा मार देता है। वे राग-द्वेष के परिणाम हैं।

**प्रश्नकर्ता :** नहीं, लेकिन जो जानने को मिला है कि खून के रिश्ते में बुद्धि और *लागणी* (भवुकता वाला प्रेम) से भी परे, ऐसा आकर्षण रहता ही है। इसलिए सभी संबंधों से ज़्यादा खून के रिश्ते होते हैं, उन्हें तोड़ना इतना आसान नहीं होता।

**दादाश्री :** खून का रिश्ता होता ही नहीं है। वह तो उससे मिलता-जुलता खून होता है। किसी का किसी से खून का क्या, हड्डी का, माँस का भी कोई रिश्ता नहीं होता। खून का यदि रिश्ता होता न,

यदि बाप-दादा का खून आता रहता न, तब तो क्रोध-मान-माया-लोभ साथ में ही रहते। लेकिन इसमें तो, बाप क्रोधी हो तो बेटा शांत होता है। अत: कुछ भी लेना-देना नहीं है। यह तो आँखों से ऐसा दिखाई देता है लोगों को, अत: लोग ऐसा कहते हैं। 'ब्लड रिलेशन', ऐसा कहते हैं। वास्तव में रिलेशन नहीं है, व्यवहार से रिलेशन है। किसी का किसी में कुछ भी, एक परमाणु मात्र की भी मिलावट नहीं है। व्यवहार से कहने के लिए कहना पड़ता है कि भाई ये एक परिवार के हैं, ब्लड रिलेशन वाले हैं, एक फैमिली के हैं।

**प्रश्नकर्ता :** ऐसा नहीं होता कि एक सरीखे परमाणु या फिर एक सरीखी प्रकृति वाले परमाणु एक-दूसरे को अधिक आकर्षित करते हैं ?

**दादाश्री :** ऐसा ही हुआ है न। एक सरीखी प्रकृति वाले लोग, वापस अगले जन्म में साथ में जन्म लेते हैं सभी।

**प्रश्नकर्ता :** जहाँ एक सरीखे परमाणु हैं वहाँ पर एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं, उससे अलग हों तो उन लोगों की नहीं बनती।

**दादाश्री :** एक सरीखे परमाणु आकर्षित करते हैं और उन परमाणुओं के चेन्ज होने पर विकर्षण होता है। अत: ये सारे चुंबकीय गुण उत्पन्न हुए हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् वह प्रकृति का स्वभाव है। शरीर कहीं उससे बाहर तो जा ही नहीं सकता ?

**दादाश्री :** यह जो चुंबक होता है न, वह लोहे को ही खींचता है। पीतल-वीतल वगैरह रखा जाए तो उनका नाम तक नहीं लेता। अत: (जहाँ) किसी से बनती है वहाँ पर परमाणु खिंचते हैं और फिर कहता है, 'मैं खिंच गया। मैं खिंच गया', वह भ्रांति है। 'मुझे खिंचना नहीं था फिर भी खिंच गया', ऐसा कहता है।

**प्रश्नकर्ता :** पर दादा, मैं वही बात कर रहा था कि शरीर के

परमाणुओं में तो आकर्षण-विकर्षण रहेंगे ही, उन्हें निकालने का प्रयत्न करना, वह तो बल्कि उल्टी दिशा में चलने जैसा है।

**दादाश्री :** नहीं, उन्हें निकालने का नहीं सोचना है। उन्हें निकालना ही नहीं है, निकलेंगे ही नहीं। उनमें से अपना भाव खींच लेना है। ये राग-द्वेष के भाव खींच लेने हैं। अर्थात् वीतरागता रखनी हैं हमें, बस। वे परमाणु तो अपना असर दिखाते ही रहेंगे।

हमने अंदर जैसे परमाणु भरे हैं, वे परमाणु वैसे ही फल देंगे। इसलिए हम कहते हैं न, कि जो भी होता है, उसका *निकाल* करो। जैसा भरा है, वैसा निकलेगा। सिर्फ खिंच (निकल) क्या गया है? तो वह है, उस पर जो अपने राग-द्वेष थे, वे निकल गए। क्या अब राग-द्वेष होते हैं? नहीं होते न?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं, दादा।

**दादाश्री :** जिसे राग-द्वेष नहीं होते, वह वीतराग कहलाता है। वीतराग होने की ज़रूरत है। राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। आदतें तो रहेंगी। आदतें नहीं जाएँगी। शरीर की आदतें, मन की आदतें, वे सब नहीं जाएँगी।

## राग-द्वेष, संसार की जड़

जब तक मिलते-जुलते परमाणु आते हैं तब तक अभेदता रहती है और बाद में बैर हो जाता है। आसक्ति है वहाँ पर बैर होगा ही। आसक्ति, वह प्रत्यक्ष ज़हर है। *पुद्गल* में जितनी आसक्ति उतनी ही अधिक चंचलता।

पक्का तय करने के बावजूद भी कि राग नहीं करना है, जिसके प्रति राग हो, उसकी तरफ शरीर खिंच जाता है। क्योंकि राग तो परमाणु ही हैं। वह खुद ऐसा नहीं करता लेकिन राग के परमाणुओं का स्वभाव ही ऐसा है। आत्मा में राग या द्वेष नामक गुण नहीं है। ये तो सभी परमाणु, राग वाले और द्वेष वाले, पड़े हुए हैं।

पसंद और नापसंद, मोटे स्वरूप में राग-द्वेष हैं। राग के परमाणु सुख व *शाता* देने के लिए हैं और द्वेष के परमाणु दुःख व *अशाता* देने के लिए हैं। संसार खड़ा है, राग-द्वेष से। संसार का बीज राग-द्वेष है। जिसकी वजह से काल्पनिक *शाता-अशाता* (सुख-परिणाम - दुःख-परिणाम) का भ्रांतिमय *भोगवटा* (दुःख) रहता है।

जिन पर आपको बहुत द्वेष होता है उनके प्रति राग के परमाणु उत्पन्न होंगे ही और राग बहुत हुआ तो द्वेष के परमाणु उत्पन्न होंगे ही। अतः वीतराग होने को कहा है। हे प्रज्ञाधारी! यदि द्वेष उत्पन्न होने के परिणाम आएँ तो तू उन्हें जड़-मूल से उखाड़ देना। उस द्वेष के बीज में से ही राग उत्पन्न होगा। अतः द्वेष तो कभी भी काम का नहीं है। द्वेष को तो जड़ सहित उखाड़कर बाहर फेंक देना चाहिए, लेकिन समता से ही करना है।

## देवी-देवताओं को भी राग-द्वेष...

कितनी ही जगह पर पुरुष टेढ़ा हो, तब उसके यहाँ पत्नी सीधी रहती है, इतनी अच्छी स्त्री होती है। कई जगह पर पुरुष बिल्कुल सीधा होता है तो उसके वहाँ स्त्री टेढ़ी होती है। सभी तरह का माल है यहाँ इस संसार में।

**प्रश्नकर्ता :** ये विरोधी परमाणु वाले परस्पर मिलते हैं, तो वह किसलिए?

**दादाश्री :** जागृत करने के लिए, वर्ना तो सो जाएगा। दोनों ही सो जाएँगे। छः-छः महीनों तक सोते रहेंगे। बाहर सूर्यनारायण को देखने भी नहीं आएँगे। तब तो सब पड़े ही रहें ऐसे हैं। ये तो, सभी विरोधी हैं इसीलिए तो मज़ा है इसका। वर्ना कोई मोक्ष में जाता ही नहीं न!

देवगति में भी यही माल है, सब जगह ऐसा ही माल!

**प्रश्नकर्ता :** देवगति में आकार है क्या? सब का रूप वगैरह है? अलग-अलग?

**दादाश्री :** रूप-वूप सबकुछ है लेकिन बाकी सब (बचपन, बुढ़ापा) नहीं है। रूप नहीं होता तब तो कीमत ही नहीं रहती न! पत्थर ही कहलाते न! रूप नहीं होता तो किसी अन्य देवी की कीमत कैसे समझ में आती उसे, कि 'मुझे यह देवी मिली और उसे बहुत अच्छी देवी मिली', ऐसा सब पता चलता है। 'इसे अच्छी देवी मिली है, मेरे जैसी नहीं है। इसकी बहुत खराब है।' देवियाँ बातें करती हैं कि मुझे तरबूजे जैसा मिला, लेकिन पूरी ज़िंदगी बितानी ही पड़ती है न, क्या हो सकता है फिर? अपने यहाँ तो उल्टा-सीधा करना हो, तब भी हो सकता है क्योंकि सरकार ने डिवॉर्स के कानून बनाए हैं, सभी कानून बनाए हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यदि देवगति में सभी कर्म *निकाली* हैं तो फिर सभी कर्मों के पूरे होने पर फिर वहाँ से सीधा मोक्ष नहीं हो जाएगा?

**दादाश्री :** किसी का भी नहीं हो सकता अन्य किसी जगह से। वहाँ पर कभी भी कर्म खत्म नहीं हो सकते। कर्म खत्म होते हैं, सिर्फ मनुष्य गति में, और वह वीतरागता से होता है। कुछ साल वीतरागता में बीतने के बाद होता है। देवगति में वीतरागता नहीं होती। अत: वह सारी आशा बेकार है। मनुष्य गति के अलावा और कहीं मोक्ष नहीं है।

## नहीं है राग, आत्मा में

*पुद्गल* की करामात तो खुद ही वीतराग है। आप वीतराग हो जाओ तो आप जीत जाओगे। तू वीतराग हो जा न! तो हल आ जाएगा। साँप पड़े हुए हों और वहाँ पर तू बैठा हुआ हो तो वह तेरी वीतरागता का टेस्ट नहीं है। ज़रा सा उन्हें छेड़कर देख और उसके बाद जाँच कर कि कहाँ-कहाँ पर तेरी वीतरागता हिल गई है, वह जाँच करके देख।

आत्मा में राग नामक गुण है ही नहीं और लोग कहते हैं कि मेरा आत्मा रागी-द्वेषी है। लेकिन यह क्या है? इस शरीर में इलेक्ट्रिकल बॉडी है। तो जब मिलते-जुलते परमाणु आते हैं तब पूरी ही बॉडी चुंबक की तरह खिंचने लगती है और लोग कहते हैं, कि 'मैं खिंच

गया, मुझे राग हो रहा है।' लेकिन उसमें वीतरागों का मत क्या कहता है कि यह पुतला जिस तरह से नाचे, उसे तू 'जान' कि पुतला कहाँ खिंच गया और कहाँ नहीं खिंचा।

ज्ञान के बाद में कषाय चले गए, फिर जो बचता है, वह आकर्षण और विकर्षण हैं जो कि अनात्मा भाग में हैं। आकर्षण-विकर्षण वाले चुंबकीय परमाणुओं का अनात्म भाग वाला स्कंध होता है। अपनी इच्छा नहीं हो, फिर भी आकर्षण से खिंच जाते हैं। इसी से समझ में आता है कि वह राग नहीं है लेकिन अनात्मा भाग के प्रति अनात्मा भाग खिंचता है। राग तो तभी कहा जाएगा जब उसमें आत्मा एकाकार हो जाए।

## सिद्धांत, आकर्षण-विकर्षण का

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा का नियमन कौन करता है?

**दादाश्री :** कोई इसका नियमन नहीं करता है। सारा नियमन कुदरती है। जगत् को बनाने वाला कोई है ही नहीं। साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से होता ही रहता है। किसी भी भगवान ने नहीं बनाया। कोई नियमन नहीं करना पड़ता। नियमन करने वाला हो न, तो इफेक्ट होगा। इफेक्ट देगा। इसमें (आत्मद्रव्य में) इफेक्ट नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** यह सब कौन निश्चित करता है कि इस शरीर में यह आत्मा जाएगा और इस शरीर में यह आत्मा जाएगा?

**दादाश्री :** हमें निश्चित करने की ज़रूरत नहीं है। खुद के हिसाब वाले परमाणु मिलते हैं इसलिए आकर्षण से वहाँ पर चला जाता है। यह पूरा जगत्, सिर्फ आकर्षण से ही चल रहा है।

**प्रश्नकर्ता :** शरीर और आत्मा का आकर्षण किस तरह से होता है?

**दादाश्री :** शरीर और आत्मा के बीच आकर्षण है ही नहीं। आत्मा को किसी भी जगह पर आकर्षण नहीं है। आत्मा के साथ जो दूसरी वस्तुएँ हैं, उन वस्तुओं के आकर्षण की वजह से खिंच जाता है।

तरह-तरह के अभ्यास हो चुके हैं। बहुत काल तक आकर्षण होता रहे तो उसी से विकर्षण होता है। वह आत्मस्वभाव नहीं है, पौद्गलिक स्वभाव है।

**प्रश्नकर्ता :** अच्छे कार्य करने से देवलोक में जन्म होता है तो यह सब कौन जस्टिफाई करता है कि देवलोक में जाएँगे और...

**दादाश्री :** जस्टिफाई तो, हम मुँह से यह दवा खाते हैं न, डॉक्टर क्या कहता है, 'गोलियाँ खा जाना।' दर्द कहाँ पर है? तो कहता है, 'यहाँ, सिर में।' तो भाई, वहाँ पर कैसे पहुँचेगी? दवाई को कैसे पता चलेगा कि यहाँ से होकर मुझे इस तरह से जाना है। दुनिया में यह ऐसा नियम है कि जो भी दर्द हो और उसकी जो भी दवाई हो, तो वे दोनों एक-दूसरे को आमने-सामने खिंचते हैं। ऐसे नियम के आधार पर यहाँ से देवगति के लायक हो चुके परमाणुओं को देवगति उस ओर खींच ले जाती है। गधे के लायक हुआ तो वहाँ पर खींच ले जाते हैं। नर्कगति के लायक हुआ तो वहाँ पर खीच ले जाते हैं। खिंचाव है यह सारा। आकर्षण से यह पूरा संसार चल रहा है। सूर्य, चंद्र, वगैरह सभी आकर्षण से ही चल रहे हैं। अत: किसी को भी जस्टिफाई करने की ज़रूरत नहीं है।

मिलते-जुलते परमाणु हों तभी आकर्षण होता है। अंदर जैसे परमाणु होते हैं, वैसा ही दिखाई देता है। वर्ल्ड में नाममात्र को भी दु:ख नहीं है। सबकुछ अंदर ही भरा हुआ है।

**प्रश्नकर्ता :** किसी से अलग होते हुए, आँखों में से जो पानी निकल जाता है, वह क्या है?

**दादाश्री :** वह सब परमाणुओं की वजह से ही है। आकर्षण के परमाणु हों तो अलग होते समय आँखों में से पानी आता है और विकर्षण के परमाणु हों तो अलग होते समय आनंद होता है।

कोई मर जाता है तब उसके रिश्तेदारों को रोने देते हैं, वह किस कारण से? यदि रोका नहीं जाए न, तो ममता के जो परमाणु होते हैं,

वे आँखों में से होकर बाहर निकल जाते हैं। उसके बाद में *शाता* (शांति) होती है। लोग तो रोक देते हैं। अरे! उसे रोकना नहीं चाहिए। वह रोएगा तभी हल्का होगा। अगर रोएगा नहीं तब तो बोझा बढ़ जाएगा। इसलिए अगर कोई हमारे पास आकर रोए, तो हम उसे दिलासा देते हुए हाथ नहीं फेरते। उसे रोने देते हैं। उससे सारे खराब परमाणु निकल जाते हैं। घर में तो माँ दिलासा देती है।

हम करुणामूर्ति हैं इसलिए हमें देखकर सामने वाले को रोना आ जाता है, वहाँ पर यदि हम भी रोने लगें तो उसका क्या होगा? हम रोते हुए व्यक्ति को रोकते नहीं हैं। उसमें वे परमाणु क्यों रहने दें? भले ही निकल जाएँ। ममता और बाकी के सब कचरों के परमाणु निकल जाते हैं।

शरीर तो परमाणुओं से बना हुआ है, अन्य कुछ है नहीं। जैसे परमाणुओं का संग, वैसा ही शरीर में अनुभव होता है। हर किसी के साथ शेकहैंड (हाथ मिलाने से) करने से कैसे भी परमाणु आ जाते हैं। अकेले बैठे रहना अच्छा है लेकिन निम्न स्तर के व्यक्तियों के साथ बैठना अच्छा नहीं है। उसके परमाणु आप पर असर डालेंगे।

प्रिय और अप्रिय, वह परमाणुओं का हिसाब है। आपके और उसके परमाणु नहीं मिलते तब फिर वह आपका प्रिय हो तो भी अप्रिय लगता है।

हर एक व्यक्ति की बॉडी के परमाणु अलग-अलग होते हैं। (सामने कंकोड़े की सब्ज़ी देखकर) जैसे ये सभी कंकोड़े अलग-अलग तरह के हैं, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न परमाणु हैं। इसीलिए सभी का व्यक्तित्व एक समान नहीं होता। समान परमाणुओं के माल वाले और विरोधी परमाणुओं के माल वाले आपस में मिलते हैं।

कोई व्यक्ति हमें बहुत याद आता रहे, तो उसका रोग हमारे अंदर घुस जाता है। आपको जिसके बहुत विचार आते हैं, उसके परमाणु आप में घुस जाते हैं। याद आना अर्थात् अनुकूल परमाणु अट्रैक्ट

(आकर्षित) करता है वह। वे परमाणु खत्म हो जाएँगे तो याद आना बंद हो जाएगा।

जगत् का स्वभाव ही ऐसा है कि एक सरीखे परमाणुओं के बीच आकर्षण होता है। कोई लोभी हो तो उसे लोभी मिल जाता है। यह जगत् परमाणुओं से भरा हुआ है।

विकर्षण-आकर्षण परमाणुओं का है। परमाणु के एक सिरे पर पॉज़िटिव और दूसरे सिरे पर नेगेटिव है। विकर्षण में जागृत रहता है। आकर्षण में गच्चा खा जाता है। आकर्षण *पुद्गल* का गुण है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से मिलता-जुलता हो, तो खींचता है। देह-मन व बुद्धि परमाणुओं से बने हुए हैं इसलिए खींचते हैं। कितनी ही जगहों पर विकर्षण भी होता है।

आकर्षण परमाणुओं का गुण है लेकिन जब तक ज्ञान नहीं मिले तब तक आकर्षण नहीं कहा जाएगा। क्योंकि उसके मन में तो ऐसा ही लगता है कि, 'यह मैंने ही किया है', और ज्ञान मिल गया हो तो उसके मन में ऐसा लगेगा कि शरीर आकर्षण से खिंच रहा है और मैंने कुछ नहीं किया है, मैं तो सिर्फ जानता हूँ।

इस शरीर में ही बहुत बड़ा विज्ञान है। बहुत बड़ी मशीन है। ज्ञान मिलने के बाद में शुद्ध परमाणु भरते जाते हैं और गलत माल निकलता जाता है। ये (ज्ञानभक्ति के) पद गाते समय क्या होता है? शरीर की प्रक्रिया चलती है उससे साफ परमाणु प्रविष्ट होते हैं, जबकि बोरियत के और अन्य परमाणु निकल जाते हैं। जब तालियाँ बजाते हैं और आप उल्लास में आ जाते हो, तब वे बेकार के, अशुद्ध कचरा माल वाले परमाणु निकल जाते हैं और एक तरह के निकलें तो दूसरे आ ही जाते हैं। तब शुद्ध परमाणु घुस जाते हैं। इसलिए तो हम खुद भी ज़ोर-ज़ोर से ताली बजाने का नाटक करते हैं न! खुद गाते हैं और गाकर गवाते हैं वीतराग। उससे आपको उल्लास आ जाता है और शुद्धि होती जाती है। यह तो अक्रम विज्ञान है। ये पद अंदर इस पूरे

कचरा माल को खाली करने के लिए गाते हैं। इससे शुद्धि होती जाती है। कितना आसान मार्ग है! मिथ्यात्व की जो गांठें पड़ी हुई हैं, पद गाने से समकित की पड़ती जाती हैं और मिथ्यात्व की विलीन होती जाती है।

## वह है चुंबकत्व

**प्रश्नकर्ता :** राग, अहंकार का परिणाम है और आकर्षण *पुद्गल* का गुण है। (आप्तसूत्र)

**दादाश्री :** राग, अहंकार का गुण है। राग और द्वेष दोनों ही अहंकार के गुण हैं। आकर्षण, *पुद्गल* का गुण कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** 'जिसका' अहंकार चला गया हो, क्या 'उसे' *पुद्गल* का आकर्षण रहता है?

**दादाश्री :** 'उसे' खुद को नहीं रहता, लेकिन *पुद्गल* को *पुद्गल* का आकर्षण रहता है। 'तेरा' अहंकार चला गया है तो तुझ पर असर नहीं होगा लेकिन चंदू पर रहेगा। यह ज्ञान मिलने के बाद में नया रस उत्पन्न नहीं होता। जब तक पुराना रस संपूर्ण रूप से खिंच नहीं जाता तब तक निबेड़ा नहीं आएगा। नया रस उत्पन्न हो रहा हो, वहाँ पर संसार है। यह तो इफेक्ट ही है सिर्फ। ये कॉज़ेज़ नहीं हैं, *निकाली* चीज़ है यह। कॉज़ेज़ और इफेक्ट, दोनों साथ में हों, उसे कहते हैं संसार।

हम सोने की परिभाषा नहीं समझें और पीतल को सोना कहें तब तो फिर यही कहा जाएगा न, कि हम उसकी कीमत ही नहीं समझे हैं? बफिंग करने पर पीतल भी सोने जैसा ही दिखाई देता है लेकिन सोने की परिभाषा गुण सहित जाननी चाहिए। उसी प्रकार से क्रोध क्या है? लोभ क्या है? आकर्षण क्या है? विकर्षण क्या है? वे सब *पुद्गल* परमाणुओं के गुण हैं। यह पूरा साइन्स है। साइन्स अर्थात् एक्ज़ेक्टली समझ लेना चाहिए। बात को सूक्ष्मता से समझ लेने की ज़रूरत है। कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है।

हमने आत्मा दे दिया है, वह निर्लेप भाव से दिया है, असंग ही दिया है। अब सिर्फ समझने की ज़रूरत है। इतनी अधिक ज्ञान जागृति नहीं रह सकती और अभी तो इस *पुद्गल* की *खेंच* (अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना, आग्रह) है। *पुद्गल* की *खेंच* वाला है। अनंत जन्मों से हम *पुद्गल* के पक्ष में बैठे थे और एकदम से विपक्षी हो गए। यानी *पुद्गल* के विरोधी हो गए हैं अब। हम शुद्धात्मा हो गए हैं इसलिए *पुद्गल* से विपक्षी हो गए हैं अब। लेकिन अनंत जन्मों की जो *पुद्गल* की *खेंच* है, वह जाती नहीं है। वह *खेंच* किस जगह पर नुकसान पहुँचा सकती है? स्त्री-पुरुषों के आकर्षण को लेकर वह *खेंच* नुकसान पहुँचाती है। इसलिए वहाँ पर बहुत ही जागृति रखनी चाहिए।

## त्याग भी है, विकर्षण

यह जगत् अट्रैक्शन से ही चल रहा है और उसमें जीव खुद अहंकार करता है कि 'मैंने ऐसा किया और वैसा किया।' इसी कारण मार खाता रहता है। अट्रैक्शन से ही शादी करता है और फिर कहता है 'मैंने शादी की।' अरे भाई, तूने कैसे शादी की? यह तो, पत्नी आ पड़ी!

**प्रश्नकर्ता :** यानी ये सब जो त्याग करके चले जाते हैं, वह विकर्षण कहलाता है? जो त्याग करते हैं, वह विकर्षण कहलाता है?

**दादाश्री :** अंदर परमाणु खत्म हो जाते हैं न, तो अपने आप ही (वाइफ से) अलग हो जाता है। फिर कहता है, 'मैंने त्याग किया।' सिर्फ इगोइज़म करता रहता है।

यह जगत् बहुत सूक्ष्मता से समझने लायक है। लोग जैसा कहते हैं न, ये साइन्टिस्ट जैसा कहते हैं, जगत् वैसा भी नहीं है। साइन्टिस्ट कुछ हद तक पहुँचे हैं, गलत नहीं पहुँचे हैं। उन लोगों ने जितना कुछ बताया है, उतना उन्हें समझ में आया है। और वह उनकी बुद्धि का खेल नहीं है, उनकी गिफ्ट (कुदरती सुझ) का खेल है।

## ज़रूरत है राग-द्वेष के प्रतिक्रमण की

**प्रश्नकर्ता :** आकर्षण का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा?

**दादाश्री :** हाँ। शरीर को आकर्षण-विकर्षण होता है तो चंदूभाई से आपको कहना होगा, 'हे चंदूभाई, यहाँ आकर्षण हो रहा है, प्रतिक्रमण करो।' तो आकर्षण बंद हो जाएगा। आकर्षण-विकर्षण दोनों ही हमें भटकाते रहते हैं।

यह 'पसंद नहीं है', उसका कोई हल लाना है या नहीं लाना? और यह जो 'पसंद है' उसका भी हल लाना होगा, इन्हें संभालकर नहीं रखना है। जो बातें 'अच्छी लगती हैं', उन्हें संभालकर नहीं रखना है, उनका भी हल लाना है और इनका भी हल लाना है। जो 'अच्छा लगता है', वह भरा हुआ राग निकल रहा है और जो 'अच्छा नहीं लगता', वह भरा हुआ द्वेष निकल रहा है। अतः द्वेष का हल लाना है। वहाँ पर हमारी तरह रहना है, सभी के साथ मिल-जुलकर! (क्योंकि द्वेष की वजह से जुदाई हो जाती है। मिल-जुलकर रहने से जुदाई मिट जाती है और द्वेष खत्म हो जाता है।)

**प्रश्नकर्ता :** सामान्यतः ऐसा तो समझ में आता है कि द्वेष का *निकाल* करना है लेकिन राग का भी *निकाल* करना है, वह तो ज़रा भारी बात है।

**दादाश्री :** सभी का *निकाल* करना पड़ेगा। *निकाल* किए बगैर तो कैसे चलेगा फिर? जमा किया हुआ माल सौंप देना पड़ेगा। जिस-जिस के जो-जो परमाणु हों न, तो उनके वे परमाणु सौंपकर मुक्त हो जाना। जो पसंद नहीं हैं, वे भी सौंप देने पड़ेंगे और जो पसंद हैं, वे भी सौंप देने पड़ेंगे। उसके बाद वीतराग हो जाना है। अब यह चारित्रमोहनीय अर्थात् भरा हुआ माल निकालना है, भरे हुए माल का हिसाब चुका देना है, चारित्रमोह का समभाव से *निकाल* करना है।

परमाणुओं की पूँजी थी ही, उन्हें खर्च कर देना है लेकिन संयोगी पुरावे (प्रमाण) मिलने पर अंदर के परमाणु बाहर आते हैं।

जो-जो परमाणु पहले इकट्ठे किए हैं, उन्हें वापस देकर मुक्त होना है। कृपालुदेव ने क्या कहा है? पूर्व काल में जिस-जिस के परमाणु इकट्ठे किए हैं, वे दे देने हैं। जिन्हें हमने पराया समझ लिया तो फिर उन्हें रखकर हमें क्या करना है?

तत्त्वज्ञान मिलावट रहित होता है। जहाँ पर एक भी परमाणु की मिलावट नहीं है, वहाँ पर मिलावट रहित आत्मा और मिलावट रहित परमाणुओं का ज्ञान है।

भेदज्ञान द्वारा आपको इस तरह से अलग कर दिया है कि एक भी परमाणु आपका नहीं है। लोगों ने पराई चीज़ों को कब्ज़े में ले लिया है। अरे, श्मशान में जाता है, तब क्या यह कब्ज़े में लिया हुआ लेकर जाता है?

प्रतिक्षण जगत् का परिवर्तन होता ही रहता है। एक-एक परमाणु का हर एक समय पर परिवर्तन होता ही रहता है। ऐसे परिवर्तनशील जगत् में लोग परमानेन्ट सुख ढूँढते हैं, ऐसा कैसे संभव है?

वीतरागों का साइन्स एक्ज़ेक्ट है लेकिन लोगों को समझ में नहीं आने के कारण और काल की विचित्रता के कारण मोह के परमाणु बढ़ने की वजह से, सब विचित्र हो गए हैं।

**प्रश्नकर्ता :** कर्मों के भी परमाणु होते हैं क्या?

**दादाश्री :** कर्म तो परमाणुओं से ही बना हुआ है लेकिन देहाध्यास है तब तक चेतन जैसे लगते हैं। देहाध्यास जाने के बाद में परमाणु साफ लगते हैं।

देह के अंदर वाले परमाणुओं की किश्तें तो भरनी ही पड़ेंगी। उसमें दखलंदाज़ी करने जैसा नहीं है। जब मन के और देह के, दोनों ही परमाणु इकट्ठे होते हैं तब भारी हमला होता है, भयंकर अशांति बरतती है। ऐसी भयंकर अशांति में यदि मनुष्य से सहन न हो तो पूरा शरीर समुद्र में फेंक देता है।

वाणी के परमाणुओं का उपयोग होने से देह की बहुत सी शक्ति खर्च हो जाती है। हमारी वाणी वीतरागता से बोली जाती है इसलिए (हमें) कुछ नहीं होता।

जिस प्रकार से इस शरीर ने परमाणु ग्रहण किए हैं, उसी प्रकार से परमाणु निकलते हैं। स्पंदन से ग्रहण होते हैं और स्पंदन से ही निकलते हैं। आत्मा तो अचल है। मन-वचन-काया से ग्रहण किए हुए परमाणु, मन-वचन-काया के स्पंदन से निकलते हैं।

रंजक परमाणुओं से बनी हुई जो गांठें फूटती हैं, वह मन है। भाव-मन अर्थात् आत्मा का रंजायमानपन। उदय आने पर रूपक में आते हैं। मन बिगाड़ने से स्पंदन उत्पन्न होते हैं। ज्ञाता रहने से धीरे-धीरे स्पंदन कम होते जाते हैं।

क्रोध-मान-माया-लोभ स्पंदन से उत्पन्न होते हैं। ज्ञानी के पास वे निकल जाते हैं और अज्ञानी के पास वे स्पंदन बढ़ते हैं।

इस संसार में ऐसे परमाणु भरे हुए हैं जो महान ज्ञानियों को भी हिला दें। इसलिए बिवेयर (सावधान)!

## परमाणु : समकिती - मिथ्यात्वी के

एक व्यक्ति को ऐसा लगता रहता था कि 'किसका ले लूँ और किस तरह इकट्ठे करूँ और किस तरह खा जाऊँ।' तभी से मैं समझ गया कि यह जानवर बनने के परमाणु खींच रहा है। अच्छे परमाणु खींचे तो वे बहुत हल्के होते हैं, लाइट वेट परमाणु कहलाते हैं। आपके साथ रहने से मुझ में भी परमाणु खिंचते हैं लेकिन बहुत लाइट वेट परमाणु, वेट ही नहीं होता। और जो कोई कहे कि किसका ले लूँ और किसका छीन लूँ, तो उसके परमाणु हेवी वेट होते हैं।

ऐसा है न, एक तरफ समकिती को रखो और एक तरफ मिथ्यात्वी को रखो। एक ही उम्र के हों, एक सरीखी बॉडी हो, छाती भी एक सरीखी हो, सबकुछ एक सरीखा हो। दोनों को पानी में डुबोया जाए

तो उसे डुबोने से (समकिती से) जितना निकलता है उतना ही पानी उससे (मिथ्यात्वी से) भी निकलता है। वह क्यूबेज भी (क्यूबिकली) एक सरीखा होता है। लेकिन तराजू में रखा जाए तो मिथ्यात्वी का पलड़ा इतना अधिक झुक जाता है कि बात न पूछो।

**प्रश्नकर्ता :** तो यह तराजू कौन सा है? यह सामान्य तराजू है या अध्यात्म का तराजू?

**दादाश्री :** नहीं, नहीं, सामान्य तराजू। यह तो सामान्य बात कर रहा हूँ, स्थूल बात। यह तो, जो संसार के लोगों को समझ में आ जाए, वैसी बात कर रहा हूँ। अब उसका मिथ्यात्व, वह फर्स्ट पागलपन कहलाता है। फिर सेकन्ड मैडनेस, वह मेन्टल हॉस्पिटल वाला। फिर फर्स्ट मैडनेस वाले को और सेकन्ड मैडनेस वाले को अगर तराजू में रखें, तो सेकन्ड मैडनेस वाला बढ़ जाएगा। परमाणु जितने साफ उतना ही हल्का। इसीलिए अपने यहाँ कहावत है कि यदि पागल आदमी यों ही हाथ मारे तब भी हमें ऐसा लगता है कि लाठी लगी। ऐसा सुना है क्या?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, उसका हाथ भारी होता है।

**दादाश्री :** अतः जैसे-जैसे आत्मा उच्च गति में पहुँचता है वैसे-वैसे उसका वेट हल्का होता जाता है, परमाणु हल्के होते जाते हैं। परमाणुओं के वेट की वजह से आत्मा ऊर्ध्वगति-अधोगति करता रहता है।

*पुद्गल* घटना ही चाहिए। *पुद्गल* नहीं घटे तो समझना कि अंदर पत्थर ही है। *पुद्गल* घटेगा तो आत्मा बढ़ेगा।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* घटे, इसका मतलब क्या है, दादाजी?

**दादाश्री :** इन मन-वचन-काया के परमाणु घटते हैं तो दूसरी तरफ आत्मा की शक्ति बढ़ जाती है। ये परमाणु नहीं घटें तो वह पत्थर की मूर्ति जैसा होता है।

**प्रश्नकर्ता :** यानी शरीर में से वज़न भी कम हो जाता है?

**दादाश्री :** सभी। सभी परमाणु कम होते जाते हैं, हल्का फूल होता जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो दादाजी, *पुद्‌गल* किस तरह से कम हो सकता है?

**दादाश्री :** उस (आत्मा की) तरफ प्रेम बढ़ता है तो इस (*पुद्‌गल*) की तरफ घट जाता है, यानी कि मन के बेहिसाब *पुद्‌गल* परमाणु, वाणी के और शरीर के परमाणु सभी कम होते जाते हैं। ये मन के और सभी परमाणु मिथ्यात्व के असर से मज़बूत होते हैं और समकित के असर से खत्म हो जाते हैं।

## फर्क, निर्वाण और मृत्यु में...

**प्रश्नकर्ता :** चरम शरीर का अर्थ क्या है?

**दादाश्री :** चरम शरीर अर्थात् अंतिम शरीर। वे सभी परमाणु अंतिम होते हैं। इस जगत् में बेहिसाब परमाणु हैं। उनमें से जो लास्ट ग्रेड के परमाणु होते हैं, वे अन्डरडेवेलप्ड इंसानों के लिए हैं। ये सभी जंगली, वे अन्डरडेवेलप्ड लोग हैं, उनके परमाणु हेवी वेट होते हैं। उन लोगों का वज़न भी बहुत होता है। पूरी दुनिया में, सभी देवलोगों से भी ज़्यादा हाई लेवल के परमाणु महावीर स्वामी में थे, तीर्थंकरों में थे। उन्हें देखते ही हमें आनंद हो जाता है। सिर्फ देखने से ही मन में ऐसा लगता है कि यहीं बैठे रहो अब।

**प्रश्नकर्ता :** क्या वे हल्के होते हैं?

**दादाश्री :** परमाणु ही ऐसे होते हैं, अट्रैक्टिव (आकर्षक) परमाणु! वे बोलते हैं न, वह हमें अच्छा ही लगता रहता है! मीठा लगता रहता है! जैसे-जैसे शरीर डेवेलप होता जाता है वैसे-वैसे सभी उच्च परमाणु आते जाते हैं और सब से अंतिम प्रकार के परमाणु कैसे होते हैं? चरम शरीरी। चरम शरीर अर्थात् तलवार से मारे तब भी नहीं लगती, वर्ना कोई चरम शरीरी को मोक्ष में ही न जाने दे। इसीलिए महावीर भगवान को असर नहीं हुआ न! गोशाला ने तेजोलेश्या फेंकी,

तेजोलेश्या अर्थात् सूर्यनारायण के सामने देखकर जो त्राटक किया, उससे अंदर तेजोलेश्या उत्पन्न हुई और वह तेजोलेश्या किसी पर फेंकी जाए तो वह उसे जला देती है। तो दो शिष्यों को जला दिया और फिर उसने महावीर भगवान पर डाली, वह महावीर भगवान को नहीं जला सका लेकिन महावीर भगवान को छः महीने तक मलद्वार से रक्त निकला! ऐसा था, वह गोशाला! भगवान का शिष्य था, उन्हीं से सीखा और उन्हीं पर यह सब आज़माया।

**प्रश्नकर्ता :** तो वह चरम शरीर, अंतिम शरीर कहलाता है?

**दादाश्री :** वह तो चरम शरीर, ओहोहोहो! नहीं तो महावीर भगवान का निर्वाण ही नहीं हो पाता, मृत्यु हो जाती! चरम शरीर का निवार्ण होता है और उसे कोई मार नहीं सकता।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, आपकी चार डिग्री बाकी हैं तो यह चरम शरीर कहलाएगा?

**दादाश्री :** (जब) हमारी ये चार डिग्री पूर्ण हो जाएँगी (तीन सौ साठ डिग्री हो जाएगी) तब चरम शरीर प्राप्त होगा।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, निर्वाण और मृत्यु में क्या फर्क है?

**दादाश्री :** निर्वाण अर्थात् फिर से शरीर प्राप्त नहीं होगा, अंतिम शरीर। अब दूसरे परमाणु नहीं रहे जिनसे कि उनका नया शरीर बन पाए और मृत्यु वाले का तो नया शरीर बन ही चुका होता है। अनंत जन्मों तक मरे हैं लेकिन सभी मरण कु-मरण थे, समाधि मरण नही हुआ था और अब समाधि मरण होगा। क्योंकि जब कोई सांसारिक तकलीफ आती है तब तू चंदू के रूप में रहता है या आत्मा बन जाता है?

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा बन जाता हूँ।

**दादाश्री :** हाँ, तो कोई मृत्यु जैसी आफत आ जाए, उस घड़ी अंदर आत्मा बन ही जाता है! आफत आई कि बाहर खड़ा नहीं रहता, होम में (आत्मा में) घुस जाता है। वही है समाधि मरण।

**प्रश्नकर्ता :** क्या महात्माओं की मृत्यु समाधि में ही होगी?

**दादाश्री :** हमारी आज्ञा का पालन करेगा तो हम हाज़िर रहेंगे और समाधि मरण होगा।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् (जब) समाधि मरण होता है, उस समय हम आत्मा में रहते हैं?

**दादाश्री :** हाँ, समाधि मरण के समय आत्मा में रहते हैं! महात्माओं की अंतिम घड़ी में तो दादा निरंतर हाज़िर रहेंगे!

## 'यहाँ पर' खिंचकर आते हैं मिलते-जुलते परमाणुओं वाले ही

ज्ञानी पुरुष के शरीर में द्वेष नामक एक भी परमाणु नहीं होता। ज्ञानी पुरुष के (प्रतिष्ठित) आत्मा में राग का परमाणु नहीं होता इसलिए द्वेष भी नहीं होता। फिर भी सहज भाव से (देह में) राग होता है लेकिन सहज भाव से द्वेष तो होता ही नहीं। ज्ञानी मोक्ष देने आए हैं, आम उगाने नहीं आए हैं।

**प्रश्नकर्ता :** आपके पास सभी अलग-अलग प्रकृति वाले लोग आए हैं। क्या वे सभी मोक्ष के लिए ही आए होंगे? मुख्य ध्येय वही है?

**दादाश्री :** साथ में पुण्य है और फिर मेरे परमाणुओं से मिलते-जुलते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हम सब के परमाणु तो... एक भी आपसे मेल नहीं खाएगा।

**दादाश्री :** अलग हैं लेकिन मिलते-जुलते हैं, मेरे परमाणुओं से।

**प्रश्नकर्ता :** इसमें तो, जो आपसे मिले, उन सभी के और आपके परमाणु मिलते-जुलते ही हैं?

**दादाश्री :** मेरे परमाणु सभी से मिलते-जुलते हैं। मेरे परमाणु (मोक्ष के हेतु वाले) सभी में कॉमन हैं। मेरे जैसे परमाणु हों तभी तो

खिंचकर 'यहाँ पर' आ जाता है। मेरे जैसे कम या ज़्यादा परमाणु हों तभी वह (हम से) मिलता है, वर्ना नहीं मिल सकता।

**प्रश्नकर्ता :** आपके जैसे परमाणु उनमें हैं और आपके जैसे परमाणु मुझ में भी हैं। तो मेरा और उनका तो मेल खाएगा न?

**दादाश्री :** आपका और उनका मेल नहीं खाएगा। आपका मुझसे मेल खाएगा। आपके परमाणु अलग तरह के हैं, वे मुझ में हैं। आप जैसे उनमें नहीं हैं। उनके जैसे परमाणु मुझ में हैं। उनके परमाणुओं जैसे परमाणु आप में नहीं हैं।

**प्रश्नकर्ता :** आपके पास परमाणुओं का भंडार है।

**दादाश्री :** ऐसा कोई भंडार नहीं है। मेरे परमाणु सभी से मेल खाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो आपके परमाणुओं की संख्या ज़्यादा है या आपके परमाणुओं की क्वॉलिटी ऐसी है कि सभी के साथ फिट हो जाते हैं।

**दादाश्री :** हमारा हर परमाणु सभी को काम आए ऐसा ही होता है। सभी में वैसे ही होते हैं और वही लोग मुझे मिलते हैं। कोई और नहीं मिल सकता। मैंने इन्हें दिखाया था। वहाँ मामा की पोल में कोई बरामदे पर चढ़ रहा होता था न, तब मैं कहता था कि यह बरामदे पर चढ़ रहा है लेकिन अभी उतर जाएगा, देखना। कुछ ही देर में उतर जाता था। वह आ नहीं पाता था।

**प्रश्नकर्ता :** कितने ही लोग वापस चले गए हैं। उसके अलावा कितने ही लोग मिलने के बाद भी वापस चले जाते हैं न!

**दादाश्री :** मेल ही नहीं खाता न। उसे अंदर से ही मनाही आती है। अतः यह पूरा जगत् आधार वाला है, निराधार नहीं है। भगवान, भगवान के फॉर्म में हैं और परमाणु, परमाणु के फॉर्म में हैं। सबकुछ आधार सहित है, नियम से है और व्यवस्थित है। हाँ, और रेग्युलेटर ऑफ द वर्ल्ड है।

**प्रश्नकर्ता :** ये जो हमें आपके पास खींच लाते हैं वे परमाणु, वे जो सूक्ष्म परमाणु हैं, उनका और आत्मा का कोई लेना-देना नहीं है?

**दादाश्री :** कुछ भी लेना-देना नहीं है। आत्मा को तो किसी से भी लेना-देना नहीं है। आत्मा तो स्वतंत्र है, परमानंद स्वरूप में है और एक ही स्वभाव वाले हैं सब। कोई भी जुदाई नहीं है। यह सारी जुदाई परमाणुओं की वजह से है। तो पूछते हैं, 'यह सारी जुदाई क्यों है?' वह इसलिए कि 'सब का स्पेस अलग है इसलिए यह सारी जुदाई है। यदि एक ही स्पेस होता न, तो ऐसा कुछ भी नहीं होता।'

**प्रश्नकर्ता :** परमाणुओं का चालक बल क्या है और कौन से भाव से ये परमाणु बंधे हुए हैं। परमाणु आते हैं अलग-अलग स्पेस में, अलग-अलग आकार के, अलग-अलग अमाउन्ट में ये परमाणु इकट्ठे होते हैं। अब इसका चालक बल कौन सा है?

**दादाश्री :** कौन है चालक? खुद स्वभाव से ही चालक है। जगत् निरंतर परिवर्तनशील ही है। जगत् प्रवाह के रूप में ही है। आपको कुछ भी चलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। व्यवस्थित संयोग इकट्ठे कर देता है। अपने-अपने हिसाब से ही है सारा। परमाणु घूमते ही रहते हैं।

परमाणुओं में समानता हो तो आकर्षण होता है और परमाणुओं में समानता न हो तो विकर्षण होता है। मिलते-जुलते परमाणु एकदम विशेष अनुपात में इकट्ठे होते हैं तो विरह उत्पन्न होता है। अब ज्ञानी पुरुष के प्रति सभी महात्माओं को एक ही भाव रहता है क्योंकि हमारे अंदर हर एक महात्मा के साथ मिलते-जुलते परमाणु हैं। वही हम से मिल पाता है। अब आपके विकर्षण वाले परमाणु निकलते जाएँगे और मुझसे मिलते-जुलते परमाणु आप में भरते जाएँगे, वैसे-वैसे आप मेरे जैसे बनते जाओगे।

हमारे परमाणु स्ट्रॉंग हैं, (जैसे कि) दीमक अग्नि का कुछ नहीं बिगाड़ सकती, वैसे हैं। हम पर किसी के भी परमाणु असर नहीं डाल सकते।

दादा भगवान को याद करने से उनके परमाणु आप में खिंच जाते हैं, याद करते ही। अत: सब से उच्च व्यक्ति को याद करना चाहिए। सब से उच्च व्यक्ति जिन्हें संसार में कहा जाता है न, राज पुरुष नहीं, उच्च और धार्मिक व्यक्ति।

**प्रश्नकर्ता :** सीमंधर स्वामी।

**दादाश्री :** हाँ, उन्हें याद करते ही उनके प्रत्यक्ष परमाणु हम में आ जाते हैं। इसलिए लोग पहले सतियों का नाम लेते थे! अब यदि खराब लोगों के नाम लोगे तो वापस वैसे भी आएँगे। 'कस्तूरी, कस्तूरी' बोलते रहो तो उसके परमाणु खिंचेंगे और 'शराब, शराब' बोलते रहोगे तो उसके परमाणु खिंचेंगे। इस प्रकार यह पूरा ही जगत् सूक्ष्म रूप से चलता रहता है। इसमें सत्संग का मतलब क्या है कि वह उच्च चीज़ों की तरफ ले जाता है। उनके दर्शन करो, वे भी उच्च चीज़ के, वाणी बोलो तब भी उच्च की, विचार करो तब भी उच्च चीज़ों के, सभी उच्च प्रकार की चीज़ों की आराधना होती है।

गाली देने पर, कषाय होने पर स्पंदन होते हैं, उस समय जो परमाणु घुसते हैं, वे नाक से घुसते हैं। हाथ कांपने पर एक-एक छिद्र में से घुसते हैं। उसी प्रकार 'दादा भगवान के असीम जय-जयकार हो' बोलने से एक-एक छिद्र में से शुभ परमाणु दाखिल होते हैं। यह शरीर परमाणुओं से बना हुआ है। आत्मा परमाणुओं से नहीं बना है। ज़ोर से दादा भगवान के पद गाए जाएँ तो उल्टे परमाणु निकल जाते हैं और अच्छे दाखिल होते हैं। मेरी उपस्थिति में जितना हँसोगे उतने अज्ञान परमाणु निकल जाएँगे और ज्ञान के परमाणु फिट हो जाएँगे। इस शरीर में वैक्युम अर्थात् हवा रहित जगह नहीं रह पाती।

हमें जो हार चढ़ाए जाते हैं, उसमें फूलों की कीमत ही नहीं है, भाव की ही कीमत है। जो हार हमें चढ़ाए जाते हैं, वे हार हम परमाणु भरकर वापस दे देते हैं। उन परमाणुओं का आप पर असर होता है। ज्ञानी पुरुष का एक-एक परमाणु ठंडा होता है, उन्हें छूने से ठंडक ही मिलती है। हमारे चरणों का स्पर्श करने से ग़ज़ब के परमाणु

प्राप्त होते हैं। यह तो इतनी बड़ी जंजाल है। एक-एक परमाणु का जंजाल है, उससे छूट पाना संभव ही नहीं है। इसलिए भगवान ने कहा है कि, 'ज्ञानी पुरुष मिल जाएँ तो उनके पास पड़े रहना!'

हम से मिलने के बाद में आप पर आफत कैसे आ सकती है? क्यों आएगी? ये आफतें तो आपसे विदा ले रही हैं। यह सब तो परमाणुओं का हिसाब है।

यहाँ सत्संग में आते हो तब कमरे के (माया के) दरवाज़े बंद ही हो जाते हैं। बाहर के परमाणु आप में दाखिल हो ही नहीं सकते। हमारे रूम (मामा की पोल, बड़ौदा) के परमाणु ऐसे हैं कि चाहे कैसा भी चिढ़ा हुआ इंसान आए तब भी उसे शांति हो जाती है। दुखिया के दु:ख का हरण हो जाता है। माया तो अंदर दाखिल ही नहीं हो सकती। यहाँ पर व्यवहार की बात है ही नहीं। यदि व्यवहार की बात निकले तब भी उसमें वीतरागता रहती है।

## तीर्थंकरों के परमाणु

पूरे ब्रह्मांड के इन सभी देहधारियों के शरीर परमाणुओं से बने हुए होते हैं। वे परमाणु चार प्रकार के होते हैं। अशुद्ध परमाणु हों तो अशुद्ध क्रिया करता है, जिसमें हेतु रहित, सिर्फ मौज-मज़े के लिए लोगों के घर जला देते हैं। क्या ऐसा करने वाले नहीं हैं? तो उनके शरीर के परमाणु ऐसे होते हैं। फिर अशुभ करने वाले लोग, उनके परमाणु ऐसे होते हैं कि खुद के स्वार्थ के लिए सामने वाले को नुकसान पहुँचाते हैं। फिर शुभ करने वाले अर्थात् साधु-संत होते हैं न! उनमें कितने ही ऐसे भी होते हैं कि वे फिर जहाँ तक हो सके, अशुभ नहीं करते। शुभ करने वाले के वे परमाणु उच्च प्रकार के होते हैं और भगवान के तो शुद्ध परमाणु। अर्थात् पूरे ब्रह्मांड में (जैसे) किसी के भी परमाणु नहीं होते, देवी-देवताओं के, किसी के भी परमाणु वैसे नहीं होते और देखने जाओ तो, क्या लावण्य! उनके आसपास अकाल नहीं पड़ता। हमारा ज्ञान तीर्थंकरों वाला है। तीर्थंकरों ने जो जाना था, वही हमारा ज्ञान है लेकिन उनमें और हम में बहुत डिफरन्स है। हम (जहाँ पर) हैं वहाँ पर अकाल पड़ा

हुआ देखते ही हैं न! अतः प्रबलता नहीं हैं, हमारे परमाणुओं में। (तीर्थंकरों के) आसपास के चार-चार योजन तक तो कुत्ते भी शांत हो जाते हैं! जबकि यहाँ तो, अगर हम बैठे हों तो इतने में ही शांति रहती है, बाकी जगह पर नहीं रहती। इनकी हवा पहुँचती है ऊपर की मंजिल तक लेकिन उसे समझ में नहीं आता कि यह हवा कहाँ से आ रही है! हमारी हवा एक हद तक ही पहुँच सकती है। बहुत दूर तक नहीं पहुँच सकती।

तीर्थंकरों में और केवली में केवलज्ञान में फर्क नहीं है लेकिन फिर भी तीर्थंकर एक नामकर्म है। अतः वे कई लोगों को मोक्ष में ले जाने के निमित्त हैं। केवलियों का शरीर, वह मनुष्य शरीर कहलाता है और तीर्थंकरों का शरीर, वह तो दुनिया का एक आश्चर्य है! देवी-देवता भी ऐसा शरीर प्राप्त नहीं कर सकते। महेन्द्र-वहेन्द्र, सभी देवी-देवता, उनका शरीर इनके जैसा नहीं होता। उनके शरीर में पूरे वर्ल्ड के उच्चतम परमाणु होते हैं, महावीर भगवान के शरीर में थे। भले ही शरीर में वे बहत्तर साल ही रहे लेकिन परमाणु उच्चतम थे।

**प्रश्नकर्ता :** उनके ऐसे कैसे परमाणु थे कि भगवान पद मिला?

**दादाश्री :** ऐसा है न, चोरी करने के भाव वाले को चोर परमाणु मिल जाते हैं, वह पूँजी इकट्ठी हो जाती है। वकालत के भाव वाले को वकालत के परमाणु मिल जाते हैं और सुथारी काम करना हो तो सुथार के परमाणु मिल जाते हैं। और इन्हें? तीर्थंकरी काम करना है तो तीर्थंकरी परमाणु मिल जाते हैं। जिन्होंने लोगों का कल्याण करने के लिए जन्म लिया है तो फिर उसमें उनका खुद का क्या रहा? तो फिर वे परमाणु कैसे होंगे!

**प्रश्नकर्ता :** वे सब शुद्ध परमाणु ही न?

**दादाश्री :** परमाणु शुद्ध, लेकिन परमाणु शुद्ध कब कहे जाएँगे? जब उनका शुद्धिकरण हो जाएगा तब। उनके परमाणु शुद्ध नहीं, परंतु अत्यंत उच्च प्रकार के परमाणु कहलाते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** जगत् में परमाणु रूप से तो सभी एक सरीखे ही हैं न, मूल स्वरूप वाले परमाणु?

**दादाश्री :** मूल स्वरूप से एक सरीखे, लेकिन ये तो भाव से रंगे हुए होते हैं। अर्थात् जीव मात्र के परमाणु भाव से रंगे हुए होते हैं। खुद के भाव से रंगे हुए। सुथारी काम वाले के सुथार वाले भाव से और चोर के, चोरी वाले भाव से रंगे होते हैं, तीर्थंकरों के, तीर्थंकरी भाव से रंगे हुए और ज्ञानी में, ज्ञानी के भाव से रंगे हुए।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वहाँ पर तीर्थंकरों का तो चरम शरीर होता है इसलिए उन्हें तो सभी भाव छोड़कर जाना है न?

**दादाश्री :** सभी भाव छोड़कर ही जाना है। ये जो-जो परमाणु हैं न, तो उन्होंने वह भावना की है कि जगत् का कल्याण करूँ, मुझे जो सुख मिला है, वह पूरा जगत् प्राप्त करे। उनका शरीर शास्त्र लिखने के लिए नहीं है। लोगों का कल्याण करते हुए, जो वाणी निकलती है, लोगों ने उस पर से शास्त्र बना दिए।

**प्रश्नकर्ता :** अत: तीर्थंकर गोत्र बाँधा तभी के वे परमाणु, उसी वजह से क्या ये परमाणु आ गए?

**दादाश्री :** तीर्थंकर नामकर्म बाँधा, गोत्र बाँधा, इसलिए उस समय उनमें ये परमाणु आ गए और उन परमाणुओं के आधार पर अभी स्थूल परमाणु मिले। उन परमाणुओं को संभालना, भगवान महावीर के लिए भी बहुत मुश्किल था। संभालने में बहुत मुश्किल आई। आकर्षित करे ऐसा देह, देखते ही आकर्षण हो जाए। देवी-देवता भी देखते ही रह जाएँ। देवी-देवता देखकर खुश होते जाते थे कि, 'कहना पड़ेगा, इनका शरीर! कहना पड़ेगा!'

**प्रश्नकर्ता :** संभालने का मतलब क्या है?

**दादाश्री :** कोई उन्हें उठा न ले जाएँ। गुंडे उठा ले जाएँ, हर कोई उठाकर ले जाए, आकर्षक देह थी इसलिए।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या गुंडों को भी आकर्षण हो जाता?

**दादाश्री :** हाँ, सभी को। इसलिए बहुत संभालना पड़ता था। लेकिन वे किस वजह से बच जाते थे? वह उनका पुण्य था। कोई

उनसे ले लेना चाहे, कोई उन्हें लूटना चाहे, लेकिन फिर भी क्यों नहीं लुट पाते थे? तो ऐसा पुण्य के आधार पर था। खुद अपना ऐश्वर्य लेकर आए थे न, लेकिन लोग तो घबरा जाते न, कि संभालो। (यदि) वे नहीं संभालते तब भी कोई उनका नाम ही नहीं ले सकता था, छू भी नहीं सकता था और लावण्यमय शरीर!

**प्रश्नकर्ता :** दादा को, ज्ञानी पुरुष को किडनैप (अपहरण) करने वाले कई लोग होंगे न?

**दादाश्री :** ज्ञानी पुरुष तो इस कलियुग का शरीर हैं, इसमें क्या मिलेगा? यह तो दुषम काल का शरीर है जबकि तीर्थंकरों का शरीर तो चौथे *आरे* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) का शरीर होता है।

हम में आठों ही कर्म उच्च प्रकार के हैं लेकिन उनके जैसे नहीं हैं। क्योंकि तीर्थंकर पद तो पूरी दुनिया में सब से बड़ा पद है। ये जो सारे परमाणु हैं न, उनमें से उच्चतम परमाणु खिंचकर वहाँ पर फिट हो जाते हैं। शरीर तो पूरा परमाणुओं से ही बना होता है लेकिन उच्चतम। उनके शरीर का आकार अलग, उनके हड्डी-खून अलग, बहुत सुंदर। शरीर ऐसा कि यों ही आकर्षण हो जाए। वह वाणी अलग, बहुत ही मधुर, अत्यंत मधुर, स्याद्‌वाद वाणी। स्याद्‌वाद अर्थात् मुस्लिम, पारसी ऐसी सब अठारह जातियाँ हों, फिर भी किसी के लिए भी दुःखदायी न हो, ऐसी वाणी होती थी। ज़रा सा भी, इतना भी किसी के धर्म का नुकसान नहीं हो, ऐसी वाणी होती थी। तो वे तीर्थंकर कितने सुंदर थे!

पूरे ब्रह्मांड में तीर्थंकर अर्थात् उच्चतम पुण्य। उनके पूरे शरीर के परमाणु अत्यंत उच्च प्रकार के। वह अलग ही प्रकार का कहलाता है। उनके सामने देवी-देवताओं के परमाणुओं की भी कोई कीमत नहीं, ऐसे परमाणु! अभी, उस प्रकार के परमाणु वाले सीमंधर स्वामी हैं। सीमंधर स्वामी अभी वर्तमान तीर्थंकर साहब हैं। वर्तमान तीर्थंकर के परमाणु घूमते हैं। वर्तमान तीर्थंकर से बहुत लाभ होता है।

# [ 8 ]
# भोजन के परमाणुओं का असर

## अंदर से इन्डेन्ट, बाहर से सप्लाइ

साइन्टिफिक सरमस्टेन्शियल एविडेन्स के आधार पर है यह सब। जगत् में एक भी परमाणु चेन्ज नहीं हो सकता।

अभी आप खाना खाने बैठोगे न, तो आपको खुद को भी यह पता नहीं है कि आप क्या खाओगे! बनाने वालों को भी पता नहीं हैं कि कल क्या बनाना है! यह सब किस तरह से हो जाता है, वह भी आश्चर्य है! उसमें से कितना आप खा पाओगे और कितना नहीं खा पाओगे, वे सभी परमाणु निश्चित हैं।

**प्रश्नकर्ता :** तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम नहीं जान सकते कि वे किस प्रकार से निश्चित हैं?

**दादाश्री :** जान सकते हैं न, सबकुछ जान सकते हैं। मेरी यह पूरी पज़ल सॉल्व हो चुकी है। मैं जानकर बैठा हूँ।

आप जो-जो खाते हो, वह आपके अंदर वाले परमाणुओं को जो पसंद हो, वही खाते हो।

शरीर में जो परमाणु होते हैं, वे वही माँगते हैं। फूटने के संयोग मिलने पर फूटते हैं और टाइम होने पर चीज़ आ जाती है।

इस एक साल की बच्ची को डिश में सभी प्रकार के पकवान दिए। फिर मैंने उसे मगस (बेसन की एक मिठाई) का टुकड़ा दिया। उसने देखा तो सही, लेकिन छुआ नहीं। फिर मैंने मूँग रखे लेकिन उसने नहीं छुआ। फिर मैंने जलेबी का छोटा सा टुकड़ा रखा, तो वह उसने एकदम से पकड़ ही लिया और मुँह में रख दिया। वह क्या है? उसे तो बिल्कुल भी समझ नहीं है कि यह पकवान है। लेकिन नहीं, यह तो ऐसा है कि अंदर के परमाणु जो माँगते हैं, वही मिल जाता है और खा लेने के बाद वह याद नहीं आता।

**प्रश्नकर्ता :** भोजन में भी लाइक-डिस्लाइक, पसंद-नापसंद ऐसा सब होता है न?

**दादाश्री :** होता है, होता है न! सभी में, हर एक चीज़ में। भोजन नहीं भाना और नापसंद होना, उन दोनों में बहुत फर्क है। उसे खट्टा खाना होता है लेकिन खा नहीं पाता, वह फिर अलग बात है। वह अंदर के परमाणुओं का दखल है। खाने ही नहीं देते। उन्नीस सौ साठ में आप कहते थे कि मुझे गुड़ के लड्डू अच्छे नहीं लगते और उन्नीस सौ सत्तर में आप कहते हो कि चीनी के अच्छे नहीं लगते और गुड़ के अच्छे लगते हैं, ऐसा कहते हो। क्या कारण है? साइन्टिफिक सरमस्टेन्शियल एविडेन्स। अंदर परमाणु बदल गए। अंदर जो माँगने वाले थे, वे सभी बदल गए जबकि लोगों को, व्यवहारिक व्यक्ति को ऐसा समझ में आता है कि यह सब मैं ही कर रहा हूँ।

हम उससे पूछे कि '(यदि) यह तू कर रहा है, तुझे खाना ही है तो तू क्यों नहीं खा पाता?' 'लेकिन मैं क्या करूँ? भा नहीं रहा' कहता है। 'अरे, लेकिन क्यों? तुझे खाना है और भाता नहीं है तो मुझे बता कि यह किसका दखल है?' वह ऐसा समझता है कि मेरा ऐसा स्वभाव हो गया है कि नहीं भाता। अब यह बात कैसे समझ में आए? दूसरी कोई दखल है, ऐसा उसे पता ही नहीं है न!

कौन खाता है? परमाणु खींचते हैं न। जो नहीं भाता है, वह आप नहीं खाते, वह क्या है? आप में रहे हुए परमाणु मना करते हैं,

और जो भाता है, वह क्या है? अंदर के परमाणु खींचते हैं इसलिए वह खाता है। जबकि लोग कहते हैं, 'दाने-दाने पर नाम लिखा हुआ है।' वह साइन्टिफिक खोज नहीं है, ढुलमुल बात है।

अंदर जो सूक्ष्म परमाणु हैं, वे इस स्थूल को खींचते हैं। दोनों में खींचा-तानी चलती रहती है। उसमें यह बीच में ऐसा अहंकार करता है कि 'मैंने पीया और मैंने ऐसे किया।'

*पूरण-गलन* की सत्ता मेरे हाथ भी नहीं है और आपके हाथ में भी वह सत्ता नहीं है, परसत्ता है। यह साइन्टिफिक सरमस्टेन्शियल एविडेन्स है और डॉक्टर भी उतना ही खा पाता है जितना अंदर के परमाणु खींचते हैं।

ये जो शराब पीते हैं वह, वह खुद नहीं पीता लेकिन अंदर के परमाणु खींचते हैं। अपना साइन्स, अक्रम विज्ञान ऐसा कहता है कि परमाणु खींचते हैं, उसमें उसका क्या दोष? वह तो अहंकार करता है कि 'मैंने पी'। फिर कहता है, 'नहीं पीनी थी फिर भी पी ली।' अरे, नहीं पीनी थी और पी ली, दोनों बात कैसे कह सकता है? अंदर परमाणु खींचते हैं। यह साइन्टिफिक खोज है।

हमने वहाँ औरंगाबाद में सभी डॉक्टरों को इकट्ठा किया था। मैंने कहा 'किस आधार पर खा पाते हैं?' अंदर के परमाणु खींचते हैं उतना ही खा पाते हैं, थाली में से वही चीज़ खाई जाती है और बाकी सब चीज़ें पड़ी रहती हैं।

यह जगत् को पुसाएगा नहीं, इसलिए मैं ज़ाहिर नहीं करता हूँ। नहीं तो प्रमाण सहित बताने को तैयार हूँ। लेकिन यह बात ज़ाहिर नहीं करते। यह साइन्स ज़ाहिर नहीं हुआ है कभी भी, अतः यह साइन्स (पब्लिक में) ज़ाहिर नहीं करना चाहता।

यह तो, व्यसन से बचाने के लिए कभी बोलना पड़े तो बात करते हैं। व्यसनी का दोष नहीं है, व्यसनी पर द्वेष मत करना। अंदर के परमाणु खींचते हैं और उसी अनुसार वह खा लेता है और फिर

कहता है कि 'मैंने खाया', इसीलिए ऐसा हुआ है। आपकी इच्छा नहीं होती फिर भी खा जाते हो या नहीं? आपको क्या लगता है?

**प्रश्नकर्ता :** परमाणु खींचते हैं, उस समय मन क्या काम करता है?

**दादाश्री :** परमाणु खींचते हैं, तब अहंकार बोलता है कि मुझे नहीं पीना है। ऐसा अंहकार करते ही मन खड़ा हो जाता है। वर्ना मन तो कभी शिकायत ही नहीं करता। वे (परमाणु) उसे खींचते हैं और उसे हमें देखते रहना है, जानना है कि ये खींच रहे हैं और यह खिंच रहा है, फिर मन से कहाँ संबंध रहा? मन से कब संबंध है? 'मैं पी रहा हूँ', ऐसा कहते ही हो जाएगा संबंध। 'मुझे नहीं खाना था और खा लिया', वह मन से संबंध।

और (यदि) अंदर के परमाणु नहीं खींच रहे होते तो अंदर ऐसी व्यवस्था रखी है कि बाहर भी निकाल दे एकदम से। हम अगर डालते रहें तो उल्टी कर देता है। फिर डॉक्टर के पास जाता है, 'साहब, मुझे उल्टी हो गई, मुझे उल्टी हो गई।' अरे, यह अंदर वाले ने उल्टी की है, उसमें साहब का क्या दोष?

'मैंने चाय पी' ऐसा कहता है और कुछ देर बाद कहता है, 'मुझे उल्टी हो गई।' अरे भाई, दोनों चीज़ें नहीं हो सकतीं। अगर पी है तो उल्टी नहीं हो सकती और उल्टी होती है तो पी नहीं होगी। दोनों चीज़ें एक साथ कैसे हो सकती है? आपको विरोधाभास नहीं लगता? रिजेक्ट कौन करता है? अंदर के परमाणु ही सभी काम कर रहे हैं।

ये साइन्टिस्ट चंद्र पर गए और इतने लोगों ने खोज की। अपनी खोज ऐसी है कि इन सभी को मटियामेट कर दे, लेकिन हमने उसे ढके रखा है।

हम पूछें कि 'क्या आपको यह भाता है?' तब वह कहता है, 'हाँ, मुझे बहुत भाता है।' हम कहते हैं शौक है? तो कहता है, 'नहीं शौक नहीं है।' अरे, इसका क्या अर्थ हुआ? 'भाता है' का अर्थ अंदर

खिंच रहा है और 'शौक है' तो वह आप करते हो, ऐसा साबित हो जाता है। अब इसका दुनिया को कोई भान ही नहीं है न? 'यह बहुत भाता है, यह नहीं भाता।' अरे भाई, यह नहीं भाता, किस आधार पर? भाना अर्थात् खींचना।

**प्रश्नकर्ता :** एक्सेप्ट (स्वीकार) करता है और रिजेक्ट (अस्वीकार) करता है, वे दोनों कर्ता अलग हैं?

**दादाश्री :** अरे, कर्ता अलग नहीं है, वह रिजेक्ट कोई करता ही नहीं है। यों एक्सेप्ट ही होता रहता है। रिजेक्ट तो, अन्य कोई विरोधी चीज़ें दी हों तब वह (शरीर) उसे रिजेक्ट करता है। वर्ना परमाणु ही खींचते रहते हैं। वही निकालता है और वही डालता है और उसमें बीच में, 'यह मैंने चाय पी, नाश्ता किया, फलाना किया, ऐसा किया, वैसा किया' बोलता रहता है। पूरी दुनिया इस साइन्स को नहीं जानने की वजह से भटक रही है, बैरागी-बैरागिनियाँ, साधु-सन्यासी वगैरह सभी। अब ये किस तरह से खिंचते हैं, वह मैंने देखा हुआ है। अब इंसान को बेचारे को कैसे समझ में आए! फिर (यदि) इस बात को अनुभव की श्रेणी पर रखा जाए न, तो क्योंकि मैंने आपको यह ज्ञान दिया है इसलिए आपको समझ में आ जाता है। अन्य लोगों को तो ज्ञान नहीं मिला है, उन्हें समझ में नहीं आएगा। चाहे हम कितना ही खोलकर समझाएँ फिर भी उसे समझ में नहीं आएगा। उसे लगेगा कि यह गलत बात है। 'मैं हूँ और मैंने खुद खाया है और मैं जानता हूँ' ऐसा ही कहता रहता है।

ये आणंद (गुजरात का एक शहर) की भैंसें किसी के खेत में चर कर आएँ और उनमें से जो दूध निकलता है। मुंबई में कोई उसकी चाय पीता है! अंदर के परमाणुओं में इतनी अधिक शक्ति है कि चाय जैसी चीज़ भी अगर सिलॉन (श्रीलंका) में हो तब भी वहाँ से उसे खींच लाते हैं और आपके टेबल पर आ जाती है!

इसलिए इन लोगों को मैं सुना देता हूँ कि, 'अरे, संडास जाने

की शक्ति नहीं है, तो फिर क्यों गाता रहता है!' कौन सी शक्ति है, उसे तू ढूँढ निकाल और जो शक्ति है, उसे तू जानता नहीं है। तेरा जो करंट (सत्ता) है, उसे तू जानता नहीं है। जहाँ पर तेरा करंट (सत्ता) नहीं है, बेकार ही वहाँ पर चिपक पड़ा है।

## भोजन का असर...

हर एक में तेजस शरीर है। वह हर एक बॉडी में कॉमन ही है। तेजस शरीर, इलेक्ट्रिकल बॉडी है जो पाचन वगैरह करती है, अंदर सबकुछ करती है। खून ऊपर-नीचे ले जाती है वह। वह मशीनरी मेरूदंड में स्थित है और उसके तार और डोरियाँ सब जगह पहुँचते हैं और इसीलिए भोजन पचता है और उसी से सबकुछ चलता है। यह बॉडी नहीं परंतु मशीनरी है। उसका जतन तो करना चाहिए न! योग्य आहार, नियमितता, इस मशीनरी का भी जतन होना चाहिए। यह तो परमाणुओं का विज्ञान है। इसलिए जतनपूर्वक योग्य शुद्ध आहार होना चाहिए।

यह पूरा ही शरीर परमाणुओं से बना हुआ है। तो (जब) शरीर के लिए भोजन आए, तब सोच समझकर अंदर डालना। यों ही मत डाल देना।

यदि कोई आमिष भोजन (माँसाहार) करता है तो उसका मन भी वैसा ही होता है। वृत्तियाँ हिंसक होती हैं। किसी जगह पर झगड़ा हो रहा हो तो चाय पीए बिना वहाँ निकल पड़ता है, उसकी वृत्तियाँ इस तरह दौड़ती हैं। (जैसा) अन्न वैसी डकार, (जैसा) पानी वैसी वाणी। कोई आमिष भोजन खाता है तो उसके वहाँ पर भी पानी तो उसी तालाब में से पहुँचता है लेकिन वहाँ पर 'मेरी मटकी, मेरा पानी' मालिकीभाव रहता है। इसलिए कोई सीधा आदमी उसके वहाँ पंद्रह दिन तक पानी पीए तो वह भी 'ए, साले' बोलना सीख जाएगा। क्यों? तो वह इसलिए कि 'उसके घर का पानी पीया है।' इसलिए ऐसा कहते हैं, 'हमारे घर पर माँगकर भी पानी पीना, कोई नाश्ता वगैरह माँग

लेना, चाय-पानी माँगकर लेना। कुछ भी लेना, तो हमारे परमाणु आप में आएँगे।'

परमाणु क्या कहते हैं कि हम वीतराग हैं। आप जितनी इच्छा करोगे उतना ही आपको सुख मिलेगा। वह सुख आपकी कीमत पर है, हमारी कीमत पर नहीं। यदि मिर्ची की पकौड़ी खाई और फिर वह स्मृति में रहे, तो वे परमाणु बाद में इतनी कड़वाहट पैदा करेंगे कि पूछो मत!

खाने वाले का खाने का काम पूरा क्यों नहीं होता? यदि तू खुद ही खाने वाला है तब तो पूरा हो ही जाना चाहिए। लेकिन यह तो *पूरण-गलन* है। जो भी है, वह शरीर खाता है। तेरा खुद का भोजन तो परमानंदी है, वह खा न! लेकिन उसे तो तू जानता भी नहीं है।

## रहस्य, टी.बी. की बीमारी का

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञान मिलने के बाद बीमारी आती है, वह क्या है?

**दादाश्री :** खराब परमाणु निकलते जाते हैं और अच्छे परमाणु भरते जाते हैं और अज्ञानियों में तो आते भी खराब परमाणु हैं और जाते भी खराब हैं।

सिर दुखाने के लिए क्या हमें कुछ करना पड़ता है? किसी और से कहो कि सिर दुखा के देख! यह तो, अंदर के परमाणु और बाहर के सांयोगिक पुरावे हैं।

डॉक्टर तो जर्म्स देखते हैं लेकिन जर्म्स किसके अधीन हैं? जो परमाणु अंदर रहे हुए हैं जो फल देने के लिए सम्मुख हो चुके हैं, उनकी वजह से बुखार आता है और तूफान मचता है। फल देकर वे नि:सत्व हो जाते हैं। हमारे पुण्य के आधार पर अन्य सारे परमाणु आ मिलते हैं। मदद के लिए दवाई भी आ जाती है। यह सारी सेटिंग अलग ही है। ये लोग (जो) मानते हैं, वह एक प्रतिशत भी सही नहीं है। यह तो मैं अपने ज्ञान में निरंतर देखता हूँ।

किसी व्यक्ति को मक्खन में टी.बी. के कीटाणु डालकर खिलाए जाएँ तब भी उसे टी.बी. नहीं होती और किसी और को, अगर उसके घर से दस घर दूर किसी को टी.बी. हो तब भी उसके यहाँ पर आ जाती है। इसके मूल कारण–परमाणु आप में हैं। बाह्य प्रमाण मिलने पर परमाणु स्थूल रूप में बाहर निकलते हैं, तब टी.बी. होती है।

तो यह सिर्फ आपका सपोज़िशन है। कहते हैं कि बाहर से टी.बी. के कीटाणु लग गए, तो इसमें कहाँ से लग गए? नर्स और डॉक्टरों को टी.बी. क्यों नहीं होती? तब कहते हैं, 'उनमें रज़िस्टेन्स पावर है।' अरे, यह गलत और उल्टा क्यों बोल रहे हो? जहाँ–जहाँ इन फेफड़ों के अंदर कोई भी चीज़ भरती है और वह चीज़ अधिक टाइम पर वहाँ टिक जाए तो वह सड़ने लगता है। जीव का नियम ऐसा है कि जहाँ पर उसकी खुराक उत्पन्न होती है, वह वहीं जाकर रहने लगता है। इसलिए आपके अंदर कहीं जो कुछ भी बिगाड़ है, उसे निकालो, तो जीव नहीं आएँगे।

**प्रश्नकर्ता :** (वह जो) भोजन उत्पन्न होता है, तो उसे दूर कैसे किया जाए? वह तो दूर हो ही नहीं सकता न?

**दादाश्री :** हम क्या कहना चाहते हैं कि उसे टी.बी. होने से पहले, टी.बी. के जर्म्स आने से पहले, टी.बी. के उस बिगाड़ को दूर करो, ऐसा कहना चाहते हैं। एक बार आने के बाद में फिर जर्म्स बढ़ते ही जाएँगे, उनका ज़ोर रहेगा।

इसमें होता क्या है कि अंदर (जैसे) विचार किए जाएँ, वैसे ही परमाणु इकट्ठे होते हैं। ऐसा सोचा कि मधुमक्खी के छत्ते को जलाना है तो उससे क्षय के परमाणु खिंच जाते हैं। अगर जला देते हो तो उन परमाणुओं को दृढ़ कर दिया। परमाणु ऐसे हैं इसलिए जंतु उत्पन्न होते हैं। सिर्फ मधुमक्खी का छत्ता ही नहीं लेकिन जीव मात्र, जितने जीव मारते हैं उतने ही जीव हम से बदला लेते हैं और रोग होता है।

फिर अंदर ठीक भी हो जाता है। यह सब कुदरत की कैसी करामात है! कुछ भी नहीं करना पड़ता, ऐसा है। अंदर इतना सबकुछ चलता है तो फिर बाहर किसलिए, बिना बात के अहंकार करता रहता है? तू चला रहा है?

अतः इन परमाणुओं की शक्ति इतनी अधिक है, जितनी कि भगवान की भी नहीं है। यह तो विज्ञान है। इसमें परमाणु भी कुछ नहीं कर सकते। यह चेतन नहीं होगा तो ये परमाणु भी कुछ नहीं कर सकेंगे। और यह तो चेतन का विशेष-भाव उत्पन्न होता है। इसलिए इसमें 'ऐसा हो जाए तो बहुत अच्छा, ऐसा हो जाए तो बहुत अच्छा, ऐसा हो जाए तो खराब है।' अंदर ऐसा होता है। हम जो अच्छा-बुरा कहते हैं, कुदरत तो उससे भी आगे (रूपक में) ले जाती है।

## खाए हमेशा लड्डू, श्मशान की राख के

ज्ञानी पुरुष को तप नहीं करना पड़ता। इसलिए उनका चेहरा परमानंदी दिखाई देता है। यह जो तप होता, वह भी *पूरण-गलन* स्वभाव वाला है। तपना अर्थात् लाल-लाल हो जाते हैं और घड़ी भर में ठंडा पड़ जाता है।

रोने के समय पर रोता है या नहीं रोता? और हँसने के समय हँसता भी है? मैं तो बीस साल से किसी भी चीज़ पर, *पुद्गल* पर नहीं हँसा हूँ। हँसना कैसा? ये सारी तो जूठन है और जूठन ही खाते रहते हैं सभी जगह पर। ये लोग श्मशान की राख के ही लड्डू खाते हैं। वही की वही जूठन, कोई नई जूठन नहीं आती। *पुद्गल* अर्थात् जूठन। *पूरण-गलन, पूरण-गलन, पूरण-गलन, पूरण-गलन...* शुद्धात्मा और *पूरण-गलन* दो ही चीज़ें हैं। इसे लेकर तो कितने शास्त्र लिख दिए! ओहोहोहो! दो ही चीज़ें हैं, *पूरण* होता रहता है और फिर वह *गलन* हुए बगैर रहता ही नहीं न! खाया तो फिर संडास जाना ही पड़ेगा। तो कई बार उल्टी भी हो जाती है या नहीं? *पूरण* और *गलन* अपने आप ही होने दो, नहीं तो दुःखी हो जाओगे। खाते हो, लेकिन

अगर संडास करने नहीं जाओगे तो दु:खी हो जाओगे। पानी पीओगे और पेशाब करने नहीं जाओगे तो दु:खी हो जाओगे।

दो विभाग हैं, चेतन और जड़। *पुद्गल* जड़ विभाग में है। नहीं खाना हो फिर भी खाना पड़ता है। नहीं भोगना हो फिर भी भोगना पड़ता है। रुचि और अरुचि, ये दोनों राग-द्वेष के भाई हैं। इसीलिए संसार है। वीतराग अर्थात् मोक्ष।

अरे, कितने ही लोगों को तो, मेरे जैसे को तो भोजन करना भी अच्छा नहीं लगता! क्या मुझे भोजन करना अच्छा लगता होगा? यह झंझट करना, दांत से चबाना, क्या यह सारी पीड़ा पसंद है? लेकिन कोई चारा ही नहीं है न! हालांकि हम इससे अलग रहते हैं। इसलिए हमें कोई परेशानी नहीं है लेकिन बाकी सब को अच्छा नहीं लगता वास्तव में। जो विचारक है न, विचारक को सब समझ में आता है कि यह सब किसलिए? रोज़ दातुन करने की ज़रूरत पड़नी चाहिए क्या? काम खत्म नहीं हो जाना चाहिए? आज अच्छी तरह दातुन कर लें, फिर काम खत्म हो जाना चाहिए न? आज नहीं, लेकिन आठ दिनों में तो काम खत्म हो जाना चाहिए न? किसी का खत्म हुआ है? उसका क्या कारण है? यह *पूरण-गलन* कभी खत्म हो सकता है क्या? भगवान ने क्या कहा है? *पूरण-गलन* खत्म नहीं होगा। *गलन* होने के बाद में *पूरण* होता रहेगा, *पूरण* होने के बाद में *गलन* होता रहेगा, यही धंधा लगाया है न। इसे *पूरण-गलन* हम कहते हैं और यदि तू विचारशील है तो ले, मैं तुझे साफ-साफ बता देता हूँ कि *पूरण-गलन* चीज़ों को माइनस करता जाएगा तो आत्मा हाथ में आ जाए, ऐसा है, लेकिन उसे समझ में नहीं आता न!

इसीलिए कृपालुदेव ने कहा है न, कि 'ज्ञानी पुरुष तो दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ हैं।' उन्होंने खुद ने लिखा है कि यदि हमें ज्ञानी मिल गए होते तो उनके पीछे-पीछे चले गए होते। हमें यह सारी झंझट नहीं करनी पड़ती कि लोग हमें ज्ञानी मान बैठे हैं और हमें जो त्याग करना है, वह हो नहीं पा रहा। क्योंकि क्रमिक मार्ग में त्याग करना ही पड़ता

है, कोई चारा ही नहीं है। जब तक पारायण खत्म न हो जाए तब तक त्याग करना ही पड़ता है क्योंकि *पूरण* के साथ में *गलन* रहता है, और यहाँ अक्रम में तो *पूरण* ही बंद कर देते हैं न! *पूरण* ही स्टॉप अर्थात् उसके बाद सिर्फ *गलन* ही रहता है। इस विज्ञान को पूरी तरह से समझ लिया जाए तो चाहे कैसी भी स्थिति हो, उसमें समाधि रहेगी। लेकिन वह हमारे पास आकर समझ लेना चाहिए। पूछ-पूछकर सब समझ लेना चाहिए।

आपने समझ लिया है या कोई कमी रखी है?

**प्रश्नकर्ता :** दादा, समझ में आता जा रहा है, धीरे-धीरे फिट होता जा रहा है।

# [ ९ ]
# पुद्गल में निरंतर होता है पूरण-गलन

## पूरण - फर्स्ट गलन - सेकन्ड गलन

(पिछले जन्म में *पूरण* किया और फिर इस जन्म में) खाया, वह फर्स्ट *गलन* है और संडास जाता है, वह सेकन्ड *गलन*।

**प्रश्नकर्ता :** जो खाया, वह *पूरण* नहीं है?

**दादाश्री :** जगत् की भाषा में वह *पूरण* है लेकिन ज्ञानी की भाषा में वह भी *गलन* है। *पूरण* कुछ अंश तक आपके हाथ में है। कुछ अंश तक। सर्वांश रूप से नहीं। (कॉज़ेज़ भाग खुद की) सत्ता में है और यदि ज्ञान मिल जाए तो (कॉज़ेज़ चेन्ज करने की) सत्ता आ जाती है। या फिर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान मिल जाएँ तो थोड़ी-बहुत सत्ता मिल जाती है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सत्ता के आधार हैं। बाकी जो खाते हैं, इन्द्रियज्ञान से वह *पूरण* है और यथार्थ ज्ञान से वह *गलन* है। भोजन करना, उसे फर्स्ट *गलन* कहते हैं। पैसा कमाता है, वह भी (फर्स्ट) *गलन* है और वह भी व्यवस्थित के हाथ में है। इतना ही यदि समझ जाए तो स्वरूप के लिए बहुत समय मिलता रहेगा।

**प्रश्नकर्ता :** चार्ज व डिस्चार्ज और *पूरण* व *गलन* के बारे में समझना है।

**दादाश्री :** *पूरण* मेहनत वाला होता है और *गलन* अपने आप

होता रहता है। अत: जो मेहनत वाला है और जो अपने आप होता रहता है, उन दोनों का पता लगा न! खाते समय मेहनत करनी पड़ती है या नहीं? चबाना पड़ता है, यह सब करना पड़ता है तो वास्तव में वह *पूरण* नहीं है लेकिन दुनिया को दिखाई देता है *पूरण,* और बाद में *गलन* होता है। उस *गलन* की आपको चिंता नहीं करनी है।

**प्रश्नकर्ता :** वह ऑटोमैटिक होता रहेगा?

**दादाश्री :** हाँ, अब वास्तव में यह (मूल) *पूरण* नहीं है। (मूल) *पूरण* तो पिछले जन्म में किया है, उसकी वजह से उसे ये संयोग मिले हैं। तो उनका *पूरण* दिखाई दे रहा है आपको और उसका *गलन* होगा। अत: इस *पूरण* में ज़रा कुछ मेहनत करनी पड़ती है और *गलन* बिना मेहनत के हो जाता है। इसलिए मैंने आपसे कहा है कि इस ज्ञान के बाद में आपका *पूरण* करना बंद हो गया है। अब आपका सारा *गलन* व्यवस्थित के ताबे में है। वह अपने आप ही *गलन* होता रहेगा। आपको चिंता नहीं करनी है। मैंने आपसे क्या कहा है कि आपके लिए अब सिर्फ यह *गलन* ही बाकी बचा है, *पूरण* बंद हो गया है। चार्ज होना बंद हो गया है और सिर्फ डिस्चार्ज ही बचा है। अत: आपके लिए यह व्यवस्थित ही है, और आप अपनी आत्मा की तरफ का (पुरुषार्थ) करते रहो। यह व्यवस्थित अपने आप ही होता रहेगा। आपका कुछ भी कर्तापन नहीं रहा है इसमें, ऐसा समझ में आता है न, डिस्चार्ज में?

## पुर् + गल = पुद्गल

(जगत् में यह जो दिखाई देता है, वह) चालबाज़ी वगैरह सब परमाणुओं की है। जो *पूरण* हुआ है, वही *गलन* हो रहा है। जो संयोग हैं, उन्हीं का वियोग हो रहा है।

**प्रश्नकर्ता :** मैं ऐसा देखता आया हूँ कि हर एक चीज़ में मुझे अपयश ही मिलता रहता है।

**दादाश्री :** अब यश मिले ऐसा करना है? अपयश अच्छा नहीं लगता?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं लगता।

**दादाश्री :** अभी तक जो *पूरण* किया था न, वह *गलन* हो गया। वह *गलन* अपयश देकर चला गया, यानी कि आपको *पूरण* करना नहीं आया। पहले *पूरण* करते समय यह नहीं आता था कि क्या खरीदारी करनी है, उसी वजह से अभी यह मार खाई है। यश मिले तब भी देखते रहो, अपयश मिले तब भी देखते रहो। क्योंकि यश व अपयश दोनों *पुद्‌गल* हैं, *पूरण–गलन* हैं।

वह जो *पुद्‌गल* लिखा हुआ है, वह *पुरगल* है, र में से द् हो गया है यहाँ पर। पुर + गल की संधि से *पूरण* और *गलन* कहलाता है और शुद्धात्मा चेतन है। यहाँ पर, बाज़ार जाकर सब्ज़ी लेकर आए तो वह यहाँ से सब्ज़ी लेने गया, वह *पुर्* कहलाएगा और वापस आया, वह *गल* कहलाएगा। यह पूरा ही जगत् *पुद्‌गल* है, यह *पुद्‌गल* तो समझने जैसा शब्द है।

**प्रश्नकर्ता :** यह तो यथार्थ अर्थ मिल गया।

**दादाश्री :** यथार्थ अर्थ मिल जाए, तभी ये समझ में आ सके, ऐसी बात है। यह तो विज्ञान है। विज्ञान अर्थात् साइन्टिस्ट कबूल करें, वैसी बात है यह।

## शुद्धात्मा और पूरण–गलन

और हम तो साफ–साफ कह देते हैं न, कि शुद्धात्मा और *पूरण–गलन*। क्रेडिट एन्ड डेबिट, क्रेडिट एन्ड डेबिट। और कुछ भी नहीं हो रहा है। बैंक में रखी हुई किसी की भी रकम, स्थिर रही है? आएगी और जाएगी। *पूरण* और *गलन,* इंसान दो खाते रखता है। (बैंक में से पैसा) लेने जाए तो वह *गलन* है, रखने जाए तो वह *पूरण* है।

पिछले जन्म में *पूरण* किया था, क्रेडिट किया था, वही इस जन्म में डेबिट होता रहता है। अब अभी नया क्रेडिट करना शुरू किया, वह अगले जन्म में काम आएगा। बैंक में रखी हुई रकम जैसा है सब। पूरी ज़िंदगी खाते रहो। जैसा *पूरण* करता है वैसा ही *गलन* आता है।

अब संक्षेप में, इन शॉर्ट दृष्टि में आपको समझ में आया? 'कम टू द शॉर्ट', नहीं तो इसका तो अंत ही नहीं आएगा। इस जगत् में पाँच चीज़ें हैं। इस देह में तीन हैं : *पूरण, गलन* और शुद्धात्मा और बाहर दो ही चीज़ें हैं : भोजनालय और शौचालय। भोजनालय, भोगने योग्य है और शौचालय, छोड़ने योग्य है। यानी कि पूरा जगत् इसमें आ गया, इन पाँच शब्दों में। और फिर इन दो शब्दों में सबकुछ आ गया कि शुद्धात्मा और संयोग दो ही हैं। लोगों को गुह्य बात की भी समझ नहीं है, वहाँ पर गुह्यतर बात कैसे समझ में आ सकती है? और फिर हमारी बात तो गुह्यतम है।

जिस भाव से तू *पूरण* करेगा, उसी भाव से *गलन* होगा। वह तो पहले जैसा बोला था न, उस समय परमाणु खिंचे थे और वे सभी परमाणु वैसे ही हो गए। अतः उस घड़ी परमाणु अंदर दाखिल हुए, तब वे पुद् कहलाते हैं और फिर जब वे परमाणु फल देकर *गलन* होते हैं तब गल कहलाते हैं। भरते हैं और फिर *गलन* होता है फल देकर। कर्म बाँधते समय उसका *पूरण* होता है कर्म छोड़ते समय *गलन* होता है। अतः उसे *पुद्गल* कहा जाता है। वह *गलन* होता है तब उसे '*निर्जरा*' कहते हैं और *पूरण* होता है तब उसे 'बंध' कहते हैं।

हम किसी दुर्जन को यहाँ पर बुला लाएँ तो उसमें दुर्जनता का *पूरण* हो रहा है। उसे सज्जनता के सागर में रख दिया जाए तब भी दुर्जनता का ही *पूरण* होता रहेगा और सज्जनता का *गलन* होता ही रहेगा। लेकिन जिसमें दुर्जनता का *गलन* हो रहा है, उसे सज्जन बना सकते हैं। जो माल भरा हुआ है, उसी का *गलन* होता है। नीम मीठा पानी पीता है फिर भी हर पत्ते में कड़वाहट आ ही जाती है। कुल्हाड़ी से काटो तो कुल्हाड़ी में भी कड़वी गंध आती है, एक छोटी सी निंबोली में भी कितनी कड़वाहट भरी है, वह तो देखो! इस *पुद्गल* की करामात तो देखो! जो कुछ भी उपचार करो, मीठा पानी डालो, लेकिन उसकी कड़वाहट बढ़ती ही जाएगी। इस दुनिया में एक भी

चीज़ ऐसी नहीं हैं, जिसका *पूरण-गलन* नहीं होता। *पूरण-गलन* स्वभाव ही है, इट इज़ बट नैचुरल।

यह *पूरण-गलन* एवरीव्हेर एप्लिकेबल है। *गलन* कुदरती रूप से होता है और *पूरण* भी कुदरती रूप से होता है।

ज्ञान मिला है इसलिए *गलन* किया है, वह *पूरण* नहीं करता। जैसे कि लट्टू *पूरण* नहीं करता है, *गलन* करता है। लट्टू का *पूरण* तो इंसान करता है और *गलन* लट्टू करता है। उसी प्रकार से इसमें भी ऐसा ही है, जो आत्मा का प्रतिनिधि है, वह 'मैं' *पूरण* करता है और लट्टू (शरीर) *गलन* करता है। मन-वचन-काया के तीन लट्टू रात-दिन घूमते ही रहते हैं। आत्मा का प्रतिनिधि है न, अहंकार, वह *पूरण* करता है। 'मैं हूँ, मैं हूँ', वह आत्मा की भी नहीं सुनता। आत्मा की बात को जानता ही नहीं है! 'मैं ही हूँ' ऐसा कहता है। *पुद्गल* खुद *पूरण-गलन* कर रहा है और आप मानते हो कि मैं कर रहा हूँ।

अंदर जितना भरा हुआ होगा, उतना ही *गलन* होगा। भरा हुआ नहीं होगा तो फिर आपका नाम लेने वाला भी कोई नहीं रहेगा। पूरा *पुद्गल* व्यवस्थित के अधीन है।

जिस भाव से *पूरण* हुआ होगा उसी भाव से *गलन* होगा। दान देते समय ऐसे भाव हों कि भाई, इनके दबाव की वजह से मैंने दान दिया तो उस चीज़ का *गलन* होते समय वापस वैसा ही होगा। राज़ी खुशी से दान दिया होगा तो *गलन* के समय में उसका अलग ही तरह का फल आएगा। अतः *पुद्गल* तो आता ही रहेगा। बोलाचाली हो जाएगी, बाकी सब हो जाएगा, वह सब होगा लेकिन जीव रहित, निर्जिव! उसमें से जीव वाला भाग खींच लिया है सिर्फ अचेतन ही बचा है, उसका *गलन* होता रहेगा।

यह नफा-नुकसान क्या है? *पूरण-गलन*। आत्मा परमानेन्ट वस्तु है और ये सब *पूरण-गलन* वाली चीज़ें हैं और (जब) यह *पूरण* होता है तब 'बढ़ गया, बढ़ गया' कह कर राग करता है और (जब) *गलन*

होता है तब 'चला गया' कह कर द्वेष करता है और संसार सर्जित करता है। खुद ही परमात्मा है लेकिन नासमझी से इस *पूरण-गलन* वाले संसार में मार खाता है।

## अज्ञानता में पूरण रुकता नहीं है लेकिन बदल सकता है

हम आत्मा हैं और यह तो *पुद्‌गल* है। इस *पुद्‌गल* का तो *पूरण-गलन* होता ही रहेगा। अंत में जला देते हैं न! अर्थी निकालते हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** *पूरण* होने से कैसे रोका जा सकता है?

**दादाश्री :** (जिसने) ज्ञान नहीं लिया है, उसका *पूरण* होने से नहीं रोका जा सकता, लेकिन उसे बदला जा सकता है। किसी के प्रति खराब काम करते हुए, मन में ऐसा भाव हो कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए', तो वह *पूरण* है। या फिर अच्छे काम करते समय मन में ऐसा लगे कि 'ऐसा होना चाहिए' तो वह भी *पूरण* है। फिर उस *पूरण* के बाद में *गलन* अपने आप ही होता रहता है।

अपने हाथ में सिर्फ *पूरण* में बदलाव करना ही है, थोड़ा-बहुत ही। वह भी, संयोग होंगे तो विचार आएँगे, वर्ना नहीं आएँगे। खराब करते समय जो अच्छे करने के भाव होते हैं न, वे भी, संयोग सीधे हों तभी वैसा होने देते हैं, वर्ना नहीं होने देते। खुद के हाथ में कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** हम किसी व्यक्ति के दोष देखें कि, 'यह कितना खराब है, कितना अधम है', और हम उस विचार में तन्मयाकार हो जाएँ तो क्या वह भी *पूरण* है?

**दादाश्री :** नहीं, (महात्माओं के लिए) वह *पूरण* नहीं है, वह *गलन* है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो तन्मयाकार हो जाते हैं, क्या वह भी *गलन* है?

**दादाश्री :** तन्मयाकार होना भी *गलन* है। यह तो दादा का वीतराग विज्ञान है। किसी के दोष देखे और दोषों में तन्मयाकार हो गए, तो वह भी *गलन* है। वह जो *पूरण* हुआ था, उसी का *गलन* है। *पूरण* नहीं हो रहा है।

कृपालुदेव भी कहते हैं कि, 'जीव की स्थिति सहज स्वरूप वाली हो जाना, उसी को श्री वीतराग मोक्ष कहते हैं।' वही बात हुई है अपने महात्माओं के साथ। स्थिति सहज रूपी होना अर्थात् *पुद्गल* अच्छा है या बुरा, वह आपको नहीं देखना है, आपको तो जानने की ही ज़रूरत है। अच्छा-बुरा मानने कहाँ जाओगे? जो *पूरण* हो चुका है, वह *गलन* हो रहा है। आपने मूली खाई और फिर चार घंटे बाद अगर पेशाब करने जाओ, तब आप ऐसा कहते हो कि 'अरे, यह मूली की गंध क्यों आ रही है? मैंने तो चार घंटे पहले मूली खाई थी। मूली की गंध अभी नहीं आनी चाहिए।' तो फिर उसमें क्या हुआ? यह जो *पूरण* किया था, वह *गलन* हो रहा है।

आज से दस साल पहले होटल का खाना खाया हो और आज पेट में मरोड़ हो जाएँ, तो उसमें उसका क्या दोष है? होटल में कुछ भी खा लिया था। ज्ञान होने के बाद में पेट में मरोड़ होते हैं, तब लोग कहते हैं कि 'पेट में मरोड़ क्यों उठ रहे हैं?' अरे भाई, उसका *पूरण* हो चुका है। उसका *गलन* हो रहा है, उसमें तू क्यों कच-कच कर रहा है?

## महात्मा के कर्म, गलन ही

इस ज्ञान के बाद में देहभाव से कर्ता मानता था, वह कर्तापन चला गया, इसलिए वह बन गया अकर्ता। अब सबकुछ व्यवस्थित के ताबे में चला गया। उसकी प्रेरणा से चल रहा है। *पूरण* कब तक है? देहभाव से कर्ता था, तभी तक *पूरण* हो रहा था। नया भरना बंद हो गया। पुराने का *गलन* चल रहा है। जो भरा हुआ है, वह निकल रहा है, *गलन* होता रहता है। नया नहीं करता। कोई अगर कंजूस स्वभाव

वाला हो तो उसकी कंजूसी निकलती है। कोई नोबल हो तो उसका नोबलपना निकलता है। जो माल भरा है, वही निकलता रहता है। यह तो अक्रम विज्ञान है।

और क्रमिक मार्ग में क्या है कि जो कुछ भी है, उसे छोड़ देना है। छोड़ते-छोड़ते अकेला हो जाना है। अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, आज यह छोड़ा, इस जन्म में इतना छूटा, इस जन्म में इतने तक छूटा। लेकिन एक तरफ छूटता भी है और दूसरी तरफ नया बंधन भी होता है। इसलिए इसका अंत नहीं आता।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, लेकिन कई बार जब *गलन* हो रहा होता है उस समय अच्छा नहीं लगता, उसका क्या कारण है?

**दादाश्री :** अच्छा नहीं लगता, तो वह किसे अच्छा नहीं लगता? सिर्फ अभिप्राय अलग हुआ अपना कि यह अपने काम का नहीं है और जो *पूरण* हो चुका है, वह *गलन* हुए बगैर रहेगा ही नहीं न!

**प्रश्नकर्ता :** हम कितना भर कर लाए हैं कि वह *गलन* ही होता रहेगा, इससे कब छुटकारा होगा?

**दादाश्री :** जितना लोभ, उतना ही भरा है। जिसका जिस प्रकार का लोभ होता है उतने ही प्रकार के *पूरण*। ज़मीन का लोभ हो तो निरी ज़मीन ही खरीदता रहता है। हर एक प्रकार के, खाने का लोभ होता है, इन्द्रियों के सुख का लोभ होता है, चाहे किसी भी तरीके से भोग लूँ, ऐसा लोभ!

किसी की शादी में जाए और कोई हाथ जोड़कर नमस्ते करे तो *पूरण* होता है। उससे छाती टाइट हो जाती है। फिर कोई उसे इस तरह नमस्कार न करे तो वापस *गलन* होता है, तब डिप्रेस हो जाता है! अहंकार का *पूरण-गलन* होता है या नहीं होता?

फिर क्रोध भी *पूरण-गलन* है। जब क्रोध निकलता है तो निकलते ही तो पाँच सौ डिग्री होता है, फिर चार सौ डिग्री हो जाता है, फिर

तीन सौ डिग्री हो जाता है, दो सौ डिग्री हो जाता है और फिर सौ डिग्री हो जाता है, ऐसे कम होते-होते फिर ज़ीरो हो जाता है। क्या ऐसा अनुभव में नहीं आता है? इसी तरह से लोभ का भी *पूरण-गलन* होता है। सभीकुछ *पूरण-गलन* होता रहता है।

इन लड़कों (बेटों) के लिए, लड़कियों (बेटियों) के लिए, जितना मोह *पूरण* किया हुआ है, वह अब *गलन* होगा ही। तो जो भी आए, उसका समभाव से *निकाल* (निपटारा) कर दो। उस समय दादा के शब्द याद आ जाएँ तो *निकाल* हो जाएगा।

जब शादी होती है तभी से मैरिज लाइफ (विवाहित जीवन) का *गलन* होने लगता है। फिर एक दिन सब *गलन* हो जाता है तब बूढ़ा इधर जाता है और बुढ़िया उधर चली जाती है।

ऐसा है, *पूरण-गलन* का स्वभाव। नियम से ही वह *पूरण* धीरे-धीरे, बढ़ते, बढ़ते, बढ़ते, बढ़ता जाता है, *गलन* एकदम से हो जाता है। इस तरह फिर *गलन* का स्वभाव अलग है न!

लोग कहते हैं कि जनसंख्या बढ़ गई है। तब मैंने कहा, वह बढ़ी नहीं है, *पूरण* हो चुकी है। अब धीरे-धीरे, हर दस साल में इतनी-इतनी *पूरण* होती ही रहती है, लेकिन जब *गलन* आएगा तब?

**प्रश्नकर्ता :** एकदम।

**दादाश्री :** इस जगत् में कोई भी पौद्गलिक चीज़ अचल नहीं हैं। यह मेरू पर्वत अचल है। उसका आकार नहीं बदलता। परमाणुओं का *पूरण-गलन* होता है लेकिन आकार नहीं बदलता।

सभी क्रियाओं के ज्ञाता-द्रष्टा रहो तो सभी क्रियाएँ *गलन* रूपी हैं। बुरी आदतें और अच्छी आदतें, सभी *गलन* हैं। *पुद्गल* पूरा ही *पूरण-गलन* होता रहता है, उसे देखते ही रहो, दखल मत दो। अंदर हाथ डालने जाओगे तो बह जाओगे, देखते ही रहो। इस *पूरण-गलन* को जो जान चुका है, वह ज्ञाता-द्रष्टा-परमानंदी है। वही आत्मा, परमात्मा है।

## सारा पुद्‌गल प्रपंच

*पूरण* किया है उसका *गलन* हो रहा है और *गलन* हुआ है उसी का *पूरण* हो रहा है, उसे तू देख। खुद ज्ञानाकार, आत्माकार है, वह क्षेत्राकार क्यों हो रहा है? 'मैं पैसे वाला हूँ, मैं कंगाल हूँ', वह क्षेत्राकार हो जाता है।

तो इस *पूरण-गलन* में कब तक भटकते रहना है? इसमें कोई सुख नहीं मिला। यह टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट वाला सुख काम नहीं आता। इसलिए खुद के सनातन सुख को ढूँढता है। भले ही *पूरण-गलन* होता रहे, लेकिन उसके प्रति भाव न रहे और स्वरूप का भान हो जाए तो सनातन सुख प्राप्त होता है। फिर वह सुख कभी कम नहीं पड़ता। ये राग-द्वेष भी *पूरण-गलन* की वजह से होते हैं।

अतीन्द्रिय सुख अर्थात् किसी भी बाहरी चीज़ के बिना मिला हुआ आत्मिक सुख। इन्द्रिय सुख *पूरण-गलन* वाले, कल्पित होते हैं, वे शाश्वत नहीं होते। एक दिन (यदि) कल्पित आम का रस खाने को कहा जाए तो खा सकोगे क्या? नहीं। सचमुच का आम ही खाओगे न?

हमें *पूरण-गलन* का स्वाद नहीं लेना चाहिए। *पूरण* होने पर गर्व नहीं लेंगे और *गलन* होने पर हताश नहीं होंगे।

यह जो भरा हुआ माल था, उसका निकल जाना, उसी को कहते हैं *पुद्‌गल*। फिर वे निकल जाते हैं, अपने आप ही चले जाते हैं। फिर वे कभी नाम नहीं लेंगे वापस (वापस नहीं आएँगे)।

**प्रश्नकर्ता :** आत्म तत्त्व तथा *पुद्‌गल* प्रपंच के अलावा इस जगत् में अन्य कोई चीज़ है क्या?

**दादाश्री :** *पुद्‌गल* प्रपंच और आत्मा के अलावा अन्य कोई भी चीज़ नहीं है। लेकिन *पुद्‌गल* प्रपंच में क्या-क्या चीज़ें हैं, उससे आप क्या समझे? क्योंकि अहंकार व क्रोध-मान-माया-लोभ, सभी *पुद्‌गल* प्रपंच हैं। तो यदि आपने ऐसा समझा है तो वह करेक्ट है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो तांत्रिक विद्या है, वह *पुद्गल* प्रपंच से उत्पन्न हुई है या आत्मा का कुछ है इसमें?

**दादाश्री :** आत्मा को तो इससे कोई लेना-देना ही नहीं है न! आत्मा तो आत्मा ही है, परमात्मा है। यह सब *पुद्गल* प्रपंच है। इसलिए हम इसमें हाथ ही नहीं डालते न! वर्ना क्या हम यह विद्या नहीं सीख गए होते? हमने भी सीख लिया होता। यदि आत्मा से संबंधित कुछ होता तो हम सीखने जाते। हम जानते हैं कि यह सब संडास है। इसलिए इसमें हाथ ही नहीं डालते। (यदि) रसोई होती तो शायद हाथ डालते, संडास में क्या हाथ डालना?

*'रजकण के रिद्धि वैमानिक देवनी,*
*सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।'*

-श्रीमद् राजचंद्र

अर्थात् 'सिर्फ धूल का कण, छोटा से छोटा, जिसकी कोई वैल्यू नहीं है। जिसकी ऐसी वैल्यू है, जहाँ से वैल्यू की शुरुआत होती है, वहाँ से लेकर और जब तक वह वैल्यू कम्प्लीट हो जाती है, रिद्धि वैमानिक देवों की, जो कि उच्चतम पद है, वे सभी पद, सब को माना *पुद्गल,* अर्थात् *पूरण-गलन* रूपी हैं। इसलिए इनमें से कुछ भी हमारा नहीं है', ऐसा कह रहे हैं। यह सारा *पूरण-गलन* एक ही स्वभाव वाला है। जो *पूरण* हुआ, वह वापस *गलन* हो जाएगा। वैमानिक देवों में तू महेन्द्र भी बना है, तो ऐसा होने से पहले वह *पूरण* हुआ था इसलिए तू इसका *गलन* करने के लिए महेन्द्र बना है। महेन्द्र बना तभी से उस *गलन* की बिगिनिंग और तेरे *गलन* का एन्ड होना (अर्थात् महेन्द्र का पद खत्म होना) बस वही। ये देव, महेन्द्र पद का *पूरण,* मनुष्य अवतार में किया और *गलन* वहाँ (देवगति में) जाकर करता है।

## अंत में क्रमिक में भी अक्रम

**प्रश्नकर्ता :** क्रमिक के अंतिम स्टेप में भावकर्म चार्ज होते हैं या नहीं होते?

**दादाश्री :** अंतिम स्टेप में नहीं होते, वहाँ तो उससे भी कई स्टेप पहले से ही चार्ज तो सब बंद हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** उसका चार्ज बंद हो गया हो, तब तो फिर आगे जाकर अंतिम स्टेप में तो खत्म ही हो जाएगा?

**दादाश्री :** नहीं, लेकिन फिर *गलन* बचा न! *गलन* में, क्रोध-मान-माया-लोभ, *गलन* होते जाते हैं न!

**प्रश्नकर्ता :** चार्ज भी बंद होते-होते उसके क्रम में आगे जाकर अक्रम शुरू हो गया?

**दादाश्री :** वह अक्रम जैसा ही हो जाता है, उन लोगों का। अंतिम भाग अक्रम जैसा। ये क्रोध-मान-माया-लोभ हैं न, वहीं से चार्ज होता है। उसके खत्म होने के बाद में फिर बाकी का जो पूरा भाग बचा, उसका थोड़ा *गलन* हो जाता है। उसके बाद एकाकार। ('मैं', मूल आत्मा में एकाकार हो जाता है।)

**प्रश्नकर्ता :** यह जो तीर्थंकरों की स्थिति है, अंतिम समय में तो वे अक्रम मार्ग में ही होते हैं न?

**दादाश्री :** वह अक्रम मार्ग। मुक्त भाग में अक्रम होता है।

## [ 10 ]
# पुद्गल की परिभाषा

## सत् है तत्त्व

**प्रश्नकर्ता :** '*पुद्गल* सत् है', ऐसा कहा गया है लेकिन जो *पूरण-गलन* स्वभाव वाला है, उसे सत् कैसे कहा जा सकता है?

**दादाश्री :** 'सत्' कभी भी *पूरण-गलन* नहीं होता, अगुरु-लघु होता है। यानी कि जो *पूरण* नहीं होता, *गलन* नहीं होता, बढ़ता नहीं है, कम नहीं होता, पतला नहीं हो जाता, उसी को सत् कहते हैं। यह जो *पूरण-गलन* है, वह असत् है, विनाशी है। लेकिन मूल *पुद्गल,* जो परमाणु रूपी हैं, वे सत् हैं, वे विनाशी नहीं हैं। उनमें *पूरण-गलन* नहीं होता, वे अगुरु-लघु हैं।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन छः तत्त्वों में से एक *पुद्गल* तत्त्व भी है न?

**दादाश्री :** नहीं, उसे परमाणु ही कहा जाता है। वह तो, सिर्फ पहचानने के लिए *पुद्गल* कहते हैं। *पुद्गल* तो (जो) *पूरण-गलन* होता है, उतने ही भाग को कहा जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** जो जड़ है, जड़ तत्त्व है न? उस जड़ को हम तत्त्व कहते हैं और जड़ में से यह...

**दादाश्री :** वे परमाणु हैं।

**प्रश्नकर्ता :** जड़ के परमाणुओं में से *पुद्गल* के पर्याय उत्पन्न होते हैं तो यह शरीर बनता है न?

**दादाश्री :** *पुद्गल* के पर्याय नहीं। उन परमाणुओं से ही यह *पुद्गल* बनता है।

**प्रश्नकर्ता :** परमाणुओं से बनता है, वह ठीक है लेकिन मूल तत्त्व तो जड़ है न?

**दादाश्री :** जड़।

**प्रश्नकर्ता :** तो *पुद्गल* जड़ रूपी है?

**दादाश्री :** नहीं, इस तरह जड़ रूपी कहना ही मत। दुनिया में कुछ भी जड़ रूपी नहीं है, *पुद्गल* जड़ रूपी नहीं है। *पुद्गल* के परमाणु जड़ होते हैं।

## पुद्गल का स्वरूप, विभाविक-स्वाभाविक

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा और *पुद्गल* में क्या फर्क है?

**दादाश्री :** आत्मा एक ही वस्तु है। इसलिए वह कम-ज़्यादा नहीं होता। स्वाभाविक वस्तु है और *पुद्गल* स्वाभाविक वस्तु नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* किसे कहा जाता है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* तो, इन विकृत हो चुके परमाणुओं को *पुद्गल* कहा जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन क्या इसे (टेपरिकॉर्डर को) *पुद्गल* नहीं कहते, ये लोग? दुनिया क्या कहती है, निर्जीव है। क्या इसे *पुद्गल* कहेंगे?

**दादाश्री :** मूल परमाणुओं का जो स्वभाव है न, यह वह नहीं है। यह विकृत हो चुका है, विकारी हो चुका है। पेड़ बना तभी यह लकड़ी बनी न?

**प्रश्नकर्ता :** तो यह *पुद्गल* कहलाएगा न?

**दादाश्री :** हाँ, *पुद्गल* तो ठीक है। जो पेड़ बन गया है उसे।

**प्रश्नकर्ता :** आपने कहा *पुद्गल*, वह प्रकृति है, वह क्या है?

**दादाश्री :** प्रकृति भी *पुद्गल* ही है। आत्मा के अलावा बाकी का सब *पुद्गल* ही है, फिर उसे प्रकृति कहो या *पुद्गल* कहो। शुद्धात्मा और *पुद्गल* दो ही हैं ये। परमाणु अलग चीज़ है, वह शुद्ध चीज़ है। परमाणुओं के बड़े गठ्ठे बन गए हों, तब भी शुद्ध!

**प्रश्नकर्ता :** उसका अर्थ ऐसा हुआ न, कि आत्मा के अलावा बाकी जो कुछ भी है, वह *पुद्गल* है।

**दादाश्री :** देह में आत्मा के अलावा बाकी सब *पुद्गल* है।

*पुद्गल* वस्तु फर्क वाली ही है, आत्मा में फर्क नहीं है। लेकिन *पुद्गल* मिक्स्चर है। यह जो *पुद्गल* बन चुका है, वह स्वाभाविक *पुद्गल* नहीं है, विशेष-भावी *पुद्गल* है। विशेष-भावी *पुद्गल* अर्थात् इसके अंदर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, सब मिक्स्चर हो चुका है। स्वाभाविक *पुद्गल* होता तब तो कोई परेशानी नहीं थी, लेकिन यह तो मिक्स्चर हो चुका है। इसलिए इसका मेल ही नहीं बैठता न!

इस *पुद्गल* में आत्मा चेतन वस्तु है, शुद्ध चेतन है। इस शुद्ध चेतन के अलावा बाकी का सारा भाग *पुद्गल* है। आत्मा *पुद्गल* नहीं है। आत्मा *पूरण* भी नहीं है और *गलन* भी नहीं है। एक ही वस्तु है, चेतन वस्तु। अब और भी कुछ पूछना है?

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* तो अणुओं से बना हुआ है न? *पुद्गल*।

**दादाश्री :** *पुद्गल* में तो, सभी छहों चीज़ें (विभाविक आत्मा और बाकी के पाँच तत्त्व, मूल आत्मा स्वभाव से अलग है) साथ में आ जाएँ, उसे *पुद्गल* कहते हैं। वास्तव में *पुद्गल* सिर्फ अणु को ही माना गया है लेकिन सचमुच में देखने जाएँ तो इस *पुद्गल* में सभी

कुछ आ जाता है। इसमें सबकुछ होता है लेकिन लोग उसे ऐसा समझते हैं कि सिर्फ अणु को ही *पुद्‌गल* माना गया है, रूपी तत्त्व को।

*पुद्‌गल* अर्थात् जो *पूरण* हो चुका है और जो *गलन* होता रहता है। *गलन* अर्थात् डिस्चार्ज और *पूरण* अर्थात् चार्ज। वह चार्ज और डिस्चार्ज। चार्ज हम बंद कर देते हैं और सिर्फ डिस्चार्ज ही बचता है।

यह पूरा ही शरीर छः तत्त्वों का सम्मेलन है और फिर वह स्वभाव से कैसा है? उसका विसर्जन हो जाता है। छः तत्त्वों का सम्मेलन होने के बाद में उसे क्या कहा जाता है? *पुद्‌गल* कहा जाता है। *पुद्‌गल* का फिर अपने आप विसर्जन होता ही रहता है। अतः ये जो पाँच घोड़े हैं, पाँच इन्द्रियाँ, उन पाँच घोड़ों की लगाम छोड़ दी जाएँ, तो निरंतर विसर्जन होता ही रहता है। मोक्ष में जाना हो तो तू लगाम छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। व्यवस्थित को सौंप दे लगाम और तू छोड़ दे। लेकिन वह लगाम छोड़े कैसे? 'खुद कौन हूँ', ऐसा निश्चित हुए बिना? वर्ना 'पाँचों इन्द्रियाँ मैं ही हूँ, यह मैं ही हूँ। यानी घोड़ा भी मैं हूँ, चलाने वाले भी मैं हूँ और गिरने वाला भी मैं हूँ, बिगड़ जाने वाला भी मैं ही हूँ, सबकुछ मैं ही हूँ' ऐसा कहता है। इसलिए ज्ञानी ज्ञान देकर, उसे इसमें से मुक्त कर देते हैं। अलग करने के बाद में लगाम छोड़ते ही पता चल जाता है कि इस *पुद्‌गल* का अपने आप विसर्जन हो ही रहा है। दाढ़ी को उगने से रोकने जाएँ तो रुकेगी नहीं न? रुकती है क्या?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं।

**दादाश्री :** उसी प्रकार से यह भी नहीं रुक सकता। अपने आप ही विसर्जन होता है। सिर्फ इगोइज़म करते हैं कि 'यह मैंने किया, मैंने किया।' जैसे कि दाढ़ी का उगना नहीं रुक सकता, उसी प्रकार कुछ भी नहीं रुक सकता। सबकुछ चलता ही रहता है।

**प्रश्नकर्ता :** यह एक चीज़ समझना चाहता हूँ कि 'छः तत्त्व सम्मेलन पुरगल विसर्जन।'

**दादाश्री :** इसमें क्या कहना चाहते हैं कि इन छः तत्त्वों के सम्मेलन से यह जगत् बना है, इसका क्या परिणाम आता है? जो पुरगल था, उसका विसर्जन होता है।

इस शरीर का जन्म हुआ, तभी से इसका विसर्जन होता ही रहता है। उसे वह ऐसा मानता है कि मैं बड़ा हो रहा हूँ। तब कहते हैं, 'नहीं, निरंतर विसर्जन ही हो रहा है।' पुरगल तो बहुत बड़ा था। लेकिन इसका विसर्जन होता रहता है, तब भी इतना बड़ा शरीर दिखाई देता है। *पुद्गल* जितना अधिक, उतनी ही काया छोटी होती है। तो छोटे बच्चों में *पुद्गल* अधिक होता है, माल अधिक भरा हुआ होता है। (जैसे-जैसे) बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे निकलता जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* का *गलन* होता जाता है।

**दादाश्री :** हाँ, डिस्चार्ज होने में देर लगती है। हाथी के कर्म कम होते हैं और चींटी के बहुत होते हैं। हाथी का *पुद्गल* बड़ा है न, तो उसके कर्म कम होते हैं और चींटी के कर्म बहुत ज़्यादा होते हैं।

इस जगत् का पूरा ही बेसमेन्ट *पूरण-गलन* पर है।

## पूरण से स्कंध, गलन से परमाणु...

**प्रश्नकर्ता :** इस *पुद्गल* में से आत्मा अलग हो जाए (मृत्यु के बाद में) तो ये जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वे अन्य पाँच तत्त्वों में से कौन से तत्त्वों में मिल जाते हैं?

**दादाश्री :** किसी भी तत्त्व में नहीं मिलते, उसी को भगवान ने *पुद्गल* तत्त्व कहा है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या उसी को विशेष परिणाम कहा गया है?

**दादाश्री :** हाँ, विशेष परिणाम। लेकिन वे (विशेष परिणाम) *पुद्गल* के माने जाते हैं, आत्मा के नहीं माने जाते। *पुद्गल* कोई तत्त्व नहीं है। वह तो इन लोगों ने ऐसा समझाया है। ये जो परमाणु हैं, वे तत्त्व हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा, ये परमाणुओं के इकट्ठे होने से जो स्कंध बनता है, उनमें आत्मा नहीं है तो क्या उसे *पुद्गल* नहीं कहेंगे?

**दादाश्री :** नहीं, वह *पुद्गल* नहीं कहलाएगा। अब, ये लोग उसे *पुद्गल* कहते हैं। भाषा ही ऐसी हो गई है। बाकी, *पुद्गल* तो किसे कहते हैं कि, कोई भी क्रीचर होना चाहिए। अर्थात् पेड़-पौधे, जीवंत चीज़ में आत्मा के अलावा के अन्य भाग को *पुद्गल* कहते हैं। जहाँ पर कोई भी पेड़ होता है न, पेड़ की लकड़ी, वह *पुद्गल* कहलाती है। पेड़ भी *पुद्गल* कहलाता है। काटने के बाद तो वह लकड़ी भी *पुद्गल* कहलाती है।

**प्रश्नकर्ता :** उसमें से आत्मा तो निकल गया। उसमें आत्मा तत्त्व नहीं होता।

**दादाश्री :** नहीं, आत्म तत्त्व निकल गया लेकिन आत्मा की वजह से परमाणुओं की ऐसी दशा हुई न! परमाणुओं की ऐसी दशा किस वजह से हुई?

*पुद्गल* में *पूरण* वाला माल स्कंध वाला होता है और *गलन* वाला माल स्वाभाविक होता है। *पूरण* करते समय स्कंध होता है और *गलन* में स्कंध में से परमाणुओं के रूप में, स्वाभाविक रूप से *गलन* होता है।

## इलेक्ट्रिसिटी भी पुद्गल में

विभाविक *पुद्गल* विनाशी है। स्वाभाविक *पुद्गल* परमानेन्ट है। *पुद्गल* को आत्मा का कोई अवलंबन नहीं है, वह स्वतंत्र है। एक क्षण भर के लिए भी अवलंबन में नहीं आया है। एक क्षण भर के लिए भी अवलंबन में आ जाए, तो हमेशा के लिए आ जाएगा। फिर तो आत्मा छोड़ेगा ही नहीं न, अपने ताबे में आ जाने के बाद में। लेकिन आत्मा किसी के ताबे में नहीं है, न ही कोई आत्मा के ताबे में है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* को जाना जा सकता है क्या? *पुद्गल* को वश में किया जा सकता है क्या?

**दादाश्री :** उसे जाना जा सकता है। *पुद्गल* हमें वश में नहीं कर सकता, हम *पुद्गल* को वश में नहीं कर सकते। वह हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता, हम उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। सब स्वतंत्र हैं और आमने-सामने अहिंसक हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अपने शरीर में जो ख़ून का सरकुलेशन होता है तब आत्मा का उससे स्पर्श होता है या नहीं?

**दादाश्री :** नहीं, उसे कोई लेना भी नहीं है और देना भी नहीं है। यह दिमाग़ वगैरह सब *पुद्गल* ही है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो इलेक्ट्रिसिटी है, वह कौन से तत्त्व में आती है? तत्त्व में आती है या नहीं?

**दादाश्री :** *पुद्गल* तत्त्व में।

**प्रश्नकर्ता :** वह परमाणु तत्त्व है जो कि चिरंजीवी है?

**दादाश्री :** यह तो *पुद्गल* परमाणुओं का पर्याय है। क्योंकि आपने देखा है न? आवन-जावन, उसे देखा है या नहीं देखा? आता है और जाता है? भरता है और बह जाता है, भरता है और बह जाता है, वह सारा *पुद्गल* है।

**प्रश्नकर्ता :** यह इलेक्ट्रिसिटी कभी मरती नहीं है। यानी कि इलेक्ट्रिसिटी कन्टिन्युअस ही होती है, तो वह इलेक्ट्रिसिटी एक तत्त्व है। वह शाश्वत है। उसे तत्त्व माना जाएगा या नहीं?

**दादाश्री :** नहीं! पर्याय अर्थात् अवस्था। बंद हो जाता है, उत्पन्न हो जाता है, बंद हो जाता है।

## फर्क है, करने में और क्रिया में

**प्रश्नकर्ता :** चेतन, *पुद्गल* में फँस गया है, तो वह *पुद्गल* के कौन से भाग में है और *पुद्गल* का कितना भाग घेरता है?

**दादाश्री :** चेतन फँसा ही नहीं है। *पुद्गल* के भाग को रोका ही नहीं है उसने, वह अपने खुद के भाग में है। *पुद्गल, पुद्गल* के भाग में है, दोनों की खुद की स्वतंत्र जगह है।

'खुद' ऐसा कहता है कि 'मैं चंदूलाल हूँ', उस *पुद्गल* को, 'मैं हूँ' ऐसा मानता है। कर्ता *पुद्गल* है, उसे ऐसा मानता है कि, 'मैंने किया'। इसलिए *पुद्गल* 'उससे' चिपक गया।

क्रिया करना किसका स्वभाव है? तो लोग कहेंगे, 'क्रिया मेरा स्वभाव है! मैं नहीं होऊँगा तो कौन करेगा? (यदि) *पुद्गल* कर रहा होता तो यह बैंच क्यों नहीं करती, यह डैस्क क्यों नहीं करता?' अरे, ये *पुद्गल* नहीं कहलाते।

**प्रश्नकर्ता :** तो *पुद्गल* किसे कहते हैं? जो यह क्रिया कर रहा है, वह *पुद्गल* भाग ही है न?

**दादाश्री :** जो जीव सहित है, वह सब *पुद्गल* कहलाता है। बाकी, यह *पुद्गल* नहीं कहलाता। वह तो परमाणुओं का स्वभाव है। बिगड़ जाना, सड़ जाना, वह तो *पूरण-गलन* है। जैसा *पूरण* किया था वैसा *गलन* हो रहा है।

*पुद्गल* अर्थात् वह जो *पूरण* हो चुका है और *गलन* होने लायक है और फिर वापस *गलन* में से *पुद्गल* उत्पन्न होता है। जब तक आत्मा भान में नहीं आ जाता तब तक *गलन* में से *पुद्गल* उत्पन्न होता है और *पुद्गल* में से वापस *गलन* उत्पन्न होता है। *पूरण-गलन, पूरण-गलन* होता ही रहता है।

अनंत अवतारों तक यही क्रिया है।

'यह मैंने जाना और मैंने किया', वह गुण आत्मा का भी नहीं है और जड़ का भी नहीं है। आत्मा जानता ज़रूर है लेकिन करता नहीं है और जड़ में, खुद में तो करने का भी गुण नहीं है, क्रिया का गुण है। उसमें क्रिया का गुण है लेकिन वह स्वाभाविक क्रिया है और यह जो *पुद्गल* बन गया है, वह तो विकृत क्रिया है, विकारी क्रिया!

**प्रश्नकर्ता :** कर्म कौन करता है? कर्म आत्मा को लगते हैं या *पुद्गल* को?

**दादाश्री :** ऐसा है न, चंदूभाई कर्म करता है और जब आपको ऐसा भाव हो जाएगा कि 'आप' चंदूभाई नहीं हो तब कर्म नहीं बंधेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** चंदूभाई है, वह *पुद्गल* है, जबकि आत्मा अलग चीज़ है। जो कर्म करता है, वह *पुद्गल* करता है तो फिर वह कर्म आत्मा को क्यों लगने चाहिए?

**दादाश्री :** (व्यवहार) आत्मा की खुद की यह रोंग बिलीफ है कि 'मैं चंदूभाई हूँ।' अतः इस रोंग बिलीफ से कर्म लगते हैं। सिर्फ *पुद्गल* ही कर्म नहीं करता लेकिन आत्मा की रोंग बिलीफ है। रोंग बिलीफ भी *पुद्गल* है, उसमें अहंकार काम करता है। यदि आपका वह इगोइज़म फ्रेक्चर हो गया तो खत्म हो गया। यह इगोइज़म ही कर्म बंधन करता है और कुदरत छोड़ती है। समय आने पर कुदरती रूप से वे सारे कर्म छूट जाते हैं और इगोइज़म भोगता है और कर्म बंधन करता है। भोगता है और कर्म बंधन करता है। बस, इगोइज़म का ही काम है यह। जब इगोइज़म नहीं होगा तब कर्म बंधन नहीं होंगे।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् आप ऐसा कहना चाहते हैं कि आत्मा *पुद्गल* के माध्यम से कर्म बंधन करता है और *पुद्गल* के माध्यम से छोड़ता है।

**दादाश्री :** ऐसा नहीं है। (मूल) आत्मा तो इसमें हाथ ही नहीं डालता। वास्तव में आत्मा तो अलग ही है, स्वतंत्र ही है। आत्मा की उपस्थिति में यह अहंकार कर्म बाँधता है और जो भोगता है, वह भी अहंकार ही भोगता है।

**प्रश्नकर्ता :** अहंकार जो भोगता है, वह *पुद्गल* के माध्यम से भोगता है न?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन उसका तो अन्य कोई रास्ता ही नहीं है

न! अहंकार भी *पुद्‌गल* है और ये कर्म भी *पुद्‌गल* हैं। चीज़ तो एक ही है लेकिन अगर अलग-अलग बोलना हो तो बोल सकते हैं। किसने भुगता?

## कषाय हैं पुद्‌गल

**प्रश्नकर्ता :** ये जो कषाय हैं, वे *पुद्‌गल* के अधीन ही हैं न, *पुद्‌गल* के माध्यम से ही परिणाम आता है न, उनका?

**दादाश्री :** वह खुद ही *पुद्‌गल* माना जाता है। वह *पुद्‌गल* का ही एक भाग है।

**प्रश्नकर्ता :** क्रोध, *पुद्‌गल* का स्वभाव है या प्रकृति का?

**दादाश्री :** प्रकृति, वह *पुद्‌गल* ही है, यह सब। प्रकृति में चेतन-वेतन नाम मात्र को भी नहीं है, वह सारा *पुद्‌गल* ही है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्रोध, मान, माया और लोभ, वे *पुद्‌गल* में हैं?

**दादाश्री :** वह सब *पुद्‌गल* ही है।

**प्रश्नकर्ता :** ये क्रोध-मान-माया-लोभ उनके अपने जो परिणाम बताते हैं, उसका क्या कारण है?

**दादाश्री :** वह सब तभी तक है (जब तक) अज्ञानता है। क्रोध-मान-माया-लोभ, जो कि लघु-गुरु स्वभाव वाले हैं, वह *पुद्‌गल* का है। अगुरु-लघु स्वभाव वाला सब आत्मा का है। कोई बिना बोले गुस्सा हो जाए तो पता चलता है या नहीं चलता? चलता ही है।

**प्रश्नकर्ता :** पज़ल करने वाले को *पुद्‌गल* ही कहा है, उसमें अज्ञान है, ऐसा नहीं कहा है।

**दादाश्री :** वही *पुद्‌गल* है, *पुद्‌गल* ही अज्ञान है न!

क्रोध-मान-माया-लोभ और अहंकार सबकुछ *पुद्‌गल* कहलाता है। वह मिश्रचेतन भी *पुद्‌गल* में ही आता है।

उदय व अस्त वगैरह सब *पुद्गल* है, अपना नहीं है। क्रोध-मान-माया-लोभ सब उदय व अस्त होते हैं, वह अपना नहीं है।

## राग-द्वेष को ही बंधन कहते हैं

शुद्ध *पुद्गल* और रिलेटिव *पुद्गल* अर्थात् विभाविक *पुद्गल*। (जो) संयोगवश उत्पन्न हो गया है।

स्वाभाविक *पुद्गल* इफेक्टिव नहीं है, विभाविक *पुद्गल* इफेक्टिव है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, आपने ऐसा कहा है कि कॉज़ेज़ होते हैं तभी इफेक्ट आता है, तो पहले कॉज़ आया या इफेक्ट आया? सब से पहले क्या आया?

**दादाश्री :** वह तो बुद्धि का प्रश्न है न!

**प्रश्नकर्ता :** शरीर होगा, *पुद्गल* होगा तो राग-द्वेष होंगे ही न?

**दादाश्री :** हाँ, *पुद्गल* हो फिर भी, *पुद्गल* अर्थात् इफेक्ट। (जिसे) तू *पुद्गल* कहता है न, उसे मैं इफेक्ट कहता हूँ कि यह इफेक्ट है तभी ये राग-द्वेष होते हैं। और राग-द्वेष होते हैं इसलिए वापस *पुद्गल* बनता है। जैसे कि कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़, चलता ही रहेगा निरंतर।

**प्रश्नकर्ता :** पहला *पुद्गल* किस तरह से बना? पहले *पुद्गल* बना या पहले राग-द्वेष?

**दादाश्री :** वापस उलझ रहा है? यह जो माला है, उसमें पहला मोती कौन सा है?

पूरा ही संसार *पुद्गल* है। लेकिन *पुद्गल* में राग-द्वेष होने को ही कहते हैं, बंधन और *पुद्गल* में राग-द्वेष नहीं होना, उसे कहते हैं मुक्ति।

पाँच में से चार इन्द्रियाँ एक पक्षीय वीतरागी हैं। जबकि स्पर्श

दोनों ही तरफ से रागी है। और मिश्रचेतन है जो कि अत्यधिक नुकसानदायक है। दोनों में वीतरागता होगी तो छूट सकेंगे। स्पर्श में विषय वासना आ जाती है। सुंदर दृश्य और उसे देखने वाला, दोनों ही *पुद्गल* हैं। एक रागी, दूसरा वीतरागी। सुंदर गीत और उसे सुनने वाला *पुद्गल* हैं। एक रागी और दूसरा, वीतरागी। सुवास और सुगंध लेने वाला *पुद्गल* है। एक रागी दूसरा वीतरागी।

पौद्गलिक मिट्टी ऐसी है कि उसमें से निकलने का प्रयत्न करने पर और भी अधिक धँसता जाता है।

यह *पुद्गल* तो, जब तक शुद्ध है, नैचुरल है, तब तक कोई परेशानी नहीं है लेकिन विभाविक *पुद्गल* के परिणाम देखेंगे तो राग नहीं होगा। यह जो भोजन खाते हैं तो खाने से पहले कैसा दिखाई देता है और बाद में उसकी क्या दशा होती है, उसे देखें न, तब भी अच्छा न लगे।

## पुद्गल का भार, गति का आधार

पुरुष और प्रकृति, दोनों अलग हैं। पुरुष को शुद्धात्मा कहते हैं। प्रकृति को *पुद्गल* कहते हैं, वह पौद्गलिक स्वभाव वाली है। शुद्धात्मा ज्ञान स्वभाव वाला है। *पुद्गल* में ज्ञान नहीं होता और ज्ञान में *पुद्गल* नहीं होता। इसलिए दोनों अपने-अपने स्वभाव से ही अलग हैं। स्वभाव से पहचान जाएँ तो हम इनमें से तांबा और सोना अलग कर सकते हैं, यह उसी प्रकार का प्रयोग है।

यही माल स्त्री बनता है और पुरुष बनता है। 'यह सब कौन कर रहा है' और 'खुद कौन हैं' इतना यदि सीख जाए तो छुटकारा हो जाएगा लेकिन इस साइन्स के सामने सभी उलझन में पड़ गए हैं। बहुत विचारशील को भी समझ में न आए, ऐसा है। सबकुछ छोड़कर भाग गए, उन्हें भी यह बाज़ी समझ में न आए, ऐसी है।

स्त्री बनता है, पुरुष बनता है, सब एक ही *पुद्गल* है। ये जो सब धातुएँ हैं न, वे एक ही *पुद्गल* से बनी हुई चीज़ें हैं।

**प्रश्नकर्ता :** सभी ?

**दादाश्री :** सभी। एक ही *पुद्गल*।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन अपने-अपने स्वतंत्र स्वभाव वाली हैं न सब? यों साइन्स क्या कहता है?

**दादाश्री :** नहीं, वे सब तो एविडेन्स के आधार पर इकट्ठी हो गईं। इसे ये एविडेन्स मिले तो सोना बन गया। इसे ऐसे एविडेन्स मिले तो पीतल बन गया। एविडेन्स पर आधारित है।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् मूलभूत एक ही तत्त्व है?

**दादाश्री :** बाकी, वह तो एक ही मूलभूत तत्त्व है। उसकी बराबरी इससे (मूल परमाणु तत्त्व) नहीं की जा सकती। जितने भी मैटल्स और नॉन मैटल्स हैं, मूलभूत रूप से वे सब एक ही वस्तु है।

ये जो हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, जितनी भी गैस हैं न, वे सब *पुद्गल* तत्त्व की ही हैं और कुछ भी नहीं है। एक ही तत्त्व का सामान है यह सारा। ये जितने भी प्रकार के रंग हैं, वे सब एक ही तत्त्व के हैं।

बादल के दो प्रकार होते हैं। अपने यहाँ पर सब बुज़ुर्ग लोग ऐसा जानते हैं कि बादल आए हैं लेकिन गरम हैं। ऐसा कहते हैं। उनसे ठंड वगैरह नहीं लगती। बल्कि रात को बारह बजे भी उमस होती है। और कभी बादल दोपहर को बारह बजे आते हैं न, तब भी कहते हैं कि ठंडे बादल हैं तो उनसे ठंड लगती है। यानी तरह-तरह के परमाणु हैं, दो बादल आमने-सामने मिलते हैं न, तब टकराते हैं खड़ड़ड़... खड़ड़ड़... देखो न, लोगों को डरा देते हैं! तब वह जाग उठता है।

**प्रश्नकर्ता :** अणु बम और हाइड्रोजन बम, सभी घर्षण से ही बनते हैं?

**दादाश्री :** जितने बम हैं न, वे सभी *पुद्गल* तत्त्व से बने हैं।

अपना यह सारा व्यवहार ही *पुद्गल* तत्त्व का है न! खाते हैं, वह *पुद्गल* है, सब *पुद्गल* तत्त्व ही है। यह तो, हम सिर्फ चलते हैं, फिरते हैं। यहाँ से हवा आती है और छप्पर को उड़ाकर, यहाँ से मील भर दूर ले जाती है। अरे भाई, टिन भी उड़ गए? तो कहते हैं, हाँ, टिन भी उड़ गए। उड़ जाते हैं न? वह *पुद्गल* ही है। *पुद्गल* का संचालन करता है, 'यह' (व्यवस्थित)। वर्ना कहाँ गेहूँ उगते हैं और किसके यहाँ पहुँच जाते हैं? चलकर आते हैं, ठेठ हरियाणा से? तेरे घर पर रोटी भी बनती है? देखो, गेहूँ चलते हैं, बाजरा चलता है, सभी चलता है। चलता है या नहीं चलता? वे तत्त्व चलाते हैं यह।

मैटल और नॉन मैटल के पारिणामिक भाव अलग होते हैं, उसी प्रकार आत्मा और अनात्मा के पारिणामिक भाव भी बिल्कुल अलग ही हैं। अनात्मा का पारिणामिक भाव भारी होते जाने का है और आत्मा का पारिणामिक भाव हल्का होने का है। यह लोड किस वजह से है? आत्मा का लोड नहीं है लेकिन आत्मा के साथ (जो) कॉज़ल बॉडी जाती है न, वह परमाणु रूपी है लेकिन वेट तो है न?

अब, *पुद्गल* का स्वभाव अधोगामी है। *पुद्गल* का स्वभाव किस तरह अधिक अधोगामी हो जाता है? तो कहते हैं मोटे शरीर के आधार पर नहीं, वज़नदार है उस आधार पर भी नहीं, अहंकार कितना बड़ा है और कितना लंबा-चौड़ा है, उस पर से ऐसा होता है। मेरे जैसा दुबला-पतला होता है लेकिन अहंकार पूरी दुनिया जितना होता है। और ढाई सौ किलो का हो, वह इतना मज़बूत होता है लेकिन उसमें अहंकार वगैरह नहीं होता। मोटा होता है फिर भी वह डूबता नहीं है।

अहंकार अर्थात् वज़न। अहंकार का अर्थ ही है वज़न। और नीचे उतरना। धीरे से जैसे-जैसे उसका ज़ोर बढ़ता है वैसे-वैसे नीचे उतरता है, अधोगति। और आत्मा का स्वभाव धीरे-धीरे ऊर्ध्वगति की तरफ और *पुद्गल* का वेट आया कि नीचे उतारता है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* नीचे ले जाता है न!

**दादाश्री :** वेटी (वज़न वाला) *पुद्गल* आता है। वेटी *पुद्गल* आता है, वह कैसे? यह पाप वाला *पुद्गल,* वह सब वेटी कहलाता है। पुण्य वाला भी वेटी कहलाता है लेकिन पुण्य वाला कम वेटी कहलाता है।

नीचे उतारता है, जैसे-जैसे पाप बढ़ता है वैसे-वैसे नीचे उतरता जाता है। (जैसे-जैसे) पाप कम होते जाते हैं वैसे-वैसे ऊपर चढ़ता जाता है। (जैसे-जैसे) पुण्य बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे चढ़ता जाता है और फिर (जब) पाप-पुण्य दोनों ही खत्म हो जाते हैं तब पूरा चढ़ गया कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, ठीक है। दोनों ही खत्म हो जाएँ तो फिर हो चुका।

**दादाश्री :** हं, जब तक पाप में प्रवृत्ति है तब तक नीचे जाएगा। अभी क्या पाप प्रवृत्ति चल रही होगी?

**प्रश्नकर्ता :** दादा, वही चल रही है न!

**दादाश्री :** उसका फल वही आएगा न?

**प्रश्नकर्ता :** अधोगति होगी फिर।

**दादाश्री :** उसके लिए क्या पुलिस वाले से पूछने जाना होगा?

## पुद्गल किसके अधीन?

**प्रश्नकर्ता :** कर्म का *भोगवटा* (सुख या दुःख का असर, भुगतना) आता है, उसमें उसका निष्पक्षपातीपना है न? और वह भी व्यवस्थित के ताबे में है न?

**दादाश्री :** हाँ, वह व्यवस्थित के ताबे में है। *पुद्गल* की सत्ता भी व्यवस्थित के अधीन है। *पुद्गल* के पास स्वाभाविक सत्ता नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* की सत्ता तो है न?

**दादाश्री :** *पुद्गल* की सत्ता है ही नहीं, वह व्यवस्थित के अधीन है।

**प्रश्नकर्ता :** तो कर्म जैसा कुछ रहा ही नहीं न?

**दादाश्री :** सही बात है, कर्म जैसा कुछ है ही नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** तब तो पुण्य-पाप भी नहीं रहा न?

**दादाश्री :** 'मैं कर रहा हूँ' उस आरोपित भाव से कर्म है और उसी से पुण्य और पाप हैं। कर्ताभाव चला जाएगा तो कर्म चले जाएँगे।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* की परसत्ता कब तक रहती है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* की? जब तक हम इस स्वरूप की बाउन्ड्री में रहते हैं, तब तक। हम अपनी बाउन्ड्री में रहें, तो *पुद्गल* की सत्ता बाहर चली जाएगी। अगर बाउन्ड्री से बाहर निकलें, फॉरेन में तो वह सारी *पुद्गल* की सत्ता है। तो वहाँ पर वह पकड़ लेता है कि क्यों आए हमारी हद में?

सर्वस्व कर्म, सभी यहाँ पर विलय हो सकते हैं, लेकिन यह उसकी समझ में फिट हो जाना चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** ये जो सारे *पुद्गल* हैं, तो ये *पुद्गल* किसके पराधीन हैं?

**दादाश्री :** जिसे *अजंपा* हो रहा हो, उसके। (जिसे) *अजंपा* नहीं होता है तो उसे पराधीन भी कहाँ है?

**प्रश्नकर्ता :** वह तो ठीक है लेकिन किसके अधीन हैं ये सब?

**दादाश्री :** स्वभाव दशा में तो वे स्वाधीन हैं, खुद, खुद के अधीन हैं और विभाव दशा में साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स के अधीन हैं।

*पुद्गल* खुद ही सत्तावादी नहीं है, आत्मा सत्तावादी है। वाणी

आत्मा के अधीन नहीं है इसलिए उसे पराधीन कहते हैं। यानी ऐसा कहना चाहते हैं कि वह व्यवस्थित के अधीन है।

## वह है सम्यक् चारित्र

*पुद्गल* परिणामों को कोई नहीं रोक सकता। ज्ञानी ने बैठक बना दी है, आपको बैठा दिया है, ज्ञान दिया है और कहा है कि आपको विघ्न नहीं आएँगे।

यह शरीर, *पुद्गल* परिणाम है और अंदर स्व-परिणाम हैं। पूरा ही जगत् *पुद्गल* परिणाम है।

इस देह में क्रोध, हर्ष, शोक सभी कुछ भरा हुआ है लेकिन आत्मा उनमें तन्मयाकार नहीं हो और *पुद्गल* के हर एक संयोग को पर-परिणाम जाने तब उसे सम्यक् चारित्र कहा जाता है!

**प्रश्नकर्ता :** उसमें उपमा बहुत अच्छी दी गई है कि नदी का पानी प्रतिक्षण बहता ही रहता है।

**दादाश्री :** नदी की तरह ही कर्म के उदय बहते रहते हैं। अन्य कुछ है ही नहीं, कर्म के उदय हैं और उदय का मतलब क्या? परिणाम। उदय अर्थात् उन्हें परिणाम कहा जाता है। नदी बहती ही है। वह कॉज़ नहीं है, परिणाम है वह। अत: परिणाम का और चेतन का कोई लेना-देना नही है। (जो) कॉज़ेज़ में और परिणाम में नहीं है, उसे कहते हैं चेतन। कॉज़ेज़ और परिणाम, सभी *पुद्गल* के हैं।

सर्जन करना, वह आपकी सत्ता है, विसर्जन करना *पुद्गल* की सत्ता है। इसलिए सर्जन करो तो सीधा करना। आपका सर्जन किया हुआ है, तो *पुद्गल* उसका विसर्जन किए बिना छोड़ेगा ही नहीं।

परिणाम के बारे में नहीं सोचना है, वह अपनी सत्ता की बात नहीं है। ज्ञाता-द्रष्टा रहना, वे अपने परिणाम हैं और यह उल्टा-सीधा करना, वे *पुद्गल* के परिणाम हैं। (जहाँ) सत्ता नहीं है, वहाँ हाथ

डालकर क्या करना है? कलेक्टर की सत्ता में क्लर्क साइन कर दे तो? अरे, पूरे दिन उस क्लर्क को तो डर ही लगता रहेगा।

## रमणता, पौद्‌गलिक या आत्म?

यह पौद्‌गलिक रमणता वाला जगत् है! एक क्षण के लिए भी कोई आत्मा का आराधन करे तो उसका मोक्ष हुए बगैर नहीं रहेगा। अवस्थाओं में तन्मयाकार रहे तो उसी को कहते हैं संसार। अवस्थाओं में तन्मयाकार अर्थात् *पुद्‌गल* रमणता। 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं वकील हूँ, इसका मामा हूँ, इसका ससुर हूँ, इसका फूफा हूँ।' देखो पूरे दिन! 'व्यापार में इस तरह से फायदा है, इस तरह से नुकसान है' इस तरह जो गाता रहता है, वह सारी *पुद्‌गल* रमणता है। जैसा संसारी गाते हैं, वैसा ही गाना। 'इस तरह कमाया, वहाँ गया और यह नुकसान हो गया और फलाना है' और ज़बरदस्त तूफान! 'सुबह जल्दी उठने की आदत है मुझे। सुबह उठते ही बेड टी पीनी पड़ती है। उसके बाद वह टी...' इस तरह से यह जो सब गाता रहता है, तब समझना कि यह *पुद्‌गल* रमणता है। जो भी अवस्था उत्पन्न हुई न, उसी में रमणता। नींद की अवस्था में रमणता, स्वप्न की अवस्था में रमणता। जाग्रत अवस्था में चाय पीने बैठे तो उसमें तन्मयाकार। व्यापार के लिए जाए तो व्यापार में तन्मयाकार। तो तन्मयाकार तो फॉरेन वाले (सहज प्रकृति वाले हैं इसलिए) रहते हैं। ये तो फिर तन्मयाकार भी नहीं रहते। ये तो (जब) घर पर होते हैं तब व्यापार में और खाना खाते समय व्यापार में तन्मयाकार रहते हैं। और व्यापार के समय (चित्त में) खाने में तन्मयाकार रहते हैं। इतनी अधिक वक्रता है अपनी! वक्र कहलाता है और (जो) स्वरूप में तन्मयाकार रहता है उसका मोक्ष।

*पुद्‌गल* ही भोजन, *पुद्‌गल* ही पेय और *पुद्‌गल* रमणता है। ये तीन चीज़ें दुनिया में सब को हैं। उनके अनेक नाम दिए हैं। खाना-पीना 'लिमिटेड' चीज़ है लेकिन रमणता 'अन्‌लिमिटेड' है। पूरा जगत् *पुद्‌गल* रमणता करता है!

*पुद्गल* रमणता, प्राकृत रमणता और एक खुद की, आत्मा की रमणता। खुद, खुद की ही रमणता। इस *पुद्गल* रमणता से संसार खड़ा होता है और आत्म रमणता से मोक्ष होता है।

*पुद्गल* से विराम पाना, उसे कहते हैं विरति।

इस ज्ञान के मिलने तक *पुद्गल* से ही खेल रहे थे। 'मैं चंदूभाई हूँ और यह सब मेरा है', इसका पति और इसका पिता और इसका मामा।' शास्त्र भी सब *पुद्गल* कहलाते हैं। साधु-महाराज शास्त्रों से खेलते रहते हैं, वे भी *पुद्गल* के खिलौने ही कहलाते हैं। तब तक कभी भी आत्मरमणता उत्पन्न नहीं हो सकती। आत्मा का स्वाद चखने के बाद में आत्मरमणता रहती है और *पुद्गल* रमणता को कहते हैं संसार। उससे कुछ नहीं बदलेगा। तू चाहे कोई भी हो, उससे भगवान को क्या लेना-देना...? अगर भगवान से पूछा जाए कि 'रमणता क्या है?' तब कहेंगे, '*पुद्गल* रमणता।' तब अगर कहे कि 'साहब, सभी शास्त्रों के जानकार हैं।' 'तो हमें हर्ज नहीं है, उसने जो जाना है उसका फल मिलेगा। लेकिन रमणता किसकी है?' तब कहते हैं, '*पुद्गल* रमणता।' अतः (जो) साधु-आचार्य हैं, वे पुस्तकों से खेलते रहते हैं, फिर माला से खेलते रहते हैं। क्या माला चेतन है? वह तो लकड़ी की माला है। उसे छोड़, रख दे एक तरफ।

और ये लोग लोकसंज्ञा से पुस्तक पढ़ते हैं। शास्त्र भी *पुद्गल* हैं, वे तो सभी साधनों में से एक साधन हैं। सभी साधन *पुद्गल* हैं। *पुद्गल* के साधन से आत्मा प्राप्त करना है लेकिन वह एक साधन है। और साधन को तो, उसका कार्य हो जाने पर छोड़ देना होता है। साधन हमेशा के लिए नहीं होते। अपना साध्य प्राप्त हो जाए तो साधनों को छोड़ देना है। लेकिन ये तो हमेशा साधनों में से ही मज़े लेते हैं। क्या ऐसा शोभा देता है? साधन तो साध्य प्राप्त करने के लिए हैं। यह तो ऐसा हुआ कि, साधन ही बंधन बन गए हैं! जो मुक्ति के साधन थे, वही बंधन बन गए। ऐसा होता है या नहीं? सँडसी से काम करने के बाद में सँडसी एक तरफ रख देनी है।

कोई कुछ कर रहा हो तो हम उसे ऐसा नहीं कह सकते कि आप यह मत करना क्योंकि हर एक का *पुद्गल* अलग होता है। हमें कहने का कोई अधिकार ही नहीं है। हाँ, इतना पूछने का अधिकार है कि आप स्वरूप की रमणता कर रहे हो या *पुद्गल* की रमणता? ऐसा पूछ सकते हैं। तब (यदि) वे कहें कि 'स्वरूप की रमणता कर रहे हैं।' तो ठीक है। शुद्धात्मा की रमणता ही मुख्य चीज़ है। अभी तक *पुद्गल* की ही रमणता थी। यह सब *पुद्गल* ही कहलाता है न! जिस भी रूप में कहो, इस रूप में कहो या उस रूप में कहो, लेकिन हर रूप में सब *पुद्गल* ही है। मार्ग में जितने भी साधन हैं, वे सब पौद्गलिक रमणता में हैं!

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् जैसा *पुद्गल पूरण* किया है...

**दादाश्री :** वैसा ही *गलन* होता है। सत्रह से गुणा किया तो अब कहते हैं कि अब मुझे तीन से भाग लगाना है तो भाग क्यों नहीं लग रहा है? अरे भाई, जितने से गुणा किया था उतने से ही भाग लगा, तब वह नि:शेष होगा।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन ये क्रियाएँ तो नि:शेष होती ही नहीं हैं न? कहते हो न, कि क्रियाएँ *पुद्गल* करता है, तो अब उसे नि:शेष करने के लिए क्या वापस उसमें भाग लगाना पड़ेगा?

**दादाश्री :** *पुद्गल* इसी तरह से सब काम करता है। उसमें ये दखल करता है कि 'नहीं, सत्रह से भाग क्यों लगाया, तीन से भाग लगा, पाँच से भाग लगा।'

**प्रश्नकर्ता :** वर्ना यों नि:शेष तो होना ही था?

**दादाश्री :** हाँ, अपने आप शुद्ध हो ही जाता।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह (जो) भाग लगाते हैं या गुणा करते हैं, क्या इसीलिए और बढ़ता है?

**दादाश्री :** ये लोग दखल देते हों न, तो वह ऊपर बादल के

(आवरण लाए) बगैर नहीं हो सकते। बादल लाते ही रहते हैं, बारहों महीने। बल्कि वहाँ दखल नहीं है उतना अच्छा है। वर्ना ये लोग तो जहाँ-तहाँ दखल ही देते रहते हैं जबकि हमें (ज्ञान के बाद) ऐसा दखल नहीं रहा न, इसलिए शांति हो गई।

## मरता या जीता नहीं है कोई भी

**प्रश्नकर्ता :** तो (यदि) *पुद्गल* की भी जागृति नहीं है और आत्मा की भी नहीं है, तो फिर वह किसकी कहलाएगी?

**दादाश्री :** *पुद्गल* की ही। यह *पुद्गल* लड़ता है, *पुद्गल* का अतिक्रमण है, *पुद्गल* का क्रमण है, *पुद्गल* शादी करता है, *पुद्गल* वैधव्य भी भोगता है, *पुद्गल* मरता है, *पुद्गल* जन्म लेता है। लेकिन बाहर यह बात नहीं कह सकते। यहीं पर कह सकते हैं। यह सापेक्ष बात है। बाहर तो (जब) आप पूछोगे तब मुझे ऐसा ही कहना पड़ेगा कि आत्मा जन्म लेता है और आत्मा मरता है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* अतिक्रमण किस तरह से करता है?

**दादाश्री :** ऐसा है न, *पुद्गल* सिर्फ अतिक्रमण ही नहीं करता, इस संसार को *पुद्गल* ही चला रहा है। लड़ाइयाँ भी *पुद्गल* चला रहा है। यह सब *पुद्गल* ही चला रहा है। ज्ञानियों की यह भाषा, अन्य लोगों को कैसे समझ में आएगी? ज्ञानी देखकर बताते हैं, जबकि औरों को प्रतीति में लाना है।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* का जो कुछ भी होता रहता है, वह व्यवस्थित के आधार पर होता रहता है लेकिन वह अतिक्रमण कैसे कर सकता है?

**दादाश्री :** क्रमण कर सकता है और अतिक्रमण भी, सभी कुछ वही करता है न!

**प्रश्नकर्ता :** उस *पुद्गल* में आत्मा का चेतन एकाकार हो, तभी हो सकता है न?

**दादाश्री :** उसी को *पुद्गल* कहा जाता है। ये जो *पुद्गल* परमाणु

हैं न, उसमें तो सिर्फ इतना ही है कि उन्हें हम *पुद्गल* कहते हैं। वे तो परमाणु ही हैं लेकिन भगवान ने मिश्रचेतन को *पुद्गल* कहा है। *पुद्गल* अर्थात् क्या कि मिश्रचेतन जो चैतन्यभाव से भरा हुआ है वह, (जो) *पूरण* हुआ, उसका अगले जन्म में *गलन* होता है। वापस *पूरण* से चार्ज होता है और डिस्चार्ज से *गलन* होता है। अतिक्रमण, वह *गलन* है। लेकिन वह अतिक्रमण आत्मा के माध्यम से हुआ हो तो *पूरण* है। स्व-परिणति से हुआ हो तो *पूरण* है। पर-परिणति से हुआ हो तो *गलन* है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, ये चंदूभाई (जो भी) करते हैं तो उन्हें तो राग आदि कुछ है नहीं न, तो फिर उनके लिए अतिक्रमण क्या और प्रतिक्रमण क्या?

**दादाश्री :** राग-वाग सब चंदूभाई को ही है।

इसीलिए हमारे यहाँ पर ऐसा आता है कि ज्ञानियों की भाषा में कोई जीता या मरता नहीं है। ऐसा आया है न? 'जीता-मरता नहीं कोई ज्ञानियों की भाषा में, प्रतिष्ठित आत्मा जीता है भ्रांतिरस के संधिस्थान पर।'

अरे, दोषित है ही नहीं न! मुझे कोई दोषित नहीं दिखाई देता। दोषित है ही नहीं। दोषित भेद स्वरूप से है। भेदबुद्धि के कारण दोषित दिखाई देता है।

जिसकी भेदबुद्धि चली गई, उसमें अभेद दृष्टि उत्पन्न हो गई। वहाँ पर दोषित जैसा कुछ है ही नहीं है, प्रेम ही है।

**प्रश्नकर्ता :** खाने का जो कुछ भी खाते हैं, वह *पुद्गल* है और पीना भी *पुद्गल* है, सब *पुद्गल* ही है?

**दादाश्री :** यह सब *पुद्गल* ही है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर यह शरीर भी *पुद्गल* है? ये दवाईयाँ खाना, वह सब *पुद्गल* है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या *पुद्गल, पुद्गल* की सहायता करता है?

**दादाश्री :** हाँ, एक *पुद्गल,* दूसरे *पुद्गल* से टकराता है इसलिए सारा ही *पुद्गल* टूट जाता है। वह सहायता करता है और नुकसान भी करता है, आत्मा वैसा नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** वह तो निराला है।

**दादाश्री :** ये तो, *पुद्गल* को ही आत्मा कहते हैं। उतनी ही झंझट है, फिर।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन यह *पुद्गल* भी ग़ज़ब का *पुद्गल* है। इस *पुद्गल* से, *पुद्गल* को बहुत नुकसान होता है, तूफान भी *पुद्गल* मचाता है।

**दादाश्री :** वही सबकुछ करवाता है न! शांति भी करवा देता है फिर। जजमेन्ट भी देता है और आरोपी भी बनता है और वकील भी वही है।

भूख लगवाता है *पुद्गल,* भूख मिटाता है *पुद्गल,* भूख के लिए सबकुछ उगाता है, वह भी *पुद्गल*। पकाकर लाता है, वह भी *पुद्गल*। बाँटता है, वह भी *पुद्गल,* खाता है, वह भी *पुद्गल*। सारी *पुद्गल* की बाज़ी है। उसमें 'मैं'पन है कि 'मैं कर रहा हूँ', ऐसा कहता है, वह भ्रांति है। वह चिपक पड़ा है इसीलिए यह फँसाव है। हम कहते हैं कि यह भाव गलत है। बाहर निकल जा। लेकिन अब लोग निकलें कैसे? ज्ञानी (की सहायता) के बिना नहीं निकल सकते। उसका रास्ता, जानकार की ज़रूरत पड़ेगी न? और स्वरूप का भान होना चाहिए। स्वरूप के भान के बिना नहीं निकल सकता। इसलिए पूरी ही दुनिया फँस गई है। आ फँसे भाई, आ फँसे।

चिंता व कलह होती है, वह भी *पुद्गल* को होती है, आत्मा को नहीं होती।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा बंदी बन गया है। उसे मुक्त होना है अब?

**दादाश्री :** और फिर वह तो मुक्त ही है। लेकिन वैसा भान हो जाए तो हर प्रकार से मुक्त ही हो जाएगा। 'आप' मुक्त हो गए हो न अब।

सारी *पुद्‌गल* की बाज़ी है! ज्ञानियों की भाषा में कोई मरता ही नहीं है। और लोकभाषा में सभी लोग मर जाते हैं। भ्रांति से ऐसा भासित होता है।

भ्रांति अर्थात् इस हाथ से आँख यों दब जाए तो दो लाइटें दिखाई देती हैं। दिखाई देती हैं या नहीं? अरे, दो नहीं हैं एक ही है। तब वह कहता है, 'दो हैं न।' हम कहें, 'एक है।' फिर भी वह नहीं माने तब यदि हम उसका हाथ खींच लें तो तुरंत एक ही दिखाई देगी।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्‌गल* के लिए *पुद्‌गल* का सेवन, ज्ञानियों को भी करना पड़ता है, जब तक इस *पुद्‌गल* का अस्तित्व है, तब तक?

**दादाश्री :** ज्ञानी भी क्या कर सकते हैं? ज्ञानियों के पास भी कोई चारा नहीं है, कोई चारा नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** तो फिर इस *पुद्‌गल* में से जो चीज़ पैदा हुई है, उसके सेवन से यदि यह *पुद्‌गल* अच्छा हो रहा है तो उसका उपयोग करने में क्या हर्ज है?

**दादाश्री :** लेकिन हाथ में उसकी सत्ता नहीं है। उसका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है इसलिए चलेगा नहीं। काल आने पर फिर लोग कहेंगे कि 'आपको खाँसी किसने करवाई?' तब कहता है, '*पुद्‌गल* ने खाँसी करवाई।' ठीक कौन करेगा? तब कहता है, '*पुद्‌गल* ठीक करेगा।' दुःख किसे है? तब कहता है, '*पुद्‌गल* को।' लेकिन अब वह उसे खुद को समझ में नहीं आता है न! पत्नी से मतभेद हो जाए तब उन दोनों को दुःख होता है। फिर रात को नींद नहीं आती।

*पुद्गल* से *पुद्गल* टकराता है। कभी भी चेतन से चेतन नहीं टकराता।

## पिंड का अंकगणित

दुनिया में चार चीज़ें हैं। जोड़-बाकी अपने आप ही हो जाते हैं क्योंकि *पुद्गल* का स्वभाव है। गुणाकार-भागाकार खुद करता है। उससे शेष बचता है। अरे भाई, निःशेष भागाकार कर, तो निबेड़ा आएगा।

जोड़-बाकी *पुद्गल* के हैं। गुणाकार-भागाकार (व्यवहार) आत्मा के हैं। (जहाँ) राग है वहाँ गुणाकार है, द्वेष से उसका भागाकार, लंबा होना गुणाकार है, नीचे आना भागाकार है और रात को ओढ़कर जो योजना बनाता है, वह गुणाकार कर रहा है। मैंने पहले भागाकार करना शुरू किया। निःशेष भागाकार कर लिया इसलिए खत्म हो गया। गुणाकार और भागाकार, वे कभी भी *पुद्गल* के थे ही नहीं, वे (व्यवहार) आत्मा के ही हैं। जब आप कहते हो कि 'यह ठीक नहीं है, यह वैसा नहीं है', तब उससे विश्रसा के गुणाकार होते हैं और वह प्रयोगसा है। प्रयोगसा होने के बाद में मिश्रसा बनता है। मिश्रसा में से फिर विश्रसा हो जाता है। कारण परमाणु, प्रयोगसा हैं और रूपक परमाणु, मिश्रसा हैं, बाद में फल देकर निरंतर विश्रसा होते रहते हैं लेकिन प्रयोगसा होना बंद हो जाए तो मिश्रसा उत्पन्न नहीं होगा। उससे सबकुछ बंद हो जाएगा।

देह को खुद का शरीर मानता है। आरोपित भाव है इसलिए जगत् अवास्तविक दिखाई देता है। अतः वह गुणाकार करता है और वापस भागाकार करता रहता है। *पुद्गल* के स्वाभाविक परमाणु हैं, लेकिन आत्मा का विभाविक स्वभाव है। अतः गुणाकार-भागाकार, भ्रांत आत्मा का स्वभाव है। भागाकार में ही गुणाकार का बीज पड़ा हुआ है और गुणाकार में भागाकार का बीज पड़ा हुआ है। उसी को हम घोटाला कहते हैं। इस दुनिया में जोड़-बाकी-गुणा और भाग, ये चार ही चीज़ें हैं। अधिकतर जीव भ्रांति में हैं। वे सिर्फ गुणा ही करते रहते

हैं। दो रकमों का गुणा करने पर यदि सही जवाब नहीं आए तो उसका क्या कारण है? यह पूरा संसार सांसारिक सुखों से भरा हुआ है, और आपको (यदि) सुख नहीं मिले तो क्या आपको समझ में नहीं आएगा कि कोई भूल रह गई है?

सुबह होते ही संयोगों का जोड़ होना शुरू हो जाता है। हम किसी भी चीज़ के भिखारी नहीं हैं, फिर भी व्यवहार ने हमारे पास भिखारीपन करवाया (गुणाकार) और बेटी से कहा कि जा बहन, स्वेटर ले आ। माँगा, वह गुणाकार है और पहना, वह 'जोड़' (प्लस) हुआ। उसी प्रकार इस जोड़ में से वापस 'बाकी' (माइनस) होगी। वह कुदरती है, यानी कि अब गर्मी लगती है, इसलिए स्वेटर को निकाल देने का मन हुआ, वह भागाकार है। फिर स्वेटर निकाल दिया तो वह 'बाकी' है। यह जो 'बाकी' हुई, उसमें संयोगी प्रमाण आने पर हमने निकाल दिया।

फॉरेन के लोग कहते हैं कि यहाँ के सभी लोगों को भी गुणा-भाग और जोड़-बाकी आता है या नहीं? हर एक को आता ही है। इस जगत् में ये चार ही चीज़ें हैं, पाँचवीं कोई चीज़ है ही नहीं। आपको जो बाकी की सब अनंत चीज़ें दिखाई देती हैं, वे सब उन चार चीज़ों में से ही उत्पन्न हुई हैं। अरे, लोग डराते रहते हैं। लुच्चापन मत करना, चोरी मत करना। अरे, यह कहने वाला कौन है? और करने वाला कौन? इन चार चीज़ों का स्वरूप समझ लो। पूरा जगत् भाग लगाता है। वे ज़ीरो पर ज़ीरो लगाते जाते हैं और नीचे उतारते रहते (भाग लगाते जाते) हैं। फिर भी उसका अंत नहीं आता। हमारा भागाकार तो नि:शेष हो गया है। हमें ज़ीरो चढ़ाना या उतारना रहा ही नहीं।

हम हिमालय पर जाएँ और बर्फ पड़ रही हो और जाते-जाते किसी जगह पर बुद्ध भगवान जैसा पुतला दिखाई देता है। दूसरी जगह पर बर्फ पड़ी तो महादेव जी के मंदिर जैसा दिखाई देता है और तीसरी जगह पर बर्फ में वॉश-बेसिन दिखाई देता है। क्या बर्फ सभी जगह पर एक सरीखी नहीं गिरती? रात को बर्फ गिरती है तो वह 'जोड़'

हुआ और सुबह सूरज के उगते ही सब पिघलना शुरू हो जाता है तो वह 'बाकी' हुई। अब उस बुद्ध के पुतले को देखकर कोई शोर मचाए कि, 'अरे, बुद्ध की मूर्ति!', तो वह गुणाकार करता रहता है और लोगों से कहता है कि, 'अरे देखो! उस तरफ बुद्ध भगवान का पुतला है।' सब लोग वहाँ पर देखने जाते हैं तब तक तो वह पिघल चुका होता है। उस समय अंदर भाव बदल जाते हैं। उससे भागाकार हुआ। हमारा भागाकार तो निःशेष होता है। समभाव से *निकाल* हो जाए तो वह निःशेष भागाकार कहलाएगा।

देखो न! अब, यह जैन *पुद्गल,* अरे! यह वैष्णव *पुद्गल,* वे सब फिर आपत्ति उठाते हैं? भगवान ने इसे क्या कहा है कि, 'तेरे लिए यह *पुद्गल* बाधक है', इसलिए आपत्ति नहीं उठानी चाहिए। ज्ञानी चाहे कहीं भी दर्शन करने जाएँ तो दिक्कत नहीं आनी चाहिए। क्योंकि उनके पास तो एक ही तरीका है, वीतरागता। किसी भी पक्ष में नहीं होते, किसी में भी नहीं होते। उनके पास तो एक ही तरीका है जो गुणाकार हो चुका है, उसमें भाग लगाकर, समान कर दे और जिसमें भाग लग चुका है, उसे गुणा करके समान कर देते हैं। आमने-सामने गुणा और भाग, दोनों करके एक सरीखा कर देते हैं, समान कर देते हैं। जबकि जगत् को क्या पसंद है? सिर्फ गुणा करना ही अच्छा लगता है। 'भाग क्यों लगाया', ऐसा कहते हैं। ज्ञानी पुरुष का काम तो समान करने का ही है। वीतरागता!

जड़ ऐसी ज्योमेट्री है, उसके थ्योरम सॉल्व हो जाते हैं, तो क्या तेरा यह थ्योरम सॉल्व नहीं हो सकता? जड़ तो, (यदि) व्यवस्थित उल्टा देकर जाता है तो वह आपको ज्ञान देकर जाता है और (यदि) व्यवस्थित सीधा देकर जाता है तो हमें मौज-मज़े करवाकर जाता है। हमें तो दोनों तरफ से लाभ ही है।

ऑर्गेनाइज़िंग *पुद्गल* का है और फिर करामात भी *पुद्गल* की है तो फिर तू क्यों अपने सिर पर ले रहा है? उसमें क्या दखल करनी? दखल करोगे तो दखलंदाज़ी हो जाएगी। यदि अपना ऑर्गेनाइज़िंग होता

तब तो अपना वह अभिप्राय काम का था। अत: अभिप्राय के विलय हो जाने पर ही इसका हल आएगा।

## खाता है पुद्‌गल ही पुद्‌गल को

क्रमिक में तो 'यह छोड़ो, वह छोड़ो'। तब अगर पूछें कि 'भाई, क्यों इस तरह छुड़वाते जा रहे हो? *पुद्‌गल* ही *पुद्‌गल* को खाता है, उसमें तू क्यों बीच में आड़े आ रहा है?' मूल बात अलग ही प्रकार की है।

**प्रश्नकर्ता :** सही बात है।

**दादाश्री :** यह तो *पुद्‌गल* ही *पुद्‌गल* को खाता है, आत्मा खाता ही नहीं है।

किसी लड़के को सामने लुटेरे मिल जाएँ और वे कान काटें, नाक काटें और फिर उन्हें पकाएँ तो क्या होगा? क्या असर होगा? वे तो *पुद्‌गल* को पका रहे हैं, थोड़े ही आत्मा को पका रहे हैं?

*पुद्‌गल, पुद्‌गल* को खाता है उसमें आत्मा पर उपकार भी क्या और नहीं उपकार भी क्या?

लोग जानते नहीं हैं, उनके लिए तो जहाँ से भी खरबूजा काटो (*पुद्‌गल,* देह, फल) वहाँ से आत्मा ही कटता है और जो आत्मा को जानता है, उसके लिए तो जहाँ से खरबूजे को काटना हो, वहाँ से काटा जा सकता है। फिर उसे मसलना पड़े तो मसलता है लेकिन आत्मा नहीं कटता। पूरी दुनिया खरबूजे जैसी ही है। देवता भी भोग लिए जाते हैं, देवियाँ भोग ली जाती हैं। कितने ही बुद्धिशाली, कितने ही बुद्ध, कितने ही अबुद्ध, इस प्रकार सभी खरबूजे ही हैं!

शुद्धात्मा को जान लिया इसलिए फिर विधि करके भगवान को बाहर बैठाकर फिर खरबूजे को जहाँ से काटना हो वहाँ से तू चाकू से काट। काटने वाला खरबूजा है और (जो) कट रहा है, वह भी खरबूजा है।

खाता है *पुद्गल* और सिर्फ अहंकार करता है कि 'मैंने खाया।' और उसे पता नहीं है कि कोई और भी है। यह तो, पराई पीड़ा 'खुद' ले लेता है।

उसमें ऐसा कोई सफोकेशन हो जाए, बीच में कोई रुकावट आ जाए तो फिर कब्ज़ियत हो जाती है। यह सारा *पुद्गल* ही है। बीमारी का भी *पुद्गल* ही है। *पुद्गल* को 'देखो', *पुद्गलमय* मत बन जाओ। 'देखो' कि क्या हो रहा है। लेकिन अब खुद का मोह कम हुए बिना कैसे देखें? जब तक मोह नहीं टूटता तब तक भ्रांति नहीं जाती। (जब) कुछ ही प्रकार का मोह बचा हो तब हम से मिलता है। तो उसका वह मोह हम निकाल देते हैं। उसके मोह भस्मीभूत कर देते हैं, उसके बाद में 'देख' पाता है। मोह भस्मीभूत हुए बिना तो ज्ञान कभी भी उत्पन्न ही नहीं हो सकता न! वैराग्य तो कितने दिन तक रख पाएगा? वैराग्य नहीं रहता।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* में शक्ति होती है क्या?

**दादाश्री :** *पुद्गल* का स्वभाव *पूरण-गलन* है। यदि ऐसा कहें कि इस वाणी की शक्ति *पुद्गल* के ताबे में है, लेकिन तब तो फिर *पुद्गल* ही सब कर रहा है। जब भूख लगती है तब क्या शरीर कुछ करता है? संडास जाना हो तब क्या खुद *पुद्गल* के ताबे में रह सकता है? *पुद्गल* की सत्ता नहीं है लेकिन उसका स्वभाव *पूरण-गलन* वाला है।

**प्रश्नकर्ता :** वह ठीक से समझ में नहीं आया। क्या निरंतर परिवर्तित होते रहना ही उसका स्वभाव है?

**दादाश्री :** परिवर्तित तो होता ही रहता है, पूरा जगत्।

**प्रश्नकर्ता :** जो स्वभाव एक *पुद्गल* का है, क्या वही सर्व *पुद्गलों* का स्वभाव है?

**दादाश्री :** हाँ, एक ही प्रकार का स्वभाव है सभी *पुद्गलों* का।

भूख लगना, प्यास लगना, भावनाएँ उत्पन्न होना, फलाना होना, थकान होना, गोरा होना, सफेद होना, काला होना, पीला पड़ जाना।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, ठीक है।

**दादाश्री :** जो एक *पुद्गल* का स्वभाव है, वही स्वभाव सभी *पुद्गलों* का है। सभी जगह वही स्वभाव है।

यदि *पुद्गल* सत्ताधीश होता, व्यवस्थित के बिना, तब तो किसी को भूख ही नहीं लगती लेकिन वैसा नहीं है। *पुद्गल* अपने स्वभाव में ही काम कर रहा है।

**प्रश्नकर्ता :** खाते समय खाने पर कन्ट्रोल नहीं रहता।

**दादाश्री :** खाते समय खाता रहता है तो वह *पुद्गल* का स्वभाव है। *पुद्गल, पुद्गल* को खींचता है। अभी पाँच सौ लोग खाना खाने बैठें और कोई एटिकेट वाले साहब हों और उन्हें कहें कि 'खाने बैठिए' तो वे 'ना, ना' करते हैं लेकिन फिर बैठ जाते हैं और अगर चावल आने में देर लगे तो दाल में हाथ डालते रहते हैं, सब्ज़ी में हाथ डालते रहते हैं। क्योंकि वह *पुद्गल* का स्वभाव है।

माँगता है *पुद्गल,* फिर भी उसमें आरोपण करता है कि 'मैंने माँगा', यह तो पता ही नहीं हैं कि माँगने वाला और कोई है ही नहीं इसमें, पता लगाने पर ऐसा ही लगता है न? उसकी जाँच करने पर क्या लगता है?

**प्रश्नकर्ता :** उसे कुछ भी नहीं मिलता।

**दादाश्री :** 'अन्य कोई है ही कहाँ? मैं ही हूँ न', कहेगा। यह सब *पुद्गल* ही माँगता है।

**प्रश्नकर्ता :** भोजन-पानी वगैरह, सब?

**दादाश्री :** सभी चीज़ें नहाना-धोना भी *पुद्गल* माँगता है। दातुन करना भी *पुद्गल* माँगता है।

खाने वाला शरीर है। खाने वाला जानता नहीं है और जानने वाला खाता नहीं है। क्रिया करता है, वह परतत्त्व है और जानता है, वह स्वतत्त्व है! लूटता है और लुटता है, वे दोनों ही अनात्मा हैं।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* से कोई भी संतुष्ट नहीं हुआ है।

**दादाश्री :** यानी कि ऐसा किसी को नहीं लगा कि संतुष्ट हो गए हैं। वहाँ *पुद्गल* भी थोड़ा भिखारी तो रहेगा ही न! तो इसके बजाय पहले से ही भिखारी कह दें तो क्या बुरा है? निबेड़ा आ जाएगा न, अंत आ जाएगा न!

जन्मोंजन्म से *पुद्गलों* का तिरस्कार किया है, वही तेरे लिए बाधक है। इस जगत् में कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि जहाँ पर बैठे हैं, वहीं बैठे-बैठे उसे वह चीज़ न मिले। आत्मा का इतना वैभव है।

*पुद्गल* की करामात तो ऐसी है कि आप जिस वस्तु का तिरस्कार करोगे न, तो फिर वह कभी भी नहीं मिलेगी। इस जन्म में तो शायद मिल भी जाए लेकिन अगले जन्म में नहीं मिलेगी।

लोकभाषा में, 'यह अच्छा है, यह बुरा है', ऐसा कहा जाता है और भगवान की भाषा में तो एक समान ही कहा जाता है। वस्तु तो वस्तु है। *पुद्गल, पुद्गल* के स्वभाव में है और आत्मा, आत्मा के स्वभाव में है।

*पुद्गल* का स्वभाव कैसा है? इकट्ठा होना और बिखर जाना, इकट्ठा होना और बिखर जाना। जबकि लोग कहते हैं कि यह खत्म हो गया सारा। *पुद्गल* को ऐसा कुछ है ही नहीं कि वह खत्म हो जाए। वह तो बिखर जाता है और इकट्ठा होता है, बिखर जाता है और इकट्ठा होता है।

ये चावल गरम करने पर पक जाते हैं। तब लोग ऐसा कहते हैं कि ये पक गए, पहले कच्चे थे। ऐसे कलह करता रहता है और दखल

करता रहता है। लेकिन यह तो पहले की आदत पड़ गई है न, 'यह अच्छा है और यह गलत है, ऐसा हो जाए तो अच्छा है और ऐसा हो जाए तो बुरा है।' इस प्रकार *पुद्गल* में कुछ अच्छा या बुरा है ही नहीं। *पुद्गल* तो *पुद्गल* के स्वभाव में ही है।

*पुद्गल* अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। चेतन अपना स्वभाव छोड़ता नहीं है। दोनों अपने-अपने स्वभाव में एकरूप रहते हैं और यह (अहंकार) दखल करता है। 'ये आमचा ने तेय आमचा' (यह हमारा और वह भी हमारा) और शादी करके बाहर से पत्नी ले आता है, वह भी आमची। देखो, झंझट मोल ली न!

**प्रश्नकर्ता :** दादा, अभी ज़्यादा चला है, बहुत चला है यह।

**दादाश्री :** बहुत है, ममत्व टॉप पर बैठा है अभी। इसलिए फिर मार भी उतनी ही खाता है न! व्यवहार में जाग्रत लोगों के साथ बैठने वाले आप, और ये आज (व्यवहार में) अजाग्रत कंपनी का धाम बैठा है यह!

## धार्मिक पुद्गल भी बन जाता है अटकण

**प्रश्नकर्ता :** ऑर्नामेन्टल मार्ग में (धर्म में) एक प्रकार का ऐसा आत्म संतोष रहता है कि कुछ कर रहे हैं।

**दादाश्री :** मिथ्या संतोष और एक तरह की शांति रहती है। जैसे कि किसी जगह पर यों देखने में पहाड़ बहुत ही सुंदर हो तो वह कुदरती ऑर्नामेन्टल होता है। तो वहाँ पर मन में ऐसा लगता है कि यह कितना सुंदर दिखाई दे रहा है! यह वातावरण कितना सुंदर लग रहा है! ऐसा कोई ऑर्नामेन्टल वातावरण लगता रहता है। वह सारी पौद्गलिक मस्ती है, *पुद्गल* की मस्ती है सारी। सभी ऑर्नामेन्टल रास्ते हैं। लोगों को भी अच्छा लगता है और विरोधाभास है बिल्कुल। अरे भाई, अभी तक तो मैं उत्तर में चल रहा था, अब दक्षिण में क्यों जा रहा हूँ? तो कहते हैं 'वह तो जिस तरफ रास्ता जा रहा हो, उस तरफ जाना है। तो उसका क्या अर्थ है? उत्तर में चलने के बाद दक्षिण

में चलना, ऐसा रास्ता किसने बताया? मान लो कि रास्ता बदल जाए, तब भी उत्तर से पूर्व की तरफ जाता है और वह नॉर्थ-ईस्ट में जाता है वापस। सिर्फ ईस्ट में नहीं लेकिन नॉर्थ-ईस्ट में चला जाता है लेकिन साउथ-ईस्ट में तो जाता ही नहीं न! तो हर प्रकार की जागृति होनी चाहिए या नहीं?

**प्रश्नकर्ता :** वह सारी *पुद्गल* की मस्ती है न?

**दादाश्री :** वह सारी *पुद्गल* की मस्ती है। संसार के लोग जिस मस्ती में पड़े हुए हैं, वह मस्ती इसकी है।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, इस पौद्गलिक मस्ती से संसार बढ़ता है न?

**दादाश्री :** सिर्फ इतना ही नहीं कि संसार बढ़ता है, अनंत गुना हो जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** अनंत गुना हो जाए, तब तो यह गले में फाँसी जैसा है। वह ऐसा समझता है कि मैं कुछ कर रहा हूँ। जबकि यह तो बल्कि फाँसी आई!

**दादाश्री :** अजागृति में मार खाता है न!

**प्रश्नकर्ता :** कृपालुदेव की पुस्तक में से 'जैन *पुद्गल* भाव कम होने पर आत्मध्यान परिणमित होगा', उन्होंने ऐसा क्यों कहा है? वे यथार्थ कहते हैं। जैन लोग ऐसा कहते हैं कि *पुद्गल* भाव कम होगा तो...

**दादाश्री :** ऐसा नहीं कहते हैं। 'मैं जैन हूँ, मैं जैन हूँ', जब वह कर्म जाएगा तब आत्मध्यान परिणमित होगा।

**प्रश्नकर्ता :** जैन होने का भाव, वह जैन *पुद्गल* भाव है?

**दादाश्री :** हाँ। उस रोग की वजह से वे कर्म चिपके हैं! वीतरागों के धर्म में कर्म नहीं होते, सिर्फ रियल धर्म। जबकि यह तो जैन धर्म

है। जैन धर्म तो रिलेटिव धर्म है। कृपालुदेव का एक-एक वाक्य पढ़ने योग्य है। एक-एक वाक्य समझने योग्य है।

मूर्ति भी बनी है। भगवान ने चार निक्षेपों के बारे में बताया है। नाम निक्षेप, फिर यह स्थापना निक्षेप। मूर्ति भी दिखाई देती है। फिर द्रव्य निक्षेप। द्रव्य निक्षेप अर्थात् जो भरा हुआ माल है, जैन हो तो जैन माल भरा हुआ होता है। वह प्रतिक्रमण-सामायिक वगैरह करता रहता है। फिर (जो) वैष्णव है, वह मूर्ति को नहलाता रहता है। जिसने जो माल भरा हुआ हो, वही निकलता रहता है। जैन, जैन *पुद्गल* में रहते हैं और वैष्णव, वैष्णव *पुद्गल* में रहते हैं। जब वह *पुद्गल* बिल्कुल खत्म हो जाएगा, बंधन से रहित हो जाएगा तब हल आएगा। (यदि) वह *पुद्गल* होगा तो... नए *पुद्गल* उत्पन्न होते हैं और पुराना निर्जरित होता है और फिर नया बंधन होता है, नया बंधन (कर्म) डलता है।

वैष्णव को वैष्णव-*पुद्गल* मोक्ष में नहीं जाने देता और जैन को जैन-*पुद्गल* मोक्ष में नहीं जाने देता।

**प्रश्नकर्ता :** जैन-*पुद्गल* और वैष्णव-*पुद्गल* का मतलब क्या है?

**दादाश्री :** जिसकी भी आराधना की, वह। (जो भी) आराधना की वह *पुद्गल* की ही की न! दर्शन करने गए, महाराज को नमस्कार करने गए, वह सब *पुद्गल* की ही आराधना की न! इससे आत्मा को क्या लेना-देना? जिस चीज़ में पड़ता है, उसका असर हुए बिना नहीं रहता। लेकिन ये सब स्टेपिंग हैं। जैन *पुद्गल* में माता जी की भक्ति वाला डिस्चार्ज उनको अच्छा नहीं लगता। इसमें (वैष्णव में) माता जी और बाकी सब तरह-तरह का होता है। इसमें सारा *पुद्गल* ही है न। तरह-तरह के संप्रदाय हैं न।

**प्रश्नकर्ता :** फिर उसके बाद 'जैन *पुद्गल* भाव ओछो थये आत्मध्यान परिणमशे (जैन *पुद्गल*-भाव कम होने पर आत्मध्यान परिणमित होगा)', ऐसा कहते हैं। वह क्यों? वे यथार्थ कहते हैं। लेकिन यह क्रमिक मार्ग का है न?

**दादाश्री :** नहीं–नहीं! क्रमिक मार्ग का नहीं है। सभी जगह जैन *पुद्गल* भाव अर्थात् जो जैन हैं न, तो वे इन दूसरे *पुद्गलों* को छोड़कर जैन के *पुद्गल* को ग्रहण करते रहते हैं। वैष्णव ने वैष्णव का *पुद्गल* ग्रहण किया होता है। वे सामायिक करना सीखे हों और अन्य कुछ करना सीखे हों, (यह जो) अन्य सब सीखे हों न, वे सारे *पुद्गल*–भाव सीखे हों तो वे सारे जैन–*पुद्गल* वापस छोड़ने पड़ेंगे। उनसे भी बंधन है।

वह जैन *पुद्गल*–भाव कहलाता है। इन स्थानकवासियों का *पुद्गल* स्थानकवासी होता है, *पुद्गल*–भाव होता है। देरावासी में देरावासी *पुद्गल*–भाव रहता है। ये वैष्णव *पुद्गल*–भाव तो जैसा लकड़ी का बक्सा (Box) होता है न, वैसे नरम हैं लेकिन ये जैन *पुद्गल*–भाव तो तांबे जैसे सख्त हैं। अतः इस *पुद्गल* के कारण तो बहुत ही भटकना पड़ता है। जैन–*पुद्गल* तो तांबे के बर्तन जैसा है, टूटता ही नहीं है। वे आवरण टूटते ही नहीं हैं। जबकि यह वैष्णव–*पुद्गल* तो लकड़ी की पैकिंग जैसा है, एक दिन सड़कर टूट जाएगा।

अभी जैनों के लिए मोक्षमार्ग खुला है। वास्तव में जैन–*पुद्गल* तो (जब) यथार्थ जैन थे, तब था। ये तो सिर्फ नाम के जैन हैं। अर्थात् यह वास्तविक जैन–*पुद्गल* नहीं है। अतः यह *पुद्गल* टूट सकता है। नाम जैन अर्थात् जैन के वहाँ पर जन्म हुआ इसलिए जैन, जबकि वे वास्तव में जैन थे, भाव जैन नहीं थे, द्रव्य जैन जबकि इनका तो सिर्फ जन्म हुआ, बस उतना ही। किसी (पूर्व जन्म का) ब्राह्मण का (इस जन्म में) जैन के यहाँ पर जन्म हो और वह जैन बन जाए तो इस वजह से वह सचमुच में जैन नहीं कहलाएगा। अतः यह *पुद्गल* टूट जाता है, बहुत ही नाज़ुक *पुद्गल* है इस काल में!

अतः जैन, वैष्णव वगैरह सब पौद्गलिक माया है। उस माया में से निकलना है। यह साधना करते–करते, साधन ही माया है, उनसे छूटना है। जैन साधु उपदेश देते हैं तो दूसरे धर्म के लोग उठकर जाने लगते हैं, जबकि ज्ञानी के यहाँ ऐसा नहीं होता।

वीतराग मार्ग और जैन मार्ग में बहुत फर्क है। वीतराग मार्ग में एक भी *पुद्‌गल* का असर नहीं होता जबकि जैन मार्ग में जैन-*पुद्‌गल* का असर होता है। अंत में जैन-*पुद्‌गल* को भी खपाना होगा न! वीतराग मार्ग में तो जैन, वैष्णव, सभी का काम हो जाता है। जैन (ज्ञान) समझने में शूरवीर हैं लेकिन (आवरणों को) खपाने में कमज़ोर हैं।

जैन-*पुद्‌गल* को खपाना बहुत मुश्किल है। हमारे ज्ञान देने के बाद में भी अंदर से उल्टा निकले तो समझना कि जैन-*पुद्‌गल* फूटा। जैसे दुकान में आतिशबाज़ी फूटे तो सेठ ऐसा समझ जाता है कि यह आतिशबाज़ी फूट रही है, मैं नहीं फूट रहा हूँ। जब तक अज्ञान है तब तक आतिशबाज़ी फूटती है या खुद फूट जाता है?

जैन-*पुद्‌गल* भाव जाएगा तब आत्मा प्राप्त होगा।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, अभी भी कई लोगों को ज्ञान लेने के बाद भी यह *अटकण* रहती है कि, 'ये कंदमूल क्यों खाते हैं?' इसमें उपयोग क्यों नहीं रहता?

**दादाश्री :** उसी को तीर्थंकर भगवान ने जैन-*पुद्‌गल* कहा है। जैन *अटकणें* लेकर आए हैं। वे अभी तक *अटकणों* में ही बैठे हुए हैं। वैष्णव में वैष्णव वाली *अटकणें* रहती हैं, जैनों में वैसी *अटकणें* नहीं होतीं। जैनों में जैन की *अटकण* रहती है। लेकिन वे *अटकणें* सिर्फ *पुद्‌गल* है, आत्मा वैसा नहीं है। आत्मा *अटकणों* को जानने वाला है कि यह *अटकण* आई। मैंने 'आपको' ऐसा आत्मा दिया है जो कि सभी *अटकणों* को जानता है। सभी जान जाता है न?

**प्रश्नकर्ता :** बिल्कुल, रात्रि भोजन *अटकण* है, कंदमूल *अटकण* है!

**दादाश्री :** हाँ, वे सब जैनों की *अटकणें* हैं, त्यागियों की *अटकणें* हैं। ये जो सारे त्यागी महाराज ज्ञान ले गए हैं न, उन्हें ऐसी *अटकणें* वापस आएँगी। तरह-तरह की *अटकणें* होती हैं। *अटकण* का और हमारा लेना-देना ही क्या है? हमें सिर्फ देखते रहना है।

'अरे, जिनालय नहीं जाना चाहिए', वैष्णव–*पुद्गल* ऐसा ही होता है। वैष्णवों को वैष्णव–*पुद्गल* खपाना है, जैनों को जैन–*पुद्गल* खपाना है। क्योंकि वहाँ पर मोक्ष में कोई भी *पुद्गल* काम नहीं आएगा। अत: सबकुछ खपा देना है।

'*सहज स्वरूपे आ जीवनी स्थिति थवी तेने श्री वीतराग मोक्ष कहे छे.*'
– **श्रीमद् राजचंद्र**

('जीव की सहज स्वरूपी स्थिति होना, उसी को श्री वीतरागों ने मोक्ष कहा है।')

हमारी स्थिति सहज स्वरूपी हो गई है और आपको सहज स्वरूप होना है। लेकिन आपको वह *पुद्गल* बाधक हो जाता है, जैन–*पुद्गल*। उस जैन–*पुद्गल* को खपाना पड़ेगा।

वैष्णव में वैष्णव–*पुद्गल* होता है, जैन में जैन–*पुद्गल* होता है। उन सभी को खपाना पड़ेगा। वह सब मुझसे समझ लेना तो खप जाएँगे। 'जीव की सहज स्वरूपी स्थिति होना', इसका मतलब क्या है कि (जब) यहाँ पर गा रहे हों तो उस घड़ी गाना है, खा रहे हों उस समय खाना है, उठ रहे हों तो उठना है, सोने लगें तो सो जाना है, दखल नहीं। नहीं पीना हो तो कह देना कि 'चाय नहीं पीनी है।' लेकिन दखल नहीं। 'मुझे ऐसा क्यों हो रहा है?' ऐसा नहीं होना चाहिए। आपको कैसे हो सकता है? आत्मा को कैसे कुछ हो सकता है?

भान तो आपको हो गया है, *लक्ष* (जागृति) बैठ गया है। जो भी हो रहा है, उसमें दखल नहीं करते हो, तो वह सहज स्वरूप की स्थिति है।

ज्ञान होने के बाद में जैन को मोक्ष जाते हुए, क्या बाधक है? जैन–*पुद्गल* बाधक है। और (जो) जैन नहीं है उसे? तो कहते हैं, जैनेतर (जैन के अलावा अन्य) *पुद्गल* बाधक है। साधु–आचार्यों के लिए कौन सा *पुद्गल* बाधक है? तो कहते हैं, उनके लिए त्यागी–*पुद्गल* बाधक है। कौन सा *पुद्गल* सख्त है? तो कहते हैं, त्यागी–

*पुद्गल*। उससे अच्छा कौन सा *पुद्गल* है? तो कहते हैं, जैन-*पुद्गल*। उससे अच्छा कौन है, नरम? तो कहते हैं, जैनेतर।

ज्ञान होने के बाद में *पुद्गल* बाधक है। त्यागियों को यह *पुद्गल* बहुत बाधा डालता है। 'मैं महाराज हूँ, मैं त्यागी हूँ, मैं संयमी हूँ' यह सारा अहंकार भरा है न! अब अहंकार वाले सारे परमाणु जम चुके हैं। उन्हें क्या करना पड़ेगा? 'अभी तक मैंने (जो) अहंकार करे, वे सब गलत है', ऐसे गाते रहना पड़ेगा, तब वे निकल जाएँगे, पछतावा करने से निकल जाएँगे।

किसी को कोई झंझट हो जाए, किसी के साथ अन्याय हो रहा हो न, उस समय हम में शूरवीरता आ जाती है। हम समझ जाते हैं कि यह *अटकण* आई। वह सब *पुद्गल* कहलाता है। क्षत्रिय-*पुद्गल*, वैश्य-*पुद्गल*, सभी दुःख देते हैं, सभी परेशान करते हैं। मान्यताएँ परेशान करती हैं।

## है पुद्गल की मस्ती

भगवान को यह सारी खटपट आती भी नहीं है। यह सब सिर्फ खटपट ही है और वे जड़ तत्त्व की खटपट हैं, भगवान तो भगवान हैं। जो उलझन में पड़ गया वह मारा जाएगा। इसमें से ज्ञानी पुरुष छुड़वा देते हैं। क्योंकि जो मुक्त हो चुके हैं, वे ही मुक्त करवा सकते हैं।

यह सारा *पुद्गल* का खेल है। पढ़ना, पढ़ाना, पास होना, त्याग लेना, आचार्य बनना, शिष्य बनना, यह सब *पुद्गल* का खेल है। *पुद्गल* का खेल यानी सभी साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स मिलते हैं और कार्य हो जाता है। उससे भगवान उलझन में पड़ गए हैं कि यह सब क्या है? मैं तो निरंतर सुखी हूँ, मेरे साथ यह सब क्या है?

मेहनत करने वाले मेहनत करते हैं और सुपरिन्टेन्डेन्ट वाले सुपरिन्टेन्डेन्ट रहते हैं। यह सारी करामात *पुद्गल* की है लेकिन उलझन

आत्मा की है। संयोगों के दबाव से उलझन है। हर क्षण संयोग बदलते रहते हैं, पहले वाले जाते हैं और दूसरे आते हैं, बेहिसाब संयोग हैं।

**प्रश्नकर्ता :** नौकरी में अपने तहत कोई नौकर काम नहीं कर रहा हो और उसे हम नौकरी से निकाल दें तो हमें उसका दोष लगेगा या वह व्यस्थित कहलाएगा?

**दादाश्री :** नहीं, ऐसा नहीं है। दोष कैसा? आपको द्वेष होगा तो दोष लगेगा। राग-द्वेष होंगे तो दोष लगेगा। अन्य कोई भी क्रिया *पुद्गल* की मस्ती है। यदि राग-द्वेष नहीं होते, तब तो सिर्फ *पुद्गल* मस्ती ही है। ये *पुद्गल* आमने-सामने लड़ते हैं। (जहाँ) राग-द्वेष हैं, वहाँ दोष है। इसलिए हमें देख लेना है कि अंदर उसके प्रति द्वेष है या क्या है? इतनी जाँच करना और इतना पक्का है कि ज्ञान मिलने के बाद में द्वेष नहीं रहता, और यदि रहता है तो ऐसा कहा जाएगा कि नौकर को हमने निकाला। तब हमें गुनाह लगेगा। फिर भी, वह कौन सा गुनाह है? वह डिस्चार्ज है फिर भी गुनाह तो हमें लगेगा लेकिन वह गुनाह डिस्चार्ज के रूप में हैं, बहुत बड़ा गुनाह नहीं है। राग-द्वेष होते हैं तभी वह गुनाह है, वर्ना गुनाह नहीं है। कोई भी क्रिया करो लेकिन राग-द्वेष होते हैं तो गुनाह है। कोई भी खराब क्रिया, द्वेष के बिना हो ही नहीं सकती। अच्छी क्रियाएँ राग से ही होती हैं। यह ज्ञान लेने के बाद में वह क्रिया अलग हो जाती है।

**प्रश्नकर्ता :** करने वाला ही पूरा जुदा हो गया!

**दादाश्री :** और ज़रा सा भी द्वेष हो जाए तो यों बैर बाँध लेता है। ज़रा सा भी द्वेष हमें खुले तौर पर दिखाई ही देता है कि इन्हें कोई द्वेष है, वर्ना इस तरह इतना सब नहीं होता। ओपन फैक्ट दिखाई देता है। ये सब तो उसके लक्षण हैं तो दिखाई देंगे न! कोई भी बात हो तो उसके लक्षण तो होने चाहिए न? तो आपने नौकर को द्वेष सहित तो नहीं निकाला है न?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं।

**दादाश्री :** तो कोई हर्ज़ नहीं है। काम नहीं कर रहा हो... और यह सब तो व्यवहार है। इसमें निकालने वाला अलग है और आप अलग हो। क्या निकालने वाला अलग नहीं है?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** वह *पुद्‌गल* की मस्ती कहलाती है। *पुद्‌गल* आमने-सामने टकराते हैं, डाँटते हैं, लड़ते हैं, (जो) उन्हें देखता है वह ज्ञाता है, वह आत्मा है। और उसी रूप हो जाए, उसमें प्रवेश कर लिया तो मार पड़ेगी। प्रवेश कब हो जाता है? जब बहुत ही ज़्यादा एकाकार हो जाए उसके साथ, उसके विचारों में बहुत ही बंध जाए तब ऐसा हो जाता है। वह अलग हो जाए तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन ऐसा हो जाने के बाद में आपको चंदूभाई से कहना है कि 'प्रतिक्रमण करो। उस व्यक्ति को आपने निकाल दिया, इसलिए उसके लिए पछतावा करो। हल लाओ।' भले ही द्वेष नहीं हुआ हो तब भी कहना तो सही। उससे साफ हो जाएगा न! कपड़ा धोते समय उसमें थोड़ा टीनोपॉल डालते हैं न, तो अपने यहाँ पर मुफ्त में है टीनोपॉल, जबकि वह (टीनोपॉल) तो बाज़ार से खरीदकर लाना पड़ता है।

**प्रश्नकर्ता :** '*सहुमां जोई शुद्धात्मा अने पुद्‌गल तणी कुस्ती, फक्त छे आत्मवत् द्रष्टा, हो वंदन चौद लोकधणी*।'

('सभी में देखकर शुद्धात्मा और *पुद्‌गल* की कुश्ती, सिर्फ है आत्मवत् द्रष्टा, हो वंदन चौदह लोक के स्वामी को।')

**दादाश्री :** यह सारी *पुद्‌गल* की कुश्ती है। पूरा जगत् *पुद्‌गल* की कुश्ती है। उस कुश्ती में कोई हाथ ऊँचा करता है, कोई हाथ आपके सिर पर मारे तब भी वह सारी कुश्ती ही है। आपको मारे तब भी कुश्ती है।

सारी *पुद्‌गल* की ही बाज़ी है। भगवान का तो सिर्फ शुद्ध उपयोग ही है। इस संसार में उपयोग नहीं रखेंगे तब भी चलेगा, लेकिन ऐसा समझेगा कैसे?

यह अच्छा-बुरा दिखाई देता है, वह *पुद्गल* की विभाविक अवस्था है। उसमें कोई भेद मत करना कि यह अच्छा है, यह बुरा है। द्वंद्व वालों ने यह सारा भेद डाला है। वे सारे विकल्प हैं। निर्विकल्पी को, अच्छा या बुरा, दोनों ही विभाविक अवस्थाएँ दिखाई देती है।

पसंद-नापसंद, अच्छा-बुरा, नफा-नुकसान, ये सारे द्वंद्व किसने खड़े किए? समाज ने। भगवान के घर पर द्वंद्व नहीं है। इस तरफ अनाज हो और दूसरी तरफ संडास हो तो भगवान की दृष्टि में दोनों 'मटीरियल' हैं। इसे भगवान क्या कहते हैं? 'ऑल आर मटीरियल्स।' (यह सारा *पुद्गल* ही है।)

## आत्मा के अलावा बाकी सब पुद्गलाधीन

*पुद्गल* दखल करता है, झगड़े करता है, आत्मा को कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान मिलने के बाद में समझ में आता है कि आत्मा वीतराग है, फिर भी यह *पुद्गल* झगड़े क्यों करता है? वह हमारी इच्छा अनुसार नहीं करता, इच्छा हो फिर भी नहीं कर सकता। ऐसा होता है न? क्यों? यह *पुद्गल* अर्थात् पूर्व कर्म का उदय। बस! उदय का पोटला है यह। ऐसे कोई उदय आता है और प्रकट हो जाता, उदय आता है और प्रकट हो जाता है। उसमें अज्ञानी व्यक्ति अहंकार करता है कि यह मैं कर रहा हूँ। वह नहीं करता, ये कर्म ही ऐसा करते रहते हैं। यह शरीर-वरीर सब उसके उदय के अधीन है। यानी हाथ-वाथ वगैरह सब चलाना उसके अधीन है। बुद्धि, मन-वन सब *पुद्गल* के अधीन हैं। अहंकार भी उसके अधीन है, लेकिन वापस वह दूसरा नया अहंकार खड़ा करता है कि 'यह मैं कर रहा हूँ।' उसे ऐसा जो लगता है, वह भ्रांति है। उससे कर्म बंधन होता है और फिर उन कर्मों से दुनिया चलती है। हमारे ज्ञान देने के बाद में वह कर्तापन का अहंकार तुरंत निकल जाता है, उसके बाद भोक्तपन का अहंकार रहता है। अत: यह झगड़ा कौन कर रहा है? यह *पुद्गल* करता है। उसे हमें 'देखते' रहना है। यह और यह, दोनों *पुद्गल* क्या कर रहे हैं, मारामारी कर रहे हैं या क्या कर रहे हैं, वह हमें देखते रहना है, दोनों ही। नहीं तो वापस दूसरे कर्म बंधेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** सभी *पुद्‌गल* परमाणुओं को क्लियर करना पड़ेगा न! तभी मोक्ष होगा न?

**दादाश्री :** वह तो हो ही जाएगा। हम शुद्ध होकर अपने घर में बैठ जाएँगे तो वह सब क्लियर हो जाएगा अपने आप। करने जाएँगे तो नहीं होगा। दरवाज़े बंद करके बैठ जाएँगे तो फिर अपने आप बाहर से चला जाएगा। तूफान बंद होने के बाद में सुबह तक सब ठंडा पड़ जाएगा। (यदि) उसमें भाग लिया तो बिगड़ेगा। अत: हमें कुछ भी नहीं करना है। जैसे कि मरने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता उस प्रकार से। कुछ भी नहीं करना पड़ता। अपने घर में सो गए तो फिर *निकाल* हो गया।

इफेक्ट में हाथ नहीं डालना है। देह तो, मन-वचन-काया तो इफेक्ट हैं सिर्फ, उसमें क्या करना है? अत: कुछ भी करने की ज़रूरत ही नहीं है न!

## आत्मा मान लिया, पुद्‌गल को

वैभव होने के बावजूद भी उसमें इन्टरेस्ट नहीं रहता। वैभव तो *पुद्‌गल* का है, वह क्या आत्मा का होता होगा? *पुद्‌गल* ऐश्वर्य वाला हो फिर भी खुद *पुद्‌गल* में नहीं घुसता। देखो न, यह है *पुद्‌गल,* फिर भी लोगों की जान उसी में रहती है। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार उसी में रहते हैं और कितने ही लोग (ज्ञान दशा के बाद में) बिल्कुल भी उसमें नहीं रहते।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, वह किस कारण से जीव *पुद्‌गल* में खिंच जाता होगा?

**दादाश्री :** वह खुद अपने आप को *पुद्‌गल* मानता है। 'मैं ही यह चंदूभाई हूँ' उससे फिर *पुद्‌गल* अंदर घुस जाता है उल्टा। खुद *पुद्‌गल* नहीं है और खुद समझता है कि यही मैं हूँ।

**प्रश्नकर्ता :** खुद यह नहीं है और फिर भी खुद अपने आप को *पुद्‌गल* मानता है तो उसके पीछे क्या कारण है?

**दादाश्री :** वह अपने आपको *पुद्गल* नहीं मानता, वह तो ऐसा ही कहता है, 'मैं आत्मा ही हूँ', लेकिन *पुद्गल* को आत्मा कहता है। वह असल में किसे आत्मा कहता है? इस *पुद्गल* को। आत्मा को आत्मा कहेगा तो फिर कल्याण हो जाएगा!

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन वह *पुद्गल* को आत्मा क्यों कहता है?

**दादाश्री :** लोग कहते हैं, इसलिए। लोग कहते हैं न, कि आप जैन हो, फिर आपने मान लिया कि मैं जैन हूँ। लोग कहते हैं कि इस स्त्री का पति है, तो यह मान लिया कि मैं पति हूँ। 'मैं आत्मा हूँ' ऐसा नहीं कहते न? 'मैं पति हूँ' ऐसा कहते हैं न? अतः मान्यता दृढ़ हो गई। उसे रोंग बिलीफ कहते हैं हम। यह उसकी साइकोलॉजी हो गई है। हम रोंग बिलीफ को तोड़ देते हैं, बस। फ्रैक्चर कर देते हैं। आत्मा तो इसमें, *पुद्गल* में जाता ही नहीं है और *पुद्गल* आत्मा बनता ही नहीं है, सिर्फ मान्यता ही है। अतः हम कहते हैं कि इस शरीर में चेतन है ही नहीं। यह शरीर जो कुछ भी कर रहा है, उसमें चेतन जैसी वस्तु है ही नहीं। लेकिन यह बात बाहर कहने योग्य नहीं है। पूरी पब्लिक यही कहती है कि यह मैं ही हूँ, मैं ही चेतन हूँ। चेतन नहीं है फिर भी खाता है, पीता है, शास्त्र पढ़ता है, लोगों को शास्त्र सिखाता है। चेतन नहीं होने के बावजूद भी सभी तरह का काम चेतन जैसा ही करता है।

## शरीर, परछाई जैसा

शरीर तो परछाई की तरह उत्पन्न होता है। परछाई को हम ऐसे-ऐसे करें कि (हाथ के इशारे से) 'चला जा, चला जा', तब वह क्या करेगी? क्या वह परछाई ऐसा करेगी कि चली जाएगी? अरे, 'मैं कर रहा हूँ तू क्यों नकल कर रहा है?' यानी कि यह शरीर परछाई की तरह चिपका हुआ है। *पुद्गल* की छवि है यह। भ्रांति से हमने मान लिया है कि यह मैं ही हूँ इसलिए चेतन जैसा दिखाई देता है। लेकिन जब दोपहर के बाद बारह बजते हैं न, तब हम परछाई ढूँढने जाएँ तो

दिखाई नहीं देगी। मिलेगी ही नहीं किसी जगह पर। अरे, परछाई कहाँ गई? तो कहता है, समा गई। बारह बजते हैं न, तो ऊपर सूर्य समभाव में आ जाता है। उसी प्रकार यह आत्मा (जब) समता में आता है, तब वह (भ्रांत मान्यता) गायब हो जाती है, एकदम से। समता में आया कि गायब।

खुद की नकल खुद को कड़वी लगती है लेकिन वह *पुद्गल* की है और अभिप्राय बुद्धि का है लेकिन वे खुद के द्वारा ही भरे हुए हैं।

*पुद्गल* के साथ एकता की, अब *पुद्गल* विनाशी है तो 'हमें' भी विनाशी बनना पड़ेगा। 'खुद' यदि *पुद्गल* से अलग रहे तो अविनाशी है, खुद का अमरत्व पता चल जाएगा। कर्तापन के भान से *पुद्गल* के साथ एकता हो जाती है।

'माइ', वह पूरा *पुद्गल* है, पूरा ही *पुद्गल* है। व्यवहार से कहना पड़ता है कि, 'मेरा ही कोट है, यह मेरा है।' सबकुछ, व्यवहार में कहना पड़ता है 'माइ', लेकिन उसे खुद का (रियल में) न माने तो कोई भी असर नहीं होगा! बोलने में हर्ज नहीं है लेकिन भीतर उसे खुद का (रियल में) (नहीं है, ऐसा) तय कर ले तो। लेकिन व्यवहार से तो कहना पड़ेगा न? पुलिस वाला पूछे कि, 'यह घर किसका है?' तब कहना 'हमारा घर है' लेकिन अंदर से 'हमारा' नहीं होना चाहिए।

यह सारा *पुद्गल* का असर है। जो ज़रा सा भी हमारे आनंद को या निराकुलता को हिलाए, वह *पुद्गल* का असर है, इफेक्ट है, अन्य कुछ भी नहीं है। *पुद्गल* का इफेक्ट अपने ऊपर ले लिया है कि यह मुझे हुआ है।

*पुद्गल* इफेक्टिव स्वभाव वाला है। दो तरह के इफेक्ट देता है। एक तो *शाता* देता है और दूसरा, वह *अशाता* देता है। ये दो इफेक्ट उसमें हमेशा के लिए हैं ही, उस इफेक्ट का खुद पर असर नहीं होने

देना है। *शाता* का भी असर नहीं होने देना और *अशाता* का भी असर न होने देना। वह अपना स्वभाव है। हम उसे कहते ज़रूर हैं, सभी को एन्करेज़मेन्ट मिले, इसलिए। 'ओहोहो! तू तो बहुत बड़ा हो गया है', ऐसा कहते ज़रूर हैं लेकिन अंदर हमारे मन में ऐसा नहीं रहता। करने वाले व्यक्ति को अपेक्षा रहती है और उस अपेक्षा को हम पूरा करते हैं।

जहाँ पर स्वामित्व का अभाव हो जाए तब वह स्व का स्वामी बन जाता है। 'मैं इस शरीर का स्वामी नहीं हूँ', आपको ऐसा अनुभव हो गया है?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** 'मैं इस मन का स्वामी नहीं हूँ', आपको ऐसा अनुभव हो गया है?

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** ऐसे करते-करते स्व-स्वामित्व का अनुभव हो जाएगा। *पुद्गल* पर जितना स्वामित्व का अभाव उतना ही स्व-स्वामित्व का अनुभव।

वर्तन का और ज्ञान का कोई लेना-देना नहीं है। ज्ञान, ज्ञान के स्वभाव में है और वर्तन *पुद्गल* का है। वर्तन शुभ होता है या अशुभ होता है, शुद्ध नहीं होता।

*पुद्गल* का जो स्वभाव है, उसे मेरा माना और खुद वहीं पर मुकाम कर बैठा है तो उसका कब हल आएगा?

## व्यथित कौन? जानने वाला कौन?

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* पर सुख और दुःख का इफेक्ट हो रहा हो, चंदूभाई रो रहे हों और मैं चंदूभाई को देख रहा होऊँ तो वह अनुभव द्वारा जुदा रहे कहलाएगा या शब्दों द्वारा जुदा रहे कहलाएगा?

**दादाश्री :** अनुभव द्वारा। चंदूभाई को असर हो जाता है, वह कमी है। वह चंदूभाई की मंदता है और वह डिस्चार्ज के रूप में हैं और डिस्चार्ज से तो कोई बच ही नहीं सकता न!

भगवान महावीर को यहाँ *बरु* (जंगली पौधे की नुकीली डंडी) ठोक दिए थे। तो चेहरे पर छः-आठ महीनों तक (उसका असर) रहा, तो भगवान के चेहरे पर क्या रहता था? व्यथित रहते थे।

**प्रश्नकर्ता :** दर्द होता था तो व्यथित ही रहते न!

**दादाश्री :** तो क्या उससे कोई कर्म चिपक पड़ा? और तब भी उसका निबेड़ा आया। निवारण हो गया उनका। व्यथित होने से वह चिपक नहीं पड़ा। क्योंकि खुद व्यथित नहीं है, शरीर व्यथित है। उसी प्रकार आप खुद क्रोध-मान-माया-लोभ व कषाय में नहीं हो, वह तो यह *पुद्गल* है। *पुद्गल* का तो निबेड़ा आ जाता है। उसका *निकाल* होना ही चाहिए। उससे परेशान नहीं होना चाहिए।

हम किस चीज़ के ग्राहक हैं, इतना देख लेना है। किसके ग्राहक हैं?

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा के।

**दादाश्री :** हाँ, शुद्धात्मा के ग्राहक हैं। इसके बावजूद भी *पुद्गल* को देखने में हर्ज नहीं है। *पुद्गल* यानी *पुद्गल*।

## भगवान महावीर ने देखा एक पुद्गल

दो-दो हज़ार सालों से साधु-सन्यासी, आचार्य कहते आए हैं, 'साँप के बच्चे को अंडे में से निकलने पर उँगली से छूएँ तो तुरंत डसता है।' अभी तो साँप के संस्कार भी नहीं देखे हैं, इसी प्रकार से ये जो इन्द्रियाँ डसती हैं, वह इन्द्रियों का स्वभाव है। हम कहें कि नहीं सुनना है तो सुनाई दे जाता है, नहीं देखना हो तब भी देख लेते हैं। वह उनका स्वभाव है। अब, ये इन्द्रियाँ *पुद्गल* हैं, परमाणुओं से बनी हुई हैं। *पूरण-गलन* हैं, आत्मा की चीज़ नहीं हैं। वास्तव में वह

नहीं भोगता है। इन्द्रियाँ भोगती हैं लेकिन 'खुद' ऐसा मानता है कि 'मैं भोग रहा हूँ'। इस प्रकार से अहंकार करता है और विकल्प करता है कि 'मैंने भोगा। दु:ख भी मैंने भोगे और मुझ पर पड़े।'

अत: आत्मा दु:ख नहीं भुगतता, इन्द्रिया भुगतती हैं। लेकिन यह 'मैं हूँ' कि गांठ पड़ गई है। एक भी ऐसा व्यक्ति ढूँढकर लाओ, जिसने किसी एक इन्द्रिय को भी जीत लिया हो!

पौद्‌गलिक रूप से कोई जितेन्द्रिय जिन नहीं हुआ है। 'ज्ञान' होने पर ही कोई जितेन्द्रिय जिन बन सकता है। अज्ञान के रहते हुए कोई इन्द्रिय को जीत पाए, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि इन्द्रियाँ *पूरण-गलन* स्वभाव वाली हैं। एक को जीता तो दूसरी विद्रोह करती है।

आत्मा की कला अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है और सर्वांग *पुद्‌गल* की कला इन्द्रिय प्रत्यक्ष है। यह हमारा कथित केवलज्ञान है।

इस जगत् में सिर्फ *पुद्‌गल* ही ज्ञेय है।

**प्रश्नकर्ता :** क्या सभी ज्ञेय पौद्‌गलिक स्वरूपी हैं?

**दादाश्री :** हाँ, परमाणुओं के रूप में नहीं होते लेकिन स्कंध के रूप में होते हैं। जो *पूरण-गलन* हो चुका हो, वह ज्ञेय है। *पूरण* हो चुका दिखाई नहीं देता जबकि *गलन* हो चुका अवश्य दिखाई देता है। *पुद्‌गल* अर्थात् जो *पूरण* हो चुका है, उसका *गलन* किस तरह से हुआ, इतना देखता रहे।

अंत में भगवान महावीर ने क्या देखा? पागल दिखाई दे, समझदार दिखाई दे, चोर, लुच्चा या धूर्त दिखाई दे, वेश्या या सती दिखाई दे, उन सभी में एक ही *पुद्‌गल* को देखा। जिस प्रकार सोने के तरह-तरह के और भांति-भांति के ज़ेवर हों, तो उन्हें न देखकर सब में मात्र सोने को ही देखते हैं, उसी प्रकार से 'लोगों' में 'उनकी' 'प्रकृति' को बिल्कुल भी न देखते हुए, सभी मात्र *पुद्‌गल* ही हैं, इस प्रकार से देखना है। उससे आगे तो यही खुद के *पुद्‌गल* में देखना है, औरों के

*पुद्गल* को नहीं देखना है। तुझे अभी भी क्या सिनेमा-विनेमा देखना अच्छा लगता है? नहीं जाता?

**प्रश्नकर्ता :** कई सालों से नहीं गया हूँ।

**दादाश्री :** तो ठीक है। यह जो तरह-तरह की सीन सीनरी होती हैं न, (जब तक) उन सब को देखना अच्छा लगता है तब तक तो वह सब और स्त्री पसंद आए या नापसंद आए, वह सब एक सरीखा ही है। जिसे बाहर कुछ भी देखना अच्छा नहीं लगता, अंदर ही सबकुछ देखना अच्छा लगता है, वही शुद्धात्मा है।

भोजनालय और शौचालय, *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा, ये पाँच चीज़ें हैं, उनमें स्त्री वेद है ही कहाँ? आप पहचानते हो या नहीं स्त्री के रूप में? यह स्त्री है, ऐसा जानते हो या भूल जाते हो?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं भूल सकते।

**दादाश्री :** नहीं भूल सकते, नहीं? तब तो फिर आत्मा उतना दूर रहेगा न!

## शुद्धात्मा के अलावा बाकी सब पुद्गल

**प्रश्नकर्ता :** दादा की तरफ से जो सारी क्रियाएँ मुझे समझ में आती हैं, वे सब *पुद्गल* हैं न?

**दादाश्री :** हाँ, *पुद्गल*। लेकिन छुड़वाने वाला *पुद्गल* है। हम सब को छुड़वाने आया है यह *पुद्गल,* संपूर्ण मुक्तिभाव दिलवाता है। उसमें सभी प्रयत्न छुड़वाने के प्रयत्न हैं। अभी यह सारा जो कर रहे हैं, वह किसलिए कर रहे हैं? छूटने के लिए। यह अंतिम *पुद्गल* है। अंतिम *पुद्गल,* उन्हीं के सारे प्रयत्न चल रहे हैं। ये सब जो दिखाई देता है, वह सारा छूटने के लिए ही आ रहा है, बाँधने के लिए नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो सूक्ष्म शरीर जाता है, तो उसका कौन सा भाग जाता है और किस प्रकार से जाता है, उसकी प्रक्रिया समझाए?

**दादाश्री :** कहाँ जाता है?

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञानी सूक्ष्म शरीर से चाहे कहीं भी जा सकते हैं न, अमरीका, मुंबई, सभी जगह। वह क्या है?

**दादाश्री :** वह सारा *पुद्गल* है। उसमें अन्य कुछ भी नहीं हैं और वह खुद की सत्ता से बाहर की चीज़ है। उसे खुद की सत्ता मानता है, वह इगोइज़म है।

**प्रश्नकर्ता :** आप कई बार जो ऐसा कहते हैं न, कि हम सूक्ष्म देह से चाहे कहीं भी जा सकते हैं।

**दादाश्री :** जितना उस (व्यवस्थित के) एविडेन्स में आ चुका होता है, उतना जाता है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, लेकिन वह क्या है? वह कौन सा भाग जाता है, इस शरीर में से?

**दादाश्री :** *पुद्गल* का भाग।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या वह शुद्ध चेतन है? दादा भगवान हाज़िर होते हैं, वह क्रिया तो, वह शुद्ध चेतन के आधार पर होने वाली बाहरी क्रिया है?

**दादाश्री :** आधार नहीं, वह तो स्वाभाविक क्रिया है। वह तो अंदर सूक्ष्म शरीर की, वह आकर्षित होने की, उसकी स्वाभाविक क्रियाएँ हैं।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या वह *पुद्गल* के भाग में होता है?

**दादाश्री :** वह सारा *पुद्गल* ही कहलाता है। शुद्ध चेतन के अलावा बाकी सब *पुद्गल* है। यह संसार उसे चेतन मानता है। जिसे संसार चेतन मानता है, वहाँ पर चेतन है ही नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** यानी ये जो अंतर्यामी दर्शन होते हैं, वे?

**दादाश्री :** सब *पुद्गल* में है, आत्मा में नहीं।

**प्रश्नकर्ता :** किसी संत को माता जी के दर्शन होते हैं और माता जी बोलती हैं, वह?

**दादाश्री :** वह तो स्थूल *पुद्गल,* बिल्कुल स्थूल *पुद्गल,* वह तो स्थूल *पुद्गल* है।

**प्रश्नकर्ता :** तो वे (जो) *पुद्गलों* की अवस्थाएँ हैं, वे चेतन के अधिक नज़दीक वाले *पुद्गल* हैं क्या?

**दादाश्री :** (जैसे-जैसे) चेतन के नज़दीक आता है, वैसे-वैसे दिनोंदिन सूक्ष्म होता जाता है। अपने वे सारे सूक्ष्म होते चले जाते हैं। वे संत तो माता जी से दुराग्रह करते हैं और यह सूक्ष्मपने वाले आग्रह-दुराग्रह नहीं करते, वह स्थूल कहलाता है।

**प्रश्नकर्ता :** तो इसी आधार पर आप कहते हैं कि ये सारे लोग अभी भी चेतन तक नहीं पहुँचे हैं?

**दादाश्री :** एक भी व्यक्ति चेतन तक नहीं पहुँचा है। चेतन की जो परछाई होती है, वहाँ तक भी नहीं पहुँचा है, यह संसार।

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञानी पुरुष के *पुद्गल* भी दिव्य होते हैं न?

**दादाश्री :** होते हैं न! हाथ लगा लें, तब भी काम हो जाता है, और इससे भी दिव्यातिदिव्य तीर्थंकरों का। टॉपमोस्ट *पुद्गल,* पूरे ब्रह्मांड में!

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वह तो देखने को ही नहीं मिलता न? चर्मचक्षु से तो वह देखा ही नहीं जा सकता न? दिव्य-दिव्य *पुद्गल* या दिव्यातिदिव्य *पुद्गल,* चर्मचक्षु से दिखाई दे सकता है?

**दादाश्री :** हाँ, देखा जा सकता है। औरों को तो *पुद्गल* ही दिखाई देता है। लोगों के पास अन्य कौन से चक्षु हैं? (यदि) वह भी उन्हें न दिखाई दे तो फिर उनमें उसके उत्पन्न होने का फल ही क्या है?

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन क्या इस काल में वैसा संभव है?

**दादाश्री :** तीर्थंकर ही नहीं हैं न इस काल में!

## कलियुग में क्रियाकारी, ये शास्त्र

निमित्त भी *पुद्गल* है, उपादान भी *पुद्गल* है।

**प्रश्नकर्ता :** आपके ये जो एक-एक शब्द हैं, वे एक-एक शब्द कलियुग के नए शास्त्रों जैसी रचना कर देंगे।

**दादाश्री :** नए शास्त्र ही हैं ये। और फिर लोग उन्हीं का उपयोग करेंगे।

**प्रश्नकर्ता :** सर्व प्रथम स्पष्टता हुई, *पुद्गल* और *पूरण-गलन* की। इस *पूरण-गलन* के बारे में आपने जो स्पष्टता की, तो मुझे नहीं लगता कि भगवान महावीर के बाद किसी ने इस बात को समझा होगा?

**दादाश्री :** नहीं! लेकिन ज्ञानी के बिना कैसे समझ सकते हैं लोग? लोगों में इसे समझने की क्षमता ही नहीं है न। लोग *पुद्गल* ही कहते रहते हैं। *पुद्गल* यानी क्या? तो कहते हैं, 'शरीर।' अर्थात् शरीर का दूसरा नाम *पुद्गल*। इसकी खोज करने के लिए मैंने बीस सालों तक बहुत टाइम लगाया कि ये *पुद्गल* और ये सारे जो शब्द हैं न, यह *पुद्गल,* किस प्रकार से भगवान मिल सकते हैं वगैरह सब।

यह *पुद्गल* शब्द बहुत बड़ी खोज है। अर्थात् यह *पूरण-गलन,* यदि सिर्फ इतना ही समझ में आ जाए न, तो बहुत हो गया। यह *पूरण-गलन* है और तू शुद्धात्मा। तो अपने आप ही देख ले, क्या-क्या *पूरण-गलन* होता है और उसे माइनस कर दे, तो तू शुद्धात्मा ही है। अब इतनी समझ होती ही नहीं है न लोगों में इसलिए वापस ज्ञानी के पास आना पड़ता है। इस प्रकार सिखाने से, इस प्रकार बोलने से, वह समझ ज़रूर जाता है कि, 'ठीक है, आपकी बात करेक्ट है', लेकिन फिर अमल में लाना मुश्किल हो जाता है न!

**प्रश्नकर्ता :** दादा, यों शास्त्रों में तो *पुद्गल* शब्द का अर्थ तो लिखा हुआ ही है न, इस प्रकार से सभी शस्त्रों में? आप कहते हैं कि बीस सालों तक हमने इसका अर्थ ढूँढा।

**दादाश्री :** अपने (शास्त्र तो) अभी लिखे गए हैं। ये आप्तवाणी वगैरह तो अभी प्रकाशित हुए हैं। वर्ना प्रकाशित ही नहीं हुआ था न! यह तो, नई किताबों में लोग समझ गए, जान गए सब। सत्संग की बातों ही बातों में। बातें की। लोग *पुद्गल* को नहीं जानते थे, सिर्फ '*पुद्गल, पुद्गल*', इतना बोलते रहते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, यह कौन से साल की बात है? कब से '*पुद्गल*' शब्द को समझने का प्रयत्न किया था?

**दादाश्री :** यह तो उन्नीस सौ बत्तीस की बात है। उन्नीस सौ चालीस या उन्नीस सौ बयालीस में मुझे *पुद्गल* समझ में नहीं आया था, उन्नीस सौ पैंतालीस तक भी समझ में नहीं आया था।

**प्रश्नकर्ता :** दादा, आप जिसे *पुद्गल* कहना चाहते हैं, वह पूरा मिश्रचेतन है और लोग जिसे *पुद्गल* कहते हैं अर्थात् *पूरण-गलन* (चार्ज होना, भरना - डिस्चार्ज होना, खाली होना) कहना चाहते हैं, उसमें फर्क है न?

**दादाश्री :** *पुद्गल* और *पूरण-गलन,* ऐसा सब कहते ज़रूर हैं, लेकिन उसका मतलब नहीं समझते। ऐसा सब नहीं समझते। अभी भी साधु-महाराज नहीं समझते।

## प्राधान्यता केवल आत्मा को ही

**प्रश्नकर्ता :** संसार में सारा *पुद्गल* ही है।

**दादाश्री :** सारा *पुद्गल* ही है। लेकिन सिर्फ '*पुद्गल*' कहने का भावार्थ क्या है? ज्ञानी कहते हैं कि यह सारा मिक्स्चर है लेकिन सिर्फ '*पुद्गल*' कहने का भाव क्या है कि, 'भाई हमें आत्मा से काम है न?' और फिर (जब) यह दूसरा समझाने जाते हैं तब उसे भूल

जाता है, आत्मा को भूल जाता है इसलिए ज्ञानी पुरुष सिर्फ *पुद्गल* ही कहते हैं। होती तो हैं पाँच वस्तुएँ एक साथ (विभाविक आत्मा, 'खुद' अलग हो जाए, तब फिर (जो) पाँच तत्त्व बचे, वे) लेकिन सिर्फ *पुद्गल* कहते हैं। यह आत्मा और यह एक *पुद्गल*।

**प्रश्नकर्ता :** इन पाँच तत्त्वों को देखना तो है न?

**दादाश्री :** अभी देखने की ज़रूरत नहीं है। अभी तो हमें आत्मा को ही देखना है। यह पाँच तत्त्वों से बना हुआ है, इसे देखो।

**प्रश्नकर्ता :** पाँचों तत्त्व क्या-क्या कर रहे हैं?

**दादाश्री :** गति, वह *पुद्गल* का स्वभाव नहीं है, वह किसी और का स्वभाव है लेकिन उन सब को एक *पुद्गल* में डाल दो न। क्योंकि वह आत्मा नहीं है, हमें तो आत्मा से काम है।

और इस शरीर में *पुद्गल* और आत्मा, सिर्फ दो ही हैं। जिसे *पुद्गल* और आत्मा का बटवारा करना आ जाए, इसे समझ ले, तो उसे आत्मा मिल जाएगा। परंतु मनुष्य में ऐसी शक्ति नहीं है, यह मनुष्य की मति से बाहर है। जहाँ बुद्धि से परे की बात है, वहाँ यह बात है। यानी कि कुछ हद तक पहुँचने के बाद में अलग करता है लेकिन ऐसा करना नहीं आता। अतः वह तो ज्ञानी पुरुष का काम है। ज्ञानी पुरुष में अंदर खुद भगवान बैठे हुए होते हैं, उनकी कृपा से क्या नहीं हो सकता! वर्ल्ड में ऐसी कोई चीज़ नहीं हैं, जो उनकी कृपा से न हो सके!

# [ 11 ]
# पुद्‌गल भाव

## इच्छा सहित वृत्ति, वह है भाव

**प्रश्नकर्ता :** जिसे *पुद्‌गल* भाव कहा जाता है, वह क्या है?

**दादाश्री :** अब, अभी आपको जलेबी खाने का विचार नहीं आएगा लेकिन बाज़ार में जा रहे हों और हलवाई ताज़ी-ताज़ी जलेबियाँ बना रहा हो और सुगंध आए तो अंदर जलेबी खाने का भाव हो जाता है। वह *पुद्‌गल* भाव कहलाता है। जलेबी 'आपसे' भाव करवाती है। करवाती है या नहीं करवाती?

**प्रश्नकर्ता :** करवाती है, करवाती है।

**दादाश्री :** जलेबी नहीं देखी तब तक कोई बात नहीं। देखते ही भाव करवाती है।

**प्रश्नकर्ता :** आत्मा के भाव का उपयोग *पुद्‌गल* में किया जाए तो?

**दादाश्री :** आत्मा द्वारा कोई भी भाव करना, वह *पुद्‌गल* ही है। भाव, वही *पुद्‌गल* है। इच्छा सहित वृत्ति को भाव कहा जाता है। भाव ही *पुद्‌गल* है।

ज़ेवरों में से सोना और तांबा अलग नहीं किया जा सकता?

**प्रश्नकर्ता :** किया जा सकता है।

**दादाश्री :** अलग करने के बाद में यदि हमें, यहाँ, ज़रा सा ज़ंग जैसा लगे तो हम जान जाते हैं कि यह सोने का गुण नहीं है, यह तांबे का गुण है। इस प्रकार से यहाँ पर हमने यह ज्ञान बता दिया है कि कौन से भाव *पुद्गल* के हैं और कौन से भाव आत्मा के हैं।

अंदर दो प्रकार के भाव आते हैं। ये सारे भाव किसके हैं? तो कहते हैं, पौद्गलिक भाव हैं, आत्मा के भाव नहीं हैं इसीलिए हमने कहा है, 'मन-वचन-काया के तमाम लेपायमान भावों से मैं सर्वथा निर्लेप ही हूँ।' अंदर लेपायमान भाव आते हैं, तरह-तरह के भाव आते हैं। साठ साल की उम्र में ऐसे लेपायमान भाव भी आते हैं कि, 'तीस साल तक तो ब्रह्मचर्य का पालन किया है, लेकिन अब शादी कर लेनी है'। साठ साल की उम्र में विचार आता है लेकिन वे आत्मा के भाव नहीं हैं, वे *पुद्गल* के भाव हैं। धनवान व्यक्ति को भी चोरी करने के भाव आते हैं तो क्या वह चोरी करने वाला इंसान है? नहीं, अंदर भाव उत्पन्न होते हैं। जो *पूरण* किया हुआ है, उसका *गलन* होगा। उस समय परेशान मत होना। आपने जिस भाव का *पूरण* किया है, उस भाव का *गलन* हुए बगैर नहीं रहेगा और जिस भाव से कर्म बंधन किया है, उसी भाव से *निर्जरा* होगी। लेकिन आज *निर्जरा* होते समय आप ज्ञान में हो लेकिन उन भावों की *निर्जरा* तो होती रहेगी न! अज्ञान भाव में कर्म बंधन हो गए थे, तो उनकी *निर्जरा* तो होती ही रहेगी न!

मन-वचन-काया के अर्थात् *पुद्गल* के जो भाव उत्पन्न होते हैं, यह भाता है; वह भाता है, वे *पुद्गल* के भाव हैं। उस पर से (व्यवहार) आत्मा खुद के भाव करता है, उससे संसार खड़ा हो जाता है। मन-वचन-काया के जो-जो भाव होते हैं, वे सभी *पुद्गल* के भाव हैं, (यदि) कोई इतना ही समझ गया तो उसका काम हो जाएगा। ऊँधिया खाने के भाव हों, शादी में जाने के भाव हो रहे हों तो वे सारे भाव *पुद्गल* के हैं।

साइन्स क्या कहती है कि इसमें सोना-तांबा है तो सोने के भाव तांबे में नहीं आ सकते और तांबे के भाव सोने में नहीं आ सकते। दोनों साथ में रहते हैं फिर भी ऐसा है कि दोनों अपने-अपने भाव में रहते हैं।

ये साधु लोग कहते हैं कि मैंने त्याग किया, मैंने पत्नी और बच्चों को छोड़ा है। तब भगवान कहते हैं कि इसमें तेरे आत्मा का क्या है? यह तो *पुद्‌गल* का भाव है। अब इन दुकानों में ऐसा सब चलता है और वे मानते हैं कि 'मैंने बहुत कुछ किया है' लेकिन भगवान कहते हैं कि 'नहीं, कुछ भी नहीं किया है।'

घर, पत्नी व बच्चों का त्याग किया, वह भी *पुद्‌गल* भाव है, शादी की, वह भी *पुद्‌गल* भाव है। *पुद्‌गल* के भावों को खुद के भाव मानता है। उससे संसार चलता है। क्योंकि उसे ऐसा है कि 'मेरे अलावा अन्य कोई भी भाव नहीं कर रहा है, बाकी सब जड़ है।' लेकिन उसे यह पता नहीं है कि ये जड़ के भाव हैं। ये भाव भी जड़ हैं। ये चेतन भाव हैं और ये जड़ भाव हैं, ऐसा समझ में आया कि छूट गया।

*पुद्‌गल* के भाव कैसे हैं? आने के बाद चला जाता है। और जो चला न जाए, वह अपना भाव है। *पुद्‌गल* अर्थात् भरा हुआ भाव है। उसका *गलन* हो जाएगा। वह चला जाएगा, इसलिए वह *पुद्‌गल* का भाव है, 'अपना' भाव नहीं है।

यह बहुत सूक्ष्म बात है न!

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्‌गल* भाव नष्ट हो जाएगा तभी शुद्धात्मा स्वरूप माना जाएगा न?

**दादाश्री :** हाँ, *पुद्‌गल* भाव नष्ट हो जाए अर्थात् शुद्धात्मा।

**प्रश्नकर्ता :** वह तो नष्ट ही नहीं होगा न! सुई लगने पर हमें चुभती ही है न?

**दादाश्री :** नहीं, वह जो चुभती है, वह कहीं और हो रहा है।

वह आत्मा को लगती ही नहीं है, वह *पुद्गल* भाव को लगती है। आखिर में तो इसमें मिश्रचेतन भी *पुद्गल* ही है। मिश्रचेतन ही यह सारा काम कर रहा है न, वह तो *पुद्गल* ही है।

वह *पुद्गल* है, लेकिन (जब तक) ज्ञान नहीं है तब तक उसे चेतन माना जाता है क्योंकि अहंकार से ऐसा मानता है कि, 'यह मैं ही हूँ।' वह आरोपित भाव है। अतः इस 'ज्ञान' के बाद में भाव खत्म हो जाते हैं, *पुद्गल* भाव ही खत्म हो गया वहाँ पर! *पुद्गल* का मालिक ही नहीं रहा वह खुद! अतः जहाँ पर वह खुद मालिक नहीं है, वहाँ पर क्या लेना-देना?

## अब 'हम' 'अपने' घर जाएँगे...

**प्रश्नकर्ता :** अब राग-द्वेष तो नहीं रहे लेकिन फिर भी कभी अभाव हो जाता है।

**दादाश्री :** वह ठीक है। राग-द्वेष नहीं हैं, वह हम खुद, और अभाव तो *पुद्गल* का स्वभाव है। भाव भी हो जाता है किसी जगह पर, अभाव भी हो जाता है लेकिन हमें राग-द्वेष नहीं होते।

राग-द्वेष नहीं होना, वह अपना धर्म है। अभाव और भाव *पुद्गल* का धर्म है।

राग का अर्थ ही नहीं समझे हैं, उसी वजह से यह सारा उल्टा हो गया है। किसी पर भाव होता है तो उसे राग मानते हैं, किसी पर अभाव होता है तो उसे द्वेष मानते हैं। लेकिन यह भाव-अभाव *पुद्गल* का स्वभाव है। घर में आकर्षण होता है तो वह देह का आकर्षण हैं, वह आत्मा का स्वभाव नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो भाव और अभाव करवाता है, वह भी व्यवस्थित है?

**दादाश्री :** भाव और अभाव, वे व्यवस्थित के अधीन हैं। हमें उन्हें सिर्फ 'देखना' है। *पुद्गल* भाव है, (ये जो) भाव हैं, वे व्यवस्थित

के अधीन आते और जाते हैं। (जो) अभाव होते हैं, वे व्यवस्थित के अधीन होते हैं। उन्हें भी 'देखते' रहना है तो वे चले जाएँगे। फिर यदि हम उनका नाम न दें तो कोई हर्ज नहीं है। (यदि) हम उसमें दखल करेंगे तो वह खड़ा रहेगा और दावा दायर करेगा। 'हम हमारे रास्ते पर हैं, आप अपने रास्ते जाओ। हम में किसलिए दखल कर रहे हो? आप अपनी वीतरागता के रास्ते पर जाओ। हम अपने *पूरण-गलन* के रास्ते पर जा रहे हैं।' उनका रास्ता कौन सा है? *पूरण-गलन* का। जो अभाव भरे होंगे, वे अभाव उदय में आएँगे और फिर चले जाएँगे। *पूरण* किया हुआ अभाव, *गलन* होते समय भी वह अभाव ही रहेगा। फिर वह अभाव के रूप में निकल जाएगा। उसे हमें देखते रहना है। हमें इस पर से समझ जाना है कि हम में जो अभाव भरा हुआ है, वही निकल रहा है। (यदि) भाव भरा होता तो भाव निकलता और ये दोनों ही डंक मारेंगे। इस तरफ बड़ा देखते हो तो इस तरफ छोटा देखते हो लेकिन दोनों को देखते ही हो। अत: इन्हें विदाई दे देनी है, हमें वीतराग रहना है।

वीतराग होने की ही ज़रूरत है। बाकी के जो सब भाव दिखाई देते हैं, वे *पुद्‌गल* के भाव हैं और यह *पुद्‌गल* अपने रास्ते पर जाता है और हम अपने रास्ते पर जाते हैं। वह हम में दखल नहीं करे और हम उसमें दखल नहीं करें तो। वे अपने आप ही चले जाएँगे।

## वे सारे हैं, पुद्‌गल भाव

**प्रश्नकर्ता :** कर्म के उदय से एक स्थिति उत्पन्न होती है और आत्मभाव से दूसरी स्थिति उत्पन्न होती है, तो क्या उसका कोई लक्षण है कि वह कर्म के उदय से हुई है या आत्मभाव से हुई है?

**दादाश्री :** उन दोनों का ही पता चल सकता है। (यह ज्ञान प्राप्त) लगभग दस-दस हज़ार लोगों को पता चलता है। यह *पुद्‌गल* भाव आया, यह जड़ भाव और यह चेतन भाव, दोनों को पहचानते हो न, आप?

तुरंत जुदा ही हो जाता है। वह धारा ही बिल्कुल अलग बहती रहती है, निरंतर पूरे ही दिन और वह अलग ही दिखाई देता है। (जब) गुस्सा निकलता है, क्या तब अलग नहीं दिखाई देता? बिल्कुल अलग दिखाई देता है? और उस क्षण आपका भाव कैसा रहता है? उस क्षण आत्मभाव अहिंसक होता है और बाहर गुस्सा चल रहा होता है, आश्चर्य ही है न!

अंदर भाव, *पुद्गल* भाव उत्पन्न होते हैं। उन्हें संसार भाव कहा जाता है। अंदर तरह-तरह के भाव उत्पन्न होते हैं, वे सारे भी *पुद्गल* भाव हैं। जो भाव आते हैं और फिर विनष्ट हो जाते हैं, वे सारे *पुद्गल* भाव में हैं। उसे (यदि) हम पकड़ लें कि 'यह मुझे हुआ' तो फिर मार खानी पड़ेगी।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन ये जो *पुद्गल* भाव आते हैं और हमने उन्हें जाना, तो वे चार्ज के रूप में हैं या डिस्चार्ज के रूप में हैं?

**दादाश्री :** डिस्चार्ज के रूप में।

**प्रश्नकर्ता :** चाहे कितने भी अच्छे आएँ या खराब आएँ, कैसे भी आएँ?

**दादाश्री :** अच्छा-बुरा तो समाज ने कहा है, भगवान के वहाँ पर ऐसा नहीं है। यह अच्छा-बुरा, हर एक के समाज के अनुसार है। हम बकरे को काटना पाप मानते हैं और कितने ही लोग उसे पाप नहीं मानते। यानी कि यह अच्छा-बुरा, समाज की व्यवस्था है। भगवान के घर पर सब एक ही सरीखा है। जब मोक्ष में जाना हो तब अच्छे-बुरे विचारों को देखने की ज़रूरत नहीं है। हाँ, (यदि) तुम्हारे विचारों से किसी को दुःख हो रहा हो तो तुझे फाइल नं. एक से कहना पड़ेगा न, कि 'भाई अभी क्षमा कर लो। माफी माँग लो।' किसी को दुःख नहीं हो, बस उतना ही देख लेना है। हमारी वजह से किसी को धक्का लगाने की ज़रूरत नहीं है। यह हमें शोभा नहीं देता। हम धक्का मारकर मोक्ष में जा पाएँ, ऐसा हो भी नहीं सकता। किंचित्मात्र भी किसी को दुःख नहीं देना चाहिए।

जो विचार आते हैं न, वे सारे *पुद्गल* के भाव हैं। पूरे दिन इस *पुद्गल* के भाव से ही चलता है, लोग उसे चेतन मानते हैं, बस।

यह गरीब है तो उसकी मदद करूँ, आदि, आदि, वे सभी *पुद्गल* भाव हैं। तो यह स्वीकार नहीं करता। वे ज्ञेय के रूप में हैं। अगर चैतन्य भाव हों तो स्वीकार करता है। आपको वे सब चैतन्य ही लगते हैं, 'मुझे विचार आया!'

**प्रश्नकर्ता :** 'मुझे विचार आया' कहने से तो वह चिपक ही पड़ेगा।

**दादाश्री :** अब यह आज का क्रमिक ज्ञान, सब क्या कहते हैं, 'यह सब बंद हो जाना चाहिए।'

**प्रश्नकर्ता :** बंद करना अर्थात् दबाते रहना?

**दादाश्री :** बंद करने की ज़बरदस्त कोशिश करता है लेकिन वह नहीं हो सकता। ज्ञान और अज्ञान को पहचानेगा तभी आगे बढ़ेगा। लेकिन (यदि) अज्ञान को ऐसा कहकर स्वीकार कर लेगा कि, 'मेरा है', तो अंत नहीं आएगा। 'मुझे विचार आया', अंग्रेज भी ऐसा कहते हैं और मुसलमान भी ऐसा कहते हैं और जैन भी ऐसा कहते हैं। कोई फर्क नहीं है, मुसलमानों में, अंग्रेजों में और जैनों में? आप भी ऐसा ही कहते थे न, कि 'मुझे विचार आ रहा है?'

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** और फिर ऐसा भी कहते हैं, 'हिंसा के विचार क्यों आ रहे हैं?' वे सारे *पुद्गल* भाव हैं।

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्गल* भाव तो अनंत काल से हैं।

**दादाश्री :** अनंत काल से *पुद्गल* भाव ही है, यह संसार। तो अंदर इतने सारे *पुद्गल* भाव उत्पन्न हो जाते हैं कि 'साला, नालायक है, ऐसा है और वैसा है। मैं तो ऐसा करूँगा, वैसा करूँगा।'

**प्रश्नकर्ता :** हाँ, होता है, ऐसा होता है।

## जानो लेकिन सुनो नहीं

**दादाश्री :** वे जड़ भाव, प्रकृति भाव, वे अंदर उछल-कूद मचाते हैं। तो अब उन्हें सुनने का तो हमें अधिकार ही नहीं है। हमें चेतन भावों का ही सुनना चाहिए। जड़ भाव नहीं सुने जा सकते।

**प्रश्नकर्ता :** सुने नहीं जा सकते या नहीं सुनने चाहिए, दादा?

**दादाश्री :** सुने तो जा सकते हैं लेकिन उन्हें लेट गो करना है कि भाई, ये जड़ भाव मेरे नहीं हैं। यह मेरा स्वरूप नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** वे अंदर उछल-कूद मचा देते हैं, बहुत उछल-कूद मचाते हैं।

**दादाश्री :** वे लेपायमान भाव, जड़ भाव हैं, प्राकृत भाव हैं। मैं सर्वथा निर्लेप ही हूँ। तो आप लोग यह सब जो कहते हो, वे तो जड़ भाव हैं, अचेतन हैं, हमें छल लेते हैं लेकिन उनकी सुनना ही नहीं, सिर्फ जानना है, बस इतना ही। वे तो अपनी तरह से उछल-कूद मचाते ही रहेंगे। धूम, धूम, धूम मचा देंगे। हमारे साथ भी ऐसे होता है।

**प्रश्नकर्ता :** आपके साथ भी होता है?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन हम तो जड़ भावों को पहचान चुके हैं। इसलिए उस तरफ ध्यान ही नहीं देते। (जितने) चेतन भाव हैं उतना ही ध्यान देते हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् आप चेतन भावों को अटैन्ड करते हैं, अन्य को नहीं।

**दादाश्री :** अन्य किसी के साथ लेना-देना ही नहीं है। हम चेतन हो चुके हैं, शुद्धात्मा हो चुके हैं फिर अन्य किसी से हमें क्या लेना-देना? पूरी दुनिया जड़ भाव से परेशान है। उन्हें पता नहीं है कि हम चेतन हैं और यह जड़ है। ऐसा पता नहीं है।

हमने भेद डाल दिए हैं, नहीं तो ये सारे जड़ भाव परेशान कर

देंगे। 'ये सब कहने वाले कौन हैं? ये मेरे विरूद्ध कहाँ से आ गए? प्रमाण देने वाले आप कौन? दादा के पास दस्तावेज मैंने बनवाए हैं और आप भला नए कौन आ गए?' ऐसा कहना। तूने खुद ही दस्तावेज बनाए हैं, फिर तेरा मालिक कौन? क्या मालिक का भी कोई मालिक होता है?

**प्रश्नकर्ता :** बीच में ऐसा हुआ फिर मैंने उनसे कहा कि 'दादा को बता दिया है, फिर आप कौन हो? गेट आउट,' फिर भी आते हैं।

**दादाश्री :** हाँ, तो वे जड़ भाव हैं। उनकी तो सुननी ही नहीं चाहिए, बिल्कुल भी नहीं! जड़ भाव इधर से उधर दिखाएँगे, इधर से इधर दिखाएँगे। किसलिए घबराता है भाई, यह तेरा नहीं है। लोगों को बहुत परेशान कर देते हैं। हमने हस्ताक्षर कर दिए फिर भी कहेंगे, 'फाड़ दो।' ऐसा भी कहते हैं। 'अरे, हमें भी खराब कर देना है तुझे? कौन है तू यह?' वे जड़ भाव कहलाते हैं। तुझे आते हैं न?

**प्रश्नकर्ता :** बहुत ही आते हैं।

**दादाश्री :** वे बहुत आते हैं, नहीं? इन्हें तो, इनके घर के सामने एक स्त्री जलकर मर गई, इसने उसे जलते हुए देखा, तो वह चित्र (उसके मन में से) जाता ही नहीं है। बोलो, अब उसे कैसी मुश्किल होती होगी?

**प्रश्नकर्ता :** फिर ऐसे विचार आते रहते हैं कि मैं मर जाऊँगा तो मेरे बीवी-बच्चों का क्या होगा?

**दादाश्री :** जलते हुए, शोर मचाते हुए और उसे जो जलन हो रही थी, वह सीन उसने देख लिया, वह उसके हिस्से में आया। ऐसा पुण्यशाली के हिस्से में आता है न! क्या हर किसी के हिस्से में आता है? उसका कोई हिसाब होगा इसीलिए तो उसके हिस्से में आया। लेकिन आपको डरने की ज़रूरत नहीं है, दादा का ज्ञान है आपके पास।

भले ही दिखाई दे यह सब। इसके दिखाई देने का काल होता है कि भाई, दो से तीन बजे तक, अपने आप ही किसी खास समय पर आ जाते हैं। फिर वापस चार बजे के बाद कुछ भी नहीं रहता। किसी दिन तीन घंटे रहते हैं, किसी दिन दो घंटे रहते हैं, वे आते हैं। यह पूरे दिन नहीं रहता। क्या पूरे दिन रहता है?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं।

**दादाश्री :** अतः ये जड़ भाव हैं। अब उसे तो घबराहट होती है। क्योंकि दिखता ही रहता है न! जैसे अभी भी न जल रही हो! शोर मचाते हुए, बेचैन होते हुए, वह सब दिखाई देता है उसे। जैसा देखा था वैसा ही दिखाई देता है। बोलो, अब वह घबराहट जाए कैसे? जाने में देर लगेगी न? तुझे तो ऐसा कुछ भी नहीं है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन दादा की छत्रछाया है फिर भी थोड़ा हिल जाते हैं। दादा की छत्रछाया में हैं, फिर मुझे तो मज़बूत बन जाना चाहिए न?

**दादाश्री :** तो क्या हो गया? इस बात को तू जानेगा न, तो मज़बूत हो जाएगा। यह बात आज ही हुई है न! मुझे लगता है कि न जाने किसके विचार आते रहते हैं? विचार ऐसे तो नहीं होते हैं न! और फिर पता लगाने पर ऐसा लगा कि यह तो तू जड़ भावों में फँसा हुआ है। वर्ना इतना सब हो ही नहीं सकता न! एक-दो दिन हो तो हमारे कहने से सब निकल जाता है। लेकिन ये जड़ भाव तो निकल ही नहीं पाते किसी से।

कोई व्यक्ति अगर पूरे सत्संग में सभी को परेशान करता रहे, तो हम कहते हैं कि 'एय नालायक, यहाँ नहीं चलेगा तेरा।' यहाँ सत्संग में परेशानी कम करने के लिए हम वीतरागता से इस प्रकार बोलते हैं। तब भी फिर अंदर तो, 'नालायक है, बहुत ही खराब इंसान है, यह ऐसा है, वैसा है' और ऐसा सब तूफान अंदर खड़ा होता है। इसलिए हम कहते हैं कि 'वह उपकारी है' तो चुप। हमने पहले

कहा है न, हम खुद किसी को खराब कहें न, तब उसे (*पुद्गल* को) तो वही चाहिए, बाद में वे कुत्ते (जड़ भाव) अंदर भौंकते ही रहते हैं। क्योंकि अंदर सभी तरफ के कुत्ते होते हैं। यह पूरा संसार उसी में उलझा हुआ (परेशान) है न, जड़ भावों में! खुद चेतन है और जड़ भावों में उलझा हुआ है यह संसार। तो हम उसमें से मुक्त करते हैं न।

देखो, ये यात्रा करके आए एक महीना, लेकिन क्या ज़रा सा भी परेशान हुए हैं? ऐसा कहते हैं कि हर कहीं दादा दिखाई दे रहे थे। क्योंकि वे बात को समझ चुके थे कि इसमें इसके अलावा अन्य कुछ नहीं हैं। यानी कि ये जड़ भाव हैं, अपने भाव होते तो बात अलग है।

**प्रश्नकर्ता :** हमें चेतन भाव की ही सुननी चाहिए?

**दादाश्री :** हमें चेतन भाव की ही सुननी चाहिए। जड़ भाव की तो सुननी ही नहीं चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** अब हम कहते हैं न, 'उपकारी हैं', तो सब पूछते हैं 'किस तरह से उपकारी हैं'।

**दादाश्री :** उपकारी तो इसलिए कहना है कि उन्हें नालायक कहा, तो वे सब प्रकार के, उसी तरफ का नेगेटिव बोलते रहेंगे सब। तब हमें जानना है कि हम नेगेटिव बोले, इसीलिए पीछे ये सारे कुत्ते भौंकने लगे हैं। हमने तो ज़रूरत लायक ही नेगेटिव बोला, सिर्फ इसे निकालने के लिए। अभी यह परेशानी हुई लेकिन उस पर हमेशा के लिए राग-द्वेष नहीं हैं। लेकिन फिर वे जड़ भाव राग-द्वेष करवाते हैं। फिर तो कहेंगे 'ऐसा है, वैसा है और फलाना है।' तब हम कहते हैं कि 'भाई, वह तो उपकारी है।' तब फिर वापस सब चुप हो जाएँगे।

तू पहले से ही कहे कि यह व्यक्ति उपकारी है, तो फिर उस तरफ का नहीं बोलेंगे। (यदि) तू कहे कि, 'ये तो पक्षपात करते हैं',

तो ज़ोरदार बोलना शुरू हो जाएगा। जड़ का काम ही यह है। सामने वाले को जाल में फँसा देता है। फँसाकर अंदर फेंक देता है। इसीलिए तो हमने सभी को चेतावनी दी है कि जड़ भावों से सावधान रहना। मन-वचन-काया के तमाम लेपायमान भावों से मैं सर्वथा निर्लेप ही हूँ। उन्हें लेपायमान भाव कहा जाता है। हमें लेपायमान नहीं होना हो, फिर भी लेपित कर देते हैं।

यहाँ पर कई हाथ की सफाई वाले लोग नहीं होते? हमें चाय नहीं पीनी हो तब भी यों दाढ़ी में हाथ डाल-डालकर पिला देता है, तभी छोड़ता है। 'अरे, तूने मेरे अधिकार से बाहर का कर दिया?' पाँच रुपये भी नहीं देने हों फिर भी फंड में उसके नाम से पाँच सौ रुपये लिखवा लेता है।

यों ही दाढ़ी में हाथ डालता है, ऐसा करता है, मीठा-मीठा बोलता है, फलाना करता है, फिर चला जाता है वह। अब उन लेपायमान भावों को हमने रखा, इसीलिए हमारा मनचाहा नहीं हुआ।

**प्रश्नकर्ता :** उस *भोगवटे* की घटना की वजह से ही यहाँ पर आया हूँ। वह घटना नहीं हुई होती तो यहाँ आता ही नहीं।

**दादाश्री :** हाँ, तब तो वह घटना तेरे लिए कितनी उपकारी है। वर्ना तो तू गोते ही खाता रहता।

**प्रश्नकर्ता :** अंदर वाले जड़ भाव ऐसे हैं न, कि सामने वाले को दोषित ही दिखाते हैं।

**दादाश्री :** आप दोषित कहोगे तो, अपनी इच्छा में ऐसा लगेगा कि दोषित है, तब फिर लेपायमान भाव घेर लेंगे। वर्ना (यदि) आप कहो, 'नहीं, वे तो बहुत अच्छे इंसान हैं', तो फिर वे बंद हो जाएँगे। हमें भी कभी ऐसा एडजस्टमेन्ट लेना पड़ता है न! लगभग हम से ऐसा नहीं होता, लेकिन कभी तो हमारे साथ भी हो जाता है। लेकिन हम तो परिचित हैं इसलिए उन्हें पहचान जाते हैं, 'ओहोहो! आप तो जड़

भाव हो, वापस कहाँ से आ गए? सभी के जड़ भावों को मैं निकालता हूँ और आप यहाँ मेरे घर पर आ गए?'

इस विज्ञान में सफल हो गया तो काम हो जाएगा। फिर प्रारब्ध साथ देता ही रहेगा। वह कभी टेढ़ा-मेढ़ा चल सकता है कुछ समय के लिए, लेकिन फिर साथ देता रहेगा।

**प्रश्नकर्ता :** वहीं पर पराक्रम करना है न!

**दादाश्री :** स्वपुरुषार्थ, स्वपराक्रम सहित होता है।

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञान मिलने के बाद चार-पाँच साल तक पुरुषार्थ करना होता है, अब पराक्रम करना है।

**दादाश्री :** उस समय वापस बिगाड़े नहीं ज्ञान को। बड़ी मुश्किल से ज्ञान को संभाला है, सिद्ध किया है तो फिर से ज्ञान को बिगाड़े नहीं, इसलिए पराक्रम करना है। स्टीमर तो अच्छी तरह चलता ही रहता है लेकिन डाँवाडोल होने लगे, तभी उसकी (ज्ञान की) कीमत है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वह पराक्रम करे तो बहुत श्रेणियाँ चढ़ जाएगा।

**दादाश्री :** बहुत ऊँचे चढ़ जाएगा। बहुत उच्च प्रकार की श्रेणी तक पहुँच जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** आज से बाहर महीने पहले क्या हो रहा था कि दोष देखते ही प्रतिक्रमण हो जाते थे कि हमने दोष क्यों देखे?

**दादाश्री :** तुरंत ही शूट ऑन साइट हो जाता था?

**प्रश्नकर्ता :** शूट ऑन साइट। 'दादा के विज्ञान का बेस है कि पूरा जगत् निर्दोष है और भुगते उसी की भूल है, फिर क्यों दोष दिखाई देते हैं?' ऐसा होता था। अभी तो फिर क्या हुआ कि कन्टिन्युअस ऐसा ही लगता है कि दोषित ही है।

**दादाश्री :** यह तो उन जड़ भावों ने परेशान कर दिया है, सब ने मिलकर।

## चेतन का भाव, सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा ही

एक जड़ भाव है और एक है चेतन भाव। चेतन भाव एकाकार हो जाए तो दोष लगता है और जड़ भाव की वजह से यदि हमने उसमें हस्ताक्षर कर दिए हों तो दोष लगता है। अंदर हस्ताक्षर नहीं किए हों तो जड़ भावों की वजह से हमें कुछ भी दोष नहीं लगेगा। इतना यदि समझ जाए तो ऐसा कहा जाएगा कि पूरे जगत् को समझ लिया। जड़ भाव साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स से हैं और वे कम-ज़्यादा होते रहते हैं। वे गुरु-लघु स्वभाव वाले हैं। उन्हें पहचानना पड़ेगा कि ये जड़ भाव हैं और ये चेतन भाव। पूछने जैसा कुछ रखा ही नहीं है। फिर भी बुद्धि उलझाती रहती है। उसका स्वभाव ही ऐसा है। यदि पूर्ण रूप से समझ जाएगा तो काम हो जाएगा। लोगों को जड़ भाव और चेतन भाव की परख नहीं है न, कि यह जड़ भाव है और यह चेतन भाव! पूरी दुनिया जिसे चेतन भाव मानती है, वह जड़ भाव है। इसीलिए यह दुनिया कायम है न आराम से। खुद अपने आप को ही पहचानना है। अनंत काल से ढका हुआ है, खुद अपने आप को ही नहीं जानता। अनंत काल से खुद को खुद का ही पता नहीं चलता कि 'मैं कौन हूँ'? वह आश्चर्य है न!

**प्रश्नकर्ता :** चेतन में तो ज्ञाता-द्रष्टा, ये दो ही भाव हैं न, या अन्य कोई भाव है?

**दादाश्री :** अन्य बहुत सारे भाव हैं लेकिन वे सब अगुरु-लघु भाव हैं। खुद घटता-बढ़ता नहीं है। और जो घटता-बढ़ता है, उसे हमें देखना है कि ये जड़ भाव हैं।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो गुरु-लघु स्वभाव है, वह स्वभाव है या गुण है?

**दादाश्री :** वह तो (विभाविक) *पुद्गल* का गुण है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन वह तो चेतन के लिए पूछा है।

**दादाश्री :** चेतन का नहीं है। चेतन का स्वभाव अगुरु-लघु है। इसीलिए कृपालुदेव ने लिखा है,

*'जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,*
*कही शक्या नहीं ते पद श्री भगवान जो।*
*तेह स्वरूप ने अन्य वाणी ते शुं कहे,*
*अनुभव गोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो!'*

अपूर्व अवसर...

('जो पद श्री सर्वज्ञ ने ज्ञान में देखा था, उस पद को श्री भगवान बता नहीं सके। उस स्वरूप को अन्य वाणी कैसे समझा सकती है? वह ज्ञान तो सिर्फ अनुभव गोचर है!')

कोई (यदि) चार वेदों से पूछे तो वे कैसे बता पाएँगे? अवक्तव्य है व अवर्णनीय है, किस तरह बता पाएँगे? वेद भी कहते हैं, दिस इज़ नॉट दैट, दिस इज़ नॉट दैट। ज्ञान, ज्ञानी के पास होता है। ज्ञान ही आत्मा है, और वह ज्ञानी के पास है। चेतन भावों को और जड़ भावों को हर प्रकार से अलग कर सकता है, उनमें भेद कर सकता है। तभी इसका हल आएगा न! वर्ना हल ही नहीं आएगा और उलझता रहेगा। जिस रास्ते से एक घंटे में पहुँच सकते हैं, ऐसे रास्ते के लिए तो लाखों जन्म बीत जाते हैं। उलझन ही है न?

**प्रश्नकर्ता :** दादा, ज्ञाता-द्रष्टा के अलावा चेतन के अन्य कौन से भाव हैं?

**दादाश्री :** बाकी बहुत सारे भाव हैं। अनंत सुखधाम और कितने ही भाव हैं, कई, बेहिसाब भाव हैं। जितनी भी जड़ वस्तुएँ हैं, उन सभी में ज्ञेयाकार होने की शक्ति है। यह (जो) आम है, आत्मा उसी आम के डिज़ाइन जैसा हो जाता है, ज्ञेयाकार हो जाता है। फिर भी निर्लेप है, प्रभावित नहीं होता। अनंत शक्ति उस परमात्मा की ही है।

जो मानो वह यही है, इसके अलावा अन्य कोई परमात्मा नहीं है। पूरी ही दुनिया इसमें उलझी हुई है और खा-पीकर उलझा रहता है आराम से।

## तमाम ज्ञानी, वहाँ पर एक

यह इस संसार के लोगों के *लक्ष* में नहीं होने की वजह से कर्म बंधन होता रहता है। इसीलिए हमने कहा है न, कि भाई, ये जड़ भाव हैं, ये खुद के चेतन भाव नहीं हैं। अतः वे ज्ञेय हैं और हम ज्ञाता हैं। उन्हें सिर्फ देखना ही है। जिसने यह लिखा हुआ है न, '*जे चेतन-जड़ भावो अवलोक्या छे मुनिन्द्र सर्वज्ञे*'। ('जिन चेतन व जड़ भावों का अवलोकन किया है, सर्वज्ञ मुनिन्द्र ने'।)

**प्रश्नकर्ता :** '*जे चेतन-जड़ भावो अवलोक्या श्री मुनिन्द्र सर्वज्ञे। ऐवी अंतर आस्था प्रगट्ये, दर्शन कह्युं छे तत्त्वज्ञे।*'

('जिन चेतन व जड़ भावों का अवलोकन किया है, सर्वज्ञ मुनिन्द्र ने। ऐसी अंतर अवस्था प्रकट होने को दर्शन कहा है सर्वज्ञ ने'।)

**दादाश्री :** 'मुझे रस और रोटी भाती है', यह जड़ का भाव है। जड़ भावों को खुद के भाव मानता है। कहेगा, 'मुझे आलू की इच्छा हो रही है।' वह है जड़ भाव लेकिन उसे चेतन भाव मानता है। मुनिन्द्र सर्वज्ञ ने आलू की इच्छा के बारे में क्या कहा है कि 'ये जड़ भाव हैं। उसे चेतन भाव मानेगा तो क्या दशा होगी?' जो चंचल भाग है, वह मिकेनिकल भाग है, कम-ज़्यादा होता है। चित्त इधर-उधर जाता है, कम-ज़्यादा होता है, बुद्धि कम-ज़्यादा होती है, स्मृति इधर-उधर हो जाती है कि 'मुझे याद है लेकिन भूल गया', फिर सिर पर दो बार हाथ मारने से मशीनरी खुल जाती है, तो याद आ जाता है।

जड़ के भी भाव हैं, वे चेतन के भाव नहीं हैं। चेतन के सभी भाव चेतन हैं। जड़ के भाव जड़ हैं। अतः यह समझना बहुत मुश्किल

है कि ये जड़ भाव हैं। जड़ भावों को चेतन भाव मानते हैं सभी। यह किया और सामायिक की, प्रतिक्रमण किया, यह किया, वह किया, वे सब जड़ भाव हैं।

**प्रश्नकर्ता :** 'मैंने किया', वह सब जड़ भाव में आता है न?

**दादाश्री :** हाँ, यह बहुत बड़ा वाक्य लिखा है।

**प्रश्नकर्ता :** 'जिन चेतन और जड़ भावों का अवलोकन किया सर्वज्ञ श्री मुनिन्द्र ने।'

**दादाश्री :** सर्वज्ञ मुनिराज लिखते हैं, 'ये जड़ भाव हैं और ये चेतन भाव हैं।' इसीलिए हम कहते हैं न, अवस्था मात्र कुदरती रचना है, जिसका कोई बाप भी रचने वाला नहीं है और वह व्यवस्थित है। मैंने पालथी लगाई, मैंने ऐसा किया, सामायिक की, मैं पद्मासन में बैठा और पद्मासन किया, प्राणायाम किया और फलाना आसन किया...

**प्रश्नकर्ता :** यह 'मैं'पन का जो भाव है, वह जड़ है?

**दादाश्री :** हाँ और फिर वह गुरु-लघु होता है। सभी ज्ञेय, जड़ भाव हैं और गुरु-लघु स्वभाव वाले हैं। बढ़ जाते है, कम हो जाते हैं। इतना ही नहीं समझने की वजह से, ये सब गांठें पड़ गई हैं। इसमें तो पूरा विज्ञान आ जाता है इसीलिए ये शास्त्र लिखे गए हैं। आत्मा मिलता ही नहीं है न! और आत्मा ऐसा है भी नहीं कि मिल सके!

चेतन व जड़ भावों का किसी को भान ही नहीं है। लेकिन (जब) हम आपको ज्ञान देते हैं तब इस तरह जड़ भाव दिखा देते हैं और चेतन भावों को इस तरह से अलग दिखा देते हैं। 'यह' और वह (जो कि) सर्वज्ञ मुनिन्द्र ने देखा है, इनमें कोई भी अंतर नहीं है। हम आपको वही देते हैं।

मुनिन्द्र सर्वज्ञ ने जिन चेतन भावों का अवलोकन किया है और

'ये भाव, यही चेतन हैं', ऐसी आस्था आ जाए, ऐसी एक किरण फूट जाए, उसे पढ़कर धारण कर ले, तो उसे सम्यक्त्व कहा गया है। उसका हमने अवलोकन करके बताया है, 'तमाम लेपायमान भावों से सर्वथा निर्लेप हूँ। मन-वचन-काया के लेपायमान भाव, वे जड़ के भाव हैं, वे चेतन के भाव नहीं हैं।'

सिर्फ दृष्टि बदलने से क्या होता है? तो कहते हैं कि, 'यह *पुद्गल* भाव है और यह आत्म भाव है।' इस संसार के लोगों को इसका पता ही नहीं है। सभी ज्ञानी इसी स्टेशन पर आकर मिलते हैं कि ये *पुद्गल* भाव हैं और ये आत्मभाव हैं। यदि यहाँ पर यह बात मेल नहीं खाती तो वे ज्ञानी नहीं हैं। यह स्टेशन ऐसा है कि इससे आगे तो बहुत लंबा (रास्ता) है लेकिन पहले यहाँ पर तो एक होना ही पड़ेगा। उसे जीव और अजीव का ज्ञान होना कहा जाता है।

# [ 12 ]
# पुद्‌गल और आत्मा

## आत्मा का वज़न कितना है?

**प्रश्नकर्ता :** यह जो *पुद्‌गल* है या जो परमाणु हैं, अभी विज्ञान में इन परमाणुओं पर ही अधिक भार दिया गया है लेकिन जो आत्म तत्त्व है, उस पर किसी ने वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ भी नहीं बताया है कि यह, वह तत्त्व है।

**दादाश्री :** उस शब्द के बारे में वैज्ञानिकों को पता ही नहीं है न!

**प्रश्नकर्ता :** क्या वह विज्ञान से नहीं नापा जा सकता?

**दादाश्री :** पता ही नहीं है उन्हें।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन उस विज्ञान से पता चल सकता है?

**दादाश्री :** नहीं, उन लोगों को पता चल सके, ऐसा नहीं है। उन लोगों को अंदर शंका होती है कि ऐसा तत्त्व है, जो कि इन सब को जीवंत करता है लेकिन उन्हें यह पता नहीं चल पाता कि कौन सा तत्त्व है और वे लोग अपना बताया हुआ मानने को तैयार नहीं होते। वह उन्हें समझ में आएगा, उनके खुद के दर्शन में आएगा, तभी वे समझने को तैयार होंगे इसलिए वे अपने शास्त्रों को एक्सेप्ट नहीं करते।

**प्रश्नकर्ता :** वह उनके दिमाग़ में उतर जाए तो सब काम हो जाएगा।

**दादाश्री :** आत्मा ऐसा नहीं है कि मनवाने से माना जा सके। जिस प्रकार से इस *पुद्गल* को अनुभव किया जा सकता है, उसी प्रकार आत्मा को भी अनुभव किया जा सकता है।

**प्रश्नकर्ता :** कितने ही संत ऐसा कहते हैं कि, आत्मा का भी वज़न निकाला जा सकता है। ऐसा संभव है क्या?

**दादाश्री :** व्यवहार आत्मा का वज़न नापा जा सकता है। यानी उनका कहना गलत नहीं है। व्यवहार आत्मा है, यानी क्या कि मूल आत्मा के साथ जो अन्य परमाणु गए, उन परमाणुओं में वज़न है, उसी को आत्मा का वज़न मानते हैं।

अर्थात् ऐसा जो कहते हैं कि आत्मा वज़नदार है, वह गलत नहीं है। उसका वज़न निकाला जा सकता है। क्योंकि यहाँ से दूसरी योनि में जाते समय अंदर मूल आत्मा के साथ-साथ व्यवहार आत्मा भी जाता है, उसके साथ *पुद्गल* जाता है और उस *पुद्गल* का वज़न है। मूल आत्मा में वज़न नहीं होता।

मूल दृष्टि बदले बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह बंधन है। गाड़ी अहमदाबाद के बजाय सूरत की ओर चली जाती है, फिर जितनी स्पीड ज़्यादा, उतनी ही ज़्यादा उल्टी जाती है।

## पुद्गल ही चिपका हुआ है आत्मा से

ये जो परमाणु हैं, उनका आदि भी नहीं है और अंत भी नहीं है। यदि सिर्फ भगवान को ही इनाम देंगे तो परमाणुओं को दु:ख होगा।

**प्रश्नकर्ता :** परमाणुओं को क्या दु:ख होना है?

**दादाश्री :** नहीं, लेकिन वे भी अधिकारी हैं न! वे आदि-अंत रहित हैं।

**प्रश्नकर्ता :** खुद के प्रभाव से अधिकारी लगते हैं न!

**दादाश्री :** नहीं, लेना-देना ही नहीं है। परमाणुओं का प्रभाव भगवान पर नहीं है और भगवान का प्रभाव परमाणुओं पर नहीं है, दोनों स्वतंत्र तत्त्व हैं। तब तो भगवान पूरी दुनिया का कर्ता बन जाता। वह नहीं चलेगा। इतनी सी भी शक्ति नहीं है।

भगवान बंधे हुए हैं या परमाणु बंधे हुए हैं? बल्कि इन परमाणुओं ने भगवान को बाँधा हुआ है, वे छूटने नहीं देते। (विभाव होने की वजह से बंधन हुआ है। परमाणु स्वतंत्र रूप से नहीं बाँध सकते।) लोग छूटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस पूरी दुनिया में ऐसे पुरुषार्थी लोग हैं जो लोहे की मोटी जंज़ीरो का बंधन भी तोड़ देते हैं लेकिन *पुद्गल* और आत्मा के बीच का सूक्ष्म बंधन नहीं तोड़ सकते और यदि तोड़ने जाएँगे तो बल्कि अन्य बंधन और अधिक लिपटेंगे। '*पुद्गल*' तो आत्मा की जेल है।

**प्रश्नकर्ता :** इस *पुद्गल* का ऐसा तो क्या मोह है कि आत्मा को नहीं छोड़ता?

**दादाश्री :** नहीं, ऐसा नहीं है। *पुद्गल* तो ऐसा कहता है कि तेरे बनाने से मैं बना हूँ, तेरी एक फूटी हुई है या दो (आँखें फूटी हैं कि सही चीज़ नहीं दिखाई देती)? वह तो अपना उत्पन्न किया हुआ तत्त्व है!

दादा की भाषा में *पुद्गल* आत्मा से चिपका है, आत्मा *पुद्गल* से नहीं। पूरी दुनिया ऐसा मानती है कि आत्मा ही *पुद्गल* से चिपका हुआ है। यह हमारी खोज है, हम खुद देखकर बताते हैं कि *पुद्गल* ही आत्मा से चिपका हुआ है। इन छः तत्त्वों से उत्पन्न हुआ *पुद्गल,* आत्मा के लिए घुटन है, एक प्रकार की। यह *पुद्गल* तो विशेष गुण है।

**प्रश्नकर्ता :** यह जो देखकर बताते हैं, वह किसमें देखना होता है?

**दादाश्री :** वह इन्द्रिय ज्ञान नहीं है, वह मैं अतिन्द्रिय ज्ञान से देखकर बता रहा हूँ। हमें सॉल्यूशन मिल गया है। ये इन्द्रिय ज्ञान बुद्धि के हिसाब में है और लिमिटेड होता है जबकि अतिन्द्रियज्ञान की लिमिट नहीं होती।

## ब्रह्म के सामने, ब्रह्म नखरे करता है

**प्रश्नकर्ता :** भक्ति कौन करता है? *पुद्गल*? *पुद्गल* करता है तो *पुद्गल* से कभी भी चेतन प्राप्त नहीं हो सकता, तो क्या *पुद्गल* चेतन की भक्ति कर सकता है? और (यदि) वैसा है तो क्या चेतन प्राप्त हो सकता है? *पुद्गल* की कौन सी क्रिया, कितनी क्रिया और कैसी क्रिया से चेतन प्राप्त हो सकता है?

**दादाश्री :** *पुद्गल* का स्वभाव है भक्ति करने का लेकिन (यदि) कुछ टेढ़ा करता है तो भक्ति करना बंद हो जाता है। *पुद्गल* का स्वभाव ही है कि ब्रह्म के सामने ब्रह्म नखरे करता है। हम अपना टेढ़ा-मेढ़ापन और *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) निकाल दें तो *पुद्गल* भक्ति ही करता रहेगा। (जब) हम यह ज्ञान देते हैं तब यह रोंग बिलीफ कि 'मैं चंदूभाई हूँ', खत्म हो जाती है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' की राइट बिलीफ बैठती है, वही चेतन की भक्ति है। उस भक्ति से आवरण टूटते हैं और दिखाई देने लगता है।

**प्रश्नकर्ता :** (यदि) *पुद्गल* चेतन की भक्ति करे तो चेतन प्राप्त हो सकता है?

**दादाश्री :** चेतन की भक्ति अर्थात् चेतन प्राप्त होने के बाद ही चेतन की भक्ति हो सकती है। भक्ति से आवरण टूट जाते हैं और अधिक दिखाई देता है। यह इस पर आधारित है कि वह किसकी भक्ति करता है। (जिसने) चेतन प्राप्त कर लिया है, ऐसे पुरुष की भक्ति करने से चेतन प्राप्त होता है।

## मारता कौन है? लगती किसे है?

**प्रश्नकर्ता :** आत्म तत्त्व और जड़ तत्त्व में कभी घर्षण होता है?

**दादाश्री :** दो जीवंत वस्तुओं के बीच घर्षण होता है।

इनमें से एक चेतन है और एक जड़, *पुद्गल*। हम जड़ को ही मारते रहेंगे तो मारने वाले को लगेगी, इसी प्रकार यह सब (व्यवहार) आत्मा को लगता (चोट पहुँचाता) है।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन मारने से जड़ पर असर तो होता है न?

**दादाश्री :** असर होता है लेकिन जो चेतन होगा, उसी को समझ में आएगा न! वर्ना अगर लोहे को पीटते रहो तो लोहे के बाप का क्या जाएगा? पीटने वाला थक जाएगा।

**प्रश्नकर्ता :** लेकिन लोहे को लगने पर उसकी, उसकी कुछ...

**दादाश्री :** नहीं ऐसा कुछ नहीं होता है। उसे आत्मा कहाँ मारता है, लोहे को लोहा मारता है।

**प्रश्नकर्ता :** हं।

**दादाश्री :** तो फिर लोहे को कौन मारता है? तब कहते हैं, ये वही, *पुद्गल*। उसमें साथ में आत्मा नहीं है। सिर्फ आत्मा का भाव ही साथ में है। सबकुछ उसी के हथियार से हो रहा है लेकिन उसमें चेतन नहीं है इसलिए फिर जोखिम नहीं रहता न! इन आँखों से जो पूरी रूपी दुनिया दिखाई देती है, वह पूरी ही परमाणुओं से बनी है, उसमें आत्मा नहीं है। ये (जो) सारे संत पुरुष घूमते हैं न, उनमें आत्मा है ही नहीं। उनमें जो आत्मा है, वह बिल्कुल अलग है, उसका उन्हें पता भी नहीं है कि भीतर आत्मा क्या कर रहा है? वे तो ऐसा ही समझते हैं कि '(यह जो) बातें कर रहा है, सब कर रहा है, वही चेतन है।' अरे भाई, यह तो पावर चेतन है।

**प्रश्नकर्ता :** तो क्या शुद्ध चेतन को देह की ज़रूरत है? *पुद्गल* की ज़रूरत है क्या?

**दादाश्री :** क्यों?

**प्रश्नकर्ता :** क्योंकि चेतन अकेला नहीं रह सकता, तो *पुद्गल* की ज़रूरत है न?

**दादाश्री :** (यदि) उसे ज़रूरत पड़े तो वह भिखारी कहा जाएगा। वह उस तरह का भिखारी नहीं है। वह तो, *पुद्गल* की वजह से जो क्षेत्र उसका नहीं है, वहाँ पर उसे रहना पड़ता है। (यदि) वह *पुद्गल* छूट गया, वह आत्मा उससे बाहर निकल गया तो फिर अंत आ जाएगा। ये साइन्टिफिक इफेक्ट में आ गए हैं, सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स में। ये सभी छः तत्त्व घूमते रहते हैं, इस तरह ये दो तत्त्व, मैटर (जड़) और सोल (चेतन), (जब) साथ में आते हैं तब उससे यह बदलाव हो जाता है।

## आत्मा अनइफेक्टिव

शुद्ध चैतन्य अनइफेक्टिव है। *पुद्गल* हमेशा इफेक्टिव है। विभाविक *पुद्गल* इफेक्टिव होने की वजह से उसमें 'मैं'पन का भार है, इसलिए आत्मा इफेक्टिव लगता है। उसी प्रकार उसका *लक्ष पुद्गल* की ओर हो तो 'इफेक्टिव' लगता है, (यदि) उसका *लक्ष* आत्मा में हो तो 'इफेक्टिव' नहीं लगेगा। खटमल काटे, तब भी आत्मा पर इफेक्ट नहीं होता। यह (*पुद्गल*) इफेक्टिव है और जो इफेक्ट रहता है न, उसमें 'मैं'पन का आरोपण करता है, इसलिए कॉज़ेज़ उत्पन्न होते हैं व कॉज़ेज़ और इफेक्ट, इफेक्ट और कॉज़ेज़ होते रहते हैं।

जिस प्रकार चलते-चलते सिर के बाल उड़ते हैं और वे हमें परेशान नहीं करते, उसी प्रकार संसार में रहने वाले *पुद्गल* हमें परेशान नहीं करते।

*पुद्गल* एक पराई चीज़ है और दूसरी खुद की चीज़ है। पराई चीज़ कभी भी खुद की नहीं हो सकती। पराई चीज़ तो करण (मन-वचन-काया) कहलाती है। वह हथियार है लेकिन उस करण के स्वामी बन बैठे हैं। खुद की चीज़ के स्वामी, वे खुद ही भगवान हैं।

## आहारी बनते ही बन जाता है, विष

आत्मा किस प्रकार से खा सकता है? आत्मा का मुँह नहीं है, कुछ भी नहीं है। स्थूल शरीर नहीं है तो क्या आत्मा खा सकता है? क्या तू *पुद्‌गल* को आत्मा मानता है?

**प्रश्नकर्ता :** *पुद्‌गल* को आत्मा मानता हूँ इसीलिए खा पाता हूँ न?

**दादाश्री :** *पुद्‌गल* ही खाता है। सिर्फ इतना ही है कि आप ऐसा मानते हो। जीभ का चटोरापन तो *पुद्‌गल* को है। यह तो आप मान बैठे हो कि मेरा चटोरापन है। *पुद्‌गल* के पूरे असर का आरोपण खुद पर कर लेता है। क्यों बहुत गहरे उतर गए?

**प्रश्नकर्ता :** नहीं! *पुद्‌गल* चेतन के साथ में है इसीलिए तो खाता है, वर्ना क्या *पुद्‌गल* खा सकता है?

**दादाश्री :** इसमें चेतन कुछ भी नहीं करता है।

**प्रश्नकर्ता :** नहीं! करता कुछ भी नहीं है।

**दादाश्री :** फिर भी उसकी उपस्थिति है इसलिए यह *पुद्‌गल* जीवित है।

**प्रश्नकर्ता :** हाँ।

**दादाश्री :** जी रहा है, खाता है, पीता है, सबकुछ *पुद्‌गल* ही करता है। उसे भ्रमणा हो गई है कि, 'यह मैं कर रहा हूँ, अन्य कौन हो सकता है?' ये बड़े-बड़े जज भी ऐसा समझते हैं कि अभी और कोई नहीं है यानी कि मैं ही हूँ।

शुद्ध उपयोगपूर्वक आहार ग्रहण करे तो आहार अलग है और 'मैं' अलग। परंतु इसमें 'मैं' को डाल दिया, 'मैंने खाया', ऐसा कहता है इसलिए तुरंत ही अंदर पॉइज़न बन जाता है और सारे परमाणु पॉइज़न वाले हो जाते हैं और फिर उसका नशा चढ़ता है लेकिन यदि अगर

ऐसा नहीं कहे तो कुछ भी नहीं होगा। यह तो, 'मैंने खाया, मैंने भोगा', ऐसे पॉइज़न डालता है। भोजन पॉइज़न नहीं है लेकिन नासमझी की वजह से वह पॉइज़न बन जाता है। छोटा पटाखा जलाकर पटाखे की दुकान में डाल दे तो क्या होगा? लोग ऐसा करते हैं और फिर कहते हैं, 'मेरा सबकुछ जल गया।' भगवान कहीं जलाने नहीं आते हैं, यह तो खुद ही सब सफाचट कर देता है।

## अर्पित कर दिया पूरा ही आत्मा

इस सुख के मिलने के बाद में, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा ज्ञान होने के बाद में ये जो सारे *पुद्गल* के सुख हैं, वे नीम जैसे लगते हैं। सिमिली दी है न, सारी सिमिली समझ में आनी चाहिए। अतः यह जो *पुद्गल* है, वह हमें कैसा लगता है? नीम (जैसा) लगता है, यानी कड़वे ज़हर जैसा। वर्ना इस *पुद्गल* की मिठास मन में से जाए ही नहीं। एक अच्छा आलू-बड़ा खाकर आया हो तब भी चित्त उसी में जाता है।

छोड़ने की चीज़ें कितनी हैं? एक-दो हैं या दस-बारह-पंद्रह हैं?

**प्रश्नकर्ता :** सभी।

**दादाश्री :** सभी अर्थात् सौ-दो सौ, पाँच सौ, हज़ार, लाख, दो लाख, पाँच-दस लाख, दो अरब, पाँच अरब?

**प्रश्नकर्ता :** सभी *पुद्गल* चीज़ें, आत्मा के अलावा सभी कुछ।

**दादाश्री :** अर्थात् यह जो छोड़ना है, वह अनंत हैं। आपने सिर्फ आलू छोड़े, प्याज़ छोड़ी, फलाना छोड़ा, तो उसका कब अंत आएगा? तब तक तो आयु खत्म हो जाएगी। तब तक तो इतना, ज़रा सा भी नहीं चले होंगे। फिर अगले जन्म में जैसे थे, वैसे के वैसे। फिर (यदि) वैष्णव के वहाँ पर जन्म हो जाए तो वापस आलू खाता ही है।

(जो) अर्पित करना था, वह नहीं किया और पूरे ही आत्मा को

अर्पित कर दिया। अर्पित करना था *पुद्गल* को और अर्पित कर दिया आत्मा! क्या दशा होगी अब?

## जो पुद्गल को जानता है, वह है ज्ञाता

जड़ चैतन्य को खींचता है तो क्या हम जड़ से भी गए बीते हैं।

*पुद्गल* चेतन को हिला देता है। वे (*पुद्गल*) लुटेरे नहीं हैं, इसके बावजूद भी (चैतन्य) काँप जाता है। उसमें भी रजिस्टर्ड (पोस्ट) आ जाए तो घबराहट-घबराहट। *पुद्गल* का क्या भय? आत्मा वैसे का वैसा ही है। *पुद्गल* का स्वभाव चंचल है और आत्मा का स्वभाव अचल। जितनी चंचलता बढ़ती है, उतना ही *पुद्गल* की तरफ जाता है। जितनी स्थिरता बढ़ती है उतना ही आत्मा की तरफ जाता है। पाँच इन्द्रियाँ और मन *पुद्गल* से बने हुए हैं। उन्हें जीतना चाहे तो जीत नहीं पाएँगे। वे ज्ञेय हैं और आत्मा ज्ञाता है। वह जड़ को ही ऐसा मानता है कि 'स्वयं' है। अर्थात् खुद भ्रांति को लेकर ही ज्ञेय को ज्ञाता मानता है। (जब) वह भ्रांति टूट जाएगी तब जितेन्द्रिय जिन कहलाएगा। आत्मा और *पुद्गल* का अस्तित्व ही भिन्न है। (जिसका) अस्तित्व है उसका वस्तुत्व होता ही है। '*पुद्गल*' को ही जानना और समझना, उसी को 'ज्ञाता' कहते हैं।

आत्मा को जान लिया, उसे 'ज्ञान' कहा गया है। जो आत्मा को जानता है, वही *पुद्गल* को जान सकता है। *पुद्गल* को जान जाए तो आत्मा को जान लेगा। दोनों में से एक को जान जाएगा तो दूसरे को जान लेगा। गेहूँ और कंकड़ दोनों इकट्ठे हों और कोई कहे कि 'भाई, इनमें से कंकड़ कौन से हैं, बताओ', तो कोई पूछेगा क्या गेहूँ को नहीं पहचानना है? तो कहेंगे, 'नहीं, दो ही चीज़ें हैं तो मुझे सिर्फ यह समझा दो कि कंकड़ क्या है तो मैं समझ जाऊँगा कि ये गेहूँ हैं।' दूसरे के लिए पूछना नहीं पड़ेगा न?

(यदि) इतना पहचान जाए कि 'मैं कौन हूँ', तो जो बाकी बचा, वह *पुद्गल* है। जैसे कि कंकड़ को निकाल लें, तो सिर्फ गेहूँ ही

बचते हैं। दोनों की पहचान मत करवाना। कहाँ दो की फीस दें? एक की फीस देंगे। तो आत्मा को पूरी तरह से नहीं जाना इसलिए *पुद्गल* को भी नहीं जाना है। आत्मा को पूरी तरह से जान लेगा तो जो बाकी बचा, वह पूरा ही *पुद्गल* है। क्रमिक मार्ग में आत्मा को पूरी तरह से जानना अत्यंत मुश्किल है। इसलिए तप-त्याग वगैरह सब करवाते रहते हैं। 'ऐसा करो, वैसा करो।' क्या गेहूँ और कंकड़ में से एक नहीं समझ सकते? क्या दोनों को जानना पड़ेगा? दोनों की ही फीस नहीं चुकानी पड़ेगी न? एक को ही जानने की फीस चुकानी पड़ेगी न! क्रमिक मार्ग में तो दोनों की ही फीस चुकानी पड़ती है, वर्ना तब तक जान नहीं पाते। वहाँ पूरे ही आत्मा को किस तरह से जान सकेंगे? अंतिम अवतार में पूरे ही आत्मा को जान जाते हैं। तब फिर उस अवतार में तप या त्याग कुछ भी करने को रहता ही नहीं है न! त्याग करना परसत्ता के हाथ में है, अपने हाथ में नहीं है। कुछ भी करना, वह परसत्ता में है। अपनी सत्ता में है ही नहीं!

## नाम किसका? ज्ञान किसका?

**प्रश्नकर्ता :** मुझे तो इतना ही समझ में आया है कि आत्मा और *पुद्गल* दो ही हैं, बाकी सब बेकार है।

**दादाश्री :** वह तो मैंने आपको बताया था न, कि शुद्धात्मा और *पूरण-गलन* दो ही हैं।

**प्रश्नकर्ता :** अरे, लेकिन आप तो रोज़ कुछ अलग-अलग ही लाते हैं न, तो कन्फ्यूज़न हो जाता है।

**दादाश्री :** लेकिन किसी और को अलग तरह से समझाना पड़ता है न, आपको अलग तरह से समझाना पड़ता है। इसलिए (यदि) किसी एक जगह पर कुछ कहा हो तो आपको उसे इस तरह पकड़ नहीं लेना है।

**प्रश्नकर्ता :** प्रकट पुरुष की वाणी अजर-अमर बना देती है।

**दादाश्री :** हाँ, सही है। आत्मा पुस्तक में नहीं होता। किसी में भी नहीं होता। शब्द में भी नहीं होता, भाव में भी नहीं होता, संज्ञा में भी नहीं होता। आत्मा तो इतना सूक्ष्मतम है कि यह दीवार ही नहीं लेकिन पहाड़ के भी आर-पार जा सकता है। लेकिन ये जो *पुद्‌गल* की लपेटें हैं, वह उनके आर-पार नहीं जा सकता। वह आश्चर्य है न! तो ये *पुद्‌गल* की लपेटें कितनी गाढ़ होंगी?

एक सेठ ज्ञान लेने आए थे। मैंने पूछा, 'क्या नाम है?' तो कहा 'मैं सेठ हूँ, यहाँ का प्रेसिडेन्ट हूँ।' (नाम पूछा तो मान दिखाया) अरे, ज़रा विनय तो रख। जहाँ पर *पुद्‌गल* को खत्म करना है वहाँ पर *पुद्‌गल* का क्या आग्रह? *पुद्‌गल* का क्या भार रखना? जहाँ पर आत्मा प्राप्त करना है, वहाँ पर तो परम विनय होना चाहिए।

**प्रश्नकर्ता :** नाम *पुद्‌गल* का है या आत्मा का है?

**दादाश्री :** नाम तो सारे *पुद्‌गल* के ही होते हैं न! जिस-जिस का नाम पड़ता है, वह *पुद्‌गल* है।

**प्रश्नकर्ता :** आपने एक बार ऐसा कहा है, *पुद्‌गल* तो बेस है जबकि आत्मा, दर्शन है। आत्मा के ज्ञान के लिए इस *पुद्‌गल* के बेस की ज़रूरत है।

**दादाश्री :** हाँ, सही कहा है। आत्मा को जो अज्ञान हो गया है, वह *पुद्‌गल* की वजह से है और फिर वापस *पुद्‌गल* की वजह से ही ज्ञान होता है। *पुद्‌गल* का आधार है अभी तो।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् जैसा अहंकार उत्पन्न होता है, वैसा ही ज्ञान प्रकट होता है?

**दादाश्री :** जैसा अहंकार, वैसा ही वह ज्ञान प्रकट होता है।

**प्रश्नकर्ता :** कौन सा ज्ञान?

**दादाश्री :** पर-प्रकाश।

## आत्मा स्वभाव से ही स्थिर है, उसी प्रकार पुद्गल अस्थिर है

अंदर आत्मा स्थिर ही है। यह पूरी दुनिया *पुद्गल* में ही रची-बसी है। एक क्षण के लिए भी *पुद्गल* के बाहर नहीं आई है और जो कुछ भी स्थिरता उत्पन्न होती है, वह *पुद्गल* की स्थिरता है। आत्मा तो स्थिर ही है। निरंतर स्थिर रहे, उसी को आत्मा कहते हैं। आत्मा क्षयोपशम नहीं है। क्षयोपशम तो *पुद्गल* में होता है। आत्मा में क्षयोपशम नहीं होता।

**प्रश्नकर्ता :** इस ज्ञान के बाद में *पुद्गल* भी स्थिर हो जाता है न?

**दादाश्री :** *पुद्गल* स्थिर हो जाता है लेकिन कैसा? *पुद्गल* को भगवान कह सकें, वैसा। महावीर, भगवान ही कहे जाते हैं, क्योंकि वे स्थिर हैं।

## जब पुद्गल बन जाता है केवली, तभी होता है मोक्ष

**प्रश्नकर्ता :** ऐसे करते-करते क्या एक समय ऐसा नहीं आ जाएगा, जब हम कम्प्लीट अक्रिय हो जाएँगे, आत्मा की दृष्टि से और तब फिर चंदूलाल अक्रिय हो जाएगा?

**दादाश्री :** हाँ, लेकिन अहंकार से अक्रिय नहीं होना है, अपने आप अक्रिय होने के लिए ही है यह मार्ग।

**प्रश्नकर्ता :** अर्थात् अक्रिय होना सही है न?

**दादाश्री :** लेकिन अंत में तो अक्रिय हो ही जाना है। इस *पुद्गल* को आत्मा जैसा ही बन जाना है। आत्मा की नकल करे वैसा करना है *पुद्गल* और आज्ञा में रहने से वैसा बन जाएगा, अक्रिय। आत्मानुभव होने के बाद में अक्रिय हो जाएगा।

खुद का फोटो केवली (केवलज्ञान वाला) जैसा हो जाए तब समझना कि यह *पुद्गल* केवली हो गया। *पुद्गल* भी केवली हो जाए

तो वह मोक्ष है। अभी 'आप' सब अपने *पुद्गल* को केवली बना रहे हो। 'आत्मा' केवली ही है परंतु 'आपकी' समझ में केवली हो जाना चाहिए। केवल-आत्मा तो ऐसा है कि बहुत बड़े पहाड़ के भी आर-पार निकल जाए क्योंकि पहाड़ स्थूल है और आत्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

**प्रश्नकर्ता :** ज्ञान भी सूक्ष्म है! ज्ञान भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म है!

**दादाश्री :** वही आत्मा है। ज्ञान और आत्मा में कोई अंतर नहीं है।

## आत्मरक्षक, वही ज्ञानी

**प्रश्नकर्ता :** क्या केवली को आत्मा दिखाई देता होगा? उसने देखा होगा?

**दादाश्री :** देखना अर्थात् उसका भान होना। जानना अर्थात् अनुभव होना। केवलियों ने देखा है अतः उन्हें भान हो चुका है। आपको आपकी जो भूल महसूस होती है, वह दिखाई देती है या उसका अनुभव होता है? मूल आत्मा अनुभवगम्य है, अरूपी पद है। केवली भगवान यह अनुभव करते हैं कि *पुद्गल* उनसे खुद से अलग ही एक पुतला है। सही किया या गलत, वह नहीं देखना है। वह तो पुतला ही है, अचेतन है। कर्ताभाव दिखाई ही नहीं देना चाहिए। *पुद्गल* के साथ या *पुद्गल* के मन-वचन-काया के व्यवहार से कोई लेना-देना ही नहीं है। आप उससे बिल्कुल अलग ही हो। आपने अपना आत्मा देखा और जाना है, ऐसा भान हुआ है। थोड़ा-बहुत अनुभव में भी आया है। अब, मूल वस्तु पूरी तरह से अनुभव में आ जाए तो काम हो जाएगा!

जो *पुद्गल* का रक्षक बना, वह ज्ञानी नहीं है। ज्ञानी तो आत्मा के, स्वभाव के ही रक्षक होते हैं।

# मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

*पुद्गल* – जो पूरण और गलन होता है

*लागणी* – सुख-दुःख की अनुभूति, लगाव, भावुकता वाला प्रेम

*पूरण* – चार्ज होना, भरना

*गलन* – डिस्चार्ज होना, खाली होना

*अणहक्क* – बिना हक़ का, अवैध

*निर्जरा* – आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना

*कढ़ापा* – कुढ़न, क्लेश

*अजंपा* – बेचैनी, अशांति, घबराहट, आक्रोश, अकुलाहट

*अटकण* – जो बंधन रूप हो जाए, जो आगे नहीं बढ़ने दे

*ऊपरी* – बॉस, वरिष्ठ मालिक

*उपाधि* – बाहर से आने वाला दुःख, परेशानी

*खेंच* – अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना, आग्रह

*निकाल* – निपटारा

*आरा* – कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा

*बरु* – जंगली पौधे की नुकीली डंडी

*शाता* – सुख-परिणाम, शांति

*अशाता* – दुःख-परिणाम, अशांति

*लक्ष* – जागृति

*भोगवटा* – सुख या दुःख का असर, भुगतना, दुःख

*आड़ाई* – अहंकार का टेढ़ापन

*भजना* – उस रूप होना

## दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण ( सं, ग्रं )
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार ( सं, ग्रं )
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य ( सं, पू, उ )
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार ( सं )
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार( सं )
40. वाणी, व्यवहार में... ( सं )
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 ( पू )
53. आप्तवाणी - 13 ( पू, उ )
55. आप्तवाणी - 14 ( भाग-1, भाग-2 )
57. ज्ञानी पुरुष ( भाग-1 )

**( सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध )**

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट **www.dadabhagwan.org** पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

## संपर्क सूत्र

## दादा भगवान परिवार

**अडालज** : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
**फोन** : 9328661166, 9328661177
E-mail : info@dadabhagwan.org

**मुंबई** : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

| | | | |
|---|---|---|---|
| **दिल्ली** | 9810098564 | **बेंगलूर** | 9590979099 |
| **कोलकता** | 9830080820 | **हैदराबाद** | 9885058771 |
| **चेन्नई** | 7200740000 | **पूणे** | 7218473468 |
| **जयपुर** | 8890357990 | **जलंधर** | 9814063043 |
| **भोपाल** | 6354602399 | **चंडीगढ़** | 9780732237 |
| **इन्दौर** | 6354602400 | **कानपुर** | 9452525981 |
| **रायपुर** | 9329644433 | **सांगली** | 9423870798 |
| **पटना** | 7352723132 | **भुवनेश्वर** | 8763073111 |
| **अमरावती** | 9422915064 | **वाराणसी** | 9795228541 |

**U.S.A.** : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
**Email :** info@us.dadabhagwan.org

**U.K.** : +44 330-111-DADA (3232)

**Kenya** : +254 722 722 063

**UAE** : +971 557316937

**Dubai** : +971 501364530

**Australia** : +61 421127947

**New Zealand** : +64 21 0376434

**Singapore** : +65 81129229

**www.dadabhagwan.org**

## ज्ञान बीज सुरक्षित आप्तवाणी में

सिर्फ यदि एक अपनी 'आप्तवाणी' जीवित रहेगी न, तो हिन्दुस्तान में से ज्ञान नहीं जाएगा। यह तो ज्ञान बीज है। इसमें पूर्ण धर्म आ जाता है और समझना सरल है। यह उन शास्त्रों से भी ज़्यादा विस्तारपूर्वक है।

इसमें अंग्रेजी शब्द इसीलिए रखे हैं ताकि अभी के युवाओं के काम आए। फिर उन्हें शास्त्रों के किसी साधन की ज़रूरत नहीं रहेगी।

अत: आप्तवाणी से हिन्दुस्तान में ज्ञान बीज बना रहेगा। वर्ना हिन्दुस्तान में ज्ञान बीज फ्रेक्चर हो गए हैं। जैसे-जैसे आप्तवाणी हिन्दुस्तान के लोगों तक पहुँचेगी और जब लोगों में यह ज्ञान उगेगा, तब हिन्दुस्तान का ऐश्वर्य कुछ और ही होगा!

- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

# दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

dadabhagwan.org